श्रीमद्भगवद्गीता
(चिद्घनानन्द)
पार्ट II

परआत्माके साक्षात्कारतैं विना बहुत दुःखकरिकैभी नाशकरणेकूं अशक्य है । ऐसे कामके नाशहुएतैं अनंतर सर्व अनर्थोंकी निवृत्ति होवैहै । ता कामके नाशतैं विना जन्ममरणादिक अनर्थोंकी निवृत्ति होवै नहीं । इहां (दुरासदम्) यह जो कामका विशेषण कथन कर्याहै सो इस कामके नाशकरणेवासतै इस अधिकारी पुरुषनैं अत्यंत अधिकप्रयत्न करणा या अर्थके बोधनकरणेवासतै कथन कर्याहै। और (हे महाबाहो) या संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कर्या, महापराक्रमवाले तैं अर्जुनकूं इस कामरूप शत्रुका नाश करणा अत्यंत सुगम है इति । इस तृतीय अध्यायके सर्व अर्थका संक्षेपतैं कथन करणेहारा यह श्लोक है (उपायः कर्मनिष्ठात्र प्राधान्येनोपसंहृता । उपेया ज्ञाननिष्ठा तु तद्गुणत्वेन कीर्त्तिता)। अर्थ यह—ज्ञाननिष्ठाका उपायरूप जो निष्कामकर्मनिष्ठाहै सा कर्मनिष्ठा इस तृतीय अध्यायविषे प्रधानरूपकरिकै कथन करीहै । और फलरूप ज्ञाननिष्ठा तौ ताका गौणरूपकरिकै कथन करी है ॥ ४३ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीभगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थाध्यायप्रारंभः ।

तहां पूर्व अध्यायविषे यद्यपि उपायकरिकै प्राप्त होणेकूं योग्य जो उपेयरूप ज्ञानयोग है तथा ता ज्ञानयोगका उपायरूप जो कर्मयोग है तिन दोनोंयोगोंकूं यथाक्रमतैं उपेयरूप करिकै तथा उपायरूप करिकै श्रीभगवान् कथन करता भया है तथापि (एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति) इस वक्ष्यमाण वचनकी रीतिसैं साध्यरूप ज्ञानयोग तथा ताका साधनरूप कर्मयोग या दोनों योगोंके फलकी एकतातैं एकता कथन करिकै ता साधनरूप कर्मयोगकी तथा साध्यरूप ज्ञानयोगकी अनेक प्रकारके गुणोंके आधान अर्थ श्रीभगवान विद्यावंशके कथन करिकै स्तुति करैहैं—

श्रीभगवानुवाच ।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ॥
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) इमम् । विवस्वते । योगम् । प्रोक्तवान् । अहम् । अव्ययम् । विवस्वान् । मनवे । प्राह । मनुः । इक्ष्वाकवे । अब्रवीत् ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं कृष्णभगवान् इस नाशतैंरहित ज्ञानयोगकूं प्रथम सूर्य केतांई कहताभया और सो सूर्य आपणे मनुपुत्रकेतांई कहताभया और सो मनु आपके इक्ष्वाकुपुत्रकेताईं कथनकरताभया ॥ १ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! द्वितीय तृतीय या दोनों अध्यायोंकरिकै कथन कऱ्या जो ज्ञाननिष्ठारूप ज्ञानयोग है जो ज्ञानयोग कर्मनिष्ठारूप कर्मयोगरूप उपायकरिकै प्राप्त होवैहै । ऐसे ज्ञाननिष्ठारूप ज्ञानयोगकूं मैं सर्वजगत्का पालक वासुदेव सृष्टिके आदिकालविषे सूर्यके प्रति कथन करता भया जो सूर्य क्षत्रियवंशका बीजरूप है । तात्पर्य यह । ता ज्ञानयोगकी प्राप्तिद्वारा तिन राजावोंविषे बलका आधानकरिकै तिन राजावोंके आधीन सर्वजगत्का पालन करणेवास्तै मैं कृष्णभगवान् तिन राजावोंके प्रति ता ज्ञानयोगका कथन करताभया इति । शंका–हे भगवन् ! इस ज्ञानयोगकरिकै तिन राजावोंविषे किस प्रकार बलका आधान होवै है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता ज्ञानयोगविषे विशेषण करिकै ता बलके आधानकी कारणताकूं निरूपण करैं हैं (अव्ययमिति) हे अर्जुन ! नाशतैं रहित जो वेदभगवान्हैं सो वेदभगवानही इस ज्ञानयोगका मूलरूप हैं । या कारणतैं यह ज्ञानयोग अव्यय या नाम करिकै कह्या जावै है । अथवा ता ज्ञानयोगका फलरूप जो मोक्ष है सो मोक्ष नाशतैं रहित है । या कारणतैंभी यह ज्ञानयोग अव्यय या नाम करिकै कह्या जावैहै । इस प्रकार वेदरूप मूल करिकै तथा मोक्षरूप फल-करिकै नाशतैंरहित जो ज्ञानयोग है ता ज्ञानयोगविषे तिन राजावोंके बलकी आधानकता संभवैहै इति । हे अर्जुन ! सो हमारा शिष्य सूर्य आपणे वैवस्वत-मनुनामा पुत्रके ताईं सो ज्ञानयोग कथन करता भया । और सो वैवस्वतमनु आपणे इक्ष्वाकुनामा पुत्रके ताईं सो ज्ञानयोग कथन करताभया । जो इक्ष्वाकु सर्व-राजावोंतैं आदि राजा है । यद्यपि यह श्रीभगवान्का उपदेश मन्वंतरमन्वंतरविषे स्वायंभुवमनु आदिक सर्व मनुवोंके प्रति साधारणही है तथापि इदानींकालविषे विद्य-मान जो वैवस्वतमन्वंतर है ता वैवस्वतमन्वंतरके अभिप्राय करिकै श्रीभगवान्नैं सूर्यतैं लेके विद्याका संप्रदाय गणन कऱ्याहै इति ॥ १ ॥

किंच–

एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयोऽविदुः ॥
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) एवम् । परंपराप्राप्तम् । इमम् । राजर्षयः । अविदुः । सः । कालेन । इह । महता । योगः । नष्टः । परंतप ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इसप्रकार परंपराकरिकै प्राप्त इस ज्ञानयोगकूं राजऋषि जानते भयेहैं सो ज्ञानयोग इदानींकालविषे दीर्घ कालकरिकै नष्टहोइरह्याहै ॥२॥

भा॰टी॰–हे अर्जुन ! इसप्रकार सूर्यतैं आदिलैके गुरुशिष्योंकी परंपराकरिकै प्राप्तभया जो यह ज्ञानयोग है ता ज्ञानयोगकूं निमि जनक अजातशत्रु कैकेय इत्यादिक राजऋषि सूक्ष्मअर्थके जानणेहारे आपणेआपणे आचार्य पिता आदिकोंतैं जानतेभये हैं । राजे होवैं तेईही ऋषि होवैं तिन्होंका नाम राजऋषि है अर्थात् क्षत्रियराजावोंका नाम राजऋषि है । अथवा (राजर्षयः) या पदकरिकै राजावोंका तथा ऋषियोंका भिन्नभिन्न ग्रहण करना । तहां राजाशब्द करिकै तौ निमि जनक अजातशत्रु कैकेय इत्यादिक राजाओंका ग्रहण करणा और ऋषिशब्द करिकै सनक वसिष्ठ इत्यादिक ऋषियोंका ग्रहण करणा या प्रकारका अर्थ किसी टीकाविषे कथन कर्याहै और किसी टीकाविषे तौ (राजर्षयः) या पदकरिकै पूर्वउक्तरीतिसैं क्षत्रियराजावोंकाही ग्रहण कर्याहै । परंतु ता पदकूं सनक वसिष्ठ इत्यादिक ब्राह्मणऋषियोंकाभी उपलक्षक अंगीकार कर्या है इति । यातैं यह ज्ञानयोग अनादिवेदमूलक होणेतैं तथा नाशतैं रहित मोक्षरूप फलका जनक होणेतैं तथा अनादि गुरुशिष्योंकी परंपराकरिकै प्राप्त होणेतैं कृत्रिमशंकाका विषय होवै नहीं । तात्पर्य यह। यह ज्ञानयोग पूर्व नहीं था किंतु इदानींकालविषेही हुआहै याप्रकारकी कृत्रिमशंका ता ज्ञानयोगविषे संभवती नहीं इति । ऐसा महान्प्रभाववाला यह ज्ञानयोग है इसप्रकार । ता ज्ञानयोगविषे मुमुक्षुजनोंकी अत्यंत श्रद्धा करावणेवासतै श्रीभगवान्नैं ता ज्ञानयोगकी स्तुति कथन करी है इति । हे अर्जुन ! सो ऐसा महान् प्रयोजनवालाभी ज्ञानयोग धर्मकी न्यूनता करणेहारे दीर्घकालकरिकै इस द्वापरके अंतमैं तुम्हारे हमारे व्यवहारकालविषे दुर्बल अजितइंद्रिय अनधिकारी पुरुषोंकूं प्राप्त होइकै काम क्रोधादिक विकारोंकरिकै अभिभवकूं प्राप्त हुआ विच्छिन्न संप्रदायवाला होताभया है । और ता

ज्ञानयोगतैं विना अधिकारीजनोंकूं मोक्षरूप परमपुरुषार्थकी प्राप्ति होवै नहीं । यातैं इनलोकोंके अत्यंत दुर्भाग्यहैं । इहां (हे परंतप !) या संबोधनके कहणेकरिकै श्रीभगवाननैं यह अर्थ सूचन कऱ्या—परं शत्रुं तापयतीति परंतपः । अर्थ यह—कामक्रोधादिक शत्रुवोंका नाम पर है । तिन काम क्रोधादिक शत्रुवोंकूं जो पुरुष आपणे शौर्यताकरिकै अथवा बलवान्‌विवेककरिकै अथवा तपकरिकै सूर्यकी न्याईं तपायमान करैहै ता पुरुषका नाम परंतप है । अर्थात् जितेंद्रियपुरुषका नाम परंतप है । ऐसा तुम्हारा जितइंद्रियपणा स्वर्गकी उर्वशी आदिक अप्सरावोंकी उपेक्षा करणेतैं शास्त्रविषे प्रसिद्धही है । ऐसा जितइंद्रिय होणेतैं तूं अर्जुन इस ज्ञानयोगविषे अधिकारी है ॥ २ ॥

किंच—

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ॥
भक्तोसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) सः । एव । अयम् । मया । ते । अद्य । योगः । प्रोक्तः । पुरातनः । भक्तः । असि । मे । सखा । च । इति । रहस्यम् । हि । एतत् । उत्तमम् ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सोई ही यह अनादि ज्ञानयोग इसकालविषे मैंकृष्ण-भगवाननैं तुम्हारे ताईं कथन कऱ्याहै जिसकारणतैं तूं अर्जुन हमारा भक्त है तथा सखाहै जिसकारणतैं यह ज्ञानयोग उत्तमहै तथा अत्यंत गोप्यहै ॥ ३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो ज्ञानयोग पूर्व हमनैं सूर्यादिक शिष्योंके प्रति उपदेश करयाहुआ भी इदानींकालविषे अधिकारी पुरुषोंके अभावतैं विच्छिन्न-संप्रदायवाला होताभया है । तथा जिस ज्ञानयोगतैं विना इन पुरुषोंकूं मोक्षरूप परमपुरुषार्थकी प्राप्ति होती नहीं । सोईही गुरुशिष्योंकी परंपराकारिकै अनादि ज्ञान-योग इस संप्रदायके विच्छेदकालविषे अति स्नेह युक्त मैं कृष्णभगवान् तैं अर्जुन-के ताईं विस्तारतैं कथन करयाहै । दूसरे जिसीकिसीपुरुषके ताईं हमनैं यह ज्ञान-योग उपदेश कऱ्यानहीं । जिसकारणतैं तूं अर्जुन हमारा भक्त है अर्थात् मेरे शरणागतकूं प्राप्त हुआ तूं मेरेविषे अत्यंत प्रीतिमान् है तथा तू अर्जुन हमारा सखा है अर्थात् हमारेसमान अवस्थावालाहै तथा हमारेविषे स्नेहवाला है तथा हमारी

सहायता करणेहारा है । इसकारणतैं यह ज्ञानयोग हमनैं तुम्हारेप्रति कथन कऱ्याहै। शंका—हे भगवन्! यह ज्ञानयोग हमारेतैं भिन्न दूसरेपुरुषोंके प्रति आपनैं किस वास्तै नहीं कथन कऱ्याहै। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (रहस्यं ह्येतदुत्तममिति) हे अर्जुन ! जिसकारणतैं यह ज्ञानयोग अत्यंत उत्तम है । तथा अत्यंत गोप्य राखणेयोग्य है । तिसकारणतैं हमनैं यह ज्ञानयोग अन्य किसी पुरुषके प्रति कथन करयानहीं । तहां श्रुति (विद्याह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेहमस्मि । असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम् ।) अर्थ यह—एककालविषे ब्रह्मविद्या ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणोंके समीप जातीभई तहां जाइकै तिन ब्राह्मणोंके प्रति याप्रकारका वचन कहतीभई हे ब्राह्मणों ! तुम हमारेकूं अत्यंत गोप्य राखो ताकरिकै मैं तुम्हारेप्रति भोग मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति करोंगी और जो कदाचित् कृपाके वशहुए तुम हमारेकूं गोप्य नहीं राखिसको तोभी विवेक वैराग्यादिक साधनसंपन्न अधिकारियोंके प्रति हमारा उपदेश करो । और जो पुरुष असूयात वाला है तथा ऋजुभावतैं रहित है तथा मनसहित इंद्रियोंके निग्रहतैं रहित है ऐसे अनधिकारी पुरुषके प्रति हमारा उपदेश तुमने कदाचित्भी नहीं करणा किंतु अधिकारीपुरुषोंके प्रतिही उपदेश करणा । जिसकरिकै मैं ब्रह्मविद्या फलका हेतु होवौं इति । इस श्रुतिका विस्तारतैं अर्थ तौ आत्मपुराणके द्वितीयअध्यायविषे हम कथन करि आये हैं यातैं इहां संक्षेपतैं कह्याहै ॥ ३ ॥

तहां शास्त्रविचारतैं रहित मूर्खलोकोंकूं वसुदेवके पुत्ररूप श्रीकृष्णभगवान्विषे मनुष्यत्वरूप हेतुकरिकै जो असर्वज्ञपणेकी तथा अनित्यपणेकी शंका होवैहै ता शंकाके निवृत्तकरणेवास्तै ता शंकाका अनुवाद करता हुआ अर्जुन श्रीभगवान्के प्रति प्रश्न करैहै—

अर्जुन उवाच ।

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ॥
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) अपरम् । भवतः । जन्म । परम् । जन्म । विवस्वतः । कथम् । एतत् । विजानीयाम् । त्वम् । आदौ । प्रोक्तवान् । इति ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! आपका जन्मतौ अबीहुआहै और सूर्यका जंन्मतौ पूर्वहुआ है यातैं तूं कृष्णभगवान् सृष्टिके आदिकालविषे सूर्यके प्रति यह ज्ञानयोग कहंताभयाहै यंह वौर्ता मैं अर्जुन किसंप्रकार निश्चयंकरौं ॥ ४ ॥

भा॰ टी॰— हे भगवन् ! आप कृष्ण भगवान्का शरीरका ग्रहणरूप जन्म तौ इसद्वापरके अंतकालविषे वसुदेवके गृहविषे हुआ है सो जन्मभी मनुष्यत्वजाति-वाला होणेतैं निकृष्ट है और सूर्यका जन्म तौ सृष्टिके आदिकालविषे हुआ है और सो सूर्यका जन्म देवत्वजातिवाला होणेतैं उत्कृष्ट है इहां (न जायते म्रियते वा कदाचित्) इत्यादि वचनोंकरिकै पूर्व आत्माके जन्मका अभाव विस्तारतैं कथन करि आये हैं यातैं आत्माके जन्मविषे तौ अर्जुनका प्रश्न संभवता नहीं किंतु स्थूलदेहके जन्म-के अभिप्राय करिकै ही अर्जुनका यह प्रश्न है इति । यातैं हे भगवन् ! अबी इस कालविषे उत्पन्नहुआ तथा सर्वज्ञ मनुष्य तूं पूर्व सृष्टिके आदिकालविषे उत्पन्न हुए सर्वज्ञ सूर्यके ताईं यह ज्ञानयोग कथन करताभया है । इस अर्थकूं मैं अर्जुन अवि-रुद्धरूप करिकै किसप्रकार निश्चय करौं किंतु यह आपके वचनका अर्थ हमारेकूं अत्यंत विरुद्ध प्रतीत होताहै । इहां अर्जुनका यह अभिप्राय है, सूर्यके प्रति जो आपनैं इस ज्ञानयोगका उपदेश करयाथा सो इस वर्त्तमान देहतैं भिन्न किसी दूसरे देहकरिकै उपदेश करयाथा अथवा इस वर्त्तमानदेह करिकैही उपदेश करयाथा तहां प्रथमपक्ष जो आप अंगीकार करो सो संभवता नहीं काहेतैं पूर्वजन्मविषे अनुभवकरया जो अर्थ है ता अर्थका उत्तर दूसरे जन्मविषे असर्वज्ञपुरुषकूं स्मरण होवै नहीं जो कदाचित् पूर्वजन्माविषे अनुभव करे हुए अर्थका दूसरे जन्मविषे भी असर्वज्ञ पुरुषकूं स्मरण होता होवै तो मैं अर्जुनकूंभी पूर्वजन्मविषे अनुभव करेहुए अर्थका इसजन्मविषे स्मरण होणा चाहिये सो स्मरण हमारेकूं होता नहीं । और तुम्हारेविषे तथा हमारेविषे मनुष्यरूपता करिकै असर्वज्ञपणा तुल्यही है । यातैं हमारे न्याईं तुम्हारेकूंभी जन्मांतरविषे अनुभव करेहुए पदार्थोंका इस जन्मविषे स्मरण नहीं होवैगा इति । और इस वर्तमान देहकरिकैही पूर्व सूर्यके प्रति हमनैं यह ज्ञानयोग उपदेश करया है यह दूसरापक्ष जो आप अंगीकार करो सोभी संभवता नहीं । काहेतैं इस वर्तमानकालविषे वसुदेवपितातैं उत्पन्न भया जो यह तुम्हारा देह है सो यह देह पूर्व सृष्टिके आदिकालविषे विद्यमान था नहीं । यातैं इस वर्त्तमान देह करिकै भी आपका सूर्यके प्रति उपदेश संभवै नहीं यातैं यह अर्थ सिद्धभया

इस देहतैं भिन्न दूसरे किसी देहकरिकै ता सृष्टिके आदिकालविषे आपकी स्थितिके संभवहुए भी ता देहकरिकै अनुभव करेहुए अर्थका इस वर्तमान देहविषे स्मरण नहीं संभवैगा । और इस वर्त्तमान देहकरिकै ता स्मरणकी सिद्धिहुए भी सृष्टिके आदिकालविषे इस वर्त्तमान देहकी स्थिति संभवती नहीं । इस प्रकार असर्वज्ञ अनित्यत्व या दोनों हेतुवों करिकै अर्जुनके दो पूर्वपक्ष सिद्ध होवैं हैं ॥ ४ ॥

तहां श्रीभगवान् आपणेविषे सर्वज्ञपणा कथन करिकै प्रथम पूर्वपक्षके परिहारकूं कथन करैंहैं–

श्रीभगवानुवाच ।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ॥
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) बहूनि । मे । व्यतीतानि । जन्मानि । तव । च । अर्जुन । तानि । अहम् । वेद । सर्वाणि । न । त्वम् । वेत्थ । परंतप ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! हमारे तथा तुम्हारे बहुत जन्म व्यतीत होतेभये हैं तिन सर्वजन्मोंकू मैं कृष्णभगवान् जानताहूं हे परंतप तूं तिन जन्मोंकूं नहीं जानताहै ॥ ५ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जैसे यह लोक सर्वदा विद्यमान सूर्यकाभी उदय मानैहैं तैसे वास्तवतैं जन्मतैं रहित हुएभी मैं कृष्ण भगवान्के लोकदृष्टिके अभिप्राय करिकै लीलामात्रतैं देहका ग्रहणरूप अनेकजन्म पूर्व व्यतीत होते भये हैं और आत्मज्ञानतैं रहित जो तूं अर्जुन है तिस तुम्हारे भी पुण्य पाप कर्मोंके वशतैं देहका ग्रहणरूप अनेक जन्म पूर्व होतेभये हैं । इहां (तव) यह एक अर्जुनका वाचक पद दूसरे जीवोंकाभी उपलक्षक है अथवा (तव) यह पद एक जीववादके अभिप्राय करिकै कथन कऱ्याहै इति । हे अर्जुन ! तिन आपणे सर्व जन्मोंकूं तथा तुम्हारे सर्वजन्मोंकूं तथा अन्य जीवोंके सर्वजन्मोंकूं मैं सर्वज्ञ सर्वशक्तिसंपन्न ईश्वरही जानताहूं तूं आवृत ज्ञानशक्तिवाला अज्ञानी अर्जुन तिन सर्वजन्मोंकूं जानता नहीं । तात्पर्य यह–तूं अर्जुन अज्ञान दोषके वशतैं जबी पूर्वव्यतीतहुए आपणे जन्मोंकूंभी नहीं जानता है तबी पूर्व व्यतीत हुए हमारे जन्मोंकूं तथा अन्यजीवोंके जन्मोंकूं तूं कैसे जानिसकैगा किंतु नहीं जानिसकैगा इति । इहां हे अर्जुन ! या संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं

यह अर्थ सूचन कऱ्या, शास्त्रविषे किसी वृक्षविशेषकूंभी अर्जुन या नामकरिकै कथन करैहैं ता अर्जुननामा वृक्षकी ज्ञानशक्ति जैसे आवृत रैहहै तैसे तैं अर्जुनकीभी सा ज्ञानशक्ति आवृत होइरही है। यातैं तिन आपणे तथा हमारे जन्मोंकूं तूं जानिसकता नहीं इति । और (हे परंतप !) या संबोधनके कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या, परं नाम शत्रुका है ता शत्रुकूं भेददृष्टितैं कल्पना करिकै ता शत्रुके हनन करणेविषे तूं प्रवृत्तहुआ है जैसे कोई मूढबालक आपणे शरीरकूं ही पिशाच कल्पना करिकै ताके हननकरणेविषे प्रवृत्त होवै है । यातैं विपरीतदर्शी होणेतैं तूं अर्जुनभी भ्रान्त है इति । इहां (हे अर्जुन ! हे परंतप !) या दोनों संबोधनों करिकै श्रीभगवान्नैं आवरण विक्षेप या दोनोंविषे अज्ञानकी धर्मरूपता कथन करी ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! जो कदाचित् पूर्व व्यतीतहुए आपणे अनेक जन्मोंकूं आप स्मरण करते हो तौ आप भी जातिस्मरनामा कोई जीवविशेष होवौगे काहेतैं जातिस्मर योगीपुरुषोंकूं सर्वात्मअभिमान करिकै दूसरे जन्मोंका ज्ञान भी संभव होइसकताहै । जैसे वामदेवकूं सर्वात्मअभिमान करिकै पूर्व अनेकजन्मोंका स्मरण होताभया है । तहां सो वामदेव माताके उदरविषे स्थित होइकै या प्रकारका वचन कहताभयाहै । हे अधिकारीजनो ! मैं वामदेव जीव हुआ भी पूर्व मनु होता भयाहूं तथा सूर्य होताभयाहूं तथा कक्षीवान् ऋषि होताभयाहूं इति । इस प्रकार सो वामदेवनाम जीव सर्वात्मअभिमान करिकै पूर्वले अनेक जन्मोंकूं स्मरण करताभयाहै तिन जन्मोंके स्मरण करिकै जैसे वामदेवविषे मुख्य सर्वज्ञपणा सिद्ध होता नहीं तैसे पूर्वजन्मोंके स्मरण करिकै आपविषे भी मुख्य सर्वज्ञपणा सिद्ध नहीं होवैगा । यातैं ईश्वरभावतैं रहितहुआ तूं कृष्ण भगवान् पूर्व सर्वज्ञसूर्यके प्रति सो ज्ञानयोग किसप्रकार उपदेश करताभयाहै किंतु सर्वज्ञ सूर्यके प्रति आपका उपदेश संभवता नहीं । हे भगवन् ! जीवविषे मुख्य सर्वज्ञपणा संभवता नहीं काहेतैं व्यष्टिउपाधिवालेका नाम जीवहै सो व्यष्टिउपाधिवाला जीव परिच्छिन्नही होवै है यातैं ता परिच्छिन्नजीवका भूत भविष्यत् वर्त्तमान सर्व पदार्थोंके साथि संबंधही नहीं संभवताहै । और तिन सर्वपदार्थोंके साथि संबंधतैं विना तिन सर्वपदार्थोंका ज्ञान संभवता नहीं । हे भगवन् ! व्यष्टि उपाधिवाले जीवकी क्या वार्त्ता है । परंतु समष्टिउपाधिवाला जो विराट्है तथा समष्टि उपाधिवाला जो हिरण्यगर्भहै तिन दोनोंकूं भी

सर्वपदार्थोंका ज्ञान संभवता नहीं काहेतैं समष्टिस्थूलभूतरूप उपाधिवाला जो विराट् है तिस विराट्कूं यद्यपि स्थूलभूतोंके कार्यविषयकज्ञान संभवै है तथापि ता विराट्कूं सूक्ष्मभूतोंके परिणामविषयक ज्ञान तथा मायाके परिणामविषयक ज्ञान संभवता नहीं। इसप्रकार समष्टिसूक्ष्मभूतरूप उपाधिवाला जो हिरण्यगर्भ है ता हिरण्यगर्भकूं यद्यपि स्थूलभूतोंके परिणामविषयकज्ञान तथा सूक्ष्मभूतोंके परिणाम-विषयकज्ञान संभवहोइसकैहै तथापि ता हिरण्यगर्भकूं तिन सूक्ष्मभूतोंका कारणरूप मायाके परिणामरूप आकाशादिकसृष्टि क्रमादिकविषयक ज्ञान संभवता नहीं। यातैं विराट्विषे तथा हिरण्यगर्भविषे भी मुख्यसर्वज्ञता संभवै नहीं तौ व्यष्टिउपाधि-वाले जीवोंविषे सा मुख्य सर्वज्ञता कैसे संभवैगी ? किंतु नहीं संभवैगी। यातैं माया-रूपकारणउपाधिवाला होणेतैं भूत भविष्यत् वर्त्तमान सर्वपदार्थविषयकज्ञानवाला जो ईश्वर है सो मायाउपहित ईश्वरही मुख्य सर्वज्ञहै। ऐसे जन्ममरणतैं रहित नित्य सर्वज्ञ ईश्वरविषे पुण्य पाप कर्म हैं नहीं। यातैं ता ईश्वरका प्रथम तौ जन्महोणाही संभवता नहीं तो पूर्वव्यतीतहुए अनेक जन्म ता ईश्वरके कैसे संभवैंगे ? किंतु नहीं संभ-वैंगे। यातैं यह अर्थ सिद्धभया, जो कदाचित् आप जीव हो तौ हमारेन्याईं आप-विषे सर्वज्ञता नहीं संभवैगी और जो कदाचित् आप ईश्वरहो तौ आपविषे देहका ग्रहणरूप जन्म नहीं संभवैगा इति। ऐसी अर्जुनकी दोनो शंकावोंकूं निवृत्त करताहुआ श्रीभगवान् पूर्व कथनकऱ्येहुए अनित्यत्वपक्षकेभी परिहारकूं कथन करैंहैं—

अजोपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपि सन्॥
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥ ६॥

(पदच्छेदः) अजः। अपि। सन्। अव्ययात्मा। भूतानाम्। ईश्वरः। अपि। सन्। प्रकृतिम्। स्वाम्। अधिष्ठाय। संभवामि। आत्ममायया॥६॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं कृष्णभगवान् जन्मतैंरहित हुआ भी तथा मरणतैं रहित हुआभी तथा सर्वभूतोंका ईश्वर हुआ भी आपणी मायाकूं आश्रयण करिकै ता आपणीमायाकरिकै जन्मवाला होताहूं॥ ६॥

भा० टी०—अपूर्व देह इंद्रियादिकोंका जो ग्रहणहै ताका नाम जन्म है और पूर्व ग्रहणकरेहुए देहइंद्रियादिकोंका जो वियोगरूप मरण है ताका नाम व्यय है ता जन्ममरण दोनोंकूं ही नैयायिक प्रेत्यभाव यानामकरिकै कथन करे हैं तिन जन्म-

मरण दोनोंकूं (जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च) इस वचन करिकै पूर्व कथन करिआयेहैं। ते जन्ममरण दोनों इस जीवकूं धर्म अधर्मके वशतैं प्राप्त होवै हैं और सो धर्मअधर्मका वशपणा देहाभिमानी अज्ञानी जीवकूं कर्मोंके अधिकारीपणे करिकै ही होवै है। तहां सर्वके कारणरूप सर्वज्ञ ईश्वरकूं इसप्रकारका देहका ग्रहणरूप जन्म नहीं संभवताहै यह जो पूर्व कथनकऱ्याथा सो यथार्थ ही है काहेतें जो कदाचित् तिस ईश्वरका शरीर स्थूलभूतोंका कार्यरूप होवै तहां स्थूलभूतोंका कार्यरूप हुआभी सो शरीर जो कदाचित् व्यष्टिरूप होवैगा तौ जाग्रतअवस्थाविषे स्थित अस्मदादिक विश्वनामा जीवोंके तुल्यही सो ईश्वर होवैगा। और जो कदाचित् सो ईश्वरका शरीर समष्टिरूप होवैगा तौ ता ईश्वरविषे विराट्नामाजीवरूपता प्राप्त होवैगी। जिस कारणतैं समष्टिस्थूलउपाधिवाला विराट् ही होवै है। और सो ईश्वरका शरीर जो कदाचित् सूक्ष्मभूतोंका कार्यरूप होवै तहां सूक्ष्मभूतोंका कार्यरूप हुआभी सो ईश्वरका शरीर जो कदाचित् व्यष्टिरूप होवैगा तौ ता ईश्वरविषे स्वप्नावस्थाविषे स्थित हम तैजसनामाजीवोंकी तुल्यता प्राप्त होवैगी। और सो ईश्वरका शरीर जो कदाचित् समष्टिरूप होवैगा तौ ता ईश्वरविषे हिरण्यगर्भनामाजीवरूपता प्राप्त होवैगी। जिस कारणतैं समष्टिसूक्ष्मउपाधिवाला हिरण्यगर्भही होवैहै यातैं यह अर्थ सिद्ध भया, आकाशादिकभूतोंका कार्यरूप तथा किसी भी जीवनैं नहीं आश्रयणकऱ्याहुआ ऐसा भौतिक शरीर ता ईश्वरका संभवता नहीं और जो कोई यह कहै; किसी जीव करिकै युक्त जो भौतिक शरीर है ता भौतिकशरीरविषे भूतावेशकी न्याईं सो ईश्वर प्रवेश करै है सो यह कहणा भी संभवता नहीं। काहेतें जिस जीवकरिकै युक्त जिस भौतिकशरीरविषे ता ईश्वरनैं प्रवेश कऱ्याहै तिस शरीरकरिकै तिस जीवकूं सुखदुःखका भोग होता है अथवा नहीं होता है तहां प्रथम पक्ष जो अंगीकार करौ तौ अंतर्यामीरूप करिकै ता ईश्वरका प्रवेश सर्व शरीरोंविषे विद्यमान है। यातैं ता ईश्वरके शरीरविशेषका अंगीकार करणा व्यर्थ होवैगा। और दूसरा पक्ष जो अंगीकार करो तौ सो शरीर ता जीवका नहीं संभवैगा। यातैं किसी प्रकार करिकै भी ईश्वरका भौतिक शरीर संभवता नहीं। इस सर्व अर्थकूं श्रीभगवान् श्लोकके पूर्वार्द्ध करिकै अंगीकार करे हैं (अजोपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपि सन् इति) हे अर्जुन ! अपूर्वदेहका ग्रहणरूप जो जन्म है ता जन्मतैं भी मैं कृष्ण भगवान् रहितहूं। तथा पूर्वदेहका परित्यागरूप जो व्यय है

ता मरणरूप व्ययतैं भी मैं कृष्णभगवान् रहित हूं । तथा ब्रह्मातैं आदिलैके स्तंबपर्यंत जितनेक भूत हैं तिन सर्वभूतोंका मैं कृष्ण भगवान् ईश्वर हूं । इतनैं कहणे करिकै श्रीभगवान्नैं आपणेविषे धर्मअधर्मका वशपणा निवृत्त कर्या । जिस कारणतैं जन्ममरणवाला पराधीन जीवही ता धर्मअधर्मके वश होवैहै । स्वतंत्र ईश्वर ता धर्मअधर्मके वश होवै नहीं । शंका—हे भगवन् ! ऐसे जन्ममरणादिक विकारोंतैं रहित आप ईश्वरकूं देहका ग्रहण किस प्रकार संभवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् श्लोकके उत्तरार्द्धकरिकै समाधान करै हैं (प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवामि इति) हे अर्जुन ! यद्यपि वास्तवतैं मैं कृष्ण भगवान् जन्ममरणादिक सर्वविकारोंतैं रहित हूं तथापि मैं परमेश्वरकी उपाधिरूप तथा विचित्र अनेकशक्तियोंवाली तथा अघटितघटनापटीयसी नामवाली तथा सत्व रज तम या त्रिगुणरूप ऐसी जा माया प्रकृति है, ता प्रकृतिकूं आपणे चिदाभासद्वारा वशकरिकै तिस मायाके परिणाम विशेषोंकरिकै ही देहवालेकी न्याईं तथा जन्मेहुएकी न्याईं प्रतीत होताहूं । तात्पर्य यह । उत्पत्तितैं रहित होणेतैं अनादिरूप जा माया है सा अनादिमाया ही मैं परमात्मादेवकी उपाधि है । सा माया व्यवहारकालपर्यंत स्थायी होणेतैं नित्य है । तथा मैं परमात्मादेवविषे सर्व जगत्के कारणपणेका संपादक है तथा मैं परमात्मादेवकी इच्छाकरिकै ही सा माया प्रवृत्त होवै है । ऐसी मायाही विशुद्ध सत्त्वरूप करिकै मैं परमात्मादेवकी मूर्त्ति है । ता मायारूप मूर्त्तिविशिष्ट मैं परमात्मादेवविषे जन्मतैं रहितपणा तथा मरणतैं रहितपणा तथा सर्वभूतोंका ईश्वरपणा संभव होइ सकै है । यातैं ता शुद्धसत्त्व प्रधानमायारूप नित्यदेहकरिकै ही मैं परमात्मादेव सृष्टिके आदिकालविषे तौ सूर्यके प्रति तथा इदानींकालविषे तैं अर्जुनके प्रति यह ज्ञानयोग उपदेश करताभयाहूं । इस अर्थविषे किंचितमात्रभी पूर्वउक्तदोषोंकी प्राप्ति होवै नहीं । तहां श्रुति । (आकाशशरीरं ब्रह्म) अर्थ यह—आकाश है नाम जिसका ऐसा जो मायारूप अव्याकृत है । ता अव्याकृतरूप शरीरवाला ब्रह्म है । इत्यादिक श्रुतियोंविषे ब्रह्मका मायाही शरीर कथन कर्या है । ता मायारूप शरीरकरिकै मैं परमात्मादेवकी जगत्की उत्पत्तिकालविषे तथा स्थितिकालविषे तथा प्रलयकालविषे सर्वदा स्थिति संभव होइसकै है इति । शंका—हे भगवन् ! जो कदाचित् आपका केवल मायाही शरीर होवै भौतिक शरीर होवै नहीं, तौ भौतिक शरीरके धर्म जे मनुष्यत्वादिक

हैं ते मनुष्यत्वादिक धर्म इस आपके शरीरविषे किसवास्तै प्रतीत होवेहैं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् कहैं हैं (आत्ममायया इति) हे अर्जुन ! हमारेविषे जे मनुष्यत्वादिक धर्म प्रतीत होवै हैं । ते मनुष्यत्वादिक धर्म हमारेविषे कोई वास्तवतैं नहीं किंतु लोकोंऊपरि अनुग्रह करणेवास्तै हमारी मायाकरिकै ही ते मनुष्यत्वादिक धर्म हमारेविषे प्रतीत होवै हैं इति । यह वार्त्ता मोक्षधर्मविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक । (माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद । सर्वभूतगुणैर्युक्तं न तु मां द्रष्टुमर्हसि ।) अर्थ यह—हे नारद ! जिस शरीरविशिष्ट मेरेकूं तूं इन चर्मक्षुओंकरिकै देखता है सो यह शरीर हमनै मायाकरिकै रच्या है और कारणमायारूप शरीरवाला जो मैं हूं तिस हमारेकूं तूं इन चर्मचक्षुवोंकरिकै देखणेकूं समर्थ नहीं है इति । तहां अनेकशक्तियोंवाला तथा मायानामवाला ऐसा जो नित्यकारण उपाधि है सो मायारूप कारणउपाधिही परेमेश्वरका देह है । यह भगवान् भाष्यकारोंका मत कथन करया । और दूसरे कई शास्त्रवाले तौ परमेश्वरविषे देहदेहीभावकूं मानते नहीं । किंतु जो सत् चित् आनंदघन भगवान् वासुदेव परिपूर्ण निर्गुण परमात्मा है सोईही ता परमेश्वरका शरीरहै। दूसरा कोई भौतिकशरीर तथा मायिकशरीर ता परमेश्वरका है नहीं इति । तहां श्रुति—(स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठितः स्वे महिम्नि ।) अर्थ यह—हे भगवन् ! सो परमात्मादेव किसविषे स्थित है ऐसी शंकाके हुए । सो परमात्मादेव आपणे सत् चित आनंदरूप महिमाविषेही स्थित इति । इत्यादिक श्रुतियोंविषे तिस परमात्मादेवकी आपणेस्वरूपविषेही स्थिति कथन करी है किसी मायिकशरीरविषे तथा भौतिक शरीरविषे स्थिति कथन करी नहीं इति । इसपक्षविषे तौ इस श्लोककी इस प्रकारतैं योजना करणी । (आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः । अविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा ।) अर्थ यह—यह परमात्मादेव आकाशकी न्याई सर्वत्र व्यापक है तथा नित्य है । हे मैत्रेयी ! यह आत्मादेव स्वरूपतैं भी नाशतैं रहित है । तथा धर्मोंके नाशप्रयुक्त नाशतैं भी रहित है इत्यादिक श्रुतिप्रमाणोंतैं मैं परमात्मादेव वास्तवतैं जन्ममरणादिक विकारोंतैं रहित हुआ भी तथा सर्वजगत्का प्रकाशहुआ भी तथा सर्व जगत्का कारणरूप मायाका अधिष्ठान होणेतैं सर्वभूतोंका ईश्वरहुआभी (स्वां प्रकृतिं) आपणा स्वरूपभूत सत् चित् आनंद घन एकरस स्वभावरूप प्रकृतिकूं (अधिष्ठाय) क्या आश्रयणकरिकै अर्थात् ता

आपणे स्वरूपविषे स्थित होइकै (संभवामि) क्या देहदेहीभावतैं विना ही लोकप्रसिद्ध देहवाले जीवोंकी न्याईं यह परमेश्वर देहवाला है या प्रकारके व्यवहार-का विषय होऊंहूं इति । शंका–हे भगवन् ! मायिक देहतैं तथा भौतिक देहतैं रहित सत् चित् आनंदघन जो आप हो ऐसे आपविषे इस मनुष्यदेहत्वकी प्रतीति किसवासतै होती है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् कहै हैं (आत्ममायया इति) हे अर्जुन ! देहदेहीभावतैं रहित जो मैं नित्य शुद्ध सत आनंदघन भगवान् वासुदेव हूं । ऐसे मैं परमात्मादेवविषे जो देहदेहीरूपकरिकै प्रतीति है, सा मायामात्रही है । वास्तवतैं हमारेविषे सो देहदेहीभाव हैनहीं । यह वार्त्ता अन्य-शास्त्रविषेभी कथन करी है। तहां श्लोक–(कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्। जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया । अहोभाग्यमहोभाग्यं नंदगोपव्रजौकसाम् । यन्मित्रं परमानंदं पूर्णंब्रह्म सनातनम् ।) अर्थ यह–इस कृष्णभगवान्कूं तूं सर्व भूतप्रा-णियोंका आत्मारूप जान ऐसा सर्वभूत प्राणियोंका आत्मारूप हुआभी जो कृष्ण भग-वान् इस लोकविषे भक्तजनोंके उद्धार करणेवासतै आपणी मायाकरिकै देहवाले जीवोंकी न्याईं प्रतीत होवै है । किंवा व्रजभूमिविषे रहणेहारे जे नंदगोपगोपियां हैं तिन सर्वोंके अहोभाग्यहैं अहोभाग्यहैं । जिस व्रजवासी लोकोंके यह परमानंद परिपूर्ण सनानत ब्रह्म कृष्णरूपकरिकै मित्रभावकूं प्राप्त हुआहै इति । और कोईक पुरुष तौ तिस परमात्मादेवकूं नित्य निरवयव निर्विकार परमानंदरूप मानिकरिकैभी ता परमात्मादेवविषे अवयवअवयवीभाव वास्तवही अंगीकार करैहै । तिन पुरुषोंका कहणा अत्यंत निर्युक्तिक है ॥ ६ ॥

हे भगवन् ! इसप्रकार सत् चित् आनंदघनरूप जो आपहो तिस आपका किस कालविषे तथा किस प्रयोजनवासतै देहवाले जीवकी न्याईं व्यवहार होवैहै । ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् उत्तर कहै हैं–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ॥
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) यदा । यदा । हि । धर्मस्य । ग्लानिः । भवति । भारत । अभ्युत्थानम् । अधर्मस्य । तदा । आत्मनम् । सृजामि । अहम् ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस जिसकालविषे धर्मकी हानि होवैहै तथा अधर्मकी वृद्धिहोवैहै तिसकालविषे मैंपरमात्मादेव देहकूं उत्पन्नकरूंहूं ॥ ७ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! वेदकरिकै विधान कऱ्याहुआ जो प्रवृत्तिनिवृत्तिरूप धर्म है, जो धर्म कामनापूर्वक कऱ्या हुआ इन प्राणियोंके स्वर्गादिरूप अभ्युदयका साधन होवै है । तथा जो धर्म निष्काम कऱ्याहुआ इन प्राणियोंके मोक्षरूप निःश्रेयसका साधन होवैहै । तथा जो धर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या च्यारिवर्णोंका तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास या च्यारि आश्रमोंका अभिव्यंजक है अर्थात् जनावणेहारा है । तहां श्रद्धाभक्तिपूर्वक अग्निहोत्रादिक कर्मोंकूं करणा याका नाम प्रवृत्तिरूप धर्म है । और परस्त्रीगमनादिक नहीं करणे याका नाम निवृत्तिरूप धर्महै । ऐसे धर्मकी जिसजिसकालविषे हानि होवै है । और वेदकरिकै निषिद्ध कऱ्याहुआ तथा नानाप्रकारके दुःखोंका साधनरूप तथा धर्मका विरोधी ऐसा जो अधर्म है तिस अधर्मकी जिसजिसकालविषे वृद्धि होवै है । तिसतिसकालविषे मैं परमात्मा-देव आपणे देहकूं सृजताहूं । अर्थात् नित्यसिद्ध आपणे देहकूं मायाकरिकै रचे-हुएकी न्याई दिखावताहूं । इहां (हे भारत !) या संबोधनके कहणेकरिकै श्रीभग-वान्ने यह अर्थ सूचन कऱ्या । भरतवंशविषे जो उत्पन्न होवैहै ताका नाम भारत है । अथवा भा नाम ज्ञानका है ताकेविषे जो रतहोवै अर्थात् ज्ञानविषे जो प्रीति-वाला होवै ताका नाम भारत है । ऐसे भारतनामवाला तूं अर्जुन धर्मकी हानिकूं सहारणेविषे समर्थ नहीं है ॥ ७ ॥

हे भगवन् ! सा धर्मकी हानि तथा अधर्मकी वृद्धि यह दोनों आपके परितोषका कारण होवैंगे जिसकरिकै आप तिसीकालविषेही अवतारकूं धारण करोहो यातैं आपका अवतार उलटा लोकोंकूं अनर्थकी प्राप्तिकरणेहाराही हुआ ऐसी अर्जुन-की शंकाकेहुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं-

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ॥
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगेयुगे ॥८ ॥

(पदच्छेदः) परित्राणाय । साधूनाम् । विनाशाय । च । दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय । संभवामि । युगे । युगे ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! साधुपुरुषोंके रक्षणकरणे वासतै तथा पापीपुरुषोंके नाशकरणेवासतै तथा धर्मके संस्थापनकरणेवासतै मैं परमेश्वर युग युगविषे अवतारकूं धारण करूंहूं ॥ ८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! धर्मकी हानिकरिकै हानिकूं प्राप्तहुए तथा निरंतर वेदप्रतिपादित मार्गविषे स्थित ऐसे जे वेदविहित पुण्यकर्मोंकूं करणेहारे श्रेष्ठ पुरुष हैं जे श्रेष्ठ पुरुष आपणे प्राणोंके नाशहुएभी आपणे धर्मकूं परित्याग करते नहीं तिन श्रेष्ठपुरुषोंका नाम साधु है । ऐसे साधुपुरुषोंके रक्षण करणेवास्तै और अधर्मकी वृद्धि करिकै वृद्धिकूं प्राप्तहुए तथा वेदमार्गके विरोधी तथा शरीर मन वाणीकरिकै सर्वदा वेदनिषिद्ध पापकर्मोंकूं करणेहारे ऐसे जे दुष्टपुरुष हैं, तिन दुष्टपुरुषोंका नाम दुष्कृत है । ऐसे दुष्कृत पुरुषोंका समूलतैं नाश करणेवासतै मैं परमेश्वर युगयुगविषे अवतारकूं धारण करूंहूं । शंका–हे भगवन् साधुपुरुषोंका रक्षण तथा दुष्टपुरुषोंका विनाश या दोनोंकूं आप किसप्रकार करो हो । ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् कहेहैं (धर्मसंस्थापनार्थाय इति) हे अर्जुन ! पूर्व वृद्धिकूं प्राप्त हुआ जो अधर्म है, ता अधर्मकी निवृत्तिकरिकै जो धर्मका सम्यक् स्थापन है अर्थात वेदमार्गका परिरक्षण है ताका नाम धर्मसंस्थापन है ता धर्मके संस्थापनकरणेवास्तेही मैं परमात्मादेव अवतारकूं धारण करूंहूं । ता धर्मके संस्थापनकरिकै साधुपुरुषोंका रक्षण तथा दुष्टपुरुषोंका विनाश अवश्यकरिकै होवैहै । यातैं हमारा अवतार किसीकूं अनर्थकी प्राप्ति करणेहारा नहीं है ॥ ८ ॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ॥
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) जन्म । कर्म । च । मे । दिव्यम् । एवम् । यः । वेत्ति । तत्त्वतः । त्यक्त्वा । देहम् । पुनः । जन्म । न । एति । माम् । एति । सः । अर्जुन ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष हमारे दिव्य जन्मकूं तथा कर्मकूं इसप्रकार यथार्थ जानेहै सो पुरुष इसदेहकूं परित्यागकरिकै पुनः जन्मकूं नहीं प्राप्त होवैहैं किंतु मैं परमेश्वरकूंही प्राप्तहोवैहै ॥ ९ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! नित्यसिद्ध जो मैं सत्‌चित्‌आनंदघन हूं ऐसे मैं परमात्मादेवका आपणी लीलामात्रकरिकै लोकप्रसिद्ध जीवोंके जन्मकी न्यांई जो जन्मका अनुकरणमात्र रूप जन्म है, तथा मैं नित्यसिद्धपरमेश्वरका वेदविहित धर्मकी स्थापना करिकै जगतका परिपालनरूप जो कर्म है ते हमारे जन्म कर्म दोनों दिव्य हैं अर्थात् दूसरे प्राकृतपुरुषोंकूं करणेविषे आवश्यक हैं केवल मैं ईश्वरकेही असाधारण धर्मरूप हैं ऐसे हमारे दिव्य जन्मकर्म दोनोंकूं जो पुरुष (अजोपि सन्नव्ययात्मा) इत्यादिक वचनोक्त रीतिसे तत्त्वतैं जानै है । अर्थात् मूढपुरुषोंनेही श्रीभगवान्‌विषे मनुष्यत्वकी भ्रांति करकै इतरजीवोंकी न्यांई गर्भवासादिरूप जन्म-आरोपण कऱ्याहै तथा आपणे स्वार्थवास्ते सो कर्म आरोपण कऱ्याहै ता आरोपित जन्मकर्मकूं वास्तवतैं शुद्ध सत्‌चित्‌आनंदस्वरूपके ज्ञानतैं निवृत्त करिकै जन्मतैं रहित परमेश्वरका भी आपणी मायाकरिकै लीलामात्रतैं लोकप्रसिद्ध जीवोंके जन्मकी न्यांई जन्मका अनुकरणमात्र संभवै है । तथा वास्तवतैं अकर्ता परमेश्वरकाभी दूसरे लोकोंके ऊपरि अनुग्रह करणेवासतै लोकप्रसिद्ध जीवोंके कर्मकी न्याईं कर्मका अनुकरणमात्र संभव होइसकैहै इसप्रकार जो पुरुष हमारे जन्मकर्मकूं वास्तवरूपतैं जानैहै । तथा इसी प्रकार आपणे वास्तवस्वरूपकूं भी जानैहै । सो पुरुष इस वर्त्तमानशरीरका परित्याग करिकै पुनः दूसरे जन्मकूं प्राप्त होता नहीं । किंतु सो पुरुष सत्‌चित् आनंदघन मैं भगवान् वासुदेवकूंही प्राप्त होवै है । अर्थात सत्‌चित्‌ आनन्दरूप परमात्मा देव मैं हूं या प्रकारके अभेदज्ञानतैं सो पुरुष इस संसारतैं मुक्त होवैहै ॥ ९ ॥

तहां पूर्व श्लोकविषे (मामेति सोऽर्जुन) यह वचन कथन कऱ्या । अब श्रीभगवान् आपणे वास्तवस्वरूपकूं सर्वमुक्त पुरुषोंके प्राप्तिका पदरूप करिकै परमपुरुषार्थरूपताका तथा इस मोक्षमार्गकूं अनादिपरंपराकरिकै प्राप्तपणेका कथन करै हैं-

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ॥
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) वीतरागभयक्रोधाः । मन्मयाः । माम् । उपाश्रिताः । बहवः । ज्ञानतपसा । पूताः । मद्भावम् । आगताः ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! रागभयक्रोधतैं रहित तथा मेरेविषे चित्तवाले तथा हमारे शरणकूं प्राप्तहुए तथा ज्ञानरूप तपकरिकै पापोंतैं रहितहुए ऐसे बहुतँपुरुष मेरेस्वरूपकूं प्राप्त होतेभये हैं ॥ १० ॥

भा०टी०–तिसतिस स्वर्गादिकफलोंके प्राप्तिकी जो तृष्णा है ताका नाम राग है और स्त्री पुत्र धनादिक सर्वविषयोंका परित्याग करिकै ज्ञानमार्गविषे स्थितहुए हमारा किस प्रकार जीवन होवैगा याप्रकारका जो त्रासहै ताका नाम भयहै और सर्वविषयोंका मूलतैं उच्छेद करणेहारा जो ज्ञानमार्गहै सो ज्ञानमार्ग किसप्रकार हमारा हित होवैगा· किंतु हित नहीं होवैगा याप्रकारका जो द्वेष है ताका नाम क्रोध है। ते राग भय क्रोध तीनों विवेककरिकै निवृत्त हुएहैं जिन पुरुषोंके तिन पुरुषोंका नाम वीतरागभयक्रोध है अर्थात् शुद्धअंतःकरणवाले ते पुरुष हैं । पुनः– कैसेहैं ते पुरुष (मन्मयाः) क्या मैं तत्पदार्थरूप परमात्मादेवकूं त्वंपदार्थरूप आपणे आत्माके साथि अभेद करिकै साक्षात्कार कऱ्याहै जिनोंने । अथवा (मन्मयाः) क्या मैं एक परमात्मादेवविषेही है चित्त जिनोंका ।पुनः कैसेहैं ते पुरुष (मामुपाश्रिताः) क्या अनन्य प्रेमभक्तिकरिकै मैं परमात्मादेवकेही जे शरणकूं प्राप्त हुएहैं । ऐसे अनेक शुक वामदेवादिक पुरुष ज्ञानरूप तपकरिकै सर्व पापोंतैं रहित हुए अर्थात् कार्यसहित अज्ञानरूप मलतैं रहित हुए हमारे सतचित् आनंदस्वरूपभूत मोक्षकूं प्राप्त होतेभयेहैं। अथवा (ज्ञानतपसा पूताः) क्या ज्ञानरूप तपकरिकै जीवन्मुक्तरूप वे पुरुष (मद्भावमागताः) क्या मैं परमात्माविषयक रतिनामा प्रेमरूप भावकूं प्राप्त होते हैं इसी अर्थकूं श्रीभगवान् आपही (तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते) इस वचनकरिकै आगे कथन करैंगे ॥ १० ॥

हे भगवन् ! जे पुरुष ज्ञानरूप करिकै पवित्र हुएहैं ते निष्कामपुरुष तौ आपके भावकूं प्राप्त होवैहैं और जे पुरुष ता ज्ञानरूप तपकरिकै पवित्र नहीं हुएहैं ते सकामपुरुष ता आपके भावकूं नहीं प्राप्त होवै हैं । इस प्रकार निष्काम पुरुषोंकूं तौ आपणे भावकी प्राप्ति करणेहारा तथा सकाम पुरुषोंकूं आपणे भावकी नहीं प्राप्ति करणेहारा जो आप ईश्वर हो, तिस आपकूं विषमता दोषकी प्राप्ति तथा निर्दयतादोषकी प्राप्ति अवश्य करिकै होवैगी । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं–

ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥
मम वर्त्मानुवर्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) ये । यथा । माम् । प्रपद्यन्ते । तान् । तथा । एव । भजामि । अहम् । मम । वर्त्म । अनुवर्त्तंते । मनुष्याः । पार्थ । सर्वशः ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! जे पुरुष जिस प्रकारकरिकै मैं परमेश्वरकूं भजते हैं तिन पुरुषोंकूं मैं परमेश्वर तिसीप्रकार ही अनुग्रह करूंहूं यह कर्मके अधिकारी मनुष्य सर्वप्रकार करिकै मैं परमेश्वरके भजन मार्गकूं अनुसरण करैहैं ॥ ११ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! इस लोकविषे दुःखकरिकै पीडित जे आर्त्तपुरुष हैं तथा धनादिक पदार्थोंके प्राप्तिकी इच्छा करणेहारे जे अर्थार्थी पुरुष हैं, तथा आत्माके जानणेकी इच्छावाले जे जिज्ञासु पुरुष हैं, तथा तत्त्वसाक्षात्कारवाले जे ज्ञानी पुरुष हैं, तिन च्यारिप्रकारके पुरुषोंविषे जेजे पुरुष सकामपणे करिकै तथा निष्कामपणे करिकै सर्व कर्मोंके फलप्रदाता मैं ईश्वरकूं भजते हैं, तिन पुरुषोंकूं तिसतिस मनवांछितफलकी प्राप्ति करिकै मैं परमेश्वर अनुग्रह करूंहूं, तिन भक्तजनोंकूं मैं परमेश्वर विपरीतफलकी प्राप्तिकरता नहीं। तहां मोक्षकी इच्छातैं रहित जे आर्त्तभक्त हैं, तिन आर्त्तभक्तोंकूं तौ तिनोंके पीडाकी निवृत्ति करिकै अनुग्रह करोंहूं और मोक्षकी इच्छातैं रहित जे अर्थार्थी पुरुष हैं तिन अर्थार्थी पुरुषोंकूं तौ धनादिक पदार्थोंकी प्राप्ति करिकै अनुग्रह करौंहूं । और (तमेतंवेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन ।) इस श्रुतिनैं विधानकऱ्ये जो निष्काम कर्म हैं, तिन निष्काम कर्मोंकूं करणेहारे जे जिज्ञासु जन हैं तिन जिज्ञासु भक्तोंकूं तौ आत्मज्ञानकी प्राप्तिकरिकै अनुग्रह करौंहूं और ज्ञानवान् भक्तोंकूं तौ मोक्षकी प्राप्ति करिकै अनुग्रह करौं । अन्य वस्तुकी कामनावाले भक्तजनकूं अन्य वस्तुकी प्राप्ति मैं करता नहीं, यातैं तिन पुरुषोंके भावनाके अनुसार फलके देणेहारे मैं परमेश्वरविषे विषमतादोषकी तथा निर्दयतादोषकी प्राप्ति संभवै नहीं । शंका—हे भगवन् ! यद्यपि आप लोकोंके भावनाके अनुसारही तिसतिस फलकी प्राप्ति करो हो, तथापि आपणे भक्तजनोंके प्रतिही ता फलकी प्राप्ति करोहो । अन्य इंद्रादिक देवतावोंके भक्तोंकूं आप तिस फलकी प्राप्ति करते नहीं । यातैं आपकेविषे सो विषमतादोष तथा निर्दयतादोष तिसीप्रकार स्थितहै । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान्

कहैं हैं (मम वर्त्मानुवर्त्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः इति) हे अर्जुन ! जे कर्मोंके अधिकारी मनुष्य इंद्र अग्नि सूर्य इत्यादिकदेवतावोंकाभी भजन करै हैं, ते मनुष्यभी मैं अंतर्यामी वासुदेवकेही ज्ञानकर्मरूप मार्गकूं अनुसरण करै हैं । अर्थात् ते मनुष्यभी मैं परमेश्वरकाही भजन करै हैं । और तिन इंद्रादिकदेवतावोंके भक्तोंकूंभी मैं परमात्मादेवही तिसतिस इंद्रादिरूपकारिकै तिसतिस फलकी प्राप्ति करूंहूं यातैं मैं परमेश्वरविषे किंचित् मात्रभी विषमतादोषकी तथा निर्दयतादोषकी प्राप्ति संभवै नहीं । इसी अर्थकूं (फलमत उपपत्तेः) इस सूत्रकारिकै श्रीव्यासभगवान्भी कथन करताभयाहै । इसीअर्थकूं (येऽप्यन्यदेवताभक्ताः) इत्यादिक वचनोंकारिकै श्रीभगवान् आपही आगे स्पष्टकारिकै कथन करैंगे । तथा इसी अर्थकूं (इन्द्रमित्रं वरुणमग्निमाहुः) इत्यादिक वेदके मंत्र कथन करै हैं ॥ ११ ॥

हे भगवन् ! इसप्रकारसे आप ईश्वरही जो कदाचित् इंद्रादिरूपकारिकै सर्वलोकोंकूं तिसतिस फलकी प्राप्ति करणेहारे होवो तौ ते सर्वजन साक्षात् आप परमेश्वरकूंही किसवास्तै नहीं भजतेहैं ? साक्षात् आप ईश्वरकूं छोडिकै तिन इंद्रादिकदेवतावोंकूं किसवास्तैं भजतेहैं । ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं–

कांक्षंतः कर्मणां सिद्धिं यजंत इह देवताः ॥
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) कांक्षंतः । कर्मणाम् । सिद्धिम् । यजंते । इह । देवताः । क्षिप्रम् । हि । मानुषे । लोके । सिद्धिः । भवति । कर्मजा ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इसलोकविषे कर्मोंके फलकी इच्छाकरतेहुए सकामइंद्रादिकदेवताओंकूं पूजन करैं हैं जिस कारणतैं इस मनुष्यलोकविषे तिन सकामपुरुषोंकूं कर्मजन्य फल शीघ्रही प्राप्तहोवै है ॥ १२ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन! जे पुरुष इसलोकविषे यज्ञादिकर्मोंके धनपुत्रादिकफलोंकी इच्छा करैं हैं, ते सकामपुरुष तौ इंद्र अग्नि सूर्य आदिकदेवतावोंकूंही पूजन करैं हैं ते पुरुष निष्कामहोइकै कदाचितभी मैं परमेश्वरका पूजन करतेनहीं । काहेतैं जे पुरुष तिसतिस फलकी इच्छा करतेहुए तिन इंद्रादिकदेवताओंका पूजन करै हैं अर्थात् यज्ञादिक कर्मोंकारिकै तिन इंद्रादिकदेवतावोंकूं प्रसन्न करै हैं । तिन

सकामपुरुषोंकूं तिसतिस कर्मजन्यफलकी प्राप्ति इस मनुष्यलोकविषे शीघ्रही होवै है। और आत्मज्ञानका जो मोक्षरूप फल है सो फल तौ अंतःकरणकी शुद्धितैं विना प्राप्त होवै नहीं। किंतु सो ज्ञानका फल आपणी प्राप्तिविषे अंतःकरणके शुद्धिकी अपेक्षा अवश्य करैहै। और सा अंतःकरणकी शुद्धि अनेकजन्मोंके पुण्यकर्म करिकै होवैहै। यातैं कर्मके फलकी न्याईं सो ज्ञानका फल शीघ्रही प्राप्तहोवै नहीं इहां मनुष्यलोकविषे सो कर्मका फल शीघ्रही प्राप्त होवै है यावचनके कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या। इस मनुष्यलोकतैं भिन्न दूसरे लोकोंविषेभी वर्ण आश्रमके धर्मोंतैं भिन्न अन्यकर्मोंके करणेतैं फलकी प्राप्ति अवश्यकरिकै होवै। यातैं हे अर्जुन! जिसकारणतैं मोक्षतैं विमुखहुए ते सकामपुरुष तिसतिस-तुच्छफलकी प्राप्तिवासतै अन्यइंद्रादिकदेवतावोंका पूजन करैहैं। तिस कारणतैं जैसे मुमुक्षुजन साक्षात् मैं परमेश्वरकाही पूजन करैहैं, तैसे ते सकामपुरुष साक्षात् मैं परमेश्वरका पूजन करते नहीं ॥ १२ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे सकामताके तथा निष्कामताके भेदकरिकै सर्वपुरुषोंविषे समानस्वभावताका अभाव कथन कऱ्या। अब शरीरके आरंभकरणेहारे सत्त्वादि-गुणोंकी विषमताकरिकै भी तिन सर्व पुरुषोंविषे समानस्वभावताका अभाव कथन करैं हैं-

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ॥
तस्य कर्त्तारमपि मां विद्ध्यकर्त्तारमव्ययम् ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) चातुर्वर्ण्यम् । मया । सृष्टम् । गुणकर्मविभागशः । तस्य । कर्त्तारम् । अपि । माम् । द्धि । अकर्त्तारम् । अव्ययम् ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैंपरमेश्वरनैं गुणकर्म विभागकरिकै च्यारिवर्ण उत्पन्न-करैहैं तिस च्यारि वर्णका कर्त्तारूप भी मैं परमेश्वरकूं तूं अकर्त्तारूप तथा अव्ययरूप जान ॥ १३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन! मैं ईश्वरनैं सृष्टिके आदिकालविषे सत्त्वादिगुणोंके भेद-करिकै तथा शमदमादिककर्मोंके भेदकरिकै ब्राह्मण, क्षत्रि, वैश्य,शूद्र,यह च्यारिवर्ण भिन्नभिन्नकरिकै उत्पन्न करेहैं। तहां सत्वगुणहै प्रधान जिन्होंविषे ऐसे जे ब्राह्मण हैं, तिन ब्राह्मणोंके तौ ता सत्त्वगुणके कार्यरूप शमदमादिकही कर्महैं और सत्वगुण उप-

सर्जन रजोगुण है प्रधान जिन्होंविषे ऐसे जे क्षत्रियहै तिन क्षत्रियोंके तौ ता सत्त्वगुण-उपसर्जन प्रधानभूत रजोगुणका कार्यरूप शौर्य तेजआदिकही कर्म हैं। और तमोगुण उपसर्जन रजोगुणहै प्रधान जिन्होंविषे ऐसे जे वैश्य हैं, तिन वैश्योंके तौ ता तमोगुण उपसर्जन प्रधानभूत रजोगुणका कार्यरूप कृषिवाणिज्यादिकही कर्म है। और तमोगुण है प्रधान जिन्होंविषे ऐसे जे शूद्रहैं तिन शूद्रोंके तौ तिस तमोगुणका कार्यरूप त्रैवर्णिकपुरुषोंकी सेवादिकही कर्म है। इहां उपसर्जननाम गौणका है। इसप्रकार गुणोंके भेदकरिकै यह च्यारिवर्ण स्थितहैं। शंका—हे भगवन्! इसप्रकार गुणकर्मके भेदकरिकै विषमस्वभाववाले च्यारिवर्णोंकूं उत्पन्न करणेहारे आप ईश्वरविषे विषमतादोषकी प्राप्ति अवश्यकरिकै होवैगी। ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् कहैं हैं (तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययमिति) हे अर्जुन! यद्यपि मैं परमेश्वर व्यवहारदृष्टिकरिकै ता विषमस्वभाववाले च्यारिवर्णोंका करताहूं। तथापि परमार्थ दृष्टिकरिकै तूं हमारेकूं अकर्त्तारूपही जान। तथा अव्ययरूप जान। अर्थात् निरहंकारताकरिकै अबाधित महिमावाला जान। और किसीटीकाविषे तौ (गुणकर्मविभागशः) यावचनविषे गुणकर्म विभागशः यह दोपद अंगीकारकरिकै यह अर्थ कथन कऱ्या है। च्यारिवर्णोंके जे हितरूप होवैं तिन्होंका नाम चातुर्वर्ण्य है। ऐसे जे द्रव्यदेवतादिक गुण हैं तथा अग्निहोत्रादिक कर्म हैं। ते च्यारिवर्णोंके हितरूप गुणकर्म मैं परमेश्वरनैं (विभागशः सृष्टं) क्या साधारण असाधारण भेदकरिकै उत्पन्न करेहैं। तहां दानजपादिककर्म सर्ववर्णोंका साधारण धर्म है। और अग्निहोत्र वेदाध्ययन संध्योपासन इत्यादिक कर्म तौ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य या तीन वर्णोंकेही हैं। शूद्रके ते अग्निहोत्रादिक कर्म हैं नहीं। तिन तीन वर्णोंविषेभी बृहस्पतिसवादिक कर्म केवल ब्राह्मणकेही असाधारण धर्म हैं अन्यक्षत्रियादिकोंके ते धर्म नहीं हैं। और राजसूयादिककर्म केवल क्षत्रियकेही असाधारण धर्म हैं ब्राह्मणादिकोंके ते धर्म नहीं हैं। और वैश्यस्तोमादिककर्म केवल वैश्यकेही असाधारण धर्म हैं ब्राह्मणादिकोंके ते धर्म नहीं हैं। और त्रैवर्णिकपुरुषोंकी सेवा करणी इत्यादिक कर्म केवल शूद्रकेही असाधारण धर्म हैं ब्राह्मणादिकोंके ते धर्म नहीं हैं। इसप्रकार तिन अग्निहोत्रादिक कर्मोंके भेद हुए तिन कर्मोंविषे अंगभूत द्रव्यदेवतादिक गुणोंकाभी भेद होवैहै। इसप्रकार तिन च्यारिवर्णोंके गुण तथा कर्म मैं परमेश्वरनैं ही साधारण असाधारणरूप-

करिकै उत्पन्न करेहैं यातैं पुत्रकी प्रसन्नताकरिकै पिताकी प्रसन्नता होवैहै; तैसे तिन इंद्रादिक देवतावोंकी प्रसन्नताकरिकै मैं परमेश्वरकीभी प्रसन्नता होवैहै । इसप्रकार प्रसन्नताकूं प्राप्तहुआ मैं परमेश्वर तिन इंद्रादिकदेवतावोंके भक्तोंकूं भी तिसतिस कर्मके फलकी प्राप्ति करौंहूं ॥ १३ ॥

शंका—हे भगवन् ! पूर्व आपनैं कर्तारूप मैं परमेश्वरकूं तूं अकर्त्तारूप जान याप्रकारका वचन कथन कऱ्या सो कर्त्ताकूं अकर्त्तारूपता किस प्रकार संभवैगी? ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् ता अर्थकूं स्पष्टकरिकै निरूपण करैंहैं—

न मां कर्माणि लिंपंति न मे कर्मफले स्पृहा ॥
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) न । माम् । कर्माणि । लिंपंति । न । मे । कर्मफले । स्पृहा । इति । माम् । यः । अभिजानाति । कर्मभिः । न । सः । बध्यते ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरकूं यह कर्म नहीं लिपायमान करैंहैं तथा हमारेकूं ता कर्मके फलविषे तृष्णाभी नहींहै इसप्रकार जो पुरुष मैं परमेश्वरकूं जानताहै सो पुरुषभी कर्मोंकरिकै नहीं बंधायमान होवैहै ॥ १४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! निरहंकारताकरिकै कर्तृत्व अभिमानतैं रहित जो मैं भगवानहूं, तिस हमारेकूं यह जगत्के उत्पत्ति स्थिति आदिक कर्म नहीं लिपायमान करते । अर्थात् जैसे अन्य अज्ञानीपुरुषोंकूं यह कर्म देहकी आरंभताकरिकै बंधायमान करैंहैं, तैसे मैं परमेश्वरकूं ते कर्म बंधायमान करतेनहीं । यातैं व्यवहारदृष्टिकरिकै मैं कर्मोंकूं करताहुआभी वास्तवतैं अकर्त्तारूपही हूं । इसप्रकार श्रीभगवान् आपणेविषे कर्त्तापणेका निषेधकरिकै अब भोक्तापणेकाभी निषेध करैंहैं (न मे कर्मफले स्पृहा इति) हे अर्जुन ! जैसे अज्ञानीजीवोंकूं कर्मोंके स्वर्गादिकफलोंविषे यह फल हमारेकूं प्राप्तहोवै या प्राकारकी तृष्णा होवैहै, तैसे मैं आप्तकाम ईश्वरकूं तिन कर्मोंके फलोंविषे तृष्णा है नहीं । तहां श्रुति—(आप्तकामस्य का स्पृहा इति) अर्थ यह—सर्वात्मदृष्टिकरिकै जिस पुरुषकूं सर्व पदार्थ प्राप्तहुएहैं तिस पुरुषका नाम आप्तकामहै । ऐसे आप्तकामपुरुषकूं किंचित्मात्रभी किसी फलकी तृष्णा होवैनहीं इति । तात्पर्य यह इसलोकविषे अज्ञानीजीवोंकूं जो कर्म बंधायमान करैं हैं, सो मैं इन कर्मोंका कर्त्ताहूं तथा मैं इन कर्मोंके

फलकूं प्राप्त होवौंगा याप्रकारका कर्तृत्व अभिमान तथा फलकी तृष्णा यादोनोंक-रिकैही बंधायमान करैहैं। कर्तृत्वअभिमान तथा फलकी तृष्णा या दोनोंतैं विना ते कर्म किसीकूंभी बंधायमान करते नहीं। और सो कर्तृत्वअभिमान तथा फलकी तृष्णा यह दोनों मैं आप्तकाम ईश्वरविषे हैं नहीं। याकारणतैं ते कर्म मैं ईश्वरकूं बंधायमान करते नहीं। इसप्रकार कर्मोंकूं करताहुआभी मैं ईश्वर वास्तवतैं अकर्त्तारूपही हूं। शंका—हे भगवन्! इसप्रकार आप ईश्वरविषे अकर्त्तापण तथा अभोक्तापणा सिद्धहुएभी ताके जानणेकारिकै हमलोकोंकूं कौन फल प्राप्त होवै है? ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् कहैहैं (इति मां योऽभिजानाति इति) हे अर्जुन! इस प्रकार जो कोई अन्यपुरुषभी अकर्त्ता अभोक्ता मैं परमेश्वरकूं आपणा आत्मारूप करिकै जानै है, सो पुरुषभी हमारे न्यांई तिन कर्मोंकारिकै बंधायमान होवै नहीं, अर्थात् अकर्त्ता आत्माके ज्ञानकारिकै सो पुरुषभी तिन कर्मोंतैं मुक्तही होवै है॥ १४॥

जिसकारणतैं मैं कर्त्ता नहींहूं तथा मेरेकूं कर्मोंके फलकी तृष्णाभी नहीं है याप्रकारके अकर्त्ताअभोक्ता आत्माके ज्ञानतैं यह पुरुष तिन कर्मोंकारिकै बंधाय-मान होतानहीं। तिसकारणतैं पूर्व अनेक महान् पुरुष आत्माकूं अकर्त्ताअभोक्ता जानिकारिकै तिन कर्मोंकूंही करतेभये हैं तिसप्रकार तूं अर्जुनभी तिन कर्मोंकूंही कर। या अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः॥
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्॥ १५॥

(पदच्छेदः) एवम्। ज्ञात्वा। कृतम्। कर्म। पूर्वैः। अपि। मुमुक्षुभिः। कुरु। कर्म। एव। तस्मात्। त्वम्। पूर्वैः। पूर्वतरम्। कृतम्॥ १५॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! इसप्रकार आत्माकूं अकर्त्ताअभोक्ता जानिकारिकै पूर्वले मुमुक्षुवोंनैं भी कर्मही करयाहै तथा तिसतैंभी पूर्व मुमुक्षुवोंनैं युगांतरविषे सो कर्मही करया है तिसकारणतैं तूं अर्जुनभी ता कर्मकूं ही कर॥ १५॥

भा० टी०—हे अर्जुन! इस द्वापरयुगविषे पूर्व मोक्षकी इच्छावाले जे ययाति राजा यदुराजा इत्यादिक राजा होते भयेहैं, ते राजाभी इस आत्मादेवकूं अकर्त्ता अभोक्ता जानिकरी आपणे वर्णआश्रमके कर्मोंकूंही करतेभये हैं। तिन

कर्मोंका परित्यागकरिकै ते राजा तूष्णींभावकूं तथा संन्यासकूं नहीं करते भये हैं । तिसकारणतैं तूं अर्जुनभी आत्माकूं अकर्त्ता अभोक्ता जानिकरिकै तिन कर्मोंकूंही कर । तूष्णींभावकूं तथा संन्यासकूं तूं मतकर । हे अर्जुन ! जो कदाचित् तूं तत्त्ववेत्ता नहीं होवै तौ तूं अपणे अंतःकरणकी शुद्धिवास्तै तिन कर्मोंकूं कर । और जो कदाचित् तूं तत्त्ववेत्ता होवै तौ तूं लोकसंग्रहके वास्तै तिन कर्मोंकूं कर । सर्वप्रकारतैं तुम्हारेकूं ते कर्म करणेयोग्य हैं । शंका-हे भगवन् ! इस द्वापरयुगविषे पूर्व ययाति यदुआदिक राजे कर्मोंकूं करतेभये हैं याप्रकारका वचन आपनैं कथन कऱ्या ताकरिकै यह जान्याजावै है केवल इस द्वारपरयुगविषेही तिन कर्मोंके करणेका अधिकार है अन्य त्रेतादिक युगोंविषे तिन कर्मोंके करणेका अधिकार नहीं है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (पूर्वैः पूर्वतरं कृतमिति) हे अर्जुन ! केवल इसी द्वापरयुगविषेही पूर्व ययातिराजा यदुराजा आदिक राजे तिन कर्मोंकूं नहीं करतेभये हैं किंतु इस युगतैं पूर्व त्रेतादिकयुगोंविषे जनकादिकराजेभी इस आत्मादेवकूं अकर्त्ता अभोक्ता जानिकरिकै तिन कर्मोंकूं करतेभये हैं । यातैं यह अर्थ सिद्धभया इसयुगविषे तथा दूसरे युगोंविषे मुमुक्षु राजे तथा तत्त्ववेत्ता राजे अंतःकरणकी शुद्धिवास्तै अथवा लोकसंग्रहके वास्तै अपणे वर्णआश्रमके कर्मोंकूं अवश्यकरिकै करते भये हैं । यातैं तिन राजावोंकी न्याईं तैं अर्जुनकूंभी अपणे वर्णआश्रमके कर्म अवश्यकरिकै करणे चाहिये इति ॥ १५ ॥

हे भगवन् ! क्या तिन कर्मोंविषे कोई संशयभी है जिसकरिकै आप (पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्) यावचनकरिकै तिस कर्मकूं अत्यंतदृढ करतेहो ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता कर्मविषे संशय है याकारणतैंही तिस कर्मविषे बुद्धिमान् पुरुषभी मोहकूं प्राप्तहोवैहैं या प्रकारका उत्तर कहैं हैं-

किं कर्म किमकर्मेति कवयोप्यत्र मोहिताः ॥
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) किम् । कर्म । किम् । अकर्म । इति । कवयः । अपि । अत्र । मोहिताः । तत् । ते । कर्म । प्रवक्ष्यामि । यत् । ज्ञात्वा । मोक्ष्यसे । अशुभात् ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! कर्म क्याहै तथा अकर्म क्याहै इस अर्थविषे बुद्धिमान् पुरुष भी मोहकूं प्राप्त होतेभयेहैं तिसकारणतैं तुम्हारेताईं तौ कर्म अकर्मकूं मैं कहताहूं जिसकूं जानिकरिकै तूं संसारतैं मुक्त होवैगा ॥ १६ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! नौकाविषे स्थित जो पुरुष है तिस पुरुषकूं तीरविषे स्थित गमनरूप क्रियातैं रहित वृक्षोंविषेभी गमनरूप क्रियाका भ्रम देखणेविषे आवै है। तथा गमनरूप क्रियावाले पुरुषोंविषेभी दूरतैं ता गमनक्रियाके अभावका भ्रम देखणेविषे आवै है यातैं वास्तवतैं सो कर्म क्या वस्तुहै तथा वास्तवतैं सो अकर्म क्या वस्तुहै ? इसप्रकार अर्थविषे बुद्धिमान् पुरुषभी मोहकूं प्राप्त होतेभयेहैं। अर्थात् ता कर्म अकर्मके स्वरूपनिर्णयकरणेविषे असमर्थ होतेभये हैं इति । और किसीटीकाविषे तौ (किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः) या अर्धश्लोकका यह अर्थ कथन कऱ्याहै श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रकरिकै जो अर्थ विधान कऱ्या होवै ता अर्थका नाम कर्म है। और ता श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रकरिकै जो अर्थ नहीं विधान कऱ्याहोवै ता अर्थका नाम अकर्म है। इसप्रकार केईक पंडितपुरुष ता कर्मअकर्मका स्वरूप कथन करैं हैं। और दूसरे केईक पंडितजन तौ यह कहैं हैं श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रकरिकै जो अर्थ विधान कऱ्या होवै ता अर्थका नाम कर्म है । और तिन कर्मोंके संन्यासका नाम अकर्म है । और दूसरे केईक शास्त्रवेत्ता पुरुष तौ यह कहैं हैं गमनआगमनादिक क्रियावोंका नाम कर्म है। और तिन गमनादिक क्रियावोंतैं रहित होइकै तूष्णीं स्थितहोणेका नाम अकर्म है। इसप्रकार ता कर्मअकर्मके स्वरूपविषे बहुतप्रकारका विवाद देखणेविषे आवताहै। यातैं कर्मशब्दका वाच्यार्थ कौन है तथा अकर्मशब्दका वाच्यार्थ कौन है इसप्रकारके अर्थविषे शास्त्रवेत्ता पुरुषभी मोहकूं प्राप्तहोतेभयेहैं। अर्थात् ता कर्मअकर्मके वास्तवस्वरूपके निर्णयकरणेविषे असमर्थ होतेभये हैं। तिसकारणतैं मैं कृष्णभगवान् तैं अर्जुनकेप्रति ता कर्मके स्वरूपकूं तथा अकर्मके स्वरूपकूं संशयकी निवृत्तिपूर्वक कथन करताहूं। शंका–हे भगवन् ! ता कर्मअकर्मके जानणेकरिकै किस फलकी प्राप्ति होवैहै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाहुए श्रीभगवान् ताका फल कथन करैंहैं (यज्ज्ञात्वा इति) हे अर्जुन ! जिस कर्मके स्वरूपकूं तथा अकर्मके स्वरूपकूं यथार्थ जानिकै तूं इस संसारतैं मुक्त होवैगा। अर्थात् इस संसारतैं मुक्तिही ता कर्म अकर्मज्ञानका फल है।

यद्यपि (तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि) यावचनविषे केवल कर्मफलही है तथापि तत्ते इस-पदतैं आगे अकार निकासिकै अकर्मकाभी ग्रहण होइसकैहै ॥ १६ ॥

हे भगवन् ! ता कर्मका स्वरूप सर्वलोकविषे प्रसिद्धहीहै । यातैं मैं अर्जुनभी ता कर्मअकर्मके स्वरूपकूं जानताहीहूं । तहां देहइंद्रियादिकोंका जो व्यापारहै ता व्यापारका नाम कर्म है। और सर्व व्यापारतैं रहित होइकै तूष्णींस्थितहोणेका नाम अकर्म है । ऐसे सर्वलोकोंविषे प्रसिद्ध कर्मअकर्मके स्वरूपविषे आपनै दूसरा क्या कहणाहै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाकंहुए श्रीभगवान् कहैं हैं-

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ॥
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) कर्मणः । हि । अपि । बोद्धव्यम् । बोद्धव्यम् । च । विकर्मणः । अकर्मणः । च । बोद्धव्यम् । गहना । कर्मणः । गतिः ॥ १७॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! शास्त्रविहितकर्मका भी तत्त्व जानणे योग्य है तथा निषिद्धकर्मकाभी तत्त्व जानणेयोग्य है तथा अकर्मकाभी तत्त्व जानणेयोग्य है जिसकारणतैं कर्मविकर्मअकर्मका तत्त्व अत्यंतदुर्बोध्य है ॥ १७ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रनैं विधान कऱ्या जो अर्थ है ताका नाम कर्म है । ता कर्मकाभी वास्तवस्वरूप तुम्हारेकूं अवश्यकरिकै जानणेयोग्यहै । जिसकारणतैं ता कर्मके स्वरूप जानेतैंविना ता कर्मका अनुष्ठान होइसकै नहीं । और श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रनें निषेधकऱ्या जो अर्थ है ताका नाम विकर्म है । ता कर्मकाभी वास्तवस्वरूप तुम्हारेकूं अवश्यकरिकै जानणेयोग्यहै । जिसकारणतैं ता निषिद्धकर्मके जानेतैंविना ता निषिद्धकर्मतैं निवृत्त हुआ जावैनहीं । और सर्वव्यापार-तैं रहित होइकै जो तूष्णीं स्थितहोणाहै ताका नाम अकर्म है । ता अकर्मकाभी वास्तवस्वरूप तुम्हारेकूं अवश्यकरिकै जानणेयोग्य है । जिसकारणतैं कर्म विकर्म अकर्म या तीनोंका वास्तवस्वरूप अत्यंत दुर्विज्ञेय है । इहां (गहना कर्मणो गतिः) यावचनविषे स्थित जो कर्मशब्द है सो कर्मशब्द विकर्म अकर्म या दोनोंकाभी उपलक्षक है । अर्थात् ता कर्मशब्द करिकै कर्म विकर्म अकर्म या तीनोंका ग्रहण करणा । और (कर्मणः विकर्मणः अकर्मणः) या तीनों पदोंतैं उत्तर तत्त्वं इस पदका अध्याहार करणा । तथा (बोद्धव्यम्) या तीनोंपदोंतैं उत्तर अस्ति

यापदका अध्याहार करणा ताकरिकै (कर्मणस्तत्त्वं बोद्धव्यमस्ति) इसप्रकारके तीन वाक्य सिद्ध होवैहैं। तहां कर्मोंकाभी वास्तवस्वरूप तुम्हारेको जानणेयोग्य है इसप्रकारका तिन वाक्योंका अर्थ सिद्ध होवैहै ॥ १७ ॥

हे भगवन्! कर्म विकर्म अकर्म या तीनोंका जो वास्तवस्वरूप हमारेकूं अवश्यकरिकै जानणेयोग्य है, सो कर्मादि तीनोंका वास्तवस्वरूप किसप्रकारका है? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन कर्मादिकोंके वास्तवस्वरूपकूं कथन करैहैं–

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ॥
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) कर्मणि। अकर्म। यः। पश्येत्। अकर्मणि। च। कर्म। यः। सः। बुद्धिमान्। मनुष्येषु। सः। युक्तः। कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जो पुरुष कर्मविषे अकर्मकूं देखैहै तथा जो पुरुष अकर्मविषे कर्मकूं देखैहै सो पुरुषही सर्वमनुष्योंविषे बुद्धिमान् है तथा सो पुरुषही योगयुक्त है तथा सर्वकर्मोंके करणेहाराहै ॥ १८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन! देह इंद्रिय बुद्धि आदिकोंका जो श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्र करिकै विहित व्यापारहै तथा शास्त्रकरिकै निषिद्ध व्यापारहै ता व्यापारका नाम कर्म है सो कर्म वास्तवतैं तौ तिन देह इंद्रियादिककोंविषेही रहैहै असंग आत्माविषे सो कर्म रहै नहीं। तौभी सो व्यापाररूप कर्म (अहंकरोमि) इस धर्माध्यासरूप प्रतीतिके बलतैं आत्माविषे आरोपण कऱ्या जावैहै। जैसे नदीके तीरविषे स्थित जे वृक्ष हैं तिन वृक्षोंविषे यद्यपि वास्तवतैं गमनरूप क्रिया है नहीं तथापि नौकाविषे स्थित पुरुष ता नौकाके चलणेकरिकै तिन वृक्षोंविषे गमनरूप क्रियाका आरोपण करै हैं। तैसे शास्त्रविचारतैं रहित मूढपुरुष अक्रियआत्माविषे ता देह इंद्रियादिकोंके व्यापाररूप कर्मका आरोपण करै है। ता आत्माविषे आरोपित कर्मविषे जो पुरुष आत्माके अकर्त्तास्वरूपका विचारकरिकै वास्तवतैं कर्मके अभावकूंही देखैहै। तात्पर्य यह–जैसे नौकाविषे स्थित पुरुषोंनैं यद्यपि तीरस्थ वृक्षोंविषे गमनरूपकर्मका आरोपण करीता है तथापि वास्तवतैं तिन वृक्षोंविषे ता गमनरूपकर्मका अभावही है। तैसे मूढपुरुषोंनैं यद्यपि अक्रिय आत्माविषे ता देहा-

दिकोंके व्यापाररूप कर्मका आरोपण करीता है, तथापि ता अक्रिय आत्माविषे वास्तवतैं तिन कर्मोंका अभावही है । इस प्रकार जो पुरुष कर्मविषे अकर्मकूं देखैंहैं इति । और सत्वादि तीन गुणोंवाली मायाका परिणाम होणेतैं सर्वकालविषे ता व्यापाररूप कर्मवाले जे इंद्रियादिक हैं तिन देह इंद्रियादिकोंविषे वास्तवतैं ता कर्मका अभाव रहै नहीं । किंतु तिन देह इंद्रियादिकोंविषे ता कर्मके अभावका आरोपण होवै है । जैसे चक्षुके संबंधवाले दूरदेशविषे स्थित जे गमन-रूपक्रियावाले पुरुष हैं तिन पुरुषोंका यद्यपि वास्तवतैं ता गमनरूपक्रियाका अभाव है नहीं, तथापि दूरत्वदोषके वशतैं तिन पुरुषोंविषे ता गमनरूपक्रियाके अभावका आरोपण होवै है । तथा जैसे आकाशविषे स्थित जे चंद्रतारकादिक नक्षत्र हैं तिन नक्षत्रोंविषे यद्यपि वास्तवतैं गमनरूपक्रियाका अभाव है नहीं, किंतु सर्वदा तिन्होंविषे गमनरूपक्रिया है, तथापि दूरत्वदोषके वशतैं तिन नक्षत्रों-विषे ता गमनक्रियाके अभावका आरोपण होवैहै । तैसे सर्वदा व्यापाररूप कर्म-वाले जे देह इंद्रियादिक हैं तिन देह इंद्रियादिकोंविषे वास्तवतैं ता कर्मका अभाव है नहीं किंतु मैं तूष्णीं हुआ किंचितमात्रभी कर्म नहीं करताहूं या प्रकारकी अध्यासरूप प्रतीतिके बलतैं तिन देह इंद्रियादिकोंविषे ता कर्मके अभावका आरोपण करचा जावै है । ऐसे देहइंद्रियादिकोंविषे आरोपण करचा जो व्यापारकी उपरामतारूप अकर्म है, ता अकर्मविषे जो पुरुष तिन देह इंद्रियादिकोंके सर्वदा व्यापारवत्वरूप वास्तवस्वरूपका विचारकरिकै वास्तव तौ कर्मकूं देखै है । अर्थात ता आरोपित अकर्मविषे कर्म निवृत्ति है नाम जिसका ऐसा जो प्रयत्नरूप व्यापार है जिसकूं निग्रहभी कहैंहैं ता प्रयत्नरूप कर्मकूं जो पुरुष देखैहै । तात्पर्य यह—जैसे चक्षुके संबंधवाले दूरदेशविषे स्थित जे गमनरूपक्रियावाले पुरुष हैं तथा अकाशविषे स्थित जे गमनरूपक्रियावाले नक्षत्र हैं तिन पुरुषोंविषे तथा नक्षत्रोंविषे यद्यपि दूरत्वदोषतैं ता गमनरूपक्रियाका अभाव प्रतीत होवैहै तथापि ते पुरुष तथा नक्षत्र वास्तवतैं ता गमनरूपक्रियावालेही हैं । तैसे तूष्णीं स्थित हुआ मैं किंचित्मात्रभी नहीं करताहूं या प्रकारकी अध्यासरूप प्रतीतिके बलतैं यद्यपि तिन देह इंद्रियादिकोंविषे ता व्यापाररूपकर्मका अभाव प्रतीत होवैहै तथापि ते देह इंद्रियादिक वास्तवतैं ता कर्मवालेही हैं । और उदासीनअवस्था-विषेभी मैं उदासीन हुआ स्थित था इस प्रकारका अभिमानही एक कर्म है

इस प्रकार कर्मविषे अकर्मकूं देखणेहारा तथा अकर्मविषे कर्मकूं देखणेहारा जो परमार्थदर्शी पुरुष है सो पुरुषही सर्वमनुष्योंविषे बुद्धिमान् है तथा सो पुरुषही योगयुक्त है तथा सो पुरुषही सब कर्मोंके करणेहारा है। इहां बुद्धिमत्व योगयुक्तत्व कृत्स्नकर्मकृत्व या तीन धर्मोंकरिकै श्रीभगवान्नैं ता परमार्थदर्शी पुरुषकी स्तुति कथन करी है। तहां (कर्मण्यकर्म यः पश्येत्) या प्रथमपाद-करिकै श्रीभगवान्नैं कर्मका तथा विकर्मका वास्तवस्वरूप दिखाया। जिसकारणतैं कर्मशब्द विहितकर्म तथा निषिद्धकर्म दोनोंकाही वाचक है। और (अकर्मणि च कर्म यः) या द्वितीय पादकरिकै श्रीभगवान्नैं अकर्मका वास्तवस्वरूप दिखाया इति। यातैं हे अर्जुन ! जो तूं यह मानता है कि यह सर्वकर्म बंधके हेतु हैं, यातैं ते कर्म हमारेकूं करणे योग्य नहीं हैं, किंतु हमारेकूं तूष्णींभावतैंही सुखपूर्वक स्थित होणा योग्य है। सो यह तुम्हारा मानणा मिथ्याहीहै। काहेतैं मैं कर्मोंका कर्त्ताहूं या प्रकारका कर्तृत्वअभिमान जबपर्यंत इस पुरुषकूं होवैहै तबपर्यंतही ते विहितकर्म तथा निषिद्धकर्म इस पुरुषकूं बंधनकी प्राप्ति करैंहैं। ता कर्तृत्वअभिमानतैं रहित होइके केवल देहइंद्रियादिकोंके धर्म मानिकै करेहुए ते कर्म इसपुरुषकूं बंधनकी प्राप्ति करते नहीं। इस अर्थकूं (न मां कर्माणि लिंपंति) इत्यादिक वचनोंकरिकै पूर्व हम कथनकरि आये हैं। हे अर्जुन ! ता कर्तृत्वअभिमानके विद्यमानहुए मैं तूष्णींहुआ स्थित था या प्रकारका उदासीनताका अभिमानमात्ररूप जो कर्म है सो कर्मभी इस पुरुषके बंधकाही हेतु होवैहै। जिसकारणतैं इस कर्तृत्वअभिमानी पुरुषनैं वस्तुका वास्तवस्वरूप जान्या नहीं। यातैं हे अर्जुन ! कर्म विकर्म अकर्म या तीनोंके पूर्व उक्त वास्तवस्वरूपकूं जानिकरिकै तथा विकर्म अकर्म या दोनोंका परित्याग करिकै तथा कर्तृत्वअभिमानतैं रहित होइकै तथा फलकी इच्छातैं रहित होइकै तूं शास्त्रविहित शुभकर्मोंकूंही कर इति। अथवा इस श्लोकका यह दूसरा अर्थ करणा। प्रत्यक्षादिप्रमाणजन्य ज्ञानका जो विषय होवै ताका नाम कर्म है। ऐसा यह दृश्यरूप तथा जडरूप प्रपंच है। और जो वस्तु प्रत्यक्षादिप्रमाणजन्य ज्ञानका विषय नहींहोवै ता वस्तुका नाम अकर्म है। ऐसा स्वप्रकाशरूप तथा सर्वभ्रमका अधिष्ठानरूप चैतन्य है। तहां जो पुरुष ता जगत्‌रूप कर्मविषे आपणे सत्तास्फु-रणरूपकरिकै अनुस्यूत स्वप्रकाश अधिष्ठानचैतन्यरूप अकर्मकूं परमार्थदृष्टिकरिकै देखै है। तथा जो पुरुष ता स्वप्रकाश अधिष्ठानचैतन्यरूप अकर्मविषे इस माया-

मय दृश्यप्रपंचरूपकर्मकूं कल्पित देखै है । अर्थात् द्रष्टा चैतन्यका तथा दृश्यप्रपंचका कोईभी संबंध संभवता नहीं । यातैं यह दृश्यप्रपंच ता द्रष्टाचैतन्यविषे वास्तवतैं है नहीं । याप्रकार जो पुरुष देखै है । तहां श्रुति—(यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति । सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ।) अर्थ यह—जो पुरुष सर्व अनिष्ठान आत्माविषे कल्पित देखै है तथा तिन सर्वभूतोंविषे सत्तास्फुरणरूप करिकै आत्माकूं अनुस्यूतदेखे है सो परमार्थदर्शी पुरुषही सर्वतैं श्रेष्ठ है इति। इसप्रकार चैतन्य आत्माका तथा दृश्यजगत्का परस्पर अध्यास हुएभी जो पुरुष वास्तवतैं शुद्ध चैतन्यकूंही देखैहै, सो विद्वान् पुरुषही सर्वमनुष्योंके मध्यविषे अत्यंत बुद्धिमान् है । ता विद्वान् पुरुषतैं भिन्न कोईभी पुरुष बुद्धिमान् नहीं है । काहेतैं इसलोकविषेभी यथावत् वस्तुके स्वरूपकूं जानणेहारा पुरुषही बुद्धिमान् कह्याजावै है । अयथावत् वस्तुके स्वरूपकूं जानणेहारा पुरुष बुद्धिमान् कह्याजावै नहीं । जैसे रज्जुकूं रज्जुरूपकरिकै जानणेहारा पुरुष बुद्धिमान् कह्याजावैहै और तिसी रज्जुकूं सर्परूपकरिकै जानणेहारा पुरुष बुद्धिमान् कह्याजावै नहीं । तैसे सर्वके अधिष्ठानपुरुष शुद्धचैतन्यकूं देखणेहारा पुरुषही परमार्थदर्शी होणेतैं बुद्धिमान् है और अनात्मप्रपंचकूं देखणेहारा अज्ञानी पुरुष तौ मिथ्यादर्शी होणेतैं बुद्धिमान् होवै नहीं । और सो परमार्थदर्शी पुरुषही ता बुद्धिके साधनरूप योगकरिकै युक्त है । अर्थात् अंतःकरणकी शुद्धिकरिकै एकाग्रचित्तवाला है इसीकारणतैं सोईही पुरुष ता अंतःकरणकी शुद्धिके साधनरूप सर्व कर्मोंका कर्त्ता है । इसप्रकार बुद्धिमत्त्व योगयुक्तत्व कृत्स्नकर्मकृत्व या वास्तव तीन धर्मोंकरिकै सो परमार्थदर्शीपुरुष स्तुति कऱ्याजावैहै। हे अर्जुन ! जिसकारणतैं सो परमार्थदर्शीपुरुष इसप्रकारके महानूपणेकूं प्राप्त होवैहै तिसकारणतैं तूं अर्जुनभी परमार्थदर्शी होउ । ता परमार्थदर्शीपणेकरिकैही तुम्हारेविषे सो सर्वकर्मका कर्त्तापणा सिद्ध होवैगा । यातैं जिस कर्म अकर्मके स्वरूपकूं जानिकै तूं इस संसारतैं मुक्त होवैगा । यह जो पूर्व कथन कऱ्या था तथा कर्म विकर्म अकर्म या तीनोंका वास्तवस्वरूप तुम्हारेकूं जानणे योग्य है यह जो पूर्व कथन कऱ्या था तथा सोईही पुरुष बुद्धिमान् है इत्यादिक जो स्तुति कथन करीहै यह सर्व वार्त्ता परमार्थ वस्तुके दर्शनहुएही संभव होइसकै है अन्यवस्तुके दर्शनतैं संभवै नहीं । काहेतैं ता चैतन्यरूप परमार्थवस्तुतैं भिन्न जितनेक अनात्मपदार्थ हैं तिन अनात्मपदार्थोंके ज्ञानतैं अशुभसंसारतैं मुक्ति संभवती नहीं

उलटा बंधकीही प्राप्ति होवैहै। तथा ता परमार्थवस्तुतैं भिन्न सर्वपदार्थ अतत्वरूप हैं। यातैं ते अतत्वरूपपदार्थ इस अधिकारी पुरुषकूं जानणेयोग्यभी नहीं हैं। तथा तिन अनात्मपदार्थोंके ज्ञानहुए इस पुरुषविषे सो बुद्धिमान्पणा भी संवता नहीं। यातैं परमार्थदर्शीपुरुषोंका यह पूर्वउक्त व्याख्यान युक्त है इति। और किसी टीकाविषे तौ (कर्मण्यकर्म यः पश्येत्) या श्लोकका यह अर्थ कथन करचा है। परमेश्वरकी प्रसन्नतावासतै करे जे अग्निहोत्र संध्या उपासनादिक नित्यकर्म हैं ते नित्यकर्म बंधके हेतु होवैं नहीं। यातैं ता नित्यकर्मविषे जो पुरुष यह नित्य-कर्म बंधका अहेतु होणेतैं अकर्मरूपही हैं याप्रकार देखै है। और तिन नित्यक-र्मोंका जो नहींकरणा है ताका नाम अकर्म है। सो नित्यकर्मोंका नहींकरणारूप अकर्म इस अधिकारी पुरुषके प्रत्यवायका हेतु होवैहै। यातैं ता अकर्मविषे जो पुरुष यह अकर्म प्रत्यवायका हेतु होणेतैं कर्मरूपही है याप्रकार देखै है सो पुरुषही सर्व मनुष्योंविषे बुद्धिमान् है तथा योगयुक्त है तथा सर्व कर्मोंका कर्ता है इति। सो यह अर्थ असंगत है काहेतैं ता नित्यकर्मविषे यह अकर्म है याप्रकारका जो ज्ञान है सो ज्ञान रज्जुविषे सर्पज्ञानकी न्याईं भ्रांतिरूपही है। यातैं ता भ्रांतिज्ञान-विषे (यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्) यावचनकरिकै कथन करी जा अशुभ संसारतैं मोक्षकी हेतुता है सा हेतुता संभवै नहीं। किंतु सो ज्ञान मिथ्यारूप होणेतैं आपही अशुभरूप है। तथा सो भ्रांतिज्ञान (बोद्धव्यम्) यावचनकरिकै कथन कन्या जानणेयोग्य तत्त्वरूपभी नहीं है। तथा ता भ्रांतिज्ञानके प्राप्तहुए बुद्धिमत्त्व योगयुक्तत्त्व इत्यादिक स्तुतिभी संभवती नहीं। उलटा सो भ्रांतिज्ञानवाला पुरुष मिथ्यादर्शीही कह्याजावैहै। और ता नित्यकर्मोंका जो अनुष्ठान है सो अनुष्ठान तौ स्वरूपतैंही अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा आत्मज्ञानविषे उपयोगीहै। ता नित्यकर्मविषे अकर्मबुद्धि तौ किसीविषेभी उपयोगी है नहीं काहेतैं, जो अर्थ शास्त्रकरिकै विदित होवैहै सोईही अर्थ अंतःकरणकी शुद्धिविषे तथा ज्ञानविषे उपयोगी होवैहै। जैसे वाक् मन इत्यादिकोंविषे शास्त्रने ब्रह्मदृष्टि विधान करी है यातैं ता दृष्टिका अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञानविषे उपयोग है, तैसे नित्यकर्म अकर्मरूपहै याप्रकारकी दृष्टि किसीशा-स्त्रनैं विधान करी नहीं। यातैं ता दृष्टिका किसीभी अर्थविषे उपयोग संभवै नहीं। तहां (कर्मण्यकर्म यः पश्येत्) यह गीताका वचनही ता कर्मविषे अकर्मदृष्टिका विधान करैहै याप्रकारका वचन जो कोई कथन करैहै सोभी संभवता नहीं। काहेतैं इस गीतावचनका

इसप्रकारका अर्थ मानणेविषे पूर्व (यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्) इत्यादिक उपक्रमादिक वचनोंका विरोध कथन करि आयेहैं। इसप्रकारका नित्यकर्मोंका नहीं-करणारूप अकर्मभी स्वरूपतैंही ता नित्यकर्मतैं विरुद्धकर्मकी लक्षकता करिकै उपयोगी होवैहै। तिस अकर्मविषे कर्मदृष्टि किसीभी अर्थविषे उपयोगी होवै नहीं। तथा ता नित्यकर्मके नहीं करणेतैं प्रत्यवायभी होवै नहीं। काहेतैं सो नित्यकर्मका नहीं करणा अभावरूप है और प्रत्यवाय भावरूप है। ता अभावतैं भावकी उत्पत्ति संभवती नहीं। जो कदाचित् अभावतैंभी भावकार्यकी उत्पत्ति होती होवै तौ अभाव तो सर्वदेशकालविषे विद्यमान है यातैं सर्वदेशविषे तथा सर्वकालविषे सर्वकार्योंकी उत्पत्ति होणी चाहिये। सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं। यातैं अभावते भावकी उत्पत्ति मानणी अत्यंत विरुद्ध है। किंवा भावरूप अर्थही धर्मअधर्मरूप अपूर्वका जनक होवैहै। अभावरूप अर्थ ता अपूर्वका जनक होवै नहीं। यातैं नित्यकर्मका अभाव ता प्रत्यवायका जनक है नहीं। किंतु ता नित्यकर्मके अनुष्ठानकालविषे जो ता नित्यकर्मका विरोधी शयनउपवेशनादि कर्म है सो नित्यकर्मके अकरणउपलक्षित भावरूप कर्मही ता प्रत्यवायका हेतु है। यह सर्व वैदिकपुरुषोंका सिद्धांत है। यातैं मिथ्याज्ञानके निवृत्तिप्रसंगविषे मिथ्याज्ञानकाही व्याख्यान करणा अत्यंत विरुद्ध है। और जो कोई वादी यह कहै सो भगवान्का वचन नित्यकर्मोंके अनुष्ठानपर है सो यह कहणाभी संभवता नहीं। काहेतैं यह अधिकारी पुरुष नित्यकर्मोंकूं करै याप्रकारके अर्थकूं (कर्मण्यकर्म यः पश्येत्) यह वचन कथन करता नहीं। ता अर्थके बोधन करणेवासतै जो कदाचित् श्रीभगवान् ता वचनकूं कथन करैंगे तौ श्रीभगवान्विषेही मिथ्यावादीपणा सिद्ध होवैगा इति। और किसी टीकाविषे तौ (कर्मण्यकर्मयः पश्येत्) इस श्लोकका यह अर्थ कथन कऱ्या है तहां पूर्व (कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यम्) या श्लोकविषे कर्म विकर्म अकर्म या तीनोंका जापारि अवसानरूप गति है सा अत्यंत गहनहै यातैं इस अधिकारी पुरुषकूं सा कर्मादिकोंकी गति अवश्यकरिकै जानणेयोग्य है यह अर्थ श्रीभगवान्नैं कथन कऱ्याथा। तिसी अर्थकाही व्याख्यानरूप (कर्मण्यकर्म यः पश्येत्स मनुष्येषु बुद्धिमान्) यह वचन है। सो दिखावैं हैं। (कर्मणि) यापदकरिकै कर्म अकर्म विकर्म या तीनोंका ग्रहण करणा और (अकर्म) या पदकरिकै ता कर्म अकर्म विकर्म या तीनोंतैं विपरीत

भावका ग्रहणकरा । तहां जो पुरुष ता कर्मविषे अकर्मकूं देखैहै अर्थात् कर्मतैं विपरीतभावकूं देखै है तहां कर्म अकर्म विकर्म या तीनोंविषे तिन कर्मादिकोंवैं विपरीतरूपता शास्त्रप्रमाणतैं देखणेविषे आवै है । जैसे कर्मविषे श्रद्धातैं रहित जो पुरुष है ता श्रद्धाहीन पुरुषनैं कऱ्या जो कोई यज्ञरूपकर्म है सो यज्ञरूपकर्म फलका अहेतु होणेतैं कऱ्याहुआभी नकरेके समान होवैहै यातैं सो श्रद्धाहीनपुरुषकृत यज्ञरूपकर्मविषेही परिअवसानकूं प्राप्त होवैहै और दांभिकपुरुषनैं कऱ्याहुआ सोई यज्ञरूपकर्म विकर्मविषेही परिअवसानकूं प्राप्त होवै है । या अर्थकूं श्रीभगवान् आपही (अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥ असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह) इस श्लोकविषे आगे कथन करैंगे । इसप्रकार सर्व व्यापरतैं रहित उदासीनता यद्यपि अकर्मरूपहै तथापि दुःखीपुरुषोंकी रक्षाकरणेविषे सो समर्थ जो पुरुषहै सो समर्थ पुरुषता औदासीनताकूं अंगीकार करिकै जो तिन दुःखीपुरुषोंकी रक्षा नहींकरै है तौ तिस समर्थपुरुषका सो उदासीनतारूप अकर्म विकर्मविषेही परिअवसानकूं प्राप्त होवै है । तथा पितृयज्ञादिक पंचयज्ञोंका जो अपणे अपणे विहितकालविषे नहीं करणा है सो पंचयज्ञोंका नहीं करणा यद्यपि अकर्मरूप है तथापि तिसकालविषे ईश्वरके आराधनविषे अत्यंत आसक्त जो पुरुष है ता पुरुषका सो पंचयज्ञादिकोंका नहीं करणारूप अकर्मभी कर्मविषेही परिअवसानकूं प्राप्त होवैहै यह वार्त्ता (सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज) या श्लोकविषे श्रीभगवान्नैं आपही कथन करीहै । और नित्यकर्मके परित्यागतैं जो पापकी प्राप्ति कथन करीहै सोभी ता नित्यकर्मके करणेकालविषे शास्त्रनिषिद्ध लौकिकव्यवहारके करणेतैंही पापकी प्राप्ति कथन करी है । परंतु ता कालविषे ईश्वरके आराधनविषे आसक्तहुआ पुरुष ता प्रत्यवायकूं प्राप्त होवैनहीं । याकारणेतैंही पूर्व जलादिकोंके भीतर स्थित होइकै तपकूं करेतहुए ऋषि ता कालविषे नित्यकर्मोंके नहीं करणेतैं प्रत्यवायकूं नहीं प्राप्त होतेभये हैं । इस प्रकार किसी पशुकी हिंसा करणी यद्यपि विकर्मरूप है तथापि (अग्नीषोमीयं पशुमालभेत) इस वचनतैं यज्ञविषे करीहुई सा पशुकी हिंसा कर्मविषेही परिअवसानकूं प्राप्त होवैहै और व्यर्थही ता पशुके नष्टहुए जा सा पशुकी हिंसा है तिस हिंसातैं कोई धर्मरूप अपूर्व उत्पन्न होवै नहीं । यातैं सा पशुकी हिंसा कर्मरूपभी नहींहै और किसीका नामवाले पुरुषनैं सा पशुकी हिंसा करी नहीं यातैं सा हिंसा विकर्मरूपभी नहीं हैं । किंतु परिशेषतैं करीहुईभी सा पशुकी हिंसा नहीं करेके तुल्य होवैहै ।

यातैं सा व्यर्थहिंसा अकर्मविषेही पारिअवसानकूं प्राप्त होवहै । इसप्रकार चौरपुरुषका जो छोडिदेणाहै सो यद्यपि ता चौरपुरुषके सहवर्त्तीपुरुषोंका कर्मरूपही है तथापि सो चौरपुरुषका छोडना राजाका विकर्मही है काहेतैं (स्तेनः प्रमुक्तो राजनि पापमार्ष्टि) इत्यादिक वचनोंविषे चौरपुरुषका छोडना राजाकूं पापकी प्राप्तिका हेतु कह्याहै और सोईही चौरपुरुषका छोडना निष्कामसंन्यासियोंका उपेक्षा विषय होणेतैं अकर्मरूपही है । इसप्रकार सत्यवचन कहणा यद्यपि कर्मरूप है तथापि जिस सत्यवचनतैं किसीप्राणीकी हिंसा होवैहै सो सत्यवचनरूप कर्मभी विकर्मविषेही पारिअवसानकूं प्राप्त होवैहै । इसप्रकार मिथ्यावचन कहणा यद्यपि विकर्मरूप है तथापि जिस मिथ्यावचनके कहणेतैं किसी प्राणीकी रक्षा होवैहै ता मिथ्यावचनरूप कर्मका कर्मविषेही पारिअवसान होवैहै । इसप्रकार जो पुरुष शास्त्रप्रमाणतैं कर्मविषे तौ अकर्मरूपताकूं तथा विकर्मरूपताकूं देखैहै और अकर्मविषे तौ कर्मरूपताकूं तथा विकर्मरूपताकूं देखैहै और विकर्मविषे तौ कर्मरूपताकूं तथा अकर्मरूपताकूं देखैहै, सो कार्यअकार्यके विभागकूं जानणेहारा पुरुष तिन कर्मादिकोंके वास्तवस्वरूपके बोधवाला होणेतैं बुद्धिमान् कह्याजावैहै इति। और पूर्व(किं कर्म किमकर्मेति) इस श्लोकविषे जिस कर्म अकर्मके स्वरूपविषे कविपुरुषोंकूंभी मोहकी प्राप्ति कथनकरीथी । तथा (यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्) या वचनविषे जिस कर्म अकर्मका ज्ञान अशुभसंसारतैं मोक्षका हेतु कथन कऱ्याथा ता कर्मअकर्म दोनोंका स्वरूप मैं तुम्हारेप्रति कथन करताहूं । याप्रकारका वचन श्रीभगवान्नैं अर्जुनकेप्रति कथन कऱ्या था तिसीही वचनका व्याख्यानरूप (अकर्मणि च कर्म यः पश्येत्स युक्तः) यह वचन है तहां इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार कर्मविषे अकर्मदर्शन तथा अकर्मविषे कर्मदर्शन या दोनोंदर्शनोंके समुच्चयकरावणेवासतै है ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवैहै जो पुरुष बुद्धिमान् है तथा युक्त है सोईही पुरुष कृत्स्नकर्मकृत् है और जो पुरुष केवल बुद्धिमान्ही है युक्त नहीं है सो पुरुषभी कृत्स्नकर्मकृत नहीं है और जो पुरुष केवल युक्तही है बुद्धिमान् नहीं है सो पुरुषभी कृत्स्नकर्मकृत् नहीं है । इसी अर्थकूं अब स्पष्टकरिकै दिखावैं हैं जो पुरुष अकर्मविषे कर्मकूं देखै है सो पुरुष युक्त कह्याजावै है । तहां स्पंदतैं रहित जो कूटस्थ आत्मा है ताका नाम अकर्म है और स्पंदसहित जो आकाशादिक बाह्यप्रपंच है तथा मन बुद्धिआदिक जो अंतरप्रपंच है ता दोनोंप्रकारके प्रपंचका नाम कर्म है ता कूटस्थवस्तुरूप अक-

र्मविषे ता प्रपंचरूप कर्मकूं आधार आधेयभावकरिकै अथवा उपादानउपादेयभावकरिकै अथवा अधिष्ठानअध्यस्तभावकरिकै देखतेहुए शास्त्रवेत्तापुरुष कर्मोंकूं करैं हैं। तहां प्रथम सांख्यशास्त्रवाला तो जैसे जपाकुसुमकी रक्तता स्फटिकविषे प्रतीत होवैहै तैसे संघातके कर्तृत्वादिकधर्म मैं असंगकूटस्थविषे अविवेकतैं प्रतीत होवैंहैं। या प्रकारकी भावना करताहुआ कर्मोंकूं करैहै। और दूसरा उपनिषद्शास्त्रका वेत्ता पुरुष तौ जैसे सुवर्णतैं उत्पन्नहुए कुंडलकंकणादिक कार्य सुवर्णरूपही होवैं हैं तैसे ब्रह्मतैं उत्पन्नभया यह सर्वजगत्भी ब्रह्मरूपही है यातैं यज्ञादिककर्म तथा ता कर्मके द्रव्यदेवतादिकसाधन तथा मैं कर्मका कर्त्ता सर्व ब्रह्मरूपही हैं याप्रकारकी भावना करताहुआ कर्मोंकूं करै है यह दोनों युक्त कहेजावैं हैं। तहां पूर्व उक्तरीतिसैं जो पुरुष बुद्धिमान्भी है परंतु इसप्रकार युक्त है नहीं सो बुद्धिमान् युक्त पुरुष जिसजिस कर्मकूं करै है ते सर्वकर्म तिस पुरुषके असत्ही होवै हैं। यातैं ते कर्म तिस पुरुषकूं अशुभसंसारतैं मुक्त करैं नहीं। तहां श्रुति (यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्मिँल्लोके जुहोति यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्षसहस्राण्यंतवदेवास्य तद्भवति) अर्थ यह—हे गार्गी ! जो पुरुष इस अक्षर आत्माकूं न जानिकरिकै इस मनुष्यलोकविषे जिसजिस होमकूं करै है तथा जिसजिस यज्ञकूं करै है तथा अनेक सहस्रवर्षपर्यंत जिसजिस तपकूं करै है ते सर्व होमयज्ञादिककर्म इस पुरुषकूं नाशवान् फलकीही प्राप्ति करैं हैं और जो पुरुष युक्त तौ है परंतु बुद्धिमान् है नहीं सो पुरुष नहीं करणेयोग्य कर्मोंकूंभी करै है ताकरिकै सो पुरुष प्रत्यवायकूंही प्राप्त होवैहै। काहेतैं पापके अस्पर्शका कारण जो आत्माका अपरोक्ष ज्ञान है सो अपरोक्षज्ञान ता निर्बुद्धियुक्त पुरुषकूं है नहीं किंतु तिस युक्तपुरुषकूं केवल परोक्षज्ञानही है इसी कर्मकूं तथा परोक्षज्ञानकूं (विद्यां चाविद्यां च) या श्रुतिनैं अविद्या विद्या या दोनों शब्दोंतैं कथनकरिकै तिन दोनोंका समुच्चय कथन करयाहै इति। अथवा सो अकर्मविषे कर्मका दर्शन दोप्रकारका होवैहै एकतौ परोक्ष दर्शन होवैहै दूसरा अपरोक्षदर्शन होवैहै। तहां परोक्षदर्शनवाला तौ ज्ञान कर्म दोनोंके समुच्चयका अनुष्ठान करता होणेतैं बुद्धिमान् कह्याजावै है और दूसरा अपरोक्षदर्शनभी दोप्रकारका होवैहै तहां एकतौ उपास्यसाक्षात्काररूप होवैहै और दूसरा तत्त्वसाक्षात्काररूप होवैहै। तहां जिस वस्तुकी उपासना करिये ताका नाम उपास्य है सो उपास्य दोप्रकारका होवैहै। एकतौ व्याकृतरूप होवैहै और दूसरा

अव्याकृतरूप होवैहै । ता उपास्यके भेदकरिकै सो उपास्यविषयक साक्षात्कारभी दोप्रकारका होवैहै । तहां कार्यरूप सूत्रआत्माका नाम व्याकृत है और सर्वजगत्के कारणका नाम अव्याकृत है । तहां ता सूत्ररूप व्याकृतके साक्षात्कारवान् पुरुष देहाभिमानतैं रहित होणेतैं योगशास्त्रविषे विदेह यानामकरिकै कह्याजावैहै और ता कारणरूप अव्याकृतके साक्षात्कारवान् पुरुष प्रकृतिलय यानामकरिकै कह्याजावै है । या दोनों उपासनावोंका (अन्यदेवाहुः संभवात्) इत्यादिक श्रुतिनैं संभव असंभव या दोनोंशब्दोंतैं कथनकरिकै समुच्चय विधान कऱ्याहै ता उपासनावाला पुरुष युक्त या नामकरिकै कह्याजावैहै । इस उपासक युक्त पुरुषकूंभी आगे बाकी कर्त्तव्य रहैहैं यातैं यह युक्तपुरुषभी कृत्स्नकर्मकृत् होइसकै नहीं । किंतु जिस पुरुषकूं ता प्रपंचरूप कर्मका बाधकरिकै कूटस्थ आत्मारूप अकर्मका मुख्य दर्शन प्राप्त भयाहै सो तत्त्वसाक्षात्कारवान् पुरुषही कृतकृत्य होणेतैं मुख्य कृत्स्नकर्मकृत् कह्याजावैहै । इन सर्वोंविषे प्रथम ज्ञानकर्मके समुच्चयका अनुष्ठान करणेहारा पुरुष तो देहाभिमानी मनुष्योंविषेही बुद्धिमान् है यातैं अक्रांतादर्शी होणेतैं सो पुरुष अकविही है और व्याकृत उपास्यविषयक साक्षात्कारवान् तथा अव्याकृत उपास्यविषयक साक्षात्कारवान् यह मध्यके दोनों क्रांतदर्शी होणेतैं यद्यपि कवि हैं तथापि तत्त्ववस्तुविषे मूढ होणेतैं ते दोनों (कवयोप्यत्र मोहिताः) इस वचनकरिकै कथन करेहैं । इन दोनोंको व्यवधानकरिकै अशुभ संसारतैं मुक्त होवैहै और तत्त्वसाक्षात्कारवान् उत्तम पुरुष तौ जीवताहुआही ता अशुभसंसारतैं मुक्त होवै है । इहां सूक्ष्मदर्शी पुरुषका नाम क्रांतदर्शी है इति । अथवा (कर्मण्यकर्म यः पश्येत्) या श्लोकका यह अर्थ करणा । पूर्व (तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि) या वचनविषे श्रीभगवान्नैं कर्म अकर्म दोनोंकूं वक्तव्यरूपकरिकै कथनकऱ्याथा और (कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यम्) या वचनविषे तिन दोनोंकूं बोद्धव्यरूपकरिकै कथन कऱ्याथा सो कर्म अकर्मका बोध लक्षणतैंविना होवैनहीं यातैं इस श्लोकविषे तिन दोनोंका लक्षण कथनकरणाही उचित है तहां (कर्मण्यकर्म यः पश्येत्) या वचनकरिकै जो अकर्मकरिकै विशेषित होवैहै सोईही कर्म होवैहै अन्य कर्म होवैनहीं यह कर्मका लक्षण कथन कऱ्या है । और (अकर्मणि च कर्म यः) या वचनकरिकै जो कर्मकरिकै विशेषित होवैहै सोईही अकर्म होवैहै यह अकर्मका लक्षण कथन कऱ्याहै । इस व्याख्यानविषे

श्लोकके अक्षरोंका अर्थ याप्रकार करणा। द्रव्यदेवतादिक साधनोंसहित जे यज्ञादिक हैं तिनोंका नाम कर्महै और स्पंदतैं रहित कूटस्थ ब्रह्मका नाम अकर्म है। वहां जो पुरुष ता साधनसहित यज्ञादिकरूप अकर्मविषे कूटस्थ ब्रह्मरूप कर्मकूं देखै है। अर्थात् (अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्। मंत्रोहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्) इस भगवत्वचनउक्तरीतिसैं तिन यज्ञादिककर्मोंविषे तथा तिन कर्मोंके द्रव्य देवतादिक अंगोंविषे जो पुरुष ब्रह्मदृष्टि करैहै ता ब्रह्मदृष्टितैं विना जो कर्म करयाजावैहै सो कर्म व्यर्थ चेष्टारूपही होवैहै। या कारणतैं तिन कर्मोंकी गति अत्यंत गहन है इति। शंका—हे भगवन् ! जो अकर्म कर्मविषे आरोपणकरीताहै सो अकर्म क्या वस्तु है ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् कहैं हैं (अकर्मणि च कर्म यः इति) हे अर्जुन ! जिस वस्तुविषे पुण्यपापरूप कर्म (पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन) इस श्रुतिके बलतैं प्रतीत होवै है। तथा जिस वस्तुविषे ता पुण्यपाप कर्मका सुखदुःखरूप फल अहंसुखी अहंदुःखीका प्रतीतिके बलतैं प्रतीत होवैहै। सो प्रत्यक् चेतनही अकर्मरूप है। और जैसे सर्पभावतैं रहित रज्जुविषे सर्प अध्यस्त होवैहै तैसे ता स्पंदभावतैं रहित चेतनरूप अकर्मविषे यह स्पंदरूप कर्म अध्यस्त है याप्रकार जो पुरुष ता अकर्मविषे कर्मकूं देखैहै। इहां यह तात्पर्य है जैसे रज्जुविषे अध्यस्तसर्पकूं देखताहुआ जो पुरुष है ता पुरुषकूं यह सर्प नहीं है किंतु रज्जुही है याप्रकारके आप्तवक्तापुरुषके वचनतैं जो कदाचित् विक्षेपकी प्रबलतातैं रज्जुत्वका ज्ञान नहीं होवैहै तौ सो आप्तवक्ता पुरुष ता भ्रांतपुरुषके प्रति इस सर्पकूं तूं रज्जुदृष्टिकरिकै उपासना कर याप्रकारका जबी उपदेश करैहै तबी सो भ्रांतपुरुष ता उपासनाकी दृढतातैं ता सर्पका विस्मरणकरिकै ता रज्जुत्वकूंही साक्षात्कार करैहै। और जो पुरुष वह सर्प नहीं है किंतु रज्जुहीहै या प्रकारके वचनतैंही ता रज्जुके वास्तवस्वरूपकूं जानैं है तिस पुरुषकूं यह सर्प रज्जुही है या प्रकारकी वृत्तियोंका निरंतर प्रवाहरूप उपासना करणेका किंचित्मात्रभी प्रयोजन नहीं है। इसप्रकार कूटस्थब्रह्मरूप अकर्मविषे अध्यस्त जो कर्त्ताक्रियादिक प्रपंचरूप कर्म है ता प्रपंचरूप कर्मकूं तत्त्वमसि इस वचनतैं बाधकरिकै शुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषकूं ता कूटस्थब्रह्मरूप अकर्मका बोध होइसकैहै। और जिस पुरुषका अंतःकरण शुद्ध नहीं है सो पुरुष जबी ता कर्मकूं अकर्मदृष्टिकरिकै उपासना करै है तबी ता उपासनाकी दृढतातैं सो पुरुषभी ता कर्मके तिरोधानकरिकै ता अकर्मके

वास्तवस्वरूपकूं साक्षात्कार करै इति । इस प्रकारका विलक्षणव्याख्यान करिकै ता टीकाकारने श्रीभाष्यकार भगवान्के आगे याप्रकारकी प्रार्थना करीहै । तहां श्लोक-(व्याख्यातुरपि मे नास्ति भाष्यकारेण तुल्यता । गुहा उद्द्योतिनोप्यस्ति किं दीपस्यार्कतुल्यता) अर्थ यह-इसप्रकार विलक्षणव्याख्यानकूंभी करणेहारा जो मैं हूं तिस हमारेकूं भगवान् भाष्यकारोंकी तुल्यता होवै नहीं । जैसे किसी गुहा विषे प्रकाशकरणेहारे भी दीपककूं सूर्यभगवान्की तुल्यता होवै नहीं इति ॥ १८ ॥

अब पूर्व उक्त परमार्थदर्शी पुरुषकूं कर्तृत्व अभिमानके अभावतैं कर्मोंकरिकै अलिप्तपणा श्रीभगवान् (यस्य सर्वे) इस वचनतैं आदिलैके (ब्रह्मकर्मसमाधिना) इस वचनपर्यंत विस्तारतैं कथन करैं हैं-

यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः ॥
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) यस्य । सर्वे । समारंभाः । कामसंकल्पवर्जिताः । ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम् । तम् । आहुः । पंडितम् । बुधाः ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस पुरुषके सर्व कर्म कामसंकल्पतैं रहित हैं तथा ज्ञानरूप अग्निकरिकै दग्ध हुए हैं कर्म जिसके तिस पुरुषकूं ब्रह्मवेत्तापुरुष पंडित कहैं हैं ॥ १९ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! पूर्वश्लोकविषे कथन करेहुए जिस परमार्थदर्शी पुरुषके सर्व लौकिक वैदिक कर्म कामतैं रहित हुए हैं तथा संकल्परहित हुएहैं । इहां स्वर्गादिकफलोंकी जा तृष्णाहै ताका नाम कामहै और मैं कर्मका कर्त्ता हूं याप्रकारका जो कर्तृत्वअभिमान है ताका नाम संकल्प है ता काम संकल्पदोनोंतैं जिस पुरुषके ते कर्म रहित हुएहैं अर्थात् जिस पुरुषके ते सर्व कर्म केवल लोकसंग्रहवासतै अथवा शरीरके जीवनमात्रवासतै प्रारब्धकर्मके वेगतैं व्यर्थ चेष्टारूप हुएहैं । और पूर्वश्लोकविषे कथन कऱ्या जो प्रपंचरूप कर्मविषे सत्तास्फूर्तिरूपकरिकै चैतन्यब्रह्मरूप अकर्मका दर्शन तथा ता ब्रह्मरूप अकर्मविषे कल्पितरूप करिकै प्रपंचरूप कर्मका दर्शन ता दर्शनका नाम ज्ञान है सो ज्ञान प्रसिद्ध अग्निकी न्याई सर्वकर्मोंका दाहक होणेतैं अग्निरूप है । ता ज्ञानरूप अग्निकरिकै दग्धहोइगये हैं शुभअशुभ कर्म जिसके । तहां श्रीव्याससूत्र-(तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात्) अर्थ यह-ता

परमात्मा देवके सक्षात्कार हुये ता साक्षात्कारतैं उत्तर करेहुए पुण्यपापकर्मोंका ता विद्वान् पुरुषकूं संबंधही नहीं होवैहै। और ता साक्षात्कारतैं पूर्व करे हुए संचित कर्मोंका ता ज्ञानरूप अग्निकरिकै नाश होइजावैहै। यह वार्ता बहुत श्रुमिस्मृतियों-विषे देखणेमैं आवैहै इति। ऐसे विद्वान् पुरुषकूं ब्रह्मवेत्तापुरुष वास्तवतैं पंडित कहै हैं। इहां सर्वत्र चैतन्यब्रह्ममात्रकूं विषयकरणेहारी जा अंतःकरणकी वृत्ति है ता वृत्तिका नाम पंडा है सा पंडानामावृत्ति जिस पुरुषके अंतःकरणविषे उत्पन्न होवै ता पुरुषका नाम पंडित है। और लोकविषेंभी सम्यक्दर्शी पुरुषही पंडित कह्याजा-जावैहै। भ्रांतपुरुष पंडित कह्याजावै नहीं। सो सम्यक्दर्शीपणा विद्वान् पुरुष-विषेही है। अज्ञानी पुरुषोंविषे सो सम्यक्दर्शीपणा है नहीं। यातैं सो विद्वान् पुरुषही पंडित है ॥ १९ ॥

शंका हे भगवन्! ता ज्ञानरूप अग्निकरिकै पूर्व आरंभ करेहुए प्रारब्ध कर्मतैं भिन्न कर्मोंका दाह होवो तथा आगामि कर्मोंकी अनुत्पत्तिभी होवो परंतु ता ज्ञान-की उत्पत्तिकालविषे कर्याहुआ जो कर्म है सो कर्म तिन पूर्वकर्मोंविषे तथा उत्तर कर्मोंविषे अंतर्भूत होइसकै नहीं। यातैं सो कर्म तौ ता ज्ञानवान् पुरुषकूं अवश्य करिकै फलकी प्राप्ति करैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता शंकाकी निवृत्ति करैं हैं–

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः ॥
कर्मण्यभिप्रवृत्तोपि नैव किंचित्करोति सः ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) त्यक्त्वा। कर्मफलासंगम्। नित्यतृप्तः। निराश्रयः। कर्मणि। अभिप्रवृत्तः। अपि। न। एव। किंचित्। करोति। सः ॥२०॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! कर्मफलके आसंगकूं परित्याग करिकै नित्यतृप्तहुआ तथा निराश्रयहुआ कर्मविषे प्रवृत्तहुआ भी सो विद्वान् पुरुष किंचित्मात्रभी नहीं करैहै ॥ २० ॥

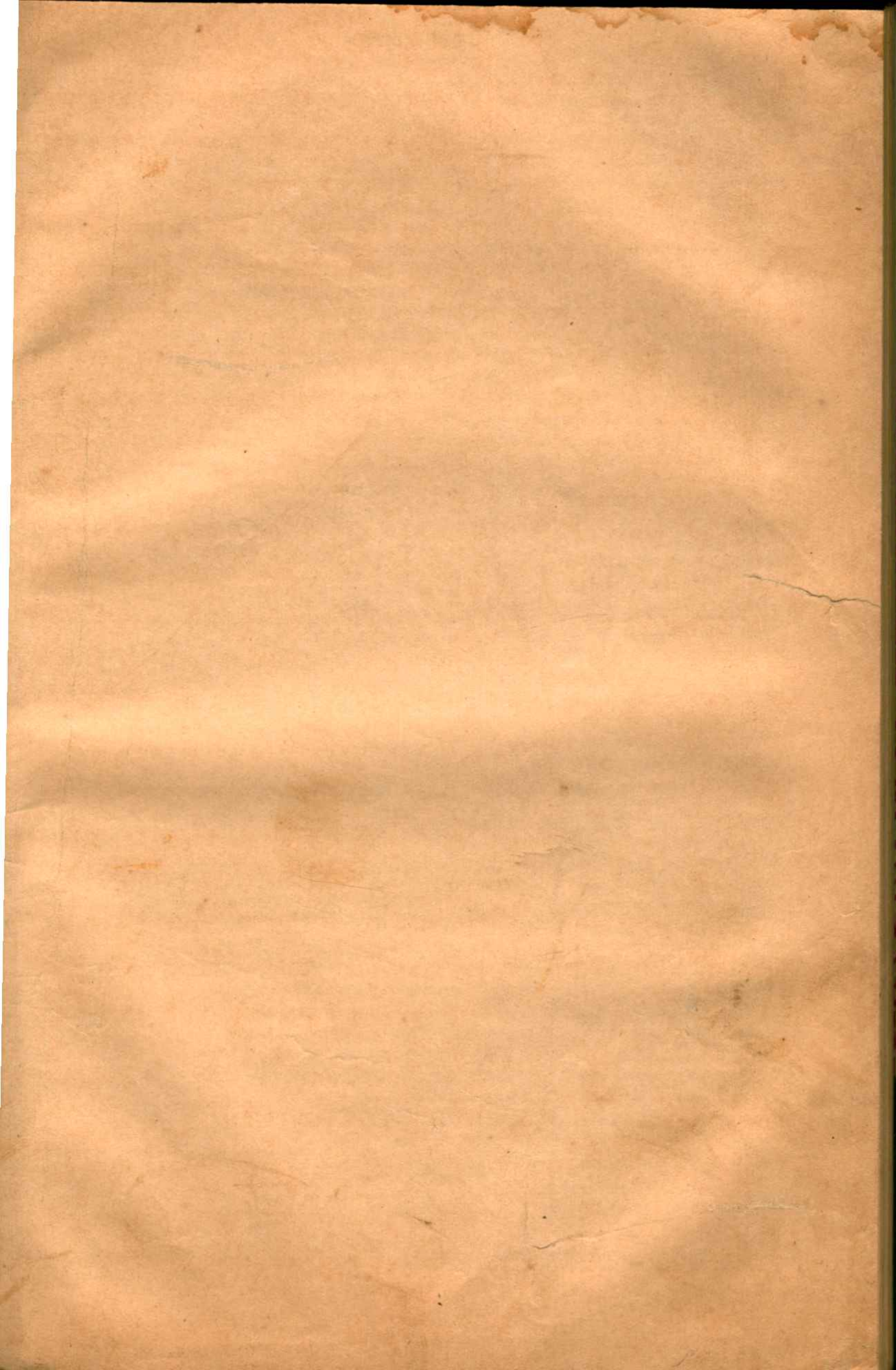
भा० टी०–हे अर्जुन! नित्यनैमित्तिक कर्मोंविषे जो मैं इन कर्मोंका कर्ताहूं या प्रकारका कर्तृत्व अभिमानहै ता कर्तृत्व अभिमानका नाम कर्म आसंगहै। और तिन कर्मोंके स्वर्गादिफलोंविषे जा भोगकी अभिलाषा है ता अभिलाषाका नाम फलआसंग है। ता कर्मआसंगका तथा फलआसंगका परित्याग करिकै अर्थात् अकर्त्ता अभोक्ता

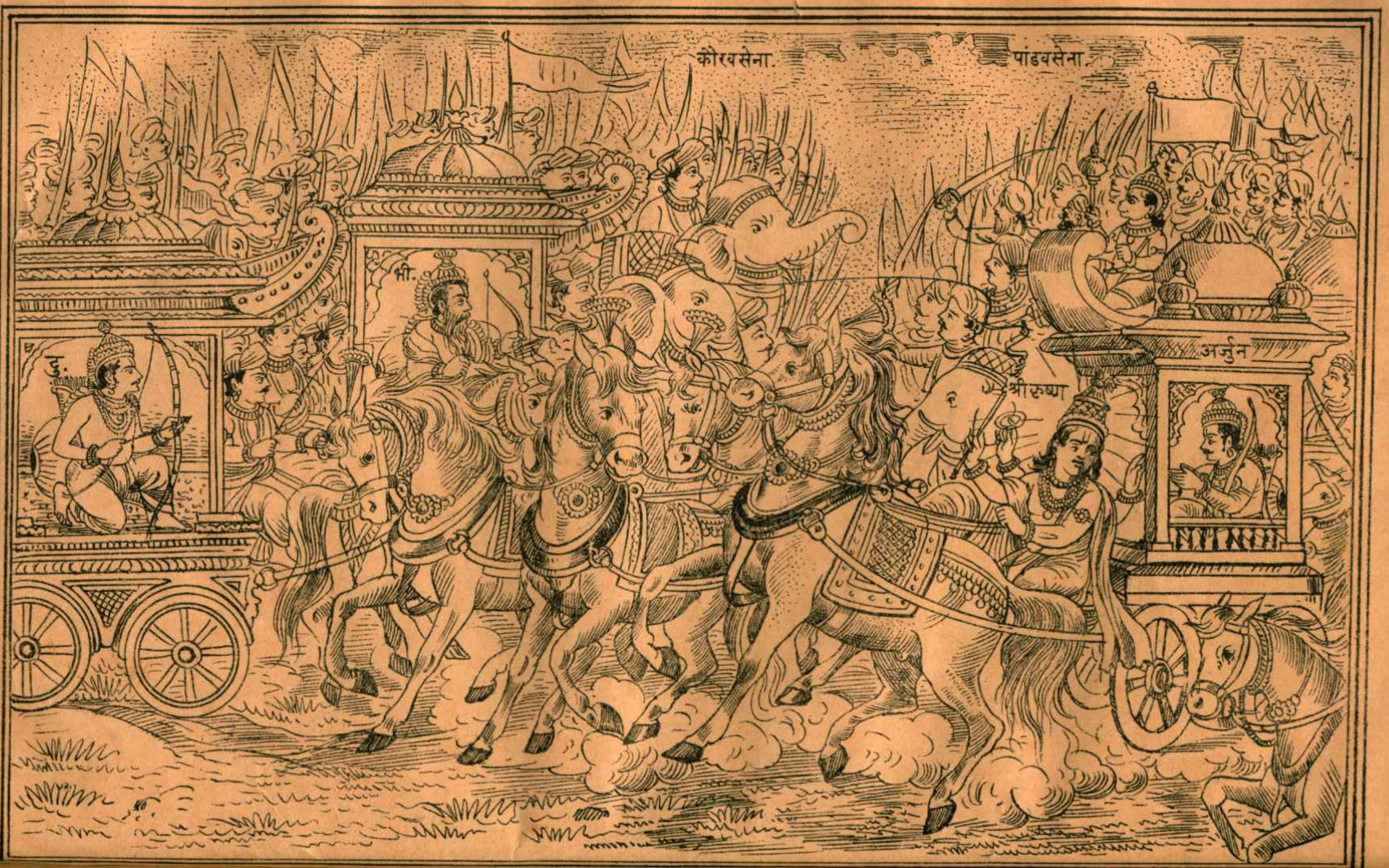
आत्माके यथार्थ ज्ञानकरिकै ता आसंगका बाध करिकै जो पुरुष नित्यतृप्त हुआ है अर्थात् परमानंदस्वरूपके लाभकरिकै जो पुरुष सर्व पदार्थोंविषे निराकांक्ष हुआ है। तथा जो पुरुष निराश्रय हुआ है अर्थात् अद्वैत आत्मदर्शनकरिकै जो पुरुष देहइंद्रियादिरूप आश्रयके अभिमानतैं रहित हुआ है ऐसा जीवन्मुक्त पुरुष समाधितैं व्युत्थानदशाविषे प्रारब्धकर्मके वशतैं लोकदृष्टिकरिकै लौकिक वैदिक कर्मोंके सांगोपांग अनुष्ठानकरणेवास्तै प्रवृत्तहुआभी सो विद्वान् पुरुष आपणी परमार्थ दृष्टिकरिकै किंचित्मात्रभी कर्मकूं करता नहीं। जिस कारणतैं निष्क्रिय आत्माके साक्षात्कारकरिकै ता विद्वान्पुरुषके ते सर्वकर्म बाधभावकूं प्राप्तहुए हैं। इहां ता विद्वान् पुरुषके (नित्यतृप्तः निराश्रयः) यह जो दो विशेषण कथन करेहैं ते दोनों विशेषण हेतुरूप हैं। तहां फल आसंगकी निवृत्तिविषे तौ नित्यतृप्तः यह हेतु है और कर्मआसंगकी निवृत्तिविषे निराश्रयः यह हेतु है। ताकरिकै यह दो अनुमान सिद्ध होवैं हैं। सो विद्वान् पुरुष फलकी अभिलाषारूप फलआसंगतैं रहित है नित्यतृप्त होणेतैं जो पुरुष ता फलआसंगतैं रहित नहीं होवैहै सो पुरुष नित्यतृप्तभी नहीं होवै है जैसे अज्ञानीपुरुष है इति। और सो विद्वान पुरुष कर्तृत्व अभिमानरूप कर्मआसंगतैं रहित है निराश्रय होणेतैं जो पुरुष ता कर्मआसंगतैं रहित नहीं होवै है सो पुरुष निराश्रयभी नहीं होवैहै जैसे अज्ञानी पुरुष है ॥ २० ॥

तहां अत्यंत विक्षेपके हेतु जे ज्योतिष्टोमादिक कर्म हैं तिन कर्मोंकूंभी जबी ता सम्यक्ज्ञानके वशतैं बंधकी हेतुता होवै नहीं। तबी शरीरकी स्थितिमात्रके हेतु तथा विक्षेपकी नहीं प्राप्ति करणेहारे जो भिक्षा अटनादिक यतिके कर्म हैं तिन कर्मोंकूं ता सम्यक् दर्शनके बलतैं बंधकी हेतुता नहीं है याकेविषे क्या कहणा है। या प्रकारके कैमुतिकन्यायकरिकै श्रीभगवान् तिन भिक्षाअटनादिक कर्मोंविषे बंधकी हेतुताका अभाव कथन करैं हैं—

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) निराशीः । यतचित्तात्मा । त्यक्तसर्वपरिग्रहः । शारीरम् । केवलम् । कर्म । कुर्वन् । न । आप्नोति । किल्बिषम् ॥ २१ ॥




कौरवसेना
पांडवसेना
अर्जुन
श्रीकृष्ण

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष तृष्णातैं रहित है तथा जीतेहैं चित्त आत्मा जिसने तथा त्यागकरे हैं सर्वपरिग्रह जिसने सो पुरुष कर्तृत्वअभिमानतैं रहित शरीरकी स्थितिविषे उपयोगी भिक्षाअटनादि कर्मकूं करताहुआ किल्बिषकूं नहीं प्राप्त होवै है ॥ २१ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो पुरुष स्वर्गादिक फलकी तृष्णातैं रहित है। तथा जिस पुरुषनैं अंतःकरणरूप चित्तकूं तथा बाह्यइंद्रियसहित देहरूप आत्माकूं प्रत्याहार करिकै निग्रह कऱ्याहै जिसकारणतैं सो पुरुष जित इंद्रिय है तिस कारणतैं ही सो पुरुष तृष्णातैं रहित होणेतैं त्यक्तसर्वपरिग्रह है। इहां विषयभोगके साधनरूप जे धनादिक उपकरण हैं तिनोंका नाम परिग्रह है ते विषयभोगके उपकरणरूप सर्वपरिग्रह त्याग करे हैं जिसनैं ताका नाम त्यक्तसर्वपरिग्रह है। ऐसा निराशी तथा यतचित्तात्मा तथा त्यक्तसर्वपरिग्रह संन्यासी प्रारब्धकर्मके वशतैं शारीर कर्मकूं करता हुआ किल्बिषकूं प्राप्त होवै नहीं । इहां शरीरकी स्थितिमात्र है प्रयोजन जिनोंका ऐसे जे कंथाकौपीनादिकोंका ग्रहणरूप तथा भिक्षाअटनादिरूप कायिक वाचिक मानस कर्म हैं जे कर्म संन्यासीके प्रति शास्त्रनैं विधान करेहैं तिन कर्मोंका नाम शारीरकर्म हैं। ऐसे शारीरकर्मोंकूं कर्तृत्वअभिमानतैं रहित होइकै अन्यारोपित कर्तृत्वरूप करिकै करताहुआ सो संन्यासी धर्मअधर्मका फलभूत अनिष्ट संसाररूप किल्बिषकूं प्राप्त होवै नहीं। यद्यपि पापकूंही किल्बिष कहैं हैं तथापि पापकी न्याईं सकामपुण्यभी अनिष्टफलकाही हेतु होवैहै। यातैं सो पुण्यभी किल्बिषरूपही है इति। और किसी टीकाविषे (शारीरं) इस पदका यह अर्थ कऱ्या है शरीर करिकै जो कर्म सिद्ध होवैहै ता कर्मका नाम शारीर है इति। सो इस व्याख्यानविषे (केवलं कर्म कुर्वन्) इतने वचनमात्र कहणेतैं जो अर्थ सिद्ध होवैहै तिसतैं अधिक अर्थ ता शारीरपदके कहणेतैं सिद्ध होवै नहीं। यातैं इतरकर्मका अव्यावर्त्तक होणेतैं सो शारीरपद व्यर्थही होवैगा। और सो टीकाकार जो यह कहै वाचिक मानस कर्मकी व्यावृत्तिकरणेवासतै सो शारीर पद है यातैं सो शारीरपद व्यर्थ नहीं है इति । सो यह कहणाभी संभवता नहीं। काहेतैं (शारीरं केवलं कर्म) या वचनविषे स्थित जो कर्मपद है सो कर्मपद विहितकर्मका वाचक है अथवा विहित निषिद्ध साधारण कर्ममात्रका वाचक है तहां सो कर्मपद विहितकर्मका वाचक है यह प्रथम पक्ष जो अंगीकार करिये तौ

ता वचनका है यह अर्थ सिद्ध होवै है । शास्त्र विहित शारीरकर्मकूं करताहुआ सो विद्वान् पुरुष ता किल्बिषकूं प्राप्त होवै नहीं इति । तहां विहितकर्मविषे किल्बिषकी हेतुता कहांभी प्राप्त है नहीं । और प्राप्त अर्थकाही प्रतिषेध होवै है अप्राप्त अर्थका प्रतिषेध होवैनहीं । यातैं अप्राप्तअर्थका प्रतिषेधक होणेतैं सो वचन अनर्थक होवैगा और शास्त्रविहित शारीरकर्मकूं करताहुआ सो विद्वान् पुरुष किल्बिषकूं प्राप्त होवै नहीं । या कहणेतैं अर्थतैं यह सिद्ध होवै है शास्त्रविहित वाचिक मानस कर्मकूं करता हुआ सो पुरुष ता किल्बिषकूं प्राप्त होवैहै इति । सो यह वार्त्ता शास्त्रतैं विरुद्धहीहै । और सो कर्मपद विहित निषिद्ध साधारण कर्ममात्रका वाचक है यह दूसरा पक्ष जो अंगीकार करिये तौ यह अर्थ सिद्ध होवैगा । शास्त्रविहित तथा निषिद्ध शारीरकर्मकूं करताहुआ सो विद्वान् पुरुष ता किल्बिषकूं प्राप्त होवै नहीं इति । सो यह कहणाभी पूर्वकी न्याईं अत्यंत विरुद्धहीहै यातैं यह शारीरपदका व्याख्यान अत्यंत असंगतहै किंतु पूर्वउक्त व्याख्यानही समीचीनहै२१

तहां पूर्व श्लोकविषे त्याग कऱ्याहै सर्वपरिग्रह जिसनैं ऐसे संन्यासीकूं शरीरकी स्थितिमात्रविषे उपयोगी कर्मोंकी कर्त्तव्यता कथन करीथी । तहां अन्नवस्त्रादिकोंतैं विना शरीरकी स्थितिही संभवती नहीं यातैं याचना आदिक आपणे प्रयत्नकरिकै भी ता संन्यासीनैं तिन अन्नवस्त्रादिकोंका संपादन करणा याप्रकारके अर्थके प्राप्तहुए श्रीभगवान् ताकेविषे नियमकूं कथन करैहैं—

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वंद्वातीतो विमत्सरः ॥
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबद्ध्यते ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) यदृच्छालाभसंतुष्टः । द्वंद्वातीतः । विमत्सरः । समः । सिद्धौ । असिद्धौ । च । कृत्वा । अपि । न । निबद्ध्यते ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष यदृच्छालाभकरिकै संतुष्ट है तथा द्वंद्वधर्मोंतैं रहितहै तथा मत्सरतैं रहित है प्राप्तिविषे तथा अप्राप्तिविषे समान है सो पुरुष तिन भिक्षाटनादिक कर्मोंकूं करिकै भी नहीं बंधकूं प्राप्त होवैहै ॥ २२ ॥

भा० टी०—संन्यासीकेप्रति शास्त्रनैं विधानकऱ्या जो शरीरकी स्थितिमात्रविषे उपयोगी प्रयत्न है ता शास्त्रविहित प्रयत्नतैं भिन्न जितनेक याचना कृषि सेवा वाणिज्य आदिक प्रयत्न हैं जे प्रयत्न संन्यासीकेप्रति शास्त्रनैं निषेध करैहैं तिन

शास्त्रनिषिद्ध प्रयत्नोंकूं नहीं करणा याका नाम यदृच्छाहै । ता यदृच्छाकरिकै जो शास्त्रविहित अन्नवस्त्रादिक पदार्थोंका लाभहै ता लाभकरिकै जो संन्यासी संतुष्ट है अर्थात् तिसतैं अधिक पदार्थोंकी तृष्णातैं रहितहै ता संन्यासीका नाम यदृच्छालाभसंतुष्टहै । तहां शास्त्रविषे (भैक्ष्यं चरेत्) या वचनतैं संन्यासीकूं भिक्षाका विधान करिकै पश्चात् यह वचन कथन कऱ्याहै (अयाचितमसंक्लृप्तमुपपन्नं यदृच्छया ।) अर्थ यह– भिक्षाअटनकरणेवासतैं जो उद्यमहै ता उद्यमतैं पूर्वकालविषे ता संन्यासीके प्रति किसी श्रेष्ठगृहस्थनैं निमंत्रण कऱ्या जो भिक्षाअन्न है ता भिक्षाअन्नका नाम अयाचित है ता अयाचित भिक्षाअन्नकूं भी सो संन्यासी ग्रहण करै । और संकल्पतैं विनाही पंचगृहोंतैं अथवा सप्तगृहोंतैं माधुकरीवृत्तितैं प्राप्त भया जो अन्न है ता अन्नका नाम असंक्लृप्त है ता असंक्लृप्त अन्नकूंभी सो संन्यासी ग्रहण करै और आपणे प्रयत्नतैं विनाही ता संन्यासीके समीप भक्तजनोंनैं प्राप्तकरया जो पक्वअन्न है ता अन्नका नाम उपपन्न है ऐसे उपपन्न अन्नकूंभी सो संन्यासी ग्रहण करै इति । यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक (माधुकरमसंक्लृप्तं प्राक्प्रणीतमयाचितम् । तात्कालिकोपपन्नं च भैक्ष्यं पंचविधं स्मृतम् ॥) अर्थ यह– माधुकर १ प्राक्प्रणीत २ अयाचित ३ तात्कालिक ४ उपपन्न ५ यह पंचप्रकारका भिक्षाअन्न संन्यासीके वास्तै होवैहै । तहां मनके संकल्पका अविषयभूत जे तीन गृह हैं अथवा पंच गृह हैं अथवा सप्तगृह हैं तिन गृहोंतैं जो अन्न प्राप्त होवैहै ताका नाम माधुकर है १ और शयनके उत्थानतैं पूर्व किसीभक्तजननैं करी जा भिक्षाअन्नकी प्रार्थना है सो भिक्षाअन्न प्राक्प्रणीत कह्याजावै है २ और भिक्षाअटनके उद्यमतैं पूर्व किसी भक्तजननैं भिक्षाअन्नका निमंत्रण दिया सो भिक्षाअन्न अयाचित कह्या जावै है ३ और भिक्षाके अटनवासतै उद्यम कियेतैं अनंतर जो किसी भक्तजननैं भिक्षावासतै प्रार्थना करी सो भिक्षाअन्न तात्कालिक कह्याजावै है ४ और भिक्षाके समयविषे आपणे आसनऊपरिही कोई भक्तजन पक्वअन्न लेआया सो अन्न उपपन्न कह्याजावै है इति ५ इत्यादिक शास्त्रके वचन ता संन्यासीके प्रति भिक्षाअन्नके नियमका विधान करतेहुए तिन याचनादिक प्रयत्नोंकी निवृत्तिकूं कथन करैं हैं, यह वार्त्ता मनुभगवान्नेभी कथन करी है । तहां श्लोक-(न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्रांगविद्यया । नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥) अर्थ यह–यह संन्यासी उत्पातकरिकै तथा निमित्तकरिकै तथा नक्षत्र-

विद्याकरिकै तथा अंगविद्याकरिकै तथा अनुशासनकरिकै तथा वादकरिकै कदाचित्भी भिक्षाग्रहणकरणेकी इच्छा नहीं करै । इहां भूकंपादिकोंके शुभअशुभ फलका कथनकरणा याका नाम उत्पातहै। और चक्षुआदिकोंकी स्पंदरूपक्रियाके शुभअशुभ फलका कथनकरणा याका नाम निमित्तहै। और अश्विनीआदिक नक्षत्रोंके शुभअशुभ फलका कथनकरणा याका नाम नक्षत्रविद्या है। और हस्तादिकोंकी रेखाओंके शुभअशुभफलका कथनकरणा याका नाम अंगविद्या है। और यह नीतिमार्ग इसप्रकारका है, इसप्रकार तुमनैं इस नीतिमार्गविषे वर्त्तणा याप्रकारके उपदेशका नाम अनुशासन है । और शास्त्रके अर्थका कथनकरणा याका नाम वादहै । इत्यादिक उपायोंकरिकै संन्यासीने आपणे शरीरका निर्वाह कदाचित्भी नहीं करणा किंतु पूर्व उक्तरीतिसे भिक्षाअन्नसे शरीरका निर्वाह करणा इति । और (यतयो भिक्षार्थं ग्रामं प्रविशंति) इत्यादिक शास्त्रनैं विधान करया जो संन्यासीका भिक्षाके वास्तै प्रयत्न है सो शास्त्रविहित प्रयत्न तौ संन्यासीने अवश्यकरिकै करणा। ता शास्त्रविहित प्रयत्नकरिकै प्राप्तहोणेयोग्य अन्नवस्त्रादिक पदार्थभी शास्त्रकरिकै नियतही होवैंहैं। यातैं शास्त्रविहित प्रयत्नकरिकै जो संन्यासीकूं शास्त्रविहित अन्नवस्त्रादिक पदार्थोंकी प्राप्ति है सो यदृच्छालाभरूपही है यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करीहै । तहां श्लोक-(कौपीनयुगलं वासः कंथां शीतनिवारिणीम्। पादुके चापि गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम्॥) अर्थ यह-यह संन्यासी दो कौपीनोंकूं तथा कौपीनऊपरि बांधणेवासतै दो कटीवस्त्रोंकूं तथा शीतकी निवृत्तिकरणे वासतै कंबलादिरूप कंथाकूं तथा पादुकाकूं ग्रहण करै इसतैं अधिक द्रव्यादिक पदार्थोंका संग्रह नहीं करै इति । इसप्रकार दूसरेभी विधिनिषेधरूपवचन जानिलेणे । शंका-हे भगवन् ! तिन याचनादिक आपणे प्रयत्नतैं विना अन्नवस्त्रादिकोंके अप्राप्तहुए क्षुधा शीत उष्ण आदिकों करिकै पीडितहुआ सो संन्यासी किसप्रकार जीवैगा? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (द्वंद्वातीतः इति) हे अर्जुन ! क्षुधापिपासा शीतउष्ण वातवर्षा इत्यादिक सर्व द्वंद्वधर्मोंतैं सो संन्यासी रहित है। तात्पर्य यह-समाधिदशाविषे तौ ता ब्रह्मवेत्तासंन्यासीकूं ते द्वंद्वधर्म स्फुरणही होवैं नहीं । और ता समाधितैं व्युत्थानदशाविषे यद्यपि ते द्वंद्वधर्म स्फुरण होवैंहैं तथापि परमानंदस्वरूप अद्वितीय अकर्त्ता अभोक्ता आत्माके साक्षात्कारकरिकै तिन सर्व द्वंद्वधर्मोंका बाध होइ जावैंहै। यातैं तिन बाधितद्वंद्वधर्मोंकरिकै हन्यमानहुआ भी सो संन्यासी चित्तमें

क्षोभतैं रहितही होवै है इति। जिस कारणतैं सो ब्रह्मवेत्तासंन्यासी द्वंद्वधर्मोंतैं रहित है तिस कारणतैं सो ब्रह्मवेत्तासंन्यासी अन्यपुरुषकूं किसीवस्तुकी प्राप्तिविषे तथा आपणेकूं किसीवस्तुकी अप्राप्तिविषे विमत्सर है। इहां परकी उत्कृष्टताके न सहन-पूर्वक जो आपणी उत्कृष्टताकी इच्छा है ताका नाम मत्सर है ता मत्सरतैं जो रहितहोवै ताका नाम विमत्सर है इति। और जिस कारणतैं सो ब्रह्मवेत्तासंन्यासी अद्वितीय आत्माके साक्षात्कारकरिकै ता मत्सरतैं रहित है, तिस कारणतैं सो ब्रह्मवेत्तासंन्यासी ता यदृच्छालाभकी प्राप्तिविषे तथा अप्राप्तिविषे समान है अर्थात् ता यदृच्छालाभकी प्राप्तिविषे तौ हर्षतैं रहित है और अप्राप्तिविषे विषा-दतैं रहित है इति। ऐसा ब्रह्मवेत्तासंन्यासी आपणे अनुभवकरिकै तौ अकर्त्ताही है परंतु अन्यपुरुषोंनैं ताकेविषे आरोपणकऱ्या जो कर्तृत्व है ता आरोपितकर्तृत्व-करिकै सो ब्रह्मवेत्तासंन्यासी शरीरकी स्थितिमात्रविषे उपयोगी भिक्षाअटनादिक शास्त्रविहित कर्मोंकूं करताहुआभी बंधकूं प्राप्त होवै नहीं। जिस कारणतैं बंधके हेतुरूप अज्ञानसहित कर्मोंका पूर्वउक्त ज्ञानरूप अग्निकरिकै दाह होइगयाहै ॥ २२ ॥

हे भगवन् ! पूर्व आपनैं यह कह्याथा। त्यागकरेहैं सर्वपरिग्रह जिसनैं तथा यदृ-च्छालाभकरिकै संतोषकूं प्राप्तहुआहै चित्त जिसका ऐसा जो संन्यासी है ता संन्यासीके शरीरमात्रकी स्थितिविषे उपयोगी जो भिक्षाअटनादिककर्म हैं तिन भिक्षाअटनादिक कर्मोंकूं करताहुआभी सो ब्रह्मवेत्ता संन्यासी बंधकूं प्राप्त होवैनहीं इति। या आपके कहणेतैं यह अर्थ प्रतीत होवैहै कि, गृहस्थआश्रमविषे स्थित जे जनक अजात-शत्रुआदिक ब्रह्मवेत्ता हैं तिन जनकादिकोंके जे यज्ञादिककर्म हैं ते. यज्ञादिक कर्म तिन जनकादिकोंके अवश्यकरिकै बंधके हेतु होवैंगे। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए ता शंकाकी निवृत्ति करणेवासतै. श्रीभगवान् (त्यक्त्वा कर्मफलासंगम्) इत्यादिक वचनकरिकै कथन करेहुए अर्थकूं अब स्पष्टकरिकै कथन करैहैं—

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ॥
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) गतसंगस्य। मुक्तस्य। ज्ञानावस्थितचेतसः। यज्ञाय। आचरतः। कर्म। समग्रम्। प्रविलीयते ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! फलकी अभिलाषातैं रहित तथा अध्यासतैं रहित तथा ज्ञानविषे स्थित है चित्त जिसका तथा यज्ञादिकोंके संरक्षणवासतै आचरण

करताहुआ जो विद्वान् पुरुष है ता विद्वान् पुरुषके ते यज्ञादिककर्म फलसहित नाशकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ २३ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो पुरुष गतसंग है अर्थात् स्वर्गादिकफलोंकी अभिलाषातैं रहित है । तथा जो पुरुष मुक्त है अर्थात् मैं कर्त्ताहूं मैं भोक्ताहूं याप्रकारके कर्तृत्वभोक्तृत्व अध्यासतैं रहितहै तथा जो पुरुष ज्ञानावस्थितचेतस है अर्थात् तत्त्वमसिआदिक महावाक्यतैंजन्य निर्विकल्पकरूप जीवब्रह्मके अभेदज्ञानविषे अवस्थितहुआहै चित्त जिसका ऐसा जो स्थितप्रज्ञ पुरुष है । इहां (गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः) या तीन पदोंकरिकै ता विद्वान् पुरुषके तीनविशेषण कथन करे । तहां पूर्वपूर्व विशेषणकी सिद्धिविषे उत्तरउत्तर विशेषण हेतुरूप हैं ताकरिकै यह दो अनुमान सिद्ध होवैंहैं । सो विद्वान् पुरुष फलकी अभिलाषारूप संगतैं रहित है; कर्तृत्वभोक्तृत्व अध्यासतैं रहित होणेतैं जो पुरुष ता संगतैं रहित नहीं होवैहै सो पुरुष ता अध्यासतैं रहितभी नहीं होवैहै जैसे अज्ञानीपुरुष है इति । और सो विद्वान् पुरुष ता अध्यासतैं रहित है, स्थितप्रज्ञ होणेतैं जो पुरुष ता अध्यासतैं रहित नहीं होवैहै सो पुरुष स्थितप्रज्ञभी नहीं होवैहै जैसे अज्ञानीपुरुष है इति । ऐसा ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुष भी प्रारब्धकर्मके वशतैं वेदविहित यज्ञदानादिकोंके संरक्षण करणेवासतै अर्थात् ज्योतिष्टोमादिक यज्ञोंविषे श्रेष्ठाचारता करिकै लोकोंकी प्रवृत्ति करावणे वासतै अथवा (यज्ञो वै विष्णुः) इत्यादिक वचनोंविषे यज्ञशब्दकरिकै कथन करचा जो विष्णु है ता विष्णुकी प्रसन्नतावासतै यज्ञदानादिक कर्मोंकूं करैहै परंतु ता विद्वान् पुरुषके ते यज्ञदानादिक कर्म समग्र नाशकूं प्राप्त होवैं हैं । इहां अग्रनाम फलका है ता फलरूप अग्रके सहित जो विद्यमान होवै ताका नाम समग्र है । अर्थात् तत्त्वसाक्षात्कारके बलतैं अविद्यारूप कारणके निवृत्तहुए ता विद्वान् पुरुषके ते फलसहित कर्म नाशकूंही प्राप्त होवैं हैं । तहां श्रुति–(तद्यथेषीका तूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वे पाप्मनः प्रदूयंते इति)अर्थ यह–जैसे प्रज्वलितअग्निविषे प्राप्तहुआ इषीका तूल नाशकूं प्राप्तहोवैहैं तैसे इस ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुषके सर्व पुण्यपापकर्म ज्ञानरूप अग्निकरिकै नाशकूं प्राप्त होवैंहैं इति । इसी अर्थकूं श्रीभगवान् आपही (ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा) इस श्लोकविषे कथन करैंगे ॥ २३ ॥

हे भगवन् ! सो क्रियमाण कर्म फलकूं उत्पन्नकरिकै कैसे नाशकूं प्राप्तहोवैगा किंतु फलके दियेतैं विना सो कर्म नाश नहीं होवैगा । काहेतैं (नाभुक्तं क्षीयते कर्म

कल्पकोटिशतैरपि) अर्थ यह—फलके भोगतैंविना यह शुभ अशुभकर्म कल्पकोटिशत-करिकैभी नाशकूं प्राप्त होवैनहीं इति । इत्यादिक वचनोंविषे फलके भोगतैंविना तिन कर्मोंके नाशका निषेधही कऱ्याहै । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ब्रह्मसाक्षात्कारकरिकै ता कर्मके कारणका नाश होणेतैं सो कर्मभी नाशकूंही प्राप्त होवैहै याप्रकारके उत्तरकूं कथन करैहैं—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ॥
ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्म कर्मसमाधिना ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) ब्रह्म । अर्पणम् । ब्रह्म । हविः । ब्रह्माग्नौ । ब्रह्मणा । हुतम् । ब्रह्म । एव । तेन । गंतव्यम् । ब्रह्म । कर्मसमाधिना ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अर्पणभी ब्रह्म ही है तथा हविभी ब्रह्मही है तथा ब्रह्मरूप अग्निविषे ब्रह्मरूप कर्त्तानैं जो हवन कऱ्याहै सोहवनभी ब्रह्मही है तथा तिसं हवनकरिकै प्राप्तहोणेयोग्य स्वर्गादिकभी ब्रह्मरूपही है तथा कर्मविषे ब्रह्मबुद्धि-वाले पुरुषनैंभी परमानंदस्वरूप ब्रह्मही गंतव्य है ॥ २४ ॥

भा० टी०—कर्ता कर्म करण संप्रदान अधिकरण या पंचप्रकारके कारकों करिकै यज्ञादिरूप क्रिया सिद्ध होवैहै । तहां इंद्रादिक देवतावोंका उद्देशकरिकै जो घृतादिरूप द्रव्यका त्याग कऱ्याहै ताका नाम याग है सो यागही त्यागकरणेयो-ग्य घृतादिक द्रव्यका अग्निविषे प्रक्षेप करणेतैं होम इस नामकरिकै कह्या जावै है । तहां उद्दिश्यमान इंद्रादिकदेवता तौ संप्रदानकारकरूप हैं और त्यागकरणेयो-ग्य जे घृतादिक हैं ते घृतादिक हविष या शब्दकरिकै कहे जावैहैं । सो घृतादिक-रूप हविष तौ त्यागप्रक्षेपरूप धातु अर्थका साक्षात् कर्मरूप है और ताका फलभूत स्वर्गादिक व्यवहित भावनाका कर्मरूप है । और अग्निविषे ता घृतादिरूप हविषके प्रक्षेपविषे ता हविषके धारक होणेतैं जुहूआदिक करणरूप हैं । तथा इंद्रादिरूप अर्थकी प्रकाशता करिकै (इंद्राय स्वाहा) यह मंत्रादिकभी करणरूपही हैं । इस प्रकार कारक ज्ञापक या भेदकरिकै सो करण दोप्रकारका होवै है । इस प्रकार देवताका उद्देशकरिकै घृतादिक द्रव्यका त्याग तथा ता द्रव्यका अग्निविषे प्रक्षेप यह दोप्रकारकी क्रिया होवै है । तहां प्रथम त्यागरूप क्रियाविषे तौ यजमान पुरुषही कर्त्ता होवै है । और दूसरी प्रक्षेप-

रूप क्रियाविषे तौ यजमान पुरुषनैं दक्षिणा देकरिकै स्थापन कर्याहुआ अध्वर्यु कर्त्ता होवैहै और आहवनीयादिक अग्नि ता हविषके प्रक्षेपका अधिकरणरूप होवैहै । इसप्रकार देशकालादिकभी सर्वक्रियावोंकेप्रति साधारण अधिकरणरूप जानणे । इसप्रकार जितनेक क्रिया कारक व्यवहार हैं ते सर्व व्यवहार ब्रह्मके अज्ञानकरिकै कल्पित हैं । यातैं जैसे रज्जुके अज्ञानकरिकै कल्पित जे सर्प दंड माला आदिक हैं तिन कल्पित सर्पादिकोंका ता रज्जुरूप अधिष्ठानके ज्ञानकरिकै बाध होइजावैहै । तैसे अधिष्ठानब्रह्मके साक्षात्कारकरिकै ते क्रियाकारकादिक सब व्यवहार बाधकूं प्राप्त होवैहैं । यातैं ता विद्वान् पुरुषाविषे बाधितानुवृत्ति करिकै सो क्रियाकारकादिरूप व्यवहाराभास प्रतीत हुआभी दग्ध पटकी न्याईं किसी फलके उत्पन्नकरणेविषे समर्थ होवै नहीं । याप्रकारके अर्थकूं श्रीभगवान् इस श्लोककरिकै कथन करैहैं । तथा सा ब्रह्मदृष्टिही सर्व यज्ञरूप है याप्रकार ता ब्रह्मदृष्टिकी स्तुति करैहैं इति । अब सो प्रकार दिखावैं हैं । (अर्प्यते अनेन तदर्पणम्) अर्थ यह—जिसकरिकै घृतादिरूप हविष अग्निविषे अर्पण कर्याजावै है ताका नाम अर्पणहै या प्रकारकी करण व्युत्पत्तिकरिकै सो अर्पणपद जुहूआदिक करणोंका तथा मंत्रादिक करणोंका वाचक है। और (अर्प्यते अस्मै तदर्पणम्) अर्थ यह—सो घृतादिरूप हविष जिसके ताईं अर्पण करियेहै ताका नाम अर्पण है । याप्रकारकी व्युत्पत्तिकरिकै सो अर्पणपद इंद्रादिक देवतारूप संप्रदानका वाचक है। और (अर्प्यते अस्मिन् तदर्पणम्) अर्थ यह—सो घृतादिरूप हविष अर्पणकरिये जिसविषे ताका नाम अर्पण है। याप्रकारकी व्युत्पत्तिकरिकै सो अर्पणशब्द देशकालादिरूप अधिकरणका वाचक है । इस प्रकार एकही अर्पणपद करण संप्रदान अधिकरण या तीनकारकोंका वाचक है । यातैं जुहूमंत्रादिरूप करणकारक तथा देवतादिरूप संप्रदानकारक तथा देशकालादिरूप अधिकरणकारक यह सर्व ब्रह्मविषे कल्पित होणेतैं ब्रह्मरूपही हैं । तात्पर्य यह—जैसे रज्जुविषे कल्पित सर्पदंडादिक ता रज्जुरूप अधिष्ठानतैं भिन्नताकरिकै असतही होवैं हैं तैसे ते कारकभी अधिष्ठानब्रह्मतैं भिन्नताकरिकै असतही हैं इति । और यजमानकर्तृक त्यागरूप क्रियाका तथा अध्वर्युकर्तृक प्रक्षेपरूप क्रियाका साक्षात् कर्मरूप जो घृतादिक हविष है सो हविषरूप कर्म कारकभी ब्रह्मरूपही है । और जिस आहवनीयादिक अग्निविषे सो घृतादिरूप हविष पायाजावै है सो अग्निरूप अधिकरणकारकभी

ब्रह्मरूपहीहै। और जिस यजमाननैं देवताका उद्देश करिकै सो घृतादिरूप हविष त्याग करीताहै तथा जिस अध्वर्युनै सो घृतादिरूप हविष अग्निविषे प्रक्षेप करीताहै, सो यजमानरूप कर्त्ताकारक तथा अध्वर्युरूप कर्त्ताकारक दोनों ब्रह्मरूपही हैं। और (हुतम्) याशब्दकरिकै कथनकऱ्या जो त्यागक्रियारूप तथा प्रक्षेपक्रियारूप हवन है सो क्रियारूप हवनभी ब्रह्मरूपही है। और तिस हवनरूप क्रियाकरिकै प्राप्त होणेयोग्य जो स्वर्गादिरूप व्यवहितकर्म है, सो स्वर्गादिरूप कर्मकारकभी ब्रह्मरूपही है और इसप्रकार ता कर्मविषे ब्रह्मदृष्टिरूप समाधि है जिसकी ताका नाम कर्मसमाधिहै ऐसा जो कर्मोंका अनुष्ठान करणेहारा ब्रह्मवेत्ता पुरुष है ता ब्रह्मवेत्ता पुरुषनैंभी परमानंदस्वरूप अद्वितीय ब्रह्मही गंतव्य है । इहां (कर्मसमाधिना) या वचनतैं उत्तर (ब्रह्म गंतव्यं) या दोनों पदोंका पूर्ववाक्यतैं अनुषंग करणा इति। अथवा (अर्प्यते अस्मै फलाय तदर्पणम्)। अर्थ यह–जिस फलकी प्राप्तिवासतै सो हविष अर्पण करिये है ताका नाम अर्पण है। याप्रकारकी व्युत्पत्ति करिकै ता अर्पणपदकरिकैही तिन स्वर्गादिक फलोंकाभी ग्रहण करणा (गंतव्यं) या पदकरिकै तिन स्वर्गादिकोंका ग्रहण करणा नहीं। यातैं (ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना) यह श्लोकका उत्तरार्द्ध ज्ञानके फल कथन करणेवासतैही है। यहही व्याख्यान समीचीन है। तहां इस द्वितीय व्याख्यानविषे (ब्रह्मकर्मसमाधिना) यह एकही समस्त पद है। अथवा (ब्रह्मैव तेन) या वचनविषे स्थित जो ब्रह्म यह पद है ता ब्रह्मपदका तौ पूर्व (हुतम्) या पदके साथि अन्वय करणा। और (ब्रह्म कर्मसमाधिना) या वचनविषे स्थित जो ब्रह्म यह पद है ता ब्रह्मपदका तौ (गंतव्यं) या पदके साथि अन्वय करणा। यातैं (ब्रह्म कर्मसमाधिना) यह दोनों पद भिन्नभिन्नहीहैं। इस द्वितीय व्याख्यानविषे पूर्वव्याख्यानकी न्याई (ब्रह्म गतव्यं) या दोनोंपदोंके अनुषंगरूप क्लेशकी प्राप्ति होवै नहीं इति। इहां (ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्म कर्मसमाधिना) या वचनकरिकै श्रीभगवान् ब्रह्मवेत्ता पुरुषकूं जो ब्रह्मकी प्राप्ति कथन करीहै सो मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकार अभेदरूप करिकै ब्रह्मकी प्राप्ति कथन करीहै। कोई स्वर्गादिकोंकी न्याईं भिन्नरूप करिकै अथवा स्वामीसेवक भावकरिकै सा प्राप्ति कथन करी नहीं। तहां श्रुति–(ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवतीति) अर्थ यह–ब्रह्मकूं जानणेहारा पुरुष ब्रह्मरूपही होवैहै इति। इसी कारणतैं सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष स्वर्गादिक तुच्छ फलोंकूं प्राप्त होवै नहीं। जिस कारणतैं ता ब्रह्मवेत्ता

पुरुषके ब्रह्मविद्या करिकै अविद्याकृत सर्व कारकव्यवहार नाशकूं प्राप्त हुए हैं इति। यह वार्त्ता वार्तिक ग्रंथके कर्त्ता सुरेश्वराचार्यनैंभी कथन करी है। तहां श्लोक- (कारकव्यवहारे हि शुद्धं वस्तु न वीक्ष्यते। शुद्धे वस्तुनि सिद्धे च कारकव्यापृतिः कुतः॥) अर्थ यह-कर्त्ताकर्मादिक कारकोंके व्यवहार हुए आत्मारूप शुद्धवस्तु देख्या जावै नहीं और ता शुद्धवस्तुके साक्षात्कार हुए तिन कारकोंका व्यापार होवै नहीं इति। और किसी टीकाकारनैं तौ इस श्लोकका यह व्याख्यान कर्‍या है जैसे नाम वाक् मन इत्यादिकोंके स्वरूपका न बाध करिकै तिन नामादिकोंविषे श्रुतिनैं ब्रह्मदृष्टि-का विधान कर्‍या है तैसे इहां श्रीभगवाननैंभी अर्पणादिक कारकोंके स्वरूपका न बाध करिकै तिन अर्पणादिक कारकोंविषे ब्रह्मदृष्टिका विधान कर्‍या है इति। सो इस व्याख्यानकूं श्रीभाष्यकारोंनैं तात्पर्यके निश्चयके उपक्रमादिकोंके विरोधकरिकै तथा ब्रह्मविद्याके प्रकरणविषे संपत् उपासनामात्रकी प्राप्तिही नहीं है इत्यादिक युक्तियोंकरिकै विस्तारतैं खंडन कर्‍या है॥ २४॥

तहां पूर्व (ब्रह्मार्पणं) या मंत्ररूप श्लोकविषे सर्वत्र ब्रह्मदृष्टिरूप सम्यक्दर्शनकी यज्ञरूप करिकै स्तुति कथन करी। अब तिसी सम्यक्दर्शनकी पुनः स्तुति करणे वासतै श्रीभगवान् दूसरे यज्ञोंका भी कथन करैं हैं-

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते॥
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति॥ २५॥

(पदच्छेदः) दैवम्। एव। अपरे। यज्ञम्। योगिनः। पर्युपासते। ब्रह्माग्नौ। अपरे। यज्ञम्। यज्ञेन। एव। उपजुह्वति॥ २५॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! दूसरे कर्मीपुरुष तौ दैव यज्ञकूं ही सर्वदा करैहैं और दूसरे तत्त्ववेत्ता पुरुष तौ ब्रह्मरूप अग्निविषे आत्माकूं आत्मारूप करिकै ही होम करैहैं॥ २५॥

भा॰ टी॰-हे अर्जुन! इंद्र अग्नि वायुआदिक देवता जिस कर्मकरिकै संतुष्ट करे जावैं हैं ताका नाम दैव है। ऐसा जो दर्श, पौर्णमास, ज्योतिष्टोम, आदिक यज्ञ हैं ता दैवयज्ञकूंही दूसरे कर्मीपुरुष सर्वदा करैं हैं। ते कर्मीपुरुष ज्ञानयज्ञकूं कदाचित्भी करते नहीं इति। इसप्रकार कर्मयज्ञकूं कथन करिकै अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ता कर्मयज्ञका फलभूत जो ज्ञानयज्ञ है ता ज्ञानयज्ञकूं श्रीभगवान् कथन

करैहैं (ब्रह्माग्नौ इति) हे अर्जुन ! सत्य ज्ञान अनंत आनंदरूप तथा सर्व विशेषोंतैं रहित ऐसा जो तत्पदार्थरूप ब्रह्म है सो ब्रह्मही ज्ञातहुआ सर्व कर्मोंका दाहक होणेतैं अग्निकी न्यांई अग्निरूप है ऐसे तत्पदार्थ ब्रह्मरूप अग्निविषे दूसरे तत्ववेत्ता संन्यासी त्वंपदार्थरूप प्रत्यक् आत्माकूं अभिन्नरूपकरिकै होम करैहैं। अर्थात् तत्त्वंपदार्थ-रूप प्रत्यक्आत्माकूं ता ब्रह्मरूप करिकै देखैं हैं। इहां (यज्ञेनैव) या वचनविषे स्थित जो एव यह शब्द है सो एवकार जीवब्रह्मके भेदकी निवृत्ति करणेवासतैहै। इहां जीवब्रह्मके अभेदज्ञानकूं यज्ञरूपतैं संपादन करिकै (श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञा-नयज्ञः) इत्यादिक वचनोंकरिकै ता ज्ञानयज्ञकी स्तुति करणेवासतै ता ज्ञानयज्ञके साधनरूप यज्ञोंके मध्यविषे श्रीभगवान्नैं सो ज्ञानयज्ञ कथन कऱ्या है ॥ २५ ॥

इतने कहणे करिकै श्रीभगवान्नैं मुख्ययज्ञ तथा गौणयज्ञ यह दो यज्ञ कथन करे। अब वेदविषे जितनेक श्रेयके साधन कथन करे हैं तिन सर्व साधनोंकूं श्रीभगवान् यज्ञरूपकरिकै प्रतिपादन करैं हैं-

श्रोत्रादीनींद्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ॥
शब्दादीन्विषयानन्ये इंद्रियाग्निषु जुह्वति ॥ २६ ॥

(पदच्छेदः) श्रोत्रादीनि । इंद्रियाणि । अन्ये । संयमाग्निषु । जुह्वति । शब्दादीन् । विषयान् । अन्ये । इंद्रियाग्निषु । जुह्वति ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! दूसरे पुरुष तौ श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं संयमरूप अग्नियों-विषे होम करैं हैं तथा कई अन्यपुरुष तौ शब्दादिक विषयोंकूं श्रोत्रादिक इंद्रियरूप अग्नियोंविषे होम करैहैं ॥ २६ ॥

भ ० टी०-हे अर्जुन ! यम, नियम, आसन, प्राणायाम या च्यारोंकूं सिद्ध करिकै केवल प्रत्याहारपरायण जे केईक अधिकारी पुरुष हैं ते अधिकारी पुरुष तौ श्रोत्रादिक पंचज्ञानइंद्रियोंकूं आपणे आपणे शब्दादिक विषयोंतैं निवृत्तकरिकै संयमरूप अग्निविषे होम करैहैं। इहां (त्रयमेकत्र संयमः) इस पतंजलि भगवान्के सूत्रविषे एकवस्तुकूं विषय करणेहारे धारणा ध्यान समाधि या तीनोंकूं संयम या शब्दकरिकै कथन कऱ्या है। तहां हृदयकमलादिक स्थानोंविषे चिरकालपर्यंत जो मनका स्थापन करणा है ताका नाम धारणा है। इस प्रकार एकस्थान-विषे धारणकऱ्या जो चित्त है ता चित्तका उत्तर उत्तर विजातीय वृत्तियोंकृत

व्यवधानसहित जो भगवत्‌आकार सजातीयवृत्तियोंका प्रवाह है ताका नाम ध्यान है। और ता चित्तका विजातीय वृत्तियोंके व्यवधानतैं रहित केवल ता भगवत् आकार सजातीय वृत्तियोंका जो प्रवाह है ताका नाम समाधि है। सो समाधिभी चित्तकी भूमिकाओंके भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां एक तौ संप्रज्ञातनामा समाधि होवै है और दूसरी असंप्रज्ञातनामा समाधि होवै है। तहां क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त एकाग्र, विरुद्ध, यह पंचभूमिका चित्तकी होवैं हैं। भूमिका नाम अवस्थाविशेषका है। तहां रागद्वेषादिकोंके वशतैं विषयोंविषे अत्यन्त अभिनिवेशवाला जो चित्त है सो चित्त क्षिप्त कह्या जावै है। और निद्रा तंद्रादिकों करिकै ग्रस्त हुआ जो चित्त है सो चित्त मूढ कह्याजावै है। और सर्वकालविषे विषयोंविषे आसक्तहुआभी जो चित्त कदाचित् दैवयोगतैं ध्याननिष्ठभी होवै है सो चित्त ता क्षिप्ततैं श्रेष्ठ होणेतैं विक्षिप्त कह्या जावै है। तहां क्षिप्तचित्तविषे तथा मूढचित्तविषे ता समाधि होणेकी शंकाही नहीं होवै है और विक्षिप्त चित्तविषे तौ कादाचित्कसमाधि होवैभी है। परंतु विक्षेपकी प्रधानतातैं सो समाधि योगपक्षविषे वर्त्तता नहीं। किंतु जैसे महान् पवनकरिकै विक्षिप्तहुआ दीपक आपेही नाश होइजावै है तैसे सो कादाचित्क समाधिभी आपेही नाशकूं प्राप्त होवैहै। और ता चित्तविषे एकवस्तुकूं विषय करणेहारी धारावाहिक वृत्तियोंका जो सामर्थ्य है ताका नाम एकाग्र है। तहां सत्त्वगुणकी वृद्धिकरिकै तमोगुणकृत तंद्रादिरूप लयके अभाव हुए आत्माकारवृत्ति होवैहै, सा आत्माकारवृत्ति रजोगुणकृत चंचलतारूप विक्षेपके अभावतैं एक वस्तुविषयकही होवैहै। इस प्रकार शुद्ध सत्त्वगुणके हुएही सो चित्त एकाग्र होवै है ता एकाग्रचित्तविषेही सो संप्रज्ञात-नामा समाधि होवै है ता संप्रज्ञातनामा समाधिविषे सा ध्येयाकार वृत्तिभी प्रतीत होवै है और जिस कालविषे सा ध्येयाकार वृत्तिभी निरोधकूं प्राप्त होवै है तिस कालविषे सो चित्त निरुद्ध कह्या जावै है। ता निरु-द्धचित्तविषे असंप्रज्ञात नामा समाधि होवै है। यहही असंप्रज्ञात समाधि सर्व सुखोंतैं विरक्त योगी पुरुषका दृढभूमिकारूप न हुआ धर्ममेघ या नाम करिकै कह्या जावै है इति। इस प्रकार अनेकरूप करिकै तिन धारणादिक संयमोंका भेद है। यातैं (संयमाग्निषु) या वचनविषे श्रीभगवाननैं बहुवचन कथन करयाहै। ऐसे संयमरूप अग्नियोंविषे केईक अधिकारीपुरुष श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं

होम करैं हैं। अर्थात् धारणा ध्यान समाधि या तीनोंकी सिद्धिवासतै श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं आपणे विषयोंतैं प्रत्याहरण करैं हैं। तहां आपणे आपणे विषयोंतैं निग्रहकूं प्राप्तहुए ते इंद्रिय चित्तरूपही होवैं हैं। इसीकूंही शास्त्रविषे प्रत्याहार या नामकरिकै कथन करैंहैं। तिस प्रत्याहारतैं अनंतर विक्षेपके अभावतैं सो चित्त तिन धारणादिकोंकूं संपादन करै है। इतने कहणेकारिकै प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि यह च्यारि अंग योगके कथन करे। ताकरिकै समाधिअवस्थाविषे सर्व इंद्रियजन्य वृत्तियोंके निरोधकूं यज्ञरूप करिकै वर्णन कऱ्या। अब ता समाधितैं व्युत्थानदशाविषे रागद्वेषतैं रहित होइकै जो शास्त्रविहित विषयोंका भोगभी भोगेहै सो एक यज्ञरूपहीहै इस अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करै हैं (शब्दादीन्विषयानन्ये इंद्रियाग्निषु जुह्वतीति) हे अर्जुन ! ता समाधितैं व्युत्थानकूं प्राप्तहुए जे योगी पुरुष हैं ते योगी पुरुष रागद्वेषतैं रहित होइकै ता व्युत्थानकालविषे श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै शास्त्रतैं अविरुद्ध शब्दादिक विषयोंकूं ग्रहण करै हैं यहही तिन शब्दादिक विषयोंका श्रोत्रादिक इंद्रियोंविषे होम है ॥ २६ ॥

तहां इस पूर्वश्लोकविषे पातंजलमतके अनुसार करिकै लयपूर्वक समाधिरूप तथा ता समाधितैं व्युत्थानदशारूप या दोनों यज्ञोंकूं कथन करया। अब इस श्लोकविषे ब्रह्मवादी पुरुषोंके मतके अनुसार करिकै सर्वसाधनोंका फलरूप तथा कारणके नाशकरिकै व्युत्थानतैं रहित ऐसा जो निरोधपूर्वक समाधि है ता समाधिरूप यज्ञांतरकूं श्रीभगवान् कथन करैंहैं—

सर्वाणींद्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ॥
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

(पदच्छेदः) सर्वाणि। इंद्रियकर्माणि। प्राणकर्माणि। च। अपरे। आत्मसंयमयोगाग्नौ। जुह्वति। ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! दूसरे केईक अधिकारी तौ सर्व इंद्रियोंके कर्मोंकूं तथा प्राणोंके सर्वकर्मोंकूं ज्ञानकरिकै दीपित आत्मसंयमयोगरूप अग्निविषे होम करैंहैं ॥ २७ ॥

भा० टी०—तहां समाधि दोप्रकारका होवैहै एक तौ लयपूर्वक समाधि होवैहै और दूसरा बाधपूर्वक समाधि होवैहै। तहां (तदनन्यत्वमारंभणशब्दादिभ्यः) इस सूत्रविषे श्रीव्यासभगवान्नैं करणतैं भिन्न करिकै कार्यका असत्त्व

कथन कऱ्याहै । यातैं पंचीकृत पंचभूतोंका कार्य जो व्यष्टिरूपहै सो व्यष्टिरूप समष्टिरूप विराट्का कार्य होणेतैं ता विराट्रूप कारणतैं भिन्न नहीं है और सो समष्टिरूप पंचीकृत पंचभूतात्मक कार्यभी अपंचीकृत पंचमहाभूतोंका कार्यरूप होणेतैं तिन अपंचीकृत पंचमहाभूतरूप कारणतैं भिन्न नहीं है और तिन पंचभूतोंविषे भी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध या पंचगुणोंवाली जा पृथिवी है सा पृथिवी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, या च्यारिगुणोंवाले जलका कार्य होणेतैं ता जलरूप कारणतैं भिन्न नहीं है और सो च्यारिगुणोंवाला जलभी शब्द, स्पर्श, रूप, या तीनगुणोंवाले तेजका कार्य होणेतैं ता तेजरूप कारणतैं भिन्न नहीं है और सो तीनगुणोंवाला तेजभी शब्द स्पर्श या दो गुणोंवाले वायुका कार्य होणेतैं ता वायुरूप कारणतैं भिन्न नहीं है और सो दोगुणोंवाला वायुभी एक शब्दगुणवाले आकाशका कार्य होणेतैं ता आकाशरूप कारणतैं भिन्न नहीं है और सो शब्दगुणवाला आकाशभी (बहुस्यां) या श्रुतिनैं कथन कऱ्या जो परमेश्वरका संकल्परूप अहंकार है ता अहंकारका कार्य होणेतैं ता अहंकाररूप कारणतैं भिन्न नहीं है और सो संकल्परूप अहंकारभी (तदैक्षत) या श्रुतिकरिकै कथन कऱ्या जो माया ईक्षणरूप महत्तत्त्व है ता महत्तत्त्वका कार्य होणेतैं भिन्न नहीं है और सो ईक्षणरूप महत्तत्त्वभी मायाका परिणाम होणेतैं ता मायारूप कारणतैं भिन्न नहीं है और सो मायारूप कारणभी जडरूप होणेतैं चैतन्यरूप ब्रह्मविषे अध्यस्त है । यातैं ता चैतन्यब्रह्मतैं सो मायारूप कारण भिन्न नहीं है । इस प्रकार निरंतर चिंतनकरिकै कार्यकारणरूप सर्व प्रपंचके विद्यमान हुएभी जो चैतन्य ब्रह्ममात्र विषयक समाधि है सो समाधि लयपूर्वकसमाधि कह्याजावै है । ता लयपूर्वक समाधिविषे ता अधिकारीपुरुषकूं तत्त्वमसि आदिक वेदांत महावाक्योंके अर्थका ज्ञान है नहीं यातैं कार्यसहित अविद्याका नाश हुआ नहीं । किंतु सा अविद्या ता लयचिंतनकालविषे विद्यमानही है । ता अविद्याके विद्यामान हुए ता अविद्यारूप कारणतैं पुनः संसाररूप कार्यकी उत्पत्ति होवैहै । यातैं यह लयपूर्वक समाधि सुषुप्तिकी न्याईं सबीज समाधिही है मुख्य निर्बीज समाधि है नहीं । और जिसकालविषे तत्त्वमसि आदिक महावाक्यजन्य साक्षात्कारकरिकै ता अविद्याकी निवृत्ति होवैहै तथा उत्पत्तिक्रमतैं ता अविद्याके महत्तत्त्वादिक सर्वकार्योंकी निवृत्ति होवैहै और तत्त्वसाक्षात्कारकरिकै एकवार नाशकूं प्राप्तहुई सा अनादिअविद्या पुनः कदाचित

भी उत्थानकूं प्राप्त होवै नहीं । तथा ता अविद्याका कार्यभी पुनः उत्थानकूं प्राप्त होवैनहीं । तिस कालविषे ता विद्वान् पुरुषकूं मुख्य निर्बीज बाधपूर्वक समाधि होवैहै । सो बाधपूर्वक समाधिही इस श्लोककारिकै श्रीभगवान्नैं कथन करीताहै सो प्रकार दिखावैंहैं । तहां अंतर बाह्य या भेदकरिकै इंद्रिय दोप्रकारका होवैहै। तहां श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन, घ्राण यह पंचज्ञानइन्द्रिय तथा वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ, पायु यह पंच कर्मइंद्रिय यह दश इन्द्रिय तौ बाह्यइंद्रिय कहेजावैं हैं और मन बुद्धि यह दोनों अंतर इंद्रिय कहेजावैं हैं । तिन बाह्य अंतर सर्व इंद्रियोंके जितनेक स्थूलरूप तथा संस्काररूप कर्म हैं तहां शब्दका श्रवण श्रोत्रइंद्रियका कर्म है। और स्पर्शका ग्रहण त्वक् इंद्रियका कर्म है और रूपका दर्शन चक्षुइंद्रियका कर्म है और रसका ग्रहण रसनइंद्रियका कर्म है और गंधका ग्रहण घ्राणइंद्रियका कर्म है और वचनका उच्चारण वाक् इंद्रियका कर्म है और वस्तुका ग्रहण पाणिइंद्रियका कर्म है और गमनआगमन पाद इंद्रियका कर्म है और विषयानंद उपस्थइंद्रियका कर्म है और मलका परित्याग पायु इंद्रियका कर्म है और संकल्प मनका कर्म है और निश्चय बुद्धिका कर्म है इति । इसप्रकार प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, या पंचप्राणोंके जितनेक कर्म हैं तहां बहिर्गमन प्राणका कर्म है और अधोगमन अपानका कर्म है और हस्तपादादिक अंगोंका आकुंचन प्रसारण आदिक व्यानका कर्म है और भोजन करेहुए अन्न जलका समान करणा समानका कर्म है और ऊर्ध्वगमन उदानका कर्म है इतने करिकै पंच ज्ञानइंद्रिय पंचकर्मइंद्रिय पंच प्राण, दोनों मन बुद्धि या सप्तदशतत्त्वोंका समुदायरूप लिंगशरीर कथन कऱ्या। सो सूक्ष्मशरीरभी इहां सूक्ष्मभूतोंका समष्टिरूप हिरण्यगर्भही विवक्षित है। इसी अर्थके जनावणेवासतै श्रीभगवान्नैं तिन इंद्रियोंके कर्मोंका तथा प्राणोंके कर्मोंका (सर्वाणि) यह विशेषण कथन कऱ्या है । ऐसे सप्तदश तत्त्वरूप लिंगशरीरकूं अन्य केई विद्वान् पुरुष आत्मसंयमयोगाग्निविषे होम करैंहैं। तहां आत्माकूं विषय करणेहारा जो धारणा ध्यान संप्रज्ञात समाधिरूप संयम है ता संयमके परिपाकहुएतैं सिद्धभया जो निरोधसमाधिरूप योग है ताका नाम आत्मसंयमयोग है। इसी निरोधसमाधिरूप योगकूं पतंजलिभगवान्भी योगसूत्रोंविषे कथन करता भया है । तहां सूत्र–(व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो-निरोधपरिणामः इति) अर्थ यह–क्षिप्त मूढ विक्षिप्त या तीन भूमिकावोंका नाम

व्युत्थान है । ता व्युत्थानके संस्कार समाधिके विरोधी होवैं हैं, ते विरोधी संस्कार तौ योगीपुरुषके प्रयत्नकरिकै दिनदिनविषे तथा क्षणक्षणविषे अभिभवकूं प्राप्त होवैं हैं और तिन व्युत्थान संस्कारोंके विरोधीरूप जे निरोधके संस्कार हैं ते निरोधके संस्कार दिनदिनविषे तथा क्षणक्षणविषे प्रादुर्भावकूं प्राप्त होवैंहैं । तिसतैं अनंतर निरोधमात्र क्षणके साथि जो चित्तका अन्वय है सो निरोधपरिणाम कह्या जावैहै इति । इसी निरोधसमाधिके फलकूंभी सो पतंजलिभगवान् योगसूत्रोंविषे कथन करता भया है। तहां सूत्र—(तस्य प्रशांतवाहिता संस्कारादिति) अर्थ यह—ता निरोधपरिणामतैं अनंतर निरोधसंस्कारोंकी दृढता करिकै तिस चित्तकूं प्रशांतवाहिता होवैहै अर्थात् तमोगुण रजोगुण या दोनों गुणोंके नाश हुएतैं अनंतर लयविशेष दोषतैं रहितपणे करिकै शुद्ध सत्त्वरूप जो चित्त है सो चित्त प्रशांत कह्या जावैहै और पूर्वपूर्व ता प्रशमके संस्कारोंकी बाहुल्यताकरिकै जो तिसतैंभी अधिकता है ताकूं प्रशांतवाहिता कहैं हैं इति । ता निरोधसमाधिके कारणकूंभी सो पतंजलिभगवान् योगसूत्रोंविषे कथन करताभया है । तहां सूत्र—(विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वसंस्कारशेषोऽन्यः) इति । अर्थ यह—वृत्तिकी उपरामतारूप जो विराम है ता विरामका जो प्रत्ययहै क्या कारण है अर्थात् ता वृत्तिकी उपरामतावासतै जो पुरुषका प्रयत्न है ता पुरुषप्रयत्नका जो पुनःपुनः संपादनरूप अभ्यास है ता अभ्यासकरिकै जन्य संप्रज्ञातसमाधितैं विलक्षण असंप्रज्ञातसमाधि होवै है इति । इसप्रकारका निरोधसमाधिरूप जो आत्मसंयमयोग है सोईही अग्निरूप है । कैसा है सो आत्मसंयमयोगरूप अग्नि ज्ञानकरिकै दीपित है अर्थात् वेदांतवाक्य करिकै जन्य जो ब्रह्मात्मऐक्यसाक्षात्कार है ता साक्षात्कारकरिकै कार्यसहित अविद्याके नाशद्वारा अत्यंत उज्ज्वलित है ऐसे ज्ञानकरिकै दीपित आत्मसंयमयोगाग्निरूप बाधपूर्वक समाधिविषे अन्य केई विद्वान् पुरुष समष्टिलिंगशरीरकूं होम करै हैं अर्थात् ता समाधिविषे ता लिंगशरीरकूं प्रविलापन करैंहैं इति । इहां (सर्वाणि आत्मज्ञानदीपिते) या तीन विशेषणोंके कहणेकरिकै तथा (अग्नौ) या एकवचनके कहणे करिकै पूर्व कथन करेहुए यज्ञतैं इस यज्ञविषे विलक्षणता सूचन करी यातैं इहां पुनरुक्ति दोषकी प्राप्ति होवै नहीं ॥ २७ ॥

तहां पूर्व (दैवमेवापरे यज्ञम) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान्नैं पंचयज्ञोंकूं कथनकऱ्या अब इस एकही श्लोककरिकै श्रीभगवान् षट्यज्ञोंकूं कथन करैंहैं—

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ॥
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ २८ ॥

(पदच्छेदः) द्रव्ययज्ञाः । तपोयज्ञाः । योगयज्ञाः । तथा । अपरे । स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः । च । यतयः । संशितव्रताः ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! केईक अधिकारीपुरुष द्रव्यका त्यागरूप यज्ञकूं करैंहैं तथा केईक अधिकारीपुरुष तपरूप यज्ञकूं करै हैं तथा केईक अधिकारी पुरुष योगरूप यज्ञकूं करैंहैं तथा केईक अधिकारीपुरुष वेदाभ्यासरूप यज्ञकूं तथा ज्ञानरूप यज्ञकूं करैंहैं तथा केईक यत्नशीलपुरुष अत्यंतदृढव्रतरूप यज्ञकूं करैं हैं ॥ २८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! शास्त्रकी विधिप्रमाण जो द्रव्यका त्याग है सो द्रव्यका त्यागही है यज्ञरूप जिन्होंका ते अधिकारीपुरुष द्रव्ययज्ञाः कहे जावैहैं अर्थात् पूर्त्त दत्त नामा स्मार्त्तकर्मकूं करणेहारे पुरुष द्रव्ययज्ञाः कहेजावैं हैं । तहां पूर्त्त दत्त या-दोनों कर्मोंका स्वरूप स्मृतिविषे यह कह्याहै । तहां श्लोक–(वापीकूपतडागादि देवता-यतनानि च । अन्नप्रदानमारामः पूर्त्तमित्यभिधीयते ॥ शरणागतसंत्राणं भूतानां चाप्य-हिंसनम् । बहिर्वेदि च यद्दानं दत्तमित्यभिधीयते ।) अर्थ यह–बावडी बनावणी, तथा कूप बनावणा, तथा तलाव बनावणा, तथा विष्णु शिवादिक देवतावोंके मंदिर बनावणे, तथा क्षुधातुर प्राणियोंकूं अन्नप्रदान करणा, तथा लोकोंके निवा-सकरणेवासतै धर्मशाला, बगीचा बनावणा इत्यादिक सर्वकर्म पूर्त्त या नामकरिकै कहेजावैं हैं इति । और शरणागत प्राणियोंकी रक्षा करणी तथा किसीभी भूत-प्राणीकी हिंसा नहीं करणी तथा वेदीतैं बाह्य जो दान है इत्यादिक सर्वकर्म दत्त या नामकरिकै कहेजावैं हैं इति । इस प्रकारके पूर्त्तदत्तनामा स्मार्त्तकर्मोंकूं करणेहारे पुरुष द्रव्ययज्ञाः कहेजावैंहैं । और इष्टनामा जो श्रौतकर्म है ता श्रौतकर्मकूं तौ (दैवमेवापरे यज्ञम्) या वचनकरिकै पूर्व कथन करि आये हैं और जो दान वेदीके अंतर दिया जावै है सो दानभी तिस श्रौतकर्मके अंतर्भूतही है इति । और कृच्छ्रचां-द्रायणादिरूप जो तप है सो तपही है यज्ञरूप जिन्होंका ते अधिकारीपुरुष तपो-यज्ञाः कहेजावैं हैं अर्थात् केईक तपस्वीपुरुष कृच्छ्रचांद्रायणादिक तपरूप यज्ञकूंही करैं हैं । और चित्तकी वृत्तिका निरोधरूप जो अष्टांगयोग है सो अष्टांगयोगही है यज्ञरूप जिन्होंका ते अधिकारीपुरुष योगयज्ञाः कहे जावैं हैं । अर्थात् केईक

अधिकारी पुरुष अष्टांगयोगरूप यज्ञकूंही करै हैं। तहां यम १, नियम २, आसन ३, प्राणायाम ४, प्रत्याहार ५, धारणा ६, ध्यान ७, समाधि ८ यह योगके अष्ट अंग कहेजावैं हैं। तहां प्रत्याहारका स्वरूप तौ (श्रोत्रादीनींद्रियाण्यन्ये) इस वचनविषे पूर्व कथन करि आये हैं और धारणा ध्यान समाधि या तीनोंका स्वरूप तौ (आत्मसंयमयोगाग्नौ) इस वचनविषे पूर्व कथन करि आये हैं और प्राणायामका स्वरूप तौ (अपाने जुह्वति प्राणम्) इस अगले श्लोकविषे कथन करैंगे। यातैं अब यम, नियम, आसन या तीनोंका स्वरूप कथन करै हैं तहां अहिंसा १, सत्य २, अस्तेय ३, ब्रह्मचर्य ४, अपरिग्रह ५, यह पंचप्रकारका यम होवै है। तथा शौच १, संतोष २, तप ३, स्वाध्याय ४, ईश्वरप्रणिधान ५, यह पंच प्रकारका नियम होवै है। और आसन तौ पद्मक, स्वस्तिक, भद्र, इत्यादिक भेदकरिकै अनेक प्रकारका होवै है। तहां शास्त्रकरिकै अप्रतिपादित जो किसी प्राणीका वध करणा है ताका नाम हिंसा है। इहां शास्त्रकरिकै अप्रतिपादित इतने कहणे करिकै (अग्नीषोमीयं पशुमालभेत) इत्यादिकशास्त्रनैं विधान कऱ्या जो यज्ञविषे पशुका वध है ताके विषे हिंसापणेकी निवृत्ति करी सा हिंसाभी कृत कारित अनुमोदित या भेदकरिकै तीन प्रकारकी होवै है। तहां जा हिंसा इस पुरुषनैं आपेही करीती है ता हिंसाकूं कृत कहैं हैं। और जा हिंसा इस पुरुषनैं किसी अन्यद्वारा कराईती है ता हिंसाकूं कारित कहैं हैं। और इस पुरुषनैं जिस हिंसाकी प्रशंसा करीती है ता हिंसाकूं अनुमोदित कहैं हैं। इस प्रकारकी हिंसातैं निवृत्तिरूप जो उपरामता है ताका नाम अहिंसा है १, और अयथार्थ भाषणकरणा तथा नहीं हननकरणे योग्य प्राणीकी हिंसाके अनुकूल सत्यभाषण करणा ता दोनोंका नाम मिथ्याभाषण है ता दोनोंप्रकारके मिथ्याभाषणतैं निवृत्तिरूप जा उपरामता है ताका नाम सत्य है २, और शास्त्रकरिकै नहीं प्रतिपादित मार्गकरिकै जो पराए द्रव्यका स्वीकार करणा है याका नाम स्तेय है, ता स्तेयतैं निवृत्तिरूप जा उपरामता है ताका नाम अस्तेय है ३, और शास्त्रकरिकै निषिद्ध जो स्त्री पुरुषका संबंधरूप मैथुन है ता मैथुनतैं निवृत्तिरूप जा उपरामता है ताका नाम ब्रह्मचर्य है ४, और शास्त्रनिषिद्ध मार्गकरिकै शरीरयात्राके निर्वाहक भोगके साधनोंतैं जो अधिक भोगसाधनोंका स्वीकार करणा है याका नाम परिग्रह है ता परिग्रहतैं निवृत्तिरूप जा उपरामता है ताका नाम

अपरिग्रह है ५ इति पंच यमनिरूपणम् ॥ अब पंचप्रकारके नियमका निरूपण करैं हैं—तहां शौच दो प्रकारका होवै है, एक तौ बाह्यशौच होवै है और दूसरा अंतर शौच होवै है तहां मृत्तिका जलादिकोंकरिकै शरीरका प्रक्षालन करणा तथा हित, मित, मेध्य, अन्नादिकोंको भोजन करणा यह बाह्य शौच कह्या जावै है और मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा इत्यादिक गुणोंकरिकै चित्तके मदमानादिरूप मलकी निवृत्ति करणी यह अंतरशौच कह्या जावै है। तहां सुखी प्राणियोंविषे मित्रभाव करणा याका नाम मैत्री है और दुःखी प्राणियों ऊपरि कृपा करणी याका नाम करुणा है, और पुण्यवान् पुरुषोंकूं देखिकरिकै प्रसन्न होणा याका नाम मुदिता है और पापी दुष्टजनोंके संगका परित्याग करणा याका नाम उपेक्षा हैं १, और आपणे समीप विद्यमान जे भोगके साधन हैं तिन्होंतैं अधिक भोगसाधनोंके नहीं संपादन करणेकी इच्छारूप जो चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम संतोष है २, और क्षुधातृषा, शीतउष्ण, इत्यादिक द्वंद्व धर्मोंका सहन करणा तथा काष्ठमौन, आकारमौन इत्यादिक जे व्रत हैं इन सबाका नाम तप है । तहां हस्तादिक अंगोंकी चेष्टा करिकैभी आपणे अभिप्रायकूं नहीं प्रगट करणा याका नाम काष्ठमौन है । और तिन हस्तादिक अंगोंकी चेष्टा करिकै तो आपणे अभिप्रायकूं प्रगट करणा परंतु मुखसे वचन उच्चारण करणा नहीं याका नाम आकारमौन है ३, और मोक्षके प्रतिपादक वेदांत शास्त्रका जो अध्ययन है, अथवा प्रणव मंत्रका जो जप है याका नाम स्वाध्याय है ४, और तिस तिस फलकी इच्छातैं रहित होइकै सर्व कर्मोंका परमगुरुरूप ईश्वरविषे जो अर्पण करणा है याका नाम ईश्वरप्रणिधान है ५, इति पंचनियमनिरूपणम् ॥ यह योगशास्त्रकी रीतिसैं पंचप्रकारके यम नियमका निरूपण कर्‍या है। और पुराणोंविषे तो स्तेयकर्मनिवृत्ति १, करुणा २, आर्जव ३, शांति ४, शौच ५, धृति ६, मिताहार ७, सत्यभाषण ८, जीवाहिंसन ९, ब्रह्मचर्य १०, इस भेदकरिकै दशप्रकारके यम कथन करे हैं और आस्तिकत्व १, हर्ष २, तप ३, सुरार्चन ४, दान ५, लज्जा ६, सद्ज्ञान ७, होम ८, सतश्रवण ९, जप १०, या भेदकरिकै दश प्रकारके नियम कथन करे हैं । ते अधिक पंच यम नियम, पूर्व उक्त पंच यम नियमोंके अंतर्भूतही हैं। इस प्रकारके यम नियमादिक अष्ट अंगोंके अभ्यासपरायण जे अधिकारी पुरुष हैं ते अधिकारी पुरुष योगयज्ञाः कहे जावैं हैं ३,

और जे अधिकारीपुरुष विधिपूर्वक गुरुके समीप निवास करिकै ऋगादिक वेदोंका अभ्यास करैं हैं ते अधिकारी पुरुष स्वाध्याययज्ञाः कहे जावैहैं अर्थात् केईक अधिकारीपुरुष वेदाभ्यासरूप यज्ञकूंही करैं हैं ४, और जे अधिकारीपुरुष अनेकप्रकारकी युक्तियोंकरिकै वेदके अर्थका निश्चय करैं हैं ते अधिकारीपुरुष ज्ञानयज्ञाः कहे जावैं हैं अर्थात् केईक अधिकारी पुरुष वेदके अर्थका निश्चयरूप यज्ञकूंही करैंहैं ५, अब यज्ञांतरका कथन करैं हैं (यतयः संशितव्रताः इति) हे अर्जुन! केईक यत्नशील अधिकारी पुरुष तौ संशितव्रतरूप यज्ञकूंही करैं हैं । तहां भलीप्रकारतैं अत्यंत दृढ हुए हैं अहिंसादिक व्रत जिन्होंके ते अधिकारीपुरुष संशितव्रताः कहे जावैंहैं । यह वार्त्ता भगवान् पतंजलिनैंभी योगशास्त्रविषे कथन करी है। तहां सूत्र-(जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रताः इति) अर्थ यह-जे पूर्व अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह, यह पंच यम कथन करेथे ते अहिंसादिक पंच यमही जाति, देश, काल, समय इन च्यारोंकरिकै अनवच्छिन्न होणेतैं अत्यंत दृढ भूमिकारूप हुए महाव्रत या शब्दकरिकै कहेजावैं हैं। अब तिन अहिंसादिक पंचयमोंविषे जाति देशादिकोंकरिकै अनवच्छिन्नता स्पष्ट करणेवासतै प्रथम तिन अहिंसादिकोंविषे जाति देशादिकों करिकै अवच्छिन्नता निरूपण करैं हैं। तहां एक मृगकूं छोडिकै दूसरे गौ अश्वादिक प्राणियोंकूं मैं कदाचित्भी हनन नहीं करौंगा याप्रकारका संकल्प मनविषे करिकै जो तिन गौअश्वादिक प्राणियोंकी अहिंसा है सा अहिंसा जातिअवच्छिन्न कहीजावै है। और तीर्थविषे मैं किसीभी जीवकी हिंसा नहीं करौंगा या प्रकारका संकल्प मनविषे करिकै जो तीर्थमात्रविषे किसी प्राणीकी हिंसा नहीं करणी है सा अहिंसा देशावच्छिन्न कही जावैहै । और एकादशीविषे तथा अन्य किसी पवित्र दिनविषे मैं किसीभी जीवकी हिंसा नहीं करौंगा या प्रकारका संकल्प मनविषे करिकै जो तिन एकादशी आदिकोंविषे किसीभी जीवकी हिंसा नहीं करणी है सा अहिंसा कालावच्छिन्न कहीजावै है ।और देवता ब्राह्मणोंके प्रयोजनतैं विना अथवा युद्धतैं विना मैं किंसीभी जीवकी हिंसा नहीं करौंगा या प्रकारका संकल्प मनविषे करिकै जो तिस प्रयोजनतैं विना किसीभी जीवकी हिंसा नहीं करणी है सा अहिंसा समयावच्छिन्न कहीजावै है । इहां समय नाम प्रयोजनविशेषका है इति । इस प्रकार विवाहादिक प्रयोजनतैं विना मैं मिथ्याभाषण नहीं करौंगा

याप्रकारका संकल्प मनविषे करिकै जो विवाहादि प्रयोजनतैं विना मिथ्याभाषणका परित्यागरूप सत्य है सो सत्य समयावच्छिन्न कह्याजावै है । इस प्रकार आपत्तिकालतैं विना क्षुधाके निवर्तक पदार्थतैं अतिरिक्त पदार्थकी मैं चोरी नहीं करौंगा याप्रकारका संकल्प मनविषे करिकै जो चोरीतैं निवृत्तिरूप अस्तेय है सो अस्तेय कालावच्छिन्न कह्याजावै है । इस प्रकार ऋतुकालतैं भिन्न कालविषे मैं आपणी स्त्रीविषे गमन नहीं करौंगा, या प्रकारका संकल्प मनविषे करिकै जो ऋतुकालतैं भिन्नकालविषे मैथुनका परित्यागरूप ब्रह्मचर्य है सो ब्रह्मचर्य कालावच्छिन्न कह्याजावै है । इसप्रकार गुरु देवता आदिकोंके प्रयोजनतैं विना मैं अधिक पदार्थोंका परिग्रह नहीं करौंगा या प्रकारका संकल्प मनविषे करिकै जो अधिक पदार्थोंके परिग्रहतैं निवृत्तिरूप अपरिग्रहहै सो अपरिग्रह समयावच्छिन्न कह्याजावै है ।इस रीतिसैं अहिंसा, सत्य,अस्तेय,ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह या पांचों यमोंविषे यथायोग्य जातिअवच्छिन्नता तथा देशावच्छिन्नता तथा कालावच्छिन्नता तथा समयावच्छिन्नता जानि लेणी । तहां जाति, देश, काल, समय, या च्यारों अवच्छेदकोंकी निवृत्तिकरिकै जिस कालविषे ते अहिंसादिक पंच यम सर्वजातियोंविषे तथा सर्वदेशोंविषे तथा सर्वकालोंविषे तथा सर्वप्रयोजनोंविषे होवै हैं अर्थात् किसी देशविषे किसी कालविषे किसी प्रयोजनवासतै किसीभी जीवकी मैं हिंसा करौंगा नहीं तथा मिथ्याभाषण तथा चोरी तथा मैथुन तथा परिग्रह करौंगा नहीं, या प्रकारके संकल्पपूर्वक जबी ते अहिंसादिक पंच यम निरवच्छिन्न सिद्ध होवैं हैं, तिस कालविषे ते अहिंसादिक पंच यम महाव्रत या नामकरिकै कहेजावैं हैं इसप्रकार काष्ठमौनादिकव्रत भी जानिलेणे । इस प्रकार अहिंसादिक व्रतकी दृढताके हुए नरकके द्वारभूत काम, क्रोध, लोभ, मोह या च्यारोंकी निवृत्ति होवैहै । तहां अहिंसाकरिकै तथा क्षमाकरिकै क्रोधकी निवृत्ति होवैहै और ब्रह्मचर्यकरिकै तथा वस्तुके विचारकरिकै कामकी निवृत्ति होवैहै और अस्तेयअपरिग्रहरूप संतोषकरिकै लोभकी निवृत्ति होवैहै । और सत्यकरिकै तथा यथार्थज्ञानरूप विवेककरिकै मोहकी निवृत्ति होवैहै । इसप्रकार तिन कामक्रोधादिकोंके निवृत्तहुएतैं अनंतर तिन कामक्रोधादिकोंके कार्यरूप सर्व अनर्थोंकी निवृत्ति होवैहै । तिन अहिंसादिकोंके दूसरेभी अनेक फल सकाम पुरुषोंवासतै योगशास्त्रविषे कथन करेहैं ॥ २८ ॥

अब प्राणायामरूप यज्ञकूं सार्धश्लोककरिकै श्रीभगवान् कथन करैहैं-

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ॥
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥
अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ॥

(पदच्छेदः) अपाने । जुह्वति । प्राणम् । प्राणे । अपानम् । तथा । अपरे । प्राणापानगती । रुद्ध्वा । प्राणायामपरायणाः । अपरे । नियताहाराः । प्राणान् । प्राणेषु । जुह्वति ॥ २९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अन्यअधिकारी पुरुष तौ अपानविषे प्राणकूं होम करैहैं तथा प्राणविषे अपानकूं होम करैहैं और नियतआहारवाले दूसरे अधिकारीजन तौ प्राणअपानकी गतिकूं रोकिकैंरिकै प्राणायामपरायण हुए प्राणोंविषे ज्ञानकर्म इंद्रियोंकूं होमैं करैहैं ॥ २९ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! केईक अधिकारी पुरुष तौ अपानकी प्रश्वासरूप वृत्तिविषे प्राणकी श्वासरूप वृत्तिकूं होम करैहैं अर्थात् बाह्यवायुका शरीरके भीतर प्रवेश करिकै पूरकनामा प्राणायामकूं करैहैं । तथा ते अधिकारी पुरुष प्राणकी श्वासरूप वृत्तिविषे अपानकी प्रश्वासरूप वृत्तिकूं होम करैहैं । अर्थात् शरीरके भीतरले वायुकूं बाह्यदेशविषे निर्गमन करिकै रेचकनामा प्राणायामकूं करैहैं । इहां पूरक रेचक या दोप्रकारके प्राणायामके कथनकरिकै श्रीभगवान्नैं दोप्रकारके कुंभककाभी अर्थतैंही कथन कऱ्या । जिसकारणतैं ता पूरक रेचकतैं विना सो दोप्रकारका कुंभक सिद्ध होवै नहीं । तहां अंतरकुंभक बाह्यकुंभक या भेदकरिकै सो कुंभक दोप्रकारका होवै है । तहां यथाशक्तिपारिमाण बाह्य वायुकूं नासिकाद्वारा शरीरके भीतर पूर्ण करिकै तिसतैं अनंतर जो श्वासप्रश्वासका निरोध कऱ्याजावैहै सो अंतरकुंभक कह्याजावै है । और यथाशक्तिपारिमाण शरीरके अंतरले वायुका ता नासिकाद्वारा बाह्यपरित्यागकरिकै तिसतैं अनंतर जो श्वासप्रश्वासका निरोध कऱ्याजावै है सो बाह्यकुम्भक कह्याजावै है इति । अब पूर्व कथन करेहुए पूरक रेचक कुंभक या तीनप्रकारके प्राणायामके अनुवादपूर्वक चतुर्थ कुंभककूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं (प्राणापानगती रुद्ध्वा इति) हे अर्जुन ! मुखनासिकाद्वारा शरीरके अंतरले वायुका जो बाह्यनिर्गमन है ताका नाम श्वास

है सो श्वास तौ प्राणकी गति है और बाह्य निकसेहुए वायुका जो ता मुखनासिकाद्वारा शरीरके भीतर प्रवेश है ताका नाम प्रश्वास है। सो प्रश्वास अपानकी गति है तहां पूरकविषे तौ प्राणके श्वासरूप गतिका निरोध होवैहै और रेचकविषे अपानके प्रश्वासरूप गतिका निरोध होवैहै, और कुंभकविषे तो तिन दोनों गतियोंका निरोध होवैहै। इसप्रकार क्रमकरिकै तथा एकही कालविषे ता प्राण अपानके श्वासप्रश्वासरूप गतिकूं रोकिकरिकै त्रिविध प्राणायामपरायण हुए तथा आहारनियमादिक योगके साधनोंकरिकै विशिष्टहुए केईक अधिकारीजन बाह्य अंतर कुंभकके अभ्यासकरिकै निग्रह करेहुए प्राणोंविषे ज्ञानकर्म इंद्रियरूप प्राणोंकूं होम करैं हैं। अर्थात् चतुर्थ कुंभकके अभ्यासकरिकै तिन इंद्रियोंकूं निगृहीत प्राणोंविषे लय करैंहैं इति। यह सर्व अर्थ भगवान् पतंजलिने योगसूत्रोंविषे संक्षेपकरिकै तथा विस्तारकरिकै कथन कऱ्याहै। तहां संक्षेपसूत्र—(तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदलक्षणः प्राणायाम इति) अर्थ यह—तिस आसनके स्थिर हुए प्राणायाम करणेकूं योग्य है। कैसा है सो प्राणायाम। श्वास प्रश्वासकी गतिका निरोधरूप है अर्थात् प्राण अपान या दोनोंके यथाक्रमतें धर्मरूप जे श्वास प्रश्वास यह दोनों हैं ता श्वास प्रश्वास दोनोंकी पुरुषप्रयत्नतें विनाही जा स्वाभाविक चलनरूप गति है ता गतिका क्रमकरिकै तथा एकही कालविषे जो पुरुषयत्नविशेष करिकै निरोध है सो निरोध है स्वरूप जिसका ताकूं प्राणायाम कहैं हैं इति। इस संक्षिप्त अर्थकूं अब विस्तारतैं कथन करैं हैं तहां सूत्र—(बाह्याभ्यंतरस्तंभवृत्तिदेशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घः सूक्ष्म इति) अर्थ यह—सो प्राणायाम बाह्यवृत्ति आभ्यंतरवृत्ति स्तंभवृत्ति तुरीय या भेदकरिकै च्यारिप्रकारका होवैहै तहां बाह्यगतिका निरोधरूप होणेतें पूरक बाह्यवृत्ति कह्याजावै है और अंतर्गतिका निरोधरूप होणेतें रेचक अंतरवृत्ति कह्याजावैहै। अथवा बाह्यवृत्ति शब्दकरिकै रेचकका ग्रहण करणा। और आभ्यंतरवृत्ति शब्दकरिकै पूरकका ग्रहण करणा और एकही कालविषे तिन दोनों गतियोंका जो निरोध है ताका नाम स्तंभ है ता स्तंभरूप होणेतें कुंभक स्तंभवृत्ति कह्याजावैहै। अर्थात् जहां श्वास प्रश्वास दोनोंका एकही विधारक प्रयत्नतें अभाव होवै है। पूर्वकी न्याईं पूरणके प्रयत्नकाभी विधारण होवै नहीं तथा रेचकके प्रयत्नकाभी विधारण होवै नहीं किंतु जैसे अग्निकरिकै तप्त पाषाण उपरि पायाहुआ जल परिशोषणकूं प्राप्त हुआ सर्व ओरतें

संकोचकूं प्राप्त होवैहै तैसे सर्वदा चलनस्वभाववाला यह प्राणवायुभी बलवान् विधारक प्रयत्नकरिकै ता चलनक्रियातैं रहित हुआ शरीरविषेही सूक्ष्म हुआ स्थित होवैहै तिस कालविषे सो सूक्ष्म प्राणवायु पूरणकूंभी प्राप्त होवै नहीं यातैं पूरकभी होवै नहीं । तथा सो सूक्ष्म प्राणवायु रेचनकूं भी प्राप्त होवै नहीं यातैं रेचक भी कह्याजावै नहीं । किंतु पारिशेषतैं सो निरुद्धहुआ सूक्ष्म प्राणवायु कुंभकही कह्याजावैहै इति । सो यह पूरक रेचक कुंभक तीन प्रकारका प्राणायाम देश-करिकै तथा कालकरिकै तथा संख्याकरिकै परीक्षा कऱ्याहुआ सूक्ष्मसंज्ञाकूं प्राप्त होवै है । जैसे घनीभूत तूलका पिंड प्रसारणकऱ्याहुआ विरलताकरिकै दीर्घ होवै है, तथा सूक्ष्म होवै है तैसे यह प्राणवायुभी देशकालसंख्याकी अधिकताकरिकै अभ्यासकऱ्याहुआ दीर्घ होवै है। तथा दुर्लक्ष्यताकरिकै सूक्ष्मभी होवै है। सो प्रकार अब दिखावैं हैं । तहां प्राणकी गतिरूप जो श्वास है सो श्वास तौ हृदयदेशतैं निकसिकै नासिकाके अग्रभागके सम्मुख द्वादश अंगुल पर्यंत देशविषे जाइकै समाप्त होवै है और अपानकी गतिरूप जो प्रश्वास है सो प्रश्वास तौ ता श्वासकी समाप्तिदेशतैं पुनः उलटिकरिकै ता हृदयदेशविषे जाइकै समाप्त होवै है । यह सर्व मनुष्योंके प्राण अपानकी स्वाभाविक गति होवै है और अभ्यासकरिकै तौ सो प्राण-वायु यथाक्रमतैं नाभिदेशतैं निकसिकै अथवा आधारदेशतैं निकसिकै ता नासि-काके अग्रभागके सम्मुख चौवीस अंगुलपर्यंत देशविषे अथवा छत्तीस अंगुलपर्यंत देशविषे जाइकै समाप्त होवै है । पुनः तिस समाप्तिदेशतैंही उलटिकरिकै ता नासि-काद्वारा ता नाभिदेशविषे अथवा आधारदेशविषे प्राप्त होवै है । तहां बाह्यदेशविषे ता वायुका संबंध तौ वायुतैं रहित देशविषे आपणी नासिकाके सम्मुख किसी इषी-काके सूक्ष्म तूलकूं राखिकै ता तूलकी चलनरूप क्रियातैं अनुमान कऱ्याजावै है । और शरीरके अंतरदेशविषे ता प्राणवायुका संबंध तौ पिपीलिकाके स्पर्शके समान स्पर्श करिकै अनुमान कऱ्याजावै है सो यह देशपरीक्षा कहीजावै है इति । और नेत्रोंकी जा निमेषक्रिया है ता निमेषक्रियावच्छिन्न कालका जो चतुर्थ भाग है ताका नाम क्षण है । तिन क्षणोंके इयत्ताका निश्चय करणा याका नाम कालपरीक्षा है इति । और आपणे जानुमंडलकूं आपणे हस्तसैं प्रदक्षिणाकी न्याईं तीनवार स्पर्श करिकै छोटिका मुद्रा करणी ता छोटिकामुद्रा अवच्छिन्न जो काल है ताका नाम मात्रा है । तिन छत्तीस मात्रावोंकरिकै जो प्रथम उद्घात है सो मंद

कह्याजावै है। और सोईही उद्घात पूर्वतैं द्विगुण कऱ्याहुआ द्वितीय मध्य कह्याजावै है और सोईही उद्घात त्रिगुणकऱ्याहुआ तृतीय तीव्र कह्याजावै है। तहां नाभिदेशतैं उठाइके विरेचनकरेंहुए प्राणवायुका जो शिरविषे अभिहनन है ताका नाम उद्घात है। सो यह संख्यापरीक्षा कहीजावै है। अथवा प्रणवमंत्रके जपकी आवृत्तिके भेदकरिकै संख्यापरीक्षा जानणी। अथवा श्वासप्रदेशोंकी गणना करिकै संख्यापरीक्षा जानणी। इस प्रकार काल संख्या या दोनोंका यत्किंचित् भेद अंगीकार करिकै भिन्नभिन्न कथन कऱ्याहै। यद्यपि कुंभकविषे पूरक रेचककी न्याईं देशव्याप्ति प्रतीत होवै नहीं तथापि कालव्याप्ति तथा संख्याव्याप्ति ता कुंभकविषेभी जानीजावै है। सो यह तीनप्रकारका प्राणायाम तीनदिनविषे अभ्यासकऱ्याहुआ दिवस पक्ष मास इत्यादिक क्रमकरिकै अधिक देशकालविषे व्यापक होणेतैं दीर्घ कह्याजावै है। तथा परम नैपुण्यसमाधिकरिकै गम्य होणेतैं सूक्ष्म कह्याजावै है। इतनेकरिकै पूरक रेचक कुंभक यह तीन प्रकारका प्राणायाम कथन कऱ्या। अब फलरूप चतुर्थ प्राणायामका निरूपण करैं हैं। तहां पतंजलिसूत्र–(बाह्याभ्यंतरविषयाक्षेपी चतुर्थः इति) अर्थ यह–बाह्य विषय जो श्वास है सो रेचक कह्याजावै है। और अंतरविषय जो प्रश्वास है सो पूरक कह्याजावै है। अथवा बाह्यविषय शब्दकरिकै पूरकका ग्रहण करणा। और आभ्यंतरविषय शब्दकरिकै रेचकका ग्रहण करणा ता रेचक पूरक दोनोंकी अपेक्षा करिकै एकही बलवान् विधारक प्रयत्नके वशतैं बाह्य अंतर भेदकरिकै दो प्रकारका तृतीय कुंभक होवैहै। और तिस रेचक पूरक दोनोंकी न अपेक्षाकरिकै ही केवल कुंभकके अभ्यासकी दृढता करिकै अनेकवार तिस तिस प्रयत्नके वशतैं चतुर्थ कुंभक होवैहै इति। अथवा इस सूत्रका यह दूसरा व्याख्यान करणा। पूर्व कथनकऱ्या जो द्वादश अंगुलपर्यंत तथा चौवीस अंगुलपर्यंत तथा छत्तीस अंगुलपर्यंत प्राणके जाणेका बाह्यदेश है सो बाह्यदेश ही बाह्यविषय शब्दकरिकै ग्रहण करणा। और आभ्यंतर विषय शब्दकरिकै तौ हृदय नाभि चक्रआदिकोंका ग्रहण करणा। तिन दोनों विषयोंकूं सूक्ष्मदृष्टिसैं निश्चय करिकै जो स्तंभरूप गतिका विच्छेद है सो चतुर्थ प्राणायाम कह्याजावैहै। और तीसरा कुंभकनामा प्राणायाम तौ बाह्यविषय आभ्यंतरविषय या दोनों विषयोंके निश्चयतैं विनाही शीघ्रही होवै है। इतनी ही तीसरे कुंभकनामा प्राणायामविषे तथा चतुर्थ कुम्भकनामा प्राणायामविषे विशेषता है इति। यहही

च्यारिप्रकारका प्राणायाम श्रीभगवान्नैं (अपाने जुह्वति प्राणम्) इत्यादिक सार्धश्लोककरिकै कथन कऱ्या है ॥ २९ ॥

तहां (दैवमेवापरे यज्ञम्) इसतैं आदिलैके साढेपांच श्लोकोंकरिकै द्वादश यज्ञ कथन करे। अब तिन द्वादशप्रकारके यज्ञोंके जानणेहारे पुरुषोंकूं तथा तिन द्वादशप्रकारके यज्ञोंके करणेहारे पुरुषोंकूं जो फल प्राप्त होवैहै ता फलकूं श्रीभगवान् कथन करैहैं–

सर्वेप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥
यज्ञशिष्टामृतभुजो यांति ब्रह्म सनातनम् ॥
नायं लोकोस्त्ययज्ञस्य कुतोन्यः कुरुसत्तम ॥३१॥

(पदच्छेदः) सर्वे । अपि । एते । यज्ञविदः । यज्ञक्षपितकल्मषाः । यज्ञशिष्टामृतभुजः । यांति । ब्रह्म । सनातनम् । न । अयम् । लोकः । अस्ति । अयज्ञस्य । कुतः । अन्यः । कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिन यज्ञकूं करणेहारे तथा तिन यज्ञोंकरिकै नाश हुए हैं कल्मष जिनोंके तथा तिन यज्ञोंके उत्तरकालविषे अमृतरूप अन्नकूं भोजन करणेहारे यह सर्वही अधिकारीजन नित्य ब्रह्मकूं प्राप्त होवैहैं हे अर्जुन ! तिन यज्ञोंतैं रहित पुरुषकूं यह मनुष्यलोक नहीं प्राप्त है तो स्वर्गादिलोक कहांतैं होवैं ॥ ३१ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! पूर्व उक्त द्वादशयज्ञोंकूं जे पुरुष गुरुशास्त्रके उपदेशतैं जानैं हैं अथवा तिन द्वादश यज्ञोंकूं जे प्राप्त होवे हैं अर्थात् तिन यज्ञोंकूं जे पुरुष श्रद्धापूर्वक करैं हैं तिन्होंका नाम यज्ञविद् हैं । ऐसे तिन यज्ञोंके जानणेहारे तथा तिन यज्ञोंके करणेहारे जे पुरुष हैं तथा तिन पूर्व उक्त यज्ञोंकरिकै नाशकूं प्राप्तहुए हैं पापकर्मरूप कल्मष जिन्होंके तथा तिन यज्ञोंकूं करिकै बाकी रहेहुए कालविषे अमृतरूप अन्नकूं भोजन करणेहारे जे पुरुष हैं ते सर्वही अधिकारी पुरुष अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा तथा ज्ञानकी प्राप्तिद्वारा नित्य ब्रह्मकूंही प्राप्त होवैं हैं अर्थात् इस जन्ममरणादिरूप संसारतैं ते पुरुष मुक्त होवैं हैं । इतने कहणेकरिकै तिन यज्ञोंके करणेहारे पुरुषोंकूं फलकी प्राप्ति कथन करी । अब तिन यज्ञोंके नहीं करणेहारे पुरुषोंकूं दोषकी प्राप्ति कथन करैं हैं (नायं लोकोस्त्ययज्ञस्य इति) हे अर्जुन ! पूर्व उक्त द्वादश

यज्ञोंके मध्यविषे कोईभी यज्ञ जिस पुरुषकूं नहीं है ताका नाम अयज्ञ है ऐसे अयज्ञ-पुरुषकूं यह अल्पसुखवाला मनुष्यलोकभी प्राप्त होवै नहीं। जिस कारणतैं सो अयज्ञ पुरुष सर्व शिष्टपुरुषोंकरिकै निंद्य होणेतैं दुःखीही है। जबी तिस अयज्ञपुरुषकूं यह अल्पसुखवाला मनुष्यलोकभी नहीं प्राप्त हुआ। तबी महान् पुण्यकर्मोंकरिकै प्राप्तहोणेहारा स्वर्गादिरूप लोक तिस अयज्ञपुरुषकूं किसप्रकार प्राप्त होवैगा किंतु ता अयज्ञपुरुषकूं कोईभी लोक नहीं प्राप्त होवैगा ॥ ३० ॥ ३१ ॥

हे भगवन्! पूर्व आपने जो फलसहित यज्ञोंका कथन कऱ्या है सो केवल आपणी कल्पनाकरिकै ही कथन कऱ्या है। तिन फलसहित यज्ञोंविषे दूसरा कोई प्रमाण है नहीं ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् साक्षात् वेदही तिन यज्ञोंविषे प्रमाण है या प्रकारका उत्तर कथन करैहैं—

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे॥
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे॥ ३२॥

(पदच्छेदः) एवम्। बहुविधाः। यज्ञाः। वितताः। ब्रह्मणः। मुखे। कर्मजान्। विद्धि। तान्। सर्वान्। एवम्। ज्ञात्वा। विमोक्ष्यसे॥३२॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! ईसप्रकार बहुत प्रकारके यज्ञ वेदके मुखविषे विस्तृतहैं तिन सर्वयज्ञोंकूं तूं कर्मजन्यही जान ईसप्रकार जानिकरिकै तूं इस संसारतैं मुक्त होवैगा ॥ ३२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन! (दैवमेवापरे यज्ञम्) इस वचनतैं आदिलैके पूर्व कथन करे जे द्वादश यज्ञ हैं ते यज्ञ सर्व वैदिक श्रेयके साधनरूप हैं। ते सर्वयज्ञ ऋगादिक वेदके मुखविषे विस्तृत हैं। अर्थात् ऋगादिक वेदद्वाराही ते सर्वयज्ञ जाने-जावैहैं। केवल आपणी कल्पना करिकै हमने ते यज्ञ कथन करे नहीं। हे अर्जुन! तिन सर्वयज्ञोंकूं तूं कायिक वाचिक मानसिक कर्मोंतैंही उत्पन्न हुआ जान। तिन यज्ञोंकूं आत्मातैं उत्पन्न हुआ जानणा नहीं। जिस कारणतैं यह आत्मादेव सर्व व्यापारोंतैं रहित है। तिस कारणतैं ते यज्ञ मैं आत्माके व्यापाररूप नहीं हैं। किंतु मैं आत्मा सर्वव्यापारोंतैं रहित असंग उदासीन हूं। इस प्रकार आत्मादेवकूं असंग उदासीन जानिकै तूं अर्जुन इस संसारबंधतैं मुक्त होवैगा ॥ ३२ ॥

तहां पूर्वप्रसंगविषे श्रीभगवान्नें सर्व यज्ञोंका तुल्यही कथन कऱ्या । यातैं कर्मयज्ञ ज्ञानयज्ञ यह दोनों यज्ञ समानही होवैंगे ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन दोनों यज्ञोंकी समानताके निवृत्त करणेवासतै ज्ञानयज्ञकी श्रेष्ठताकूं कहैं हैं-

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ॥
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥

(पदच्छेदः) श्रेयान् । द्रव्यमयाद् । यज्ञाद् । ज्ञानयज्ञः । परंतप । सर्वम् । कर्म । अखिलम् । पार्थ । ज्ञाने । परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! द्रव्यमय यज्ञतैं ज्ञानयज्ञ अत्यंतश्रेष्ठ है जिस कारणतैं हे पार्थ ! सर्व निरवशेष कर्म ज्ञानविषेही परिअवसानकूं प्राप्त होवै हैं ॥ ३३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! द्रव्यमय यज्ञतैं आदिलैके जितनेक ज्ञानतैं शून्य यज्ञ हैं तिन सर्व यज्ञोंतैं सो ज्ञानयज्ञ अत्यंत श्रेष्ठ है । काहेतैं ते ज्ञानतैं शून्य सर्व यज्ञ तौ संसाररूप फलकीही प्राप्ति करणेहारे हैं और सो ज्ञानयज्ञ तौ साक्षात् मोक्षरूप फलकीही प्राप्ति करणेहारा है । तहां श्रुति-(ज्ञानादेव तु कैवल्यम् ।) अर्थ यह-इस अधिकारीपुरुषकूं ज्ञानतैंही कैवल्य मोक्षकी प्राप्ति होवैहै इति । अब ता ज्ञानयज्ञकी श्रेष्ठताविषे श्रीभगवान् हेतु कहैं हैं (सर्वं कर्माखिलमिति) हे अर्जुन ! अग्निहोत्र ज्योतिष्टोम सोमयज्ञ चयनयज्ञ इसतैं आदिलैके जितनेक श्रौतकर्म हैं । तथा उपासनादिरूप जितनेक स्मार्त्तकर्म हैं ते सर्व कर्म निरवशेष हुए ब्रह्मात्म ऐक्यज्ञानविषेही समाप्त होवैं हैं अर्थात् ते सर्व श्रौत स्मार्त्त कर्म पापरूप प्रतिबंधकी निवृत्तिद्वारा ता आत्मज्ञानविषेही परिअवसानकूं प्राप्त होवैं हैं इति । तहां श्रुति-(तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन इति । धर्मेण पापमपनुदति) अर्थ यह-यह अधिकारी ब्राह्मण वेदके अध्ययन करिकै तथा यज्ञ करिकै तथा दान करिकै तथा तप करिकै इस आत्मादेवके जानणेकी इच्छा करै है इति । और यह अधिकारी पुरुष धर्मकरिकै पापकूं निवृत्त करै है इति । सर्व शुभकर्मोंका प्रतिबंधक पापोंकी निवृत्तिद्वारा आत्मज्ञानविषेही उपयोग है । इस अर्थकूं श्रीव्यासभगवान्नें तथा भाष्यकारोंनैं (सर्वापेक्षायज्ञादिश्रुतेरश्ववत्) इस सूत्रविषे विस्तारतैं कथन कऱ्या है यातैं यह ज्ञानरूप यज्ञही सर्वयज्ञोंसे श्रेष्ठ है ॥ ३३ ॥

हे भगवन् ! जिस आत्मज्ञानविषे सर्वशुभकर्मोंका परिअवसान है तिस आत्मज्ञानकी प्राप्तिविषे अत्यंत समीप उपाय कौन है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता उपायका कथन करैं हैं–

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ॥
उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥

(पदच्छेदः) तत् । विद्धि । प्रणिपातेन । परिप्रश्नेन । सेवया । उपदेक्ष्यंति । ते । ज्ञानम् । ज्ञानिनः । तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिस आत्मज्ञानकूं तूं ब्रह्मवेत्ता गुरुके आगे दंडवत् प्रणाम करिकै तथा प्रश्नकरिकै तथा सेवाकरिकै प्राप्त होउ ता करिकै प्रसन्न हुए ते तत्त्वदर्शी ज्ञानी गुरु तुम्हारेतांई ज्ञानकूं उपदेश करैंगे ॥ ३४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! सर्वशुभकर्मोंका फलभूत जो आत्मज्ञान है तिस आत्मज्ञानकूं तूं अवश्यकरिकै प्राप्त होउ । ता आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै तू या प्रकारका उपाय कर । तहां (आचार्यवान् पुरुषो वेद) या श्रुतिनैं ब्रह्मवेत्ता आचार्यके उपदेशतैंही ज्ञानकी प्राप्ति कथन करी है यातैं तूं अर्जुनभी ब्रह्मवेत्ता आचार्योंके समीप जाइकै प्रथम दंडवत् प्रणाम कर । तथा सर्वप्रकारतैं तिन आचार्योंकी अनुकूलताका संपादक जो व्यापारविशेष है ताका नाम सेवा है ऐसी सेवाकूं कर । तिसतैं अनंतर हे भगवन् ! मैं कौन हूं तथा मैं किस प्रकार बंधायमान हुआहूं तथा किस उपायकरिकै मैं इस संसारतैं मुक्त होवौंगा याप्रकारका प्रश्न तिन गुरुवोंके आगे कर । इस प्रकार भक्तिश्रद्धापूर्वक तुम्हारे दंडवत् प्रणाम करिकै तथा सेवा करिकै प्रसन्न हुए ते तत्त्वदर्शी ज्ञानवान् गुरु तुम्हारे तांई आत्मज्ञानका उपदेश करैंगे । जो आत्मज्ञान साक्षात् मोक्षरूप फलकी प्राप्ति करणेहारा है । इहां पदोंके ज्ञानविषे तथा वाक्योंके ज्ञानविषे तथा नानाप्रकारकी युक्तियोंके ज्ञानविषे जे पुरुष अत्यंत कुशल होवैं हैं तिनोंका नाम ज्ञानी है । और जिन पुरुषोंकूं संशयविपरीतभावनातैं रहित आत्माका साक्षात्कार हुआ है तिनोंका नाम तत्त्वदर्शी है । ऐसे ज्ञानवान् तथा तत्त्वदर्शीपुरुषोंनै उपदेश कऱ्या जो आत्मज्ञान है सो आत्मज्ञान ही मोक्षरूप फलकी प्राप्ति करैहै । ता तत्त्वदर्शीपणेतैं रहित केवल पदवाक्ययुक्ति आदिकोंके ज्ञानविषे कुशल पुरुषनैं उपदेश कऱ्या हुआ सो आत्मज्ञान ता मोक्षरूप फलकी प्राप्ति करै नहीं अर्थात् श्रोत्रिय

ब्रह्मनिष्ठ गुरुनैं उपदेश कऱ्या हुआ आत्मज्ञानही ता मोक्षरूप फलकी प्राप्ति करै है इति । तहां (ज्ञानिनः) या पदकरिकै श्रीभगवान्नै श्रोत्रियका कथन करया है । और (तत्त्वदर्शिनः) या पदकरिकै श्रीभगवान्नैं ब्रह्मनिष्ठका कथन कऱ्याहै। इसी अर्थकूं साक्षात् श्रुति भगवतीभी कथन करै है । तहां श्रुति-(तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठमिति ।) अर्थ यह-तिस परमात्मादेवके साक्षात्कारवासतै यह अधिकारी पुरुष यथाशक्ति भेंट हस्तविषे लैके श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके समीप जावै इति । इहां (ज्ञानिनः तत्त्वदर्शिनः) इस आचार्यके वाचक दोनों पदोंविषे जो बहुवचन भगवान्नैं कथन कऱ्या है सो आचार्यकी महानताके बोधन करणेवासतैं कथन कऱ्या है कोई ता बहुवचन करिकै बहुत आचार्य भगवान्कूं विवक्षित नहीं हैं काहेतैं श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ एकही आचर्यतैं इस अधिकारी शिष्यकूं तत्त्वसाक्षात्कारकी प्राप्ति होइ सकै है । ता तत्त्वसाक्षात्कारकी प्राप्तिवासतैं बहुत आचार्योंके समीप जानेका किंचित् मात्रभी प्रयोजन नहीं है ॥ ३४ ॥

हे भगवन् ! इस प्रकारके अत्यंत दृढ उपायकरिकै ता आत्मज्ञानके उत्पन्न किये हुएभी ता ज्ञानकरिकै कौन फल प्राप्त होवै है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता आत्मज्ञानके फलका वर्णन करैं हैं-

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पांडव ॥
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥ ३५ ॥

(पदच्छेदः) यत् । ज्ञात्वा । न । पुनः । मोहम् । एवम् । यास्यसि । पांडव । यन । भूतानि । अशेषेण । द्रक्ष्यसि । आत्मनि । अथो । मयि ॥ ३५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसै पूर्वउक्त ज्ञानकूं प्राप्त होइकै तूं पुनः इस प्रकारके मोहकूं नहीं प्राप्त होवैगा जिस कारणतैं जिस ज्ञानकरिकै इन सर्वभूतोंकूं आपणे आत्माविषे तथा मैं परमेश्वरविषे अभेदरूप करिकै देखैगा ॥ ३५ ॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुने उपदेश कऱ्या जो आत्मज्ञान है ता आत्मज्ञानकूं प्राप्त होइकै इन बांधवोंके वधादिक हैं निमित्त जिसविषे ऐसे भ्रमरूप शोककूं तूं पुनः कदाचित्भी नहीं प्राप्त होवैगा काहेतैं आत्माके अज्ञानकरिकै जन्य जितनेक ब्रह्मातैं आदिलैके स्तंबपर्यंत पितापुत्रादिक भूतप्राणी हैं तिन सर्व भूत-

प्राणियोंकूं जिस आत्मज्ञानकरिकै तूं आपणे त्वंपदार्थ आत्माविषे तथा वास्तवतैं भेदतैं रहित सर्वका अधिष्ठानभूत मैं तत्पदार्थ परमेश्वरविषे अभेदरूपकरिकै देखैगा। जिसकारणतैं अधिष्ठानतैं भिन्नकरिकै कल्पितवस्तुका अभावही होवैहै। तात्पर्य यह मैं भगवान् वासुदेवकूं अपना आत्मारूप जानिकै अज्ञानके नाशहुएतैं अनंतर ता अज्ञानके कार्यरूप यह सर्वभूतप्राणीभी स्थित होवैंगे नहीं इति। इहां किसी टीकाविषे तौ (आत्मनि मयि) या दोनों पदोंका समानाधिकरण अंगीकारकरिकै आत्मारूप मैं परमेश्वरविषे तिन सर्वभूतोंको तूं देखैगा इसप्रकारका अर्थ कथन कऱ्याहै ॥ ३५ ॥

हे भगवन् ! इसप्रकारके आत्मज्ञानकूं प्राप्त होइकै भी मैं अर्जुन भीष्मद्रोणादिक गुरुवोंके तथा दुर्योधनादिक बांधवोंके वधजन्यपापतैं मुक्त नहीं होवौंगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता आत्मज्ञानका परममाहात्म्य कथन करैं हैं–

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ॥
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥ ३६ ॥

(पदच्छेदः) अपि। चेत्। असि। पापेभ्यः। सर्वेभ्यः। पापकृत्तमः। सर्वम्। ज्ञानप्लवेन। एव। वृजिनम्। संतरिष्यसि ॥ ३६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! कदाचित् तूं सर्व पापकारी पुरुषोंतैं अत्यंत पापकारी भी होवै तौभी तूं ता सर्व पापरूप समुद्रकूं ज्ञानरूप नौकाकरिकै ही तरैगा॥ ३६॥

भा॰ टी॰–इहां अपि चेत् यह दोनों पद असंभावित अर्थके अंगीकारके बोधक हैं अर्थात् सर्वपापकारी पुरुषोंतैं ता अर्जुनविषे अत्यंत पापकारीपणा यद्यपि है नहीं तथापि ज्ञानके फलका कथनकरणेवास्तैं ता अर्जुनविषे सो अत्यंत पापकारीपणा अंगीकारकरिकै श्रीभगवान् कहैं हैं। हे अर्जुन ! जो कदाचित तूं सर्वपापकारी पुरुषोंतैं अत्यंत पापकारीभी होवै तौभी तिस सर्वपापरूप समुद्रकूं तूं इस ज्ञानरूप नौकाकरिकै ही तरैगा। ता आत्मज्ञानतैं भिन्न उपाय करिकै यह पापरूपसमुद्र तऱ्याजावै नहीं। तहां श्रुति–(तरति शोकमात्मवित्।) अर्थ यह–आत्मवेत्ता पुरुष सर्वसंसाररूप शोककूं तरैहै इति। इहां (वृजिनं) या शब्दकरिकै संसाररूप फलकी प्राप्ति करणेहारे सर्व धर्म अधर्मरूप कर्मोंका

ग्रहण करणा । काहेतैं मोक्षकी इच्छावान् अधिकारीपुरुषकूं पापकर्मकी न्याईं सो पुण्यकर्मभी अनिष्टही है ॥ ३६ ॥

हे भगवन् ! यह अधिकारी पुरुष आत्मज्ञानरूप नौकाकरिकै पुण्यपापरूप समुद्रकूं तरै है यह वार्त्ता पूर्व आपनै कथनकरी । तहां जैसे नौकाकरिकै समुद्रके तरेहुएभी ता समुद्रका नाश होवै नहीं तैसे आत्मज्ञानरूप नौकाकरिकै इस पुण्य-पापरूप समुद्रके तरेहुएभी ता पुण्यपापरूप कर्मका नाश होवैगा नहीं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् आत्मज्ञानकरिकै तिन कर्मोंके नाशविषे दूसरा दृष्टांत कथन करैंहैं—

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ॥
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ ३७ ॥

(पदच्छेदः) यथा । एधांसि । समिद्धः । अग्निः । भस्मसात् । कुरुते । अर्जुन । ज्ञानाग्निः । सर्वकर्माणि । भस्मसात् । कुरुते । तथा ॥ ३७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित अग्नि काष्ठोंकूं भस्मीभूत करै है तैसे ज्ञानरूप अग्नि सर्वकर्मोंकूं भस्मीभूत करैहै ॥ ३७ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! जैसे अत्यंत प्रज्वलित अग्नि बहुत काष्ठोंकूंभी भस्मीभूत करिदेवै है तैसे मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारका जो आत्मज्ञानरूप अग्नि है सो ज्ञान-रूप अग्निभी प्रारब्धकर्मतें भिन्न सर्व पुण्यपापकर्मोंकूं भस्मीभूत करिदेवै है अर्थात् सो ज्ञानरूप अग्नि तिन पुण्यपापकर्मोंके कारणभूत अज्ञानकूं नाशकरिकै तिन कर्मोंकूंभी नाश करैहै इति । तहां श्रुति—(भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसं-शयाः । क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे इति ।) अर्थ यह—ब्रह्मा-दिक देवतावोंतैंभी अत्यंत उत्कृष्ट जो परमात्मा देव है ता परमात्मादेवके साक्षा-त्कार हुए इस विद्वान् पुरुषकी आत्मा अनात्माका अध्यासरूप हृदयग्रंथि नाशकूं प्राप्त होवै है । तथा आत्मा देहादिकोंतैं भिन्न है अथवा देहादिरूप है तहां देहादिकोंतैं भिन्न हुआभी आत्मा ब्रह्मरूप है अथवा ब्रह्मतैं भिन्न है इसते आदि-लेके जितनेकी आत्मविषयक संशय हैं ते सर्वसंशयभी नाशकूं प्राप्त होवैं हैं । तथा जिन पुण्यपापरूप प्रारब्धकर्मोंनैं यह शरीर दिया है तिन प्रारब्धकर्मोंकूं छोडिकै दूसरे सर्व कर्म नाशकूं प्राप्त होवैहैं इति । यह वार्त्ता श्रीव्यासभगवान्ने

ब्रह्मसूत्रोंविषेभी कथनकरीहै । तहां सूत्र—(तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात्) अर्थ यह—मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारके आत्मसाक्षात्कारके हुए इस विद्वान् पुरुषके पूर्वसंचित कर्मोंका तौ नाश होजावैहै और जैसे जलविषे स्थित पद्मपत्रको जलका स्पर्श होवै नहीं तैसे आत्मज्ञानतैं उत्तर करेहुए कर्मोंका ता विद्वान् पुरुषको स्पर्शही होवै नहीं यह वार्ता अनेक श्रुतिस्मृतियोंविषे कथन करीहै इति । और जिस शरीरविषे इस विद्वान् पुरुषको आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति हुई तिस शरीरके आरंभ करणेहारे जे पुण्यपापरूप प्रारब्धकर्म हैं तिन प्रारब्धकर्मोंका तौ तिस शरीरके नाशकालविषेही नाश होवैहै । तहां श्रुति—(तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्ये ।) अर्थ यह—तिस विद्वान पुरुषकूं विदेहमोक्षकी प्राप्तिविषे तितने कालपर्यंतही विलंब है जितने काल-पर्यंत प्रारब्धकर्मोंके भोगपूर्वक इस शरीरकी निवृत्ति नहीं हुई । इस शरीरके निवृत्त हुएतैं अनंतर सो विद्वान् पुरुष विदेहमोक्षको प्राप्त होवैहै इति । यह वार्ता श्रीव्यासभगवान्नैभी ब्रह्मसूत्रोंविषे कथनकरीहै । तहां सूत्र—(भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा संपद्यन्ते) अर्थ यह—संचित क्रियमाण कर्मोंतैं भिन्न पुण्यपापरूप प्रारब्ध कर्मोंका भोगतैं नाशकरिकै यह विद्वान् पुरुष विदेहमोक्षकूं प्राप्त होवैहै इति । और वसिष्ठसनकादिक जे अधिकारक पुरुष हैं तिन अधिकारक पुरुषोंकूं तौ ज्ञानकी उत्पत्तितैं अनंतरभी दूसरे शरीरोंकी प्राप्ति शास्त्रोंविषे देख-णेमें आवैहै । यातैं (यावदधिकारमवस्थितिराधिकारकाणाम्) इस सूत्रके व्याख्या-नविषे भगवान् भाष्यकारोंनैं या प्रकारकी व्यवस्था कथनकरी है । तिन वसिष्ठादिकोंकूं जिस शरीरविषे आत्मज्ञानकी प्राप्ति भई है तिस शरीरके आरंभ करणेहारे जे प्रारब्धकर्म हैं ते प्रारब्धकर्मही तिन वसिष्ठादिकोंके दूसरे शरीरोंकाभी आरंभ करैं हैं । तात्पर्य यह । अनेक शरीरोंका आरंभ करणे-हारा जो बलवान् प्रारब्ध कर्म है ताका नाम अधिकार है सो ऐसा अधिकार वसि-ष्ठादिक उपासक पुरुषोंकाही होवैहै अन्य जीवोंका होवै नहीं । सो ऐसा अधि-कार जबपर्यंत रहैहै, तब पर्यंतही तिन वसिष्ठादिक अधिकारी पुरुषोंकी स्थिति होवैहै यातैं यह अर्थ सिद्ध भया जिन कर्मोंनैं आपणे फलका आरंभ नहीं करया है ते कर्म तौ आत्मज्ञानरूप अग्निकरिकै नाश होइजावैं हैं और जिन कर्मोंनैं आपणे फलका आरंभ करया है ते कर्म तौ भोगकी समाप्तिपर्यंत

स्थित होवैं हैं । तिन प्रारब्धकर्मोंका भोग अस्मदादिक तत्त्ववेत्ताजीवोंविषे तौ एकही देहकरिकै होवै है । और वसिष्ठादिक अधिकारी पुरुषोंविषे तौ अनेक देहोंकरिकै सो भोग होवैहै ॥ ३७ ॥

जिस कारणतैं इस आत्मज्ञानका ऐसा महान् प्रभाव है तिस कारणतैं इस आत्मज्ञानके समान दूसरा कोई पदार्थ है नहीं । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ॥
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति ॥ ३८ ॥

(पदच्छेदः) न[६] । हि[१] । ज्ञानेन[३] । सदृशम्[४] । पवित्रम्[५] । इह[२] । विद्यते[७] । तत्[८] । स्वयम्[११] । योगसंसिद्धः[१०] । कालेन[९] । आत्मनि[१२] । विंदति[१३] ॥ ३८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस कारणतैं[१] इस[२] वेदलोकविषे ज्ञानके[३] समान[४] पवित्र[५] नहीं[६] विद्यमान[७] है तिस[८] ज्ञानकूं महान्[९] कालकरिकै कर्मयोगकरिकै[१०] शुद्धचित्तवाला पुरुष आपही[११] अंतःकरणविषे[१२] प्राप्त[१३] होवैहै ॥ ३८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! वेदोंविषे अथवा इस लोकव्यवहारविषे इस आत्मज्ञानके समान दूसरा कोई पदार्थ शुद्धिकरणेहारा है नहीं किंतु यह एक आत्मज्ञानही शुद्धिकरणेहारा है । काहेतैं इस आत्मज्ञानतैं भिन्न जितनेक दूसरे कर्म उपासनादिक उपाय हैं ते उपाय अज्ञानकी निवृत्ति करैं नहीं । यातैं ते भिन्न उपाय अज्ञानरूप मूलसहित पापोंकी निवृत्ति करैं नहीं किंतु यत्किंचित् पापकी निवृत्ति करैं हैं । जैसे प्रायश्चित्त यत्किंचित् पापकी निवृत्ति करै है । और जब पर्यंत तिन सर्वपापोंका मूलकारणरूप अज्ञान विद्यमान है तबपर्यंत किसी प्रायश्चित्तादिक उपायोंकरिकै एक पापके नाश हुएभी पुनः दूसरे पाप अवश्यकरिकै उत्पन्न होवैंगे । और आत्मज्ञानकरिकै तौ अज्ञानके निवृत्त हुए मूलसहित सर्वपापोंकी निवृत्ति होवैहै । यातैं इस आत्मज्ञानके समान दूसरा कोई शुद्धि करणेका उपाय है नहीं इति । शंका–हे भगवन् ! सो आत्माका ज्ञान इन सर्व प्राणियोंकूं शीघ्रही किसवास्तैं नहीं उत्पन्न होता ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (तत्स्वयं योगसंसिद्धः इति) हे अर्जुन ! जो अधिकारी पुरुष बहुत कालपर्यंत ता पूर्व उक्त कर्मयोगकरिकै अंतःकरणकी शुद्धिपूर्वक आत्मज्ञानके

योग्यताकूं प्राप्त हुआ है सो अधिकारी पुरुषही आपही ता आपणे अंतःकरणविषे तिस आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवै है। तिस अंतःकरणकी शुद्धिरूप योग्यताकूं नहीं प्राप्त हुआ पुरुष ता आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवै नहीं। तथा अन्य किसी पुरुषके दिये हुए ज्ञानकूं आपणेविषे स्थितरूप करिकैभी प्राप्त होवै नहीं। तथा अन्य किसी पुरुषविषे स्थित ज्ञानकूं आपणा करिकैभी प्राप्त होवै नहीं किंतु सो शुद्धचित्तवाला पुरुष आपही अपणे अंतःकरणविषेही ता आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवैहै ॥ ३८ ॥

तहां जिस उपायकरिकै नियमपूर्वक आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवैहै सो उपाय पूर्व उक्त प्रणिपातसेवादिक उपायोंकी अपेक्षाकारिकै अत्यंत समीप है। ऐसे अत्यंत समीप उपायकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ॥
ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति ॥ ३९ ॥

(पदच्छेदः) श्रद्धावान् । लभते । ज्ञानम् । तत्परः । संयतेंद्रियः । ज्ञानम् । लब्ध्वा । पराम् । शांतिम् । अचिरेण । अधिगच्छति ॥ ३९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष श्रद्धावान् है तथा गुरुकी उपासनाविषे तत्पर है तथा जितइंद्रिय है सो पुरुषही आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवै है ता आत्मज्ञानकूं प्राप्त होइकै शीघ्रही कैवल्य मुक्तिकूं प्राप्त होवैहै ॥ ३९ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! ब्रह्मवेत्ता गुरुके वचनोंविषे तथा वेदांतशास्त्रके वचनोंविषे यह वचन यथार्थ अर्थकेही कहणेहारे हैं या प्रकारकी प्रमाणरूप जा आस्तिक्य बुद्धि है ताका नाम श्रद्धा है। ऐसी श्रद्धावाला पुरुषही ता आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवै है। शंका–ऐसा श्रद्धावान् हुआभी जो पुरुष अत्यंत आलसी होवै है ता आलसी पुरुषकूंभी ता आत्मज्ञानकी प्राप्ति होणी चाहिये। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (तत्परः इति) हे अर्जुन ! जो पुरुष श्रद्धावान् होवै है तथा आत्मज्ञानकी प्राप्तिका उपायभूत जे ब्रह्मवेत्ता गुरुकी उपासनादिक हैं तिन उपायोंविषे जो पुरुष आलस्यतैं रहित हुआ अत्यंत तत्पर होवै है सो पुरुषही ता आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवै है। तिस तत्परतातैं विना केवल श्रद्धावान् पुरुष ता आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवै नहीं। शंका–हे भगवन् ! जो पुरुष श्रद्धावान्भी है तथा

ब्रह्मवेत्ता गुरुकी उपासनादिकोंविषे तत्परभी है परंतु श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं आपणे आपणे शब्दादिकविषयोंतैं जिसने निवृत्त कऱ्या नहीं ऐसे अजितइंद्रियपुरुषकेभी ता आत्मज्ञानकी प्राप्ति होणी चाहिये ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (संयतेंद्रियः इति) हे अर्जुन जो पुरुष श्रद्धावान्‌भी है तथा तत्परभी है परंतु जिस पुरुषनैं आपणे श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं शब्दादिकविषयोंतैं निवृत्त नहीं कऱ्या सो अजितइंद्रिय पुरुषभी ता आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवै नहीं किंतु जो पुरुष श्रद्धावान् होवै है तथा तत्पर होवैहै तथा जितइंद्रिय होवैहै सो पुरुषही ता आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवैहै। और (तद्विद्धि प्रणिपातेन) या श्लोकविषे जे पूर्व प्रणिपात प्रश्न सेवा यह तीन उपाय आत्मज्ञानके कथन करेथे, ते तीनों बाह्य उपाय तौ दांभिक मायाकी पुरुषविषेभी संभव होइसकैंहैं। यातैं ते प्रणिपातादि बाह्य उपाय नियमकरिकै ता आत्मज्ञानकी प्राप्तिविषे हेतु होवैं नहीं। और इस श्लोकविषे कथनकरे जे श्रद्धा तत्परता जितइंद्रियता यह अंतर तीन उपाय हैं ते यह तीन उपाय तौ नियमपूर्वक ता आत्मज्ञानकी प्राप्ति करैं हैं। ऐसे श्रद्धादिक तीन उपायों करिकै यह अधिकारी पुरुष ता आत्मज्ञानकूं प्राप्त होइकै कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिरूप कैवल्यमुक्तिकूं व्यवधानतैं विनाही प्राप्त होवै है। तात्पर्य यह—जैसे दीपक आपणी उत्पत्तिमात्रकरिकैही अंधकारकी निवृत्ति करै है ता अंधकारकी निवृत्ति करणेविषे सो दीपक किसीभी सहकारी कारणकी अपेक्षा करै नहीं। तैसे यह आत्मज्ञानभी आपणी उत्पत्तिमात्रकरिकैही अज्ञानकी निवृत्ति करै है। ता अज्ञानकी निवृत्ति करणेविषे सो आत्मज्ञान दूसरे किसीभी प्रसंख्यानादिक उपायोंकी अपेक्षा करै नहीं ॥ ३९ ॥

तहां इस पूर्व उक्त अर्थविषे तुमनैं कदाचित्‌भी संशय करणा नहीं। जिस कारणतैं संशयवान् पुरुष महान् अनर्थकूं प्राप्त होवै है। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ॥
नायं लोकोस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥४०॥

(पदच्छेदः) अज्ञः । च । अश्रद्दधानः । च । संशयात्मा । विनश्यति । न । अयम् । लोकः । अस्ति । न । परः । न । सुखम् । संशयात्मनः ॥ ४० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अज्ञानी पुरुष तथा अश्रद्धावान् पुरुष तथा संशययुक्त पुरुष विनाशकूंही प्राप्त होवैहै तिस संशययुक्त पुरुषकूं यह मनुष्यलोकभी नहीं सिद्ध होवैहै तथा स्वर्गादिरूप परलोकभी नहीं सिद्ध होवैहै तथा भोजनादिकृत सुखभी नहीं प्राप्त होवैहै ॥ ४० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो पुरुष वेदांतशास्त्रके अध्ययनतैं रहित होणेतैं आत्मज्ञानतैं शून्य है ता पुरुषका नाम अज्ञ है। और ब्रह्मवेत्तागुरुनैं कथनकऱ्या जो अर्थ है तथा वेदांतशास्त्रनैं कथनकऱ्या जो अर्थ है ता अर्थविषे यह अर्थ इस प्रकारका है नहीं या प्रकारकी विपर्ययरूप जा नास्तिक्यबुद्धि है ताका नाम अश्रद्धा है । ता अश्रद्धा करिकै जो पुरुष युक्त है ता पुरुषका नाम अश्रद्दधान है। और लौकिक वैदिक सर्व अर्थोविषे यह अर्थ इस प्रकारका है अथवा अन्य-प्रकारका है या प्रकारके संशय करिकै जिस पुरुषका चित्त युक्त है ता पुरुषका नाम संशयात्मा है । ऐसा अज्ञपुरुष तथा अश्रद्दधानपुरुष तथा संशया-त्मा पुरुष यह तीनों पुरुष नाशकूंही प्राप्त होवैं हैं । अर्थात् आपणे अर्थतैं भ्रष्ट होवैं हैं । इहां सो संशयात्मा पुरुष जिस प्रकारके अनर्थकूं प्राप्त होवै है तिस प्रकारके अनर्थकूं सो अज्ञपुरुष तथा अश्रद्दधान पुरुष प्राप्त होवै नहीं । किंतु तिसतैं न्यून अनर्थकूं प्राप्त होवै है । इसप्रकार ता संशयात्मा पुरुषतैं अज्ञपुरुषविषे तथा अश्रद्दधानपुरुषविषे न्यूनता बोधन करणेवासतै तिन दोनोंके वाचकपदोंके अंतविषे चकार कथनकऱ्याहै । शंका—हे भगवन् ! सो संशयात्मा पुरुष अज्ञपुरुषतैं तथा अश्रद्दधानपुरुषतैं अधिक अनर्थकूं प्राप्त होवै है यह वार्त्ता किस प्रकार जानी जावै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं (नायं लोकः इति) हे अर्जुन ! जो पुरुष सर्वदा संशय करिकै युक्त है सो संशयात्मा पुरुष आपणे मित्रादिकोंविषेभी यह हमारे मित्र हैं अथवा शत्रु हैं या प्रकारका संशयही करै-है और सो संशयात्मा पुरुष धनादिक पदार्थोंके एकठे करणेविषेभी प्रवृत्त होवै नहीं । यातैं तिस संशयात्मा पुरुषकूं यह मनुष्यलोकभी सिद्ध होवै नहीं । और ता संशयात्मा पुरुषकूं वेदके वचनोंविषेभी सर्वदा संशय बन्यारहै है । यातैं ता संशयात्मा पुरुषतैं धर्मका तथा ज्ञानका संपादन होइसकै नहीं । या कारणतैं ता संशयात्मा पुरुषकूं स्वर्गमोक्षादिरूप परलोकभी सिद्ध होवै नहीं । और ता संशयात्मा पुरुषकूं भोजनादिकोंविषेभी यह भोजनादिक मैं करों अथवा नहीं करों या प्रकारका

संशय सर्वदा बन्यारहै है। यातैं ता संशयात्मा पुरुषकूं भोजनादिकृत विषयसुखभी प्राप्त होवै नहीं। तात्पर्य यह—ता अज्ञपुरुषकूं तथा अश्रद्दधानपुरुषकूं यद्यपि सो परलोक प्राप्त होवै नहीं तथापि यह मनुष्यलोक तथा भोजनादिकृत विषयसुख यह दोनों प्राप्त होवैं हैं। या कारणतैंही शास्त्रवेत्तापुरुषोंनैं ता अज्ञपुरुषकूं सुसाध्य कह्याहै और ता अश्रद्दधानपुरुषकूं प्रयत्नसाध्य कह्या है। और ता संशयात्माकूं असाध्य कह्याहै। इहां जिस पुरुषकी सत्मार्गविषे प्रवृत्ति होइसकै ता पुरुषकूं सुसाध्य कहैं हैं। और जिस पुरुषकी बहुत प्रयत्नकरिकै ता सत्मार्गविषे प्रवृत्ति होइसकै ता पुरुषकूं प्रयत्नसाध्य कहैं हैं। और किसीप्रकारकैभी जिस पुरुषकी ता सत्मार्गविषे प्रवृत्ति नहीं होइसकै ता पुरुषकूं असाध्य कहैं हैं। यातैं सो संशयात्मा पुरुष सर्वतैं अत्यंत पापिष्ठ है ॥ ४० ॥

तहां ऐसे सर्व अर्थोंके मूलभूत संशयके निवृत्त करणेवासतै आत्माका निश्चयरूप उपायकूं कथन करते हुए श्रीभगवान् दो अध्यायों करिकै कथन करी जा पूर्व-उत्तरभूमिकाके भेदकरिकै कर्मज्ञानमय दो प्रकारकी ब्रह्मनिष्ठा है ताका अब उपसंहार करैं हैं—

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ॥
आत्मवंतं न कर्माणि निबध्नंति धनंजय ॥ ४१ ॥

(पदच्छेदः) योगसंन्यस्तकर्माणम् । ज्ञानसंछिन्नसंशयम् । आत्मवंतम् । न । कर्माणि । निबध्नंति । धनंजय ॥ ४१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! समत्वबुद्धिरूप योगकरिकै भगवत् अर्पण करे हैं कर्म जिसनैं तथा आत्मज्ञानकरिकै छेदन कन्याहै संशय जिसनैं ऐसे प्रमादतैं रहित पुरुषकूं कर्म नहीं बंधायमान करैं हैं ॥ ४१ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! भगवत् आराधनरूप जा समत्व बुद्धि है ताका नाम योग है। ऐसे योगकरिकै मैं श्रीभगवान्विषे समर्पण करे हैं कर्म जिसनैं अथवा परमार्थवस्तुके दर्शनका नाम योग है ता योगकरिकै त्याग करे हैं सर्व कर्म जिसनैं ताका नाम योगसंन्यस्तकर्मा है। शंका—हे भगवन् ! ता संशयके विद्यमान हुए सो योगसंन्यस्तकर्मपणाही किसप्रकारका संभवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं। (ज्ञानसंछिन्नसंशयमिति) हे अर्जुन ! आत्माका

निश्चयरूप जो ज्ञान है ता ज्ञानकरिकै छेदन कऱ्याहै संशय जिस पुरुषनैं। शंका–हे भगवन्! विषयोंकी परवशतारूप प्रमादके विद्यमान हुए ता ज्ञानकी उत्पत्तिही संभवै नहीं ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (आत्मवंतमिति) हे अर्जुन! जो पुरुष ता परवशतारूप प्रमादतैं रहित है अर्थात जो पुरुष सर्वदा सावधान है। इस प्रकार जो पुरुष अप्रमादी होणेतैं ज्ञानवान् है तथा ज्ञानसंछिन्नसंशय होणेतैं योगसंन्यस्तकर्मा है ता विद्वान् पुरुषकूं लोकसंग्रहवासतै करे हुए शुभकर्म अथवा व्यर्थचेष्टारूप कर्म बंधायमान करैं नहीं अर्थात ते कर्म देवतादिरूप इष्टशरीरका तथा पशुआदिरूप अनिष्टशरीरका तथा मनुष्यादिरूप मिश्रितशरीरका आरंभ करैं नहीं ॥ ४१ ॥

जिसकारणतैं आत्मज्ञानकरिकै नष्ट हुआहै संशय जिसका ऐसे विद्वान् पुरुषकूं यह लौकिकवैदिककर्म बंधायमान करते नहीं। तिसकारणतैं तूं अर्जुनभी ता आत्मज्ञानकरिकै ता संशयकूं छेदनकरिकै स्वधर्मविषे तत्पर होउ। या अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैहैं–

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः॥
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत॥ ४२॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे यज्ञविभागयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

(पदच्छेदः) तस्मात्। अज्ञानसंभूतम्। हृत्स्थम्। ज्ञानासिना। आत्मनः। छित्त्वा। एनम्। संशयम्। योगम्। आतिष्ठ। उत्तिष्ठ। भारत॥४२॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! तिसकारणतैं अज्ञानतैं उत्पन्नहुए तथा बुद्धिविषे स्थित इस संशयकूं आत्माके ज्ञानरूप खड्गकरिकै छेदनकरिकै तूं निष्कामकर्मकूं कर इसप्रकारतैं तूं अब युद्ध करणेवासतै उठै खडाहोउ॥ ४२॥

भा० टी०–हे अर्जुन! अविवेकरूप अज्ञानतैं उत्पन्न हुआ तथा बुद्धिरूप हृदयविषे स्थित ऐसा जो यह सर्व अनर्थोंका मूलभूत संशय है इस संशयकूं विषय करणेहारे निश्चयरूप खड्गकरिकै छेदनकरिकै तूं सम्यक्‌दर्शनके उपायभूत निष्काम कर्मयोगकूं कर इसकारणतैं तूं इसकालविषे इसयुद्धकरणेवासतै उठ खडाहोउ इति। इहां (अज्ञानसंभूतम्) या पदकरिकै श्रीभगवान्नैं ता संशयके कारणका कथन

करया । और (इत्स्थं) या पदकरिकै ता संशयके आश्रयका कथन करया । ता कहणेकरिकै यह अर्थ बोधन करया । जैसे लोकविषे जिस शत्रुके कारणका तथा आश्रयका ज्ञान होवैहै सो शत्रु सुखेनही हनन करयाजावैहै । तैसे इस संशयरूप शत्रुके कारणके तथा आश्रयके ज्ञानहुएतैं अनंतर यह संशयरूप शत्रुभी ताके कारणादिकोंकी निवृत्ति करिकै सुखेन ही नाश कऱ्याजावैहै इति । और (हे भारत) या संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या, भरतवंशविषे उत्पन्न भया जो तूं अर्जुन है तिस तुम्हारा यह युद्धका उद्यम निष्फल नहीं है । किंतु अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञानका हेतु होणेतैं सफल है इति । इस चतुर्थ अध्यायके सर्व अर्थकूं संक्षेपतैं कथन करणेहारा यह श्लोक है । (स्वस्यानीशत्वबाधेन भक्तिश्रद्धे दृढीकृते । धीहेतुः कर्मनिष्ठा च हरिणेहोपसंहृता ॥) अर्थ यह—इस चतुर्थ अध्यायविषे श्रीभगवान्नैं आपणे अनीश्वरपणेकी निवृत्तिकरिकै आपणेविषे अर्जुनके भक्तिकूं तथा श्रद्धाकूं दृढ कऱ्या । तथा आत्मज्ञानका कारणरूप जा कर्मनिष्ठा है सा कर्मनिष्ठा उपसंहार करी ॥ ४२ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीभगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

तहां पूर्व तृतीय चतुर्थ या दोनों अध्यायोंकरिकै कर्म ज्ञान या दोनोंका निरूपण करया । अब पंचम षष्ठ या दोनों अध्यायोंकरिकै कर्म तथा अकर्मका त्यागरूप संन्यास या दोनोंका निरूपण करैहैं । तहां पूर्व तृतीय अध्यायविषे (ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते) इत्यादिक वचनोंकरिकै अर्जुननैं पूछा हुआ श्रीभगवान् ज्ञान, कर्म या दोनोंका विकल्पका तथा समुच्चयका असंभव कथनकरिकै अधिकारी पुरुषके भेदकी व्यवस्थाकरिकै (लोकेस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ) इत्यादिक वचनोंकरिकै निर्णय करताभया । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । अज्ञपुरुष है अधिकारी जिसका ऐसा जो कर्म है सो कर्म आत्मज्ञानके साथि समुच्चयकूं प्राप्त होवै नहीं । जैसे प्रकाशरूप तेज तथा अंधकाररूप तिमिर या दोनोंका परस्पर समुच्चय संभवै नहीं तैसे ज्ञान तथा कर्म या दोनोंकाभी परस्पर समुच्चय संभवै नहीं काहेतैं तिन कर्मोंका हेतुरूप जो भेदबुद्धि है ता भेदबुद्धिका

सो आत्मज्ञान नाश करणेहारा है। यातैं सो आत्मज्ञान तिन कर्मोंका विरोधीही है। और विरोधी पदार्थोंका एकदेशविषे एककालविषे एकठा होणा कदाचित्भी संभवता नहीं। और सो कर्म ता ज्ञानके साथि विकल्पकूंभी प्राप्त होवै नहीं काहेतैं जे दो पदार्थ एकही कार्यकी सिद्धि करणेवासतै होवैंहैं तिन पदार्थोंकाही परस्पर विकल्प होवैंहै। सो इहां प्रसंगविषे ज्ञान तथा कर्म यह दोनों एक कार्यकी सिद्धि वासवै हैं नहीं काहेतैं आत्मज्ञानका कार्य जो अज्ञानका नाश है सो अज्ञानका नाश कर्मकरिकै होइसकै नहीं किंतु केवल ज्ञानकरिकै ही सो अज्ञानका नाश होवैहै। तहां श्रुति–(तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय।) अर्थ यह–तिस आत्मादेवकूं जानिकरिकै यह अधिकारी पुरुष कार्यसहित अज्ञानकूं नाश करै है। तथा अविद्याकी निवृत्तिरूप मोक्षकी प्राप्तिवासतै आत्मज्ञानतैं विना दूसरा कोई मार्ग है नहीं। किंतु एक आत्मज्ञानही ता मोक्षकी प्राप्तिका मार्ग है इति। और ता आत्मज्ञानके उत्पन्नहुएतें अनंतर तिन कर्मोंका कार्य किंचित्मात्रभी अपेक्षित नहीं है–यह अर्थ (यावानर्थ उदपाने) इस श्लोकविषे पूर्व कथनकरि आयेहैं। इसप्रकार ज्ञानवान् पुरुषविषे कर्मोंके अनधिकारका निश्चयहुए प्रारब्धकर्मके वशतैं वृथाचेष्टारूपकरिकै तिन कर्मोंका अनुष्ठान होवै। अथवा तिन सर्वकर्मोंका संन्यास होवै। यह वार्त्ता निर्विवाद चतुर्थ अध्यायविषे निर्णय करी। और जिस पुरुषकूं आत्मज्ञानकी प्राप्ति नहीं भईहै ऐसे ज्ञानी पुरुषनैं तौ अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ता आत्मज्ञानकी उत्पत्ति करणेवासतै तिन कर्मोंकूं अवश्यकरिकै करणा। तहां श्रुति–(तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन इति।) इस श्रुतिनैं वेदाध्ययन यज्ञ दान तप इत्यादिक सर्वकर्मोंका अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा आत्मज्ञानविषे उपयोग कथनकऱ्याहै। और (सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते) इस वचनविषे श्रीभगवान्नैं आपही तिन सर्वकर्मोंका आत्मज्ञानविषे उपयोग कथन करयाहै और जैसे श्रुतिनैं आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै कर्मोंका अनुष्ठान कथन करयाहै तैसे श्रुतिनैं आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै सर्वकर्मोंका त्यागरूप संन्यासभी कथन कऱ्याहै। तहां श्रुति–(एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छंतः प्रव्रजंति। शांतो दांत उपरतस्तितिक्षः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्येत्।) अर्थ यह–संन्यासी पुरुषोंकूं प्राप्त होणेयोग्य जो यह आत्मारूप लोक है ता आत्मारूप लोकके प्राप्तिकी इच्छा

करतेहुए यह अधिकारी जन सर्वकर्मोंके त्यागरूप संन्यासकूं करैंहैं इति । और यह अधिकारी पुरुष शम दम उपरति तितिक्षा श्रद्धा समाधान इस षट् संपत्तिसे युक्त होइकै आपणे हृदयदेशविषे प्रत्यक्‌आत्माकूं देखै इति । इहां उपरति शब्द-करिकै संन्यासकाही ग्रहण कऱ्याहै । इत्यादिक श्रुतियोंनैं सर्वकर्मोंके संन्यास-कूंही आत्मज्ञानका हेतु कह्या है । तहां जैसे ज्ञान कर्म या दोनोंका समुच्चय संभवै नहीं तैसे कर्म तथा कर्मोंका त्याग इन दोनोंकाभी समुच्चय संभवै नहीं । काहेतैं जे पदार्थ एकही कालविषे एकठे स्थित होवैं हैं तिन पदार्थोंकाही परस्पर समुच्चय होवैहै भिन्नदेशकाल वृत्ति पदार्थोंका परस्पर समुच्चय संभवै नहीं और कर्म तथा कर्मोंका त्याग यह दोनोंभी तेज तिमिरकी न्याईं परस्पर विरुद्ध हैं यातैं तिन दो-नोंका एकही कालविषे एकही वर्तणा संभवै नहीं । यातैं कर्म तथा कर्मोंका त्याग या दोनोंका समुच्चय संभवता नहीं । शंका—कर्म तथा कर्मोंका त्याग या दोनोंका आत्म-ज्ञानही फल है यातैं एकार्थता होणेतैं तिन दोनोंका विकल्प किसवासतै नहीं होवै ? समाधान—आत्मज्ञानकी उत्पत्ति करणेविषे कर्मका तथा कर्मके त्यागका द्वार भिन्न भिन्नही है । यातैं तिन दोनोंका विकल्पभी संभवै नहीं । जहां दो पदार्थोंका एक कार्यकी उत्पत्ति करणेविषे एकही द्वार होवैहै तहांही तिन दोनों पदार्थोंका विकल्प होवैहै । तहां आत्मज्ञानकी उत्पत्तिविषे प्रतिबंधक जे पापकर्म हैं तिन पापकर्मोंकी निवृत्ति नित्यनैमित्तिक कर्मोंकरिकैही होवैहै । यातैं तिन नित्यनैमि-त्तिक कर्मोंका तौ तिन पापोंका नाशरूप अदृष्टही द्वार है । और जिस पुरुषका चित्त लौकिक वैदिक कर्मोंकरिकै अत्यंत विक्षिप्त है तिस पुरुषकूंभी आत्म-ज्ञानकी प्राप्ति होवै नहीं । और सा विक्षेपकी निवृत्ति संन्यासकरिकै ही होवैहै । यातैं ता कर्मोंके त्यागरूप संन्यासका तौ विक्षेपकी निवृत्तिकरिकै आत्मविचारके अवसरकी प्राप्तिरूप दृष्टही द्वार है । यातैं एक आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै हुएभी ते कर्म तथा कर्मोंका त्याग यह दोनों ता अदृष्ट तथा दृष्ट द्वारके भेदकरिकै विकल्पकूं प्राप्त होवैं नहीं । यातैं समुच्चयके तथा विकल्पके असंभवहुए ते कर्म तथा तिन कर्मोंका त्यागरूप संन्यास यह दोनों यथाक्रमतैंही अनुष्ठान करणे । ता क्रमपक्ष-विषेभी संन्यासतैं अनंतर कर्मोंका अनुष्ठान करणा । अथवा कर्मोंके अनुष्ठानतैं अनंतर संन्यास करणा । तहां संन्यासतैं अनंतर कर्मोंका अनुष्ठान करणा यह प्रथम पक्ष तौ संभवै नहीं काहेतैं यह अधिकारी पुरुष जो कदाचित् ता संन्यासतैं अनंतर

पुनः कर्मोंका अनुष्ठान करैगा तो परित्याग करेहुए पूर्वले आश्रमका पुनः अंगीकार करणा होवैगा । ताकरिकै सो संन्यासी आरूढ पतित होवैगा । और सो संन्यासी तिन कर्मोंका अधिकारीभी है नहीं यातैं संन्यासकूं धारणकरिकै सो पुरुष जो पुनः कर्मोंकूं करैगा तो पूर्वग्रहण कर्याहुआ संन्यासही ताका व्यर्थ होवैगा। जिस कारणतैं सो संन्यास कर्मोंकी न्याई अदृष्टार्थक नहीं है किंतु विक्षेपकी निवृत्तिरूप दृष्टार्थकही है । और प्रथम करेहुए संन्यासकरिकैही तिस पुरुषकूं ज्ञानके अधिकारकी प्राप्ति होजावैहै । तिस संन्यासतैं अनंतर पुनः कर्मोंका अनुष्ठान करणा व्यर्थही है यातैं संन्यासतैं अनंतर इस अधिकारी पुरुषनैं कर्मोंका अनुष्ठान कदाचित्भी नहीं करणा किंतु इस अधिकारी पुरुषनैं प्रथम भगवदर्पण बुद्धिकरिकै निष्काम कर्मोंका अनुष्ठान करणा । ताकरिकै अंतःकरणकी शुद्धिहुएतैं अनंत तीव्र वैराग्यकरिकै जबी दृढआत्मज्ञानकी इच्छा होवै जिस इच्छाकूं श्रुतिविषे विविदिषा शब्दकरिकै कथन कर्याहै । तबीही वेदांतवाक्योंके श्रवणमननादिरूप विचार करणेवासतै इस अधिकारी पुरुषनैं सो संन्यास करणा यहही श्रीकृष्णभगवान्का मत है तथा सर्ववेदोंका मत है। इस आपणे मतकूं श्रीभगवान् (न कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते) इस वचनकरिकै पूर्व कथन करताभयाहै । और इसी आपणे मतकूं श्रीभगवान्(आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते । योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते) इस श्लोककरिकै आगे कथन करैगा। इहां योगशब्दकरिकै तीव्र वैराग्यपूर्वक विविदिषाका ग्रहण करणा । यह वार्त्ता वार्तिककारनेभी कथनकरीहै । तहां श्लोक–(प्रत्यग्विविदिषासिद्ध्यै वेदानुवचनादयः । ब्रह्मावाप्त्यै तु तत्त्याग ईप्सतीति श्रुतेर्बलात)अर्थ यह–(तमेतं वेदानुवचनेन) इस श्रुतिनै विधान करे जे वेदाध्ययन यज्ञ दान तप आदिक कर्महैं ते वेदाध्ययनादिक कर्म तौ प्रत्यक्आत्माके जानणेकी इच्छारूप विविदिषाकी प्राप्तिवासतैही हैं । और प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मकी प्राप्तिवासतै तौ (एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छंतः प्रव्रजंति) इस श्रुतिकरिकै प्रतिपादित सर्वकर्मोंका त्यागही है इति । तहां स्मृतिभी–(कषाये कर्मभिः पक्के ततो ज्ञानं प्रवर्त्तते) अर्थ यह–निष्कामकर्मोंके अनुष्ठानकरिकै अंतःकरणके शुद्धहुएतैं अनंतर सर्वकर्मोंके त्यागतैं आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवैहै इति। तहां सो आत्मज्ञानकी प्राप्तिका हेतुभूत विविदिषासंन्यासभी, क्रमसंन्यास अक्रमसंन्यास या भेदकरिकै दो प्रकारका होवैहै । तहां प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रमकूं धारण करणा तिसतैं अनंतर गृहस्थ आश्र-

मकूं धारण करणा । तिसतैं अनंतर वानप्रस्थ आश्रमकूं धारण करणा । तिसतैं अनंतर चतुर्थ अवस्थाविषे संन्यास आश्रमकूं धारण करणा । याका नाम क्रम-संन्यास है । और संसारतैं अत्यंततीव्र वैराग्यके प्राप्तहुए ब्रह्मचर्यादिक आश्रमोंतैं अनंतरही ता संन्यासआश्रमकूं धारण करणा याका नाम अक्रमसंन्यास है । तहां श्रुति-(ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेद्गृहाद्वनीभूत्वा प्रव्रजेत् । यदिवेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्गृहाद्वा वनाद्वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्) अर्थ यह-अधिकारी पुरुष ब्रह्म-चर्यकी समाप्ति करिकै गृहस्थ होवै ता गृहस्थआश्रमतैं अनंतर वानप्रस्थ होइकै संन्यासकूं ग्रहणकरै इति । और जो कदाचित इस अधिकारी पुरुषकूं पूर्वले पुण्य-कर्मोंके प्रभावतैं प्रथमही तीव्र वैराग्यकी प्राप्ति होवै तौ यह अधिकारी पुरुष ब्रह्मचर्य आश्रमतैं अनंतरही संन्यास आश्रमकूं धारणकरै । अथवा गृहस्थ आश्रमतैं अनंतर संन्यास आश्रमकूं धारण करै । अथवा वानप्रस्थ आश्रमतैं अनंतर संन्यास आश्रमकूं धारणकरै । याकेविषे किंचित्मात्रभी क्रम नहीं । किंतु जिसदिनविषे यह अधिकारी पुरुष तीव्र वैराग्यकूं प्राप्त होवै तिसी दिनविषे संन्यासकूं करै इति । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । एकही अज्ञानी मुमुक्षुजनकूं वैराग्यतैं रहित दशाविषे तौ निष्काम कर्मोंकाही अनुष्ठान करणेयोग्य है । और तिसीही अज्ञानी मुमुक्षुजनकूं वैराग्यदशा-विषे तिन कर्मोंका संन्यासही करणे योग्य है । सोईही संन्यास श्रवणमननके करणेवासतै अवसरकी प्राप्तिकरिकै तिस पुरुषके ज्ञानवासतै होवै है । इसप्रकार अविरक्ततादशा तथा विरक्ततादशा या दोनों दशावोंके भेदकरिकै एकही अज्ञानी मुमुक्षुजनके प्रति कर्मोंकी कर्त्तव्यता तथा तिन कर्मोंके त्यागरूप संन्यासकी कर्त्त-व्यता कहणेवासतै श्रीभगवान्नैं इस पंचम अध्यायका तथा वक्ष्यमाण षष्ठ अध्यायका प्रारंभ कऱ्या है । और आत्मज्ञानकी प्राप्तितैं अनंतर जीवन्मुक्तिके आनंदवासतै करणे योग्य जो विद्वत्संन्यास है सो विद्वत्संन्यास तौ आत्मज्ञानके बलतैं अर्थतैंही सिद्ध है । यातैं ताकेविषे संदेहके अभाव होणेतैं ता विद्वत्संन्यासका इहां विचार कऱ्या नहीं । किंतु विविदिषासंन्यासकाही इहां विचार कऱ्याहै इति । इस पूर्व उक्त श्रीभगवान्के अभिप्रायकूं न जानिकरिकै सो अर्जुन याप्रकारके संशयकूं प्राप्त होता भया । श्रीभगवान्नैं एकही अज्ञानी मुमुक्षुके प्रति आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै कर्मोंका तथा तिन कर्मोंके त्यागका विधान कऱ्याहै । और ते कर्म तथा तिन कर्मोंका त्याग यह दोनों तेज तिमिरकी न्याईं परस्पर विरोधी होणेतैं एक-

कालविषे एक अधिकारी पुरुषकरिकै अनुष्ठान करेजावैं नहीं । यातैं मैं मुमुक्षु-अर्जुननैं इसकालविषे ते कर्मही करणे योग्य हैं । अथवा तिन कर्मोंका त्याग-रूप संन्यासही करणेयोग्य है । याप्रकारके संशयकरिकै युक्तहुआ सो अर्जुन श्रीभगवान्के प्रति प्रश्न करैहै–

अर्जुन उवाच ।

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ॥
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) संन्यासम् । कर्मणाम् । कृष्ण । पुनः । योगम् । च । शंससि । यत् । श्रेयः । एतयोः । एकम् । तत् । मे । ब्रूहि । सुनि-श्चितम् ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे कृष्ण भगवन् ! आप कर्मोंके संन्यासकूंभी कथनकरतेहो तथा पुनः कर्मयोगकूं भी कथनकरतेहो इन दोनोंविषे जो एक श्रेष्ठ होवै सो हमारे प्रति निश्चयकरिकै कथनकरो ॥ १ ॥

भा० टी०–हे कृष्ण ! क्या हे सत्यआनंदरूप ! अथवा हे भक्तजनोंके दुःखकूं नष्ट करणेहारा ! (यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति) इस श्रुतिकरिकै तथा (कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत९ समाः) इस श्रुतिकरिकै विधानकरे जे नित्यनैमित्तिक कर्म हैं, तिन कर्मोंके त्यागरूप संन्यासकूंभी आप अज्ञानी मुमुक्षुजनके प्रति (एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छंतः प्रव्रजंति) इस श्रुतिवचनकरिकै अथवा (निराशीर्यत-चित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः । शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्) इस पूर्व उक्त गीतावचनकरिकै कथन करतेहो तथा तिस कर्मके त्यागरूप संन्यासतैं अत्यंत विरुद्ध जो कर्मोंका अनुष्ठानरूप कर्मयोग है तिस कर्मयोगकूंभी आप तिसी अज्ञानीमुमुक्षुजनके प्रति (तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन) इस श्रुतिवचनकरिकै अथवा (छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत) इस पूर्व उक्त गीतावचनकरिकै कथन करतेहो । इहां यद्यपि कर्मोंके संन्यासकूं तथा कर्मयोगकूं आप इस गीतावचनकरिकै कथन करतेहो इतना-मात्रही कहणा संभवैहै । इस श्रुतिवचनकरिकै कहतेभयेहो यह कहणा संभवता नहीं । तथापि (पुनर्योगं च शंससि) या वचनविषे स्थित जो पुनः यह शब्द

है ता पुनः शब्दकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन कऱ्याहै । जैसे अबी इस गीताके वचनोंकारिकै एकही मुमुक्षुजनके प्रति कर्मोंके संन्यासकूं तथा कर्मयोगकूं कथनकरोहो तैसे सृष्टिके आदिकालविषे वेदोंके कर्त्ता आपनैं तिन वेदोंविषेभी इसी प्रकार कथनकरयाहै इति । हे भगवन् ! इसप्रकार एकही अज्ञानी मुमुक्षु-जनके प्रति आपनैं कर्मोंका तथा तिन कर्मोंके त्यागका दोनोंका विधानकऱ्याहै सो तिन दोनोंका एकही कालविषे एकही अधिकारी पुरुषनैं अनुष्ठान करणा संभवता नहीं । जैसे एकही कालविषे एकही पुरुषविषे स्थिति तथा गमन यह दोनों संभवते नहीं । यातैं कर्म तथा कर्मोंका त्यागरूप संन्यास या दोनोंविषे जिस एक कर्मकूं अथवा संन्यासकूं आप अत्यंत श्रेष्ठ मानते होवौ तिस कर्मयोगकूं अथवा संन्यासकूं आप निश्चयकरिकै हमारे प्रति कथनकरो । तिस आपके निश्चितमतकूं मैं अर्जुन आपणे श्रेयका साधनरूप मानिकै अनुष्ठान करौं ॥ १ ॥

इसप्रकारके अर्जुनके प्रश्नकूं श्रवणकारिकै श्रीभगवान् अब ता प्रश्नके उत्तरकूं कथन करैंहैं-

श्रीभगवानुवाच ।

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ॥
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) संन्यासः । कर्मयोगः । च । निःश्रेयसकरौ । उभौ । तयोः । तु । कर्मसंन्यासात् । कर्मयोगः । विशिष्यते ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! संन्यास तथा कर्मयोग यह दोनों मोक्षके हेतु हैं तिन दोनोंविषे भी कर्मके संन्यासतैं कर्मयोगही श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! शास्त्रकी विधिपूर्वक सर्वकर्मोंका त्यागरूप जो संन्यास है तथा आपणे आपणे वर्णआश्रमके अनुसार नित्यनैमित्तिक कर्मोंका अनुष्ठान-रूप जो कर्मयोग है यह दोनों आत्मज्ञानकी उत्पत्तिका हेतु होणेतैं मोक्षकीही प्राप्ति करणेहारे हैं । तथापि तिन दोनोंविषे अंतःकरणकी शुद्धितैं रहित अनधि-कारी पुरुषनैं करा जो कर्मोंका संन्यास है ता संन्यासतैं सो कर्मयोगही श्रेष्ठ है । काहेतैं अशुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषनैं करया जो संन्यास है सो संन्यास ता अशुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषविषे आत्मज्ञानके अधिकारीपणेका संपादक होवै नहीं ।

और सो निष्कामकर्मयोग तौ इस पुरुषविषे ता आत्मज्ञानके अधिकारीपणेका संपादकही होवै है। यातैं सो कर्मयोग ता संन्यासतैं श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

अब अधिकारी पुरुषोंकूं ता कर्मयोगविषे प्रवृत्त करणेवासतै तीन श्लोकों-करिकै श्रीभगवान् ता निष्कामकर्मयोगकी स्तुतिकूं करैहैं–

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ॥
निर्द्वंद्वो हि महाबाहो सुखं बंधात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) ज्ञेयः । सः । नित्यसंन्यासी । यः । न । द्वेष्टि । न । कांक्षति । निर्द्वंद्वः । हि । महाबाहो । सुखम् । बंधात् । प्रमुच्यते ॥३॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष नहीं तौ द्वेष करैहै तथा नहीं स्वर्गादिक फलोंकी इच्छा करै है तथा रागद्वेषतैं रहित है सो पुरुष नित्यही संन्यासी जानना जिसकारणतैं सो पुरुष सुखपूर्वकही बंधतैं मुक्त होवैहै ॥ ३ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो पुरुष भगवत्अर्पण बुद्धिकरिकै करेहुए नित्यनैमित्तिककर्मोंविषे यह सर्वकर्म निष्फलही हैं ऐसी निष्फलपणेकी शंकाकरिकै द्वेष करता नहीं। तथा जो अधिकारी पुरुष तिन कर्मोंके स्वर्गादिफलोंकी इच्छा करता नहीं। तथा जो अधिकारी पुरुष रागद्वेषतैं रहित है ऐसा अधिकारी पुरुष आपणे नित्यनैमित्तिककर्मोंविषे प्रवृत्तहुआभी नित्यही संन्यासी जानणा। जिसकारणतैं सो निष्कामकर्मोंकूं करणेहारा अधिकारी पुरुष अंतःकरणकी अशुद्धिरूप ज्ञानके प्रतिबंधतैं नित्यअनित्यवस्तुके विवेक करिकै अनायासतैंही मुक्त होवैहै अर्थात् शुद्धअंतःकरणवाला होवैहै ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! जो पुरुष आपणे नित्यनैमित्तिक कर्मोंविषे प्रवृत्त हुआहै सो पुरुष किसप्रकार नित्यही संन्यासी जानणा किंतु ता कर्मकर्त्तापुरुषविषे सो संन्यासी-पणा संभवता नहीं काहेतैं नित्यनैमित्तिककर्म तथा तिन कर्मोंका त्यागरूप संन्यास यह दोनों तेजतिमिरकी न्याईं स्वरूपतैंही विरोधी हैं। जहां कर्मीपणा रहैहै तहां संन्यासीपणा रहै नहीं। और जहां संन्यासीपणा रहैहै तहां कर्मीपणा रहै नहीं। और जो आप यह वचन कहो कि, कर्म तथा कर्मोंका संन्यास या दोनों-का फल एकही है यातैं ता निष्कामकर्मोंके कर्त्ता पुरुषविषे सो संन्यासीपणा संभव होइसकैहै। सो यह आपका कहणाभी संभवता नहीं। काहेतैं जे साधन स्वरूपतैं

विरुद्ध होवैं हैं तिन साधनोंके फलविषेभी विरोधही होवैहै तिन विरुद्ध साधनोंकें फलकी एकता संभवै नहीं । यातैं कर्मयोग तथा कर्मोंका त्यागरूप संन्यास यह दोनों एक निःश्रेयसकी प्राप्ति करणेहारेहैं, यह पूर्व उक्त आपका वचन असंगतही है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं-

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदंति न पण्डिताः ॥
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) सांख्ययोगौ । पृथक् । बालाः । प्रवदंति । न । पण्डिताः । एकम् । अपि । आस्थितः । सम्यक् । उभयोः । विंदते । फलम् ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! विचाररहीनपुरुष संन्यास कर्मयोग दोनोंकूं विरुद्ध फलवाला कथन करैहै विचारवान् पंडित ऐसा नहीं कथनकरैहै जिसकारणतैं तिन दोनोंविषे एककूं भी भलीप्रकार करताहुआ यह पुरुष तिन दोनोंके निःश्रेयसरूप फलकूं प्राप्त होवैहै ॥ ४ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! संशयविपरीतभावनातैं रहित जा यथार्थ आत्माकार बुद्धि है ताका नाम संख्या है ता आत्माकारबुद्धिरूप संख्याकी जो प्राप्ति करै है ताका नाम सांख्य है । ऐसा आत्मज्ञानका अंतरंग साधन होणेतैं संन्यासही है । ऐसा सांख्यनामा संन्यास तथा पूर्व कथनकऱ्या कर्मयोग यह दोनों भिन्नभिन्न फलके हेतु हैं याप्रकारके वचनकूं शास्त्रअर्थके विवेकविज्ञानतैं रहित पुरुषही कथन करैं हैं शास्त्रअर्थके विवेकविज्ञानवाले पंडित पुरुष ता वचनकूं कथन करते नहीं । शंका-हे भगवन् ! ते पंडितपुरुष जो इसप्रकारका वचन नहीं कहते तौ तिन पंडितपुरुषोंका कौन मत है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन पंडितपुरुषोंके मतका कथन करैं हैं (एकमप्यास्थितः इति) हे अर्जुन ! तिन पंडितपुरुषोंका तौ यह मत है-ते निष्कामकर्म तथा तिन कर्मोंका संन्यास या दोनोंविषे एकही कर्मयोगकूं अथवा संन्यासकूं जो पुरुष आपणे अधिकारके अनुसार शास्त्रकी विधिपूर्वक करै है सो अधिकारी पुरुष आत्मज्ञानकी उत्पत्तिद्वारा तिन दोनोंके एकही मोक्षरूप फलकूं प्राप्त होवैहै । यातैं ता निष्कामकर्मकर्त्ता पुरुषविषे सो संन्यासीपणा संभव होइसकै है ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! संन्यास तथा कर्मयोग या दोनोंविषे एकके अनुष्ठान करणेतैं यह अधिकारी पुरुष तिन दोनोंके फलकूं किसप्रकार प्राप्त होवैहै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं—

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ॥
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ ५॥

(पदच्छेदः) यत्। सांख्यैः। प्राप्यते। स्थानम्। तत्। योगैः। अपि। गम्यते। एकम्। सांख्यम्। च। योगम्। च। यः। पश्यति। सः। पश्यति॥५॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सांख्यपुरुषोंनैं जिस स्थानकूं प्राप्त होईताहै तिस स्थानकूं योगिपुरुषोंनैं भी प्राप्त होईताहै यातैं जो अधिकारी पुरुष सांख्यकूं तथा योगकूं एकरूप देखताहै सोईही पुरुष सम्यक्‌देखैहै ॥ ५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! ज्ञाननिष्ठाकरिकै युक्त जे संन्यासी हैं ते संन्यासी इस जन्मविषे कर्मोंके अनुष्ठानतैं रहित हुएभी पूर्वजन्मके कर्मोंकरिकै शुद्धअंतः-करणवालेहैं । ऐसे शुद्धअंतःकरणवाले संन्यासियोंनैं श्रवणमननादि पूर्वक ज्ञान-निष्ठाकरिकै जिस मोक्षरूप स्थानकूं प्राप्त होईताहै । इहां जिसविषे स्थित हुआ यह विद्वान् पुरुष कदाचितभी पुनरावृत्तिकूं प्राप्त होवै नहीं ताका नाम स्थान है ऐसा स्थानरूप अविद्याकी निवृत्तिपूर्वक अद्वितीय निर्गुणब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप मोक्षही है ता मोक्षतैं भिन्न जितने ब्रह्मलोक वैकुंठलोक गोलोक स्वर्गलोक इत्यादिक लोक हैं तिन लोकोंकूं प्राप्तहुआभी यह पुरुष पुनः जन्ममरणादिरूप आवृत्तिकूं प्राप्त होवैहै। यह वार्त्ता श्रीभगवान्‌नैं आपही (आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽर्जुन) इस वचनकरिकै स्पष्ट करीहै । यातैं तिन ब्रह्मलोकादिकोंका इहां स्थान शब्द-करिकै ग्रहण होइसकै नहीं । ऐसा ब्रह्मरूप मोक्ष यद्यपि इस अधिकारी पुरुषकूं नित्यही प्राप्त है तथापि अज्ञानकी आवरणशक्तिकरिकै अप्राप्तहुएकी न्याईं होइ रह्याहै महावाक्यजन्य तत्त्वसाक्षात्कारकरिकै जबी ता आवरणकी निवृत्ति होवैहै तबी सो मोक्ष प्राप्तहुएकी न्याईं प्राप्त कह्याजावै है । जैसे कंठविषे स्थित विस्म-रणहुए भूषणकी ताके ज्ञानकरिकै पुनः प्राप्ति कही जावैहै इति । और फलकी इच्छातैं रहित होइकै केवल भगवत्—अर्पणबुद्धिकरिकै करेहुए जे शास्त्रविहित नित्यनैमित्तिक कर्म हैं तिन कर्मोंका नाम योग है । सो

निष्कामकर्मरूप योग जिन अधिकारी पुरुषोंविषे विद्यमान होवै तिन अधिकारी पुरुषोंका नाम योगी है । ऐसे योगी पुरुषोंनैंभी इस जन्मविषे अथवा दूसरे जन्मविषे अंतःकरणकी शुद्धिकरिकै संन्यासपूर्वक श्रवणादिकोंके करिकै प्राप्त भई जा ज्ञाननिष्ठा है ता ज्ञाननिष्ठा करिकै तिसी मोक्षरूप स्थानकूं प्राप्त होईता है । इसप्रकार सर्वकर्मोंके त्यागरूप संन्यासका तथा निष्कामकर्मयोगका एकही मोक्षरूप फल है । यातैं जो अधिकारी पुरुष ता सांख्यनामा संन्यासकूं तथा निष्कामकर्मयोगकूं एकरूपकरिकै देखैहै, सो अधिकारी पुरुषही यथार्थ देखैहै । और जो पुरुष तिन दोनोंकूं भिन्नभिन्न देखै है सो पुरुष यथार्थदर्शी कह्या जावै नहीं किंतु सो पुरुष विपरीतदर्शी कह्याजावैहै । इहां श्रीभगवान्का यह अभिप्राय है । जिन अधिकारी पुरुषोंविषे अबी संन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठा देखणेमैं आवैहै और कर्मनिष्ठा देखणेविषे आवती नहीं तिन पुरुषोंविषे ता संन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठारूप लिंगकरिकै पूर्व अनेकजन्मोंविषे भगवत्अर्पित कर्मनिष्ठा अनुमान करीजावै है । काहेतैं कारणतैं विना कार्यकी उत्पत्ति होवै नहीं सो कारण जो कदाचित् प्रत्यक्ष प्रतीत नहीं होता होवै तौ ता कार्यरूप लिंगतैं ता कारणका अनुमान कऱ्या जावैहै । जैसे वर्षाका कार्यरूप जा नदीके जलकी वृद्धि है ता जलकी वृद्धिरूप हेतुतैं देशांतरविषे वर्षारूप कारणका अनुमान कऱ्या जावै है। तैसे इस जन्मके संन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठारूप हेतुकरिकै इसतैं पूर्वजन्मोंविषे सा कर्मनिष्ठा अनुमान करीजावैहै । और जिन अधिकारी पुरुषोंविषे अबी भगवत्-अर्पित कर्मनिष्ठा देखणेमैं आवैहै और संन्यासपूर्वक ज्ञानतिष्ठा देखणेमैं आवती नहीं तिन पुरुषोंविषे ता कर्मनिष्ठारूप लिंगकरिकै आगे होणेहारी संन्यास-पूर्वक ज्ञाननिष्ठा अनुमान करी जावै है ।काहेतैं जहां कारणसामग्री होवै है तहां कार्य अवश्यकरिकै उत्पन्न होवैहै । यातैं ता कारणसामग्रीतैं भावी कार्यका अनुमान कऱ्याजावैहै। जैसे मेघोंकी रचनाविशेषकरिकै भावी वर्षाका अनुमान होवै है । तैसे ता भगवत् अर्पित कर्मनिष्ठाकरिकै भावी ज्ञाननिष्ठा अनुमान करी जावै है । यातैं अज्ञानीमुमुक्षुजननैं अंतःकरणकी शुद्धिवासतै प्रथम निष्कामकर्मही करणे, संन्यास प्रथम करणा नहीं । सो संन्यास तौ तीव्र वैराग्यके प्राप्तहुए आपेही सिद्ध होवैगा ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! ज्ञाननिष्ठाका हेतु होणेतैं सो संन्यास तौ अवश्यकरिकै करणे योग्यही है । यातैं जैसे शुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषनैं ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिवासतै

सो संन्यास करीता है तैसे अशुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषनैंभी सो संन्यासही प्रथम किसवासतै नहीं करीताहै । किंतु ता अशुद्धअंतःकरणवाले पुरुषनैंभी ता ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिवासतै प्रथम संन्यासही कऱ्या चाहिये । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं–

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ॥
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) संन्यासः । तु । महाबाहो । दुःखम् । आप्तुम् । अयोगतः । योगयुक्तः । मुनिः । ब्रह्म । नचिरेण । अधिगच्छति ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! कर्मयोगतैं विना कऱ्याहुआ संन्यास तौ दुःखकूंही प्राप्त करैहै और कर्मयोगयुक्त पुरुष तौ संन्यासी होइकै ब्रह्मकूं शीघ्रंही साक्षात्कार करैहै ॥ ६ ॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन ! अंतःकरणकी शुद्धि करणेहारे जे शास्त्रविहित नित्यनैमित्तिक कर्म हैं तिन कर्मोंकूं न करिकै जो पुरुष केवल हठमात्रतैं प्रथम संन्यासकूंही करै है सो हठपूर्वक कऱ्या हुआ संन्यास इस पुरुषकूं केवल दुःखकीही प्राप्ति करै है । ता संन्यासतैं इस पुरुषकूं किंचितमात्रभी सुख होवै नहीं । काहेतैं ता पुरुषका अंतःकरण शुद्ध हुआ नहीं । यातैं संन्यासका फलरूप जा ज्ञाननिष्ठा है सा ज्ञाननिष्ठा तौ ता अशुद्धअंतःकरणवाले संन्यासीकूं कदाचित्‌भी प्राप्त होवै नहीं । और जे निष्कामकर्म अंतःकरणकी शुद्धि करै हैं तिन कर्मोंके करणेविषे ता संन्यासीका अधिकार है नहीं । यातैं कर्मनिष्ठा तथा ज्ञाननिष्ठा या दोनों निष्ठावोंतैं भ्रष्ट होणेतैं सो अशुद्धअंतःकरणवाला संन्यासी महान् संकटकूं प्राप्तहोवैहै इति । और जो पुरुष अंतःकरणकी शुद्धि करणेहारे निष्कामकर्मयोगकारिकै युक्तहै सो पुरुष तौ शुद्ध अंतःकरणवाला होणेतैं मननशील संन्यासी होइकै सत् चित् आनंदस्वरूप प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मकूं शीघ्रही साक्षात्कार करै है । यह सर्व अर्थ (न कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते । न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥) इस श्लोककरिकै पूर्वही कथन करि आये हैं यातैं कर्मयोग तथा कर्मोंका संन्यास या दोनोंकूं एक फलकी हेतुताके हुएभी अशुद्धअंतःकरणवाले पुरुषकृत संन्यासतैं सो कर्मयोग अत्यंतश्रेष्ठ है यह जो पूर्व कथन कऱ्या सो युक्त है ॥ ६ ॥

हे भगवन्! (कर्मणा बध्यते जंतुः) इत्यादिक वचनोंविषे तिन कर्मोंकूं बंधनकाही हेतु कथन कऱ्या है। यातैं कर्मयोगयुक्तपुरुष ब्रह्मकूं साक्षात्कार करैहै यह आपका वचन असंगत है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं—

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेंद्रियः॥
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥ ७॥

(पदच्छेदः) योगयुक्तः। विशुद्धात्मा। विजितात्मा। जितेंद्रियः। सर्वभूतात्मभूतात्मा। कुर्वन्। अपि। न। लिप्यते॥ ७॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जो पुरुष योगकरिकै युक्त है तथा विशुद्धआत्मा है तथा विजितात्मा है तथा जितइंद्रिय है तथा सर्वभूतोंका आत्मारूप है आत्मा जिसका ऐसा पुरुष तिन कर्मोंकूं करताहुआ भी नहीं लिपायमान होवै है॥ ७॥

भा० टी०—हे अर्जुन! भगवत् अर्पणता तथा फलकी इच्छातैं रहितपणा इत्यादिक गुणोंकरिकै युक्त जो शास्त्रविहित नित्यनैमित्तिक कर्महै ताका नाम योगहै ता योगकरिकै युक्त जो पुरुष है सो योगयुक्त पुरुष प्रथम विशुद्धात्मा होवैहै। इहां विशुद्धहै क्या रज तमतैं रहित है आत्मा क्या अंतःकरण जिसका ताका नाम विशुद्धात्मा है। ऐसा विशुद्धात्मा होइकै यह पुरुष विजितात्मा होवै। इहां आत्मा नाम देहका है सो देह वश कऱ्या है जिसनैं ताकु नाम विजितात्मा है। ऐसा विजित आत्मा होइकै यह अधिकारी पुरुष जितेंद्रिय होवैहै। इहां आपणे वश करेहैं सर्व बाह्यइंद्रिय जिसनैं ताका नाम जितेंद्रिय है। इहां (विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेंद्रियः) या तीन पदोंकरिकै श्रीभगवान्नैं यथाक्रमतैं मनोदंड, कायदंड, वागूदंड या तीन दंडोंयुक्त त्रिदंडीका कथनकऱ्या। यह वार्ता मनुनैंभी कथनकरी है। तहां श्लोक—(वाग्दंडोथ मनोदंडः कायदंडस्तथैव च। यस्यैते नियता दंडाः स त्रिदंडीति कथ्यते॥) अर्थ यह—वागूदंड, मनोदंड, कायदंड यह तीन दंड जिस पुरुषकूं नियमपूर्वक हैं सो पुरुष त्रिदंडी या नामकरिकै कह्याजावै है इति। इहां वाक् शब्द सर्व बाह्यइंद्रियोंका उपलक्षक है। ऐसे त्रिदंडी पुरुषकूं सर्वात्मज्ञान अवश्यकरिकै होवैहै इस अर्थकूं श्रीभगवान् कहैं हैं (सर्वभूतात्मभूतात्मा इति) ब्रह्मातैं आदिलेके स्तंबपर्यंत जितनेक चेतनभूत हैं तथा आकाशादिक जितनेक अचेतनभूत हैं, तिन चेतन अचेतनरूप सर्वभूतोंका स्वरूपभूत है प्रत्यक् चेतनआत्मा जिसका

ताका नाम सर्वभूतात्मा है। तात्पर्य यह—जैसे कुंडलकंकणादिक भूषणोंका सुवर्णही वास्तवस्वरूप होवैहै तैसे सर्व जडअजडप्रपंचका मैंही वास्तवस्वरूप हूं याप्रकार जो पुरुष सर्वप्रपंचकूं आपणा आत्मारूपकरिकै देखैहै सो परमार्थदर्शी विद्वान् पुरुष अन्य पुरुषोंकी दृष्टिकरिकै तिन कर्मोंकूं करताहुआभी कर्तृत्वअभिमानके अभावतैं तिन कर्मोंकरिकै लिपायमान होवै नहीं। अर्थात् ते कर्म तिस विद्वान् पुरुषकूं बंधकी प्राप्ति करैं नहीं। जिसकारणतैं स्वदृष्टिकरिकै तिस विद्वान् पुरुषविषे सो कर्मोंका करतापणा है नहीं इति। इहां किसी टीकाविषे (सर्वभूतात्मभूतात्मा) इस पदका यह अर्थ कथन कऱ्याहै। सर्व यह शब्द आकाशादिक जड प्रपंचका वाचक है और आत्म यह शब्द अजडप्रपंचका वाचक है और सर्व आत्म या दोनों शब्दोंतैं उत्तर जो भूत यह शब्द है सो भूतशब्द स्वरूपका वाचक है। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया सर्व भूत तथा आत्मभूत है आत्मा जिसका ताका नाम सर्वभूतात्मभूतात्मा है। याप्रकारका अर्थ जो नहीं अंगीकार करिये किंतु सर्वभूतोंका आत्माभूत है आत्मा जिसका ताका नाम सर्वभूतात्मभूतात्मा है याप्रकारका जो अर्थ अंगीकार करिये तौ सर्वभूतात्मा इतनेमात्र कहणेकरिकैही वांछित अर्थकी सिद्धि होइसकै है। यातैं आत्मभूत यह पद अधिक होवैगा इति। इसप्रकार प्रथम व्याख्यानविषे आत्मभूत इस पदकी अधिकतारूप दूषण देकरिकै किसी टीकाकारनैं यह अर्थ कथनकरयाहै। सो आत्मभूत यापदकी अधिकतारूप दूषण इस टीकाविषेभी प्राप्तहोवैहै। काहेतैं सर्व इस पदकरिकैही संपूर्ण जडअजड प्रपंचका ग्रहण होसकै है। ता सर्वपदका संकोचकरिकै केवल जडप्रपंचमात्रका ता सर्वशब्दकरिकै ग्रहण करणा संभवता नहीं है। यातैं (सर्वभूतात्मभूतात्मा) या पदका भाष्यकारोंके अनुसारी प्रथम व्याख्यानही समीचीन है ॥ ७ ॥

अब इसी पूर्व उक्त अर्थकूं दो श्लोकोंकरिकै श्रीभगवान् स्पष्ट करैं हैं—

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ॥
पश्यञ्छृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ॥ ८ ॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ॥
इंद्रियाणींद्रियार्थेषु वर्त्तंत इति धारयन् ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) नँ। एँव। किंचित्। कँरोमि। इँति। युक्तः। मँन्येत। तँत्त्ववित्। पँश्यन्। शृण्वँन्। स्पृशन्। जिघ्रँन्। अश्नँन्। गँच्छन्।

परामर्श

स्वपन् । श्वसन् । प्रलपन् । विसृजन् । गृह्णन् । उन्मिषन् । निमिषन् । अपि । इंद्रियाणि । इंद्रियार्थेषु । वर्तते । इति । धारयन् ॥ ८ ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो योगयुक्त परमार्थदर्शी पुरुष देखताहुआ भी तथा श्रवण करताहुआभी तथा स्पर्शकरताहुआभी तथा गंधकूं ग्रहण करताहुआभी तथा भक्षण करताहुआभी तथा गमन करताहुआभी तथा निद्रा करताहुआभी तथा श्वासकूं उठावताहुआभी तथा शब्दकूं उच्चारणकरताहुआभी तथा मलका परित्याग करताहुआभी तथा ग्रहण करताहुआभी तथा उन्मेषकूं करताहुआभी तथा निमेषकूं करताहुआभी यह इंद्रियादिकही आपणेआपणे रूपादिक अर्थोंविषे प्रवर्त्त होवैंहैं इसप्रकार मानताहुआ मैं किंचित्मात्रं भी नहीं करताहूं याप्रकार मानैंहैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो पुरुष युक्त है अर्थात् निरुद्धचित्तवाला है। तथा जो पुरुष तत्त्ववित् है अर्थात् परमार्थदर्शी है अथवा जो पुरुष प्रथम तौ निष्कामकर्मयोगकरिकै युक्त है । तिसतैं अनंतर अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा तत्त्ववेत्ता हुआहै । ऐसा परमार्थदर्शी पुरुष चक्षुआदि पंचज्ञान इंद्रियोंकरिकै तथा वागादिक पंच कर्मइंद्रियों करिकै तथा प्राणादिक पंचप्राणोंकरिकै तथा बुद्धिआदिक च्यारि अंतःकरणोंकरिकै शास्त्रविहित रूपादिकविषयोंकूं ग्रहण करताहुआभी तिन रूपादिकविषयोंविषे यह इंद्रियादिकही प्रवर्त्त होवैंहैं मैं असंग आत्मा इन रूपादिक विषयोंविषे कदाचित्भी प्रवृत्त होतानहीं । इसप्रकार निश्चयकरताहुआ मैं असंग आत्मा किंचित्मात्रभी नहीं करताहूं याप्रकार सो तत्त्ववेत्तापुरुष सर्वदा मानैहै इति । इहां (पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन्) या पंच शब्दोंकरिकै श्रीभगवान्नैं यथाक्रमतैं चक्षु, श्रोत्र, त्वक्, घ्राण, रसन या पंच ज्ञानइंद्रियोंके व्यापार कथन करेहैं । तहां रूपादिकोंका दर्शन चक्षुइंद्रियका व्यापार है । और शब्द श्रवण श्रोत्रइंद्रियका व्यापार है । और स्पर्शका ग्रहण त्वक्इंद्रियका व्यापार है । और गंधका ग्रहण घ्राण इंद्रियका व्यापार है । और रसका ग्रहण रसनइन्द्रियका व्यापार है इति । और (गच्छन् प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्) या च्यारि पदोंकरिकै श्रीभगवान्नैं यथाक्रमतैं पाद, वाक्, पायु, हस्त, या च्यारि कर्मइन्द्रियोंके व्यापार कथन करेहैं । तहां गमन पादइन्द्रियका व्यापार है । और वचनका उच्चारण वाक्इन्द्रियका व्यापार है और मलका विसर्ग पायु इंद्रियका व्यापार है । और

ग्रहण हस्त इन्द्रियका व्यापार है । यह च्यारों व्यापार उपस्थ इंद्रियके विषय आनंदरूप व्यापारकाभी उपलक्षक हैं । और (श्वसन्) या पदकरिकै कथन करया जो प्राणका श्वासरूप व्यापार है सो श्वासरूप व्यापार प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान या पंचप्राणोंके व्यापारोंकाभी उपलक्षक है । और (उन्मिषन् निमिषन्) या पदकरिकै कथन कऱ्या जो उन्मेषनिमेषरूप व्यापार है सो व्यापार नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय या पांचों प्राणोंके व्यापारोंकाभी उपलक्षक है । और (स्वपन्) या पदकरिकै कथन कऱ्या जो बुद्धिका निद्रारूप व्यापार है सो व्यापार मन बुद्धि चित्त अहंकार या च्यारि अंतःकरणके व्यापारोंकाभी उपलक्षक है । इसप्रकार सो तत्त्ववेत्ता पुरुष सर्व व्यापारों-विषे आत्माकूं अकर्त्तारूपही देखै है । इस कारणतें सो तत्त्ववेत्ता पुरुष तिन इंद्रियादिकोंकरिकै तिन सर्व व्यापारोंकूं करता हुआभी तिन व्यापारों करिकै बंधायमान होवै नहीं ॥ ८ ॥ ९ ॥

हे भगवन् ! विद्वान् पुरुष कर्तृत्व अभिमानके अभावतें सर्वकर्मोंकूं करताहुआभी लिपायमान होवै नहीं यह अर्थ पूर्व आपनैं कथन कऱ्या । यातैं यह जान्याजावै है, अविद्वान् पुरुष तौ कर्तृत्व अभिमानके वशतैं तिन कर्मोंकूं करताहुआ अवश्य करिकै लिपायमान होताहोवैगा यातैं तिन कर्मोंविषे प्रवृत्तहुए ता विद्वान् पुरुषकूं सा संन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठा किसप्रकार प्राप्त होवैगी? किंतु नहीं प्राप्त होवैगी । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं—

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः ॥
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) ब्रह्मणि । आधाय । कर्माणि । संगम् । त्यक्त्वा । करोति । यः । लिप्यते । न । सः । पापेन । पद्मपत्रम् । इव । अंभसा ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष परमेश्वरविषे समर्पण करिकै तथा फलकी इच्छाकूं परित्याग करिकै कर्मोंकूं करै है सो पुरुष जलकरिकै पद्मपत्रकी न्याईं कर्मकरिकै नहीं लिपायमान होवै है ॥ १० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो पुरुष परमेश्वरविषे लौकिक वैदिक सर्व कर्मोंका समर्पण करिकै तथा तिन कर्मोंके स्वर्गादिक फलोंकी इच्छाका परित्याग करिकै

जैसे भृत्य आपणे स्वामिवासतै सर्वकर्मोंकूं करै है तैसे मैंभी केवल परमेश्वरकी प्रसन्नतावासतैही सर्वकर्मोंकूं करताहूं या प्रकारके अभिप्रायकरिकै जो पुरुष तिन लौकिक वैदिक सर्व कर्मोंकूं करैहै सो पुरुषभी तिस विद्वान् पुरुषकी न्याईं तिन पुण्यपापकर्मोंकारिकै लिपायमान होवै नहीं। जैसे पद्मपत्रके ऊपरि पाया जो जल है ता जलकरिकै सो पद्मका पत्र लिपायमान होवै नहीं तैसे भगवत् अर्पण बुद्धिकरिकै करेहुए जे कर्म हैं तिन कर्मोंकरिकै यह अधिकारी पुरुष लिपायमान होवै नहीं। अर्थात् ते निष्कामकर्म इस अधिकारी पुरुषके बंधका हेतु होवैं नहीं किंतु ते निष्कामकर्म इस अधिकारी पुरुषके अंतःकरणकी शुद्धिकाही हेतु होवैं हैं ॥ १० ॥

अब इसी अर्थकूं श्रीभगवान् स्पष्टकरिकै प्रतिपादन करैं हैं-

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिंद्रियैरपि ॥
योगिनः कर्म कुर्वंति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) कायेन । मनसा । बुद्ध्या । केवलैः । इंद्रियैः । अपि । योगिनः । कर्म । कुर्वंति । संगम् । त्यक्त्वा । आत्मशुद्धये ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अधिकारी जन फलकी इच्छाकूं परित्याग कारिकै अंतःकरणकी शुद्धिवासतै केवल शरीरकरिकै तथा मनकारिकै तथा बुद्धिकारिकै तथा इंद्रियोंकारिकै कर्मकूं ही करैहैं ॥ ११ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! मोक्षकी इच्छावाले अधिकारी जन आपणे अंतःकरणकी शुद्धिकरणेवासतै स्वर्गादिकफलकी इच्छाका परित्याग करिकै केवल शरीरकरिकै तथा केवल मनकरिकै तथा केवल बुद्धिकरिकै तथा केवल इंद्रियोंकरिकै आपणे वर्णआश्रमके अनुसार नित्यनैमित्तिक कर्मोंकूंही करैं हैं। इहां इन कर्मोंकूं ही करैं हैं। इहां इन कर्मोंकूं मैं ईश्वरकी प्रसन्नतावासतैही करताहूं कोई आपणे स्वर्गादिक फलोंकी प्राप्तिवासतै मैं इन कर्मोंकूं करता नहीं याप्रकारका जो ममताका अभाव है यहही शरीर, मन, बुद्धि, इंद्रिय इन च्यारोंविषे केवलरूपता है ॥ ११ ॥

हे भगवन् ! कर्तृत्वअभिमानके समानहुएभी तिसीही कर्मोंकरिकै कोईक पुरुष तौ मुक्त होवै है और कोईक पुरुष बंधायमान होवै है याप्रकारकी विषमताविषे कौन हेतु है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं-

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शांतिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ॥
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) युक्तः । कर्मफलम् । त्यक्त्वा । शांतिम् । आप्नोति । नैष्ठिकीम् । अयुक्तः । कामकारेण । फले । सक्तः । निबध्यते ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! युक्तपुरुष कर्मके फलकूं परित्याग करिके कर्मोंकूं करताहुआ सत्त्वशुद्धिक्रमतैं उत्पन्नहुई मोक्षरूपशांतिकूं प्राप्त होवैहै और अयुक्तपुरुष तौ कामनाकारिकै फलविषे आसक्तहुआ बंधायमान होवै है ॥ १२ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! यह सर्वकर्म परमेश्वरकी प्रसन्नतावासतैही हैं हमारे फलवासतै यह कर्म नहीं हैं या प्रकारके अभिप्रायवान् पुरुषका नाम युक्त है। याप्रकारका युक्त पुरुष तिन कर्मोंके स्वर्गादिक फलोंका परित्याग करिकै तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंकूं करताहुआ मोक्षरूप शांतिकूंही प्राप्त होवै है । कैसी है सा मोक्षरूपशांति नैष्ठिकी है अर्थात् प्रथम अंतःकरणकी शुद्धि तिसतैं अनंतर नित्य-अनित्यवस्तुका विवेक तिसतैं अनंतर संन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठा इस क्रमकरिकै जा मोक्षरूपशांति उत्पन्नहुई है ऐसी नैष्ठिकी मोक्षरूप शांतिकूं सो युक्तपुरुष प्राप्त होवै है। और जो पुरुष अयुक्त है अर्थात् यह सर्वकर्म परमेश्वरवासतैही हैं हमारे फलवासतै नहीं हैं याप्रकारके अभिप्रायतैं जो पुरुष रहित है सो अयुक्तपुरुष तौ कामनाकारिकै तिन कर्मोंके स्वर्गादिक फलोंविषे मैं इस स्वर्गादिकोंकी प्राप्तिवासतै कर्मोंकूं करताहूं याप्रकार आसक्त हुआ तिन कर्मोंकरिकै बंधायमानही होवै है अर्थात् तिन सकामकर्मोंकरिकै सो अयुक्तपुरुष संसाररूप बंधकूंही प्राप्त होवै है। यातैं हे अर्जुन ! तूंभी युक्तहुआ तिन कर्मोंकूं कर ॥ १२ ॥

तहां अशुद्ध चित्तवाले पुरुषकूं केवल संन्यासतैं कर्मयोगही श्रेष्ठ है इस पूर्व उक्त अर्थकूं इतनेपर्यंत विस्तारकरिकै कथन करया। अब शुद्धचित्तवाले पुरुषकूं सो सर्वकर्मोंका संन्यासही श्रेष्ठ है इस अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ॥
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) सर्वकर्माणि । मनसा । संन्यस्य । आस्ते । सुखं । वशी । नवद्वारे पुरे । देही । एव कुर्वन् । न । कारयन् ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वकर्मोंकूं मनकरिकै परित्याग करिकै देहतैं भिन्न आत्मदर्शी वशीपुरुष नवद्वार वाले इस देहविषे सुखपूर्वक स्थित होवैहै तथा नहीं किसी कार्यकूं करता हुआ तथा नहीं किसी कार्यकूं करावताहुआ स्थित होवै ॥ १३ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! नित्य नैमित्तिक काम्य प्रतिषिद्ध यह च्यारि प्रकारके कर्म होवैहैं तिन सर्वकर्मोंका (कर्मण्यकर्म यः पश्येत्) इस श्लोकविषे कथन कऱ्या जो अकर्त्ता आत्मस्वरूपका सम्यक्दर्शन है तहां सम्यक् दर्शनयुक्त मनकरिकै परित्याग करिकै प्रारब्धकर्मके वशतैं सो संन्यासी स्थित होवै है । तहां सो संन्यासी क्या दुःख पूर्वक स्थित होवैहै ? ऐसी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (सुखमिति) हे अर्जुन ! शरीरका व्यापार तथा वागादिक इंद्रियोंका व्यापार तथा मनका व्यापार यह तीन व्यापारही इन प्राणियोंकूं आयासकी प्राप्ति करैं हैं । ते आयासके हेतुरूप तीनों व्यापार तिस संन्यासीविषे हैं नहीं । यातैं सो संन्यासी ता आयासतैं रहित हुआ ही स्थित होवै है । शंका—हे भगवन् ! ता संन्यासीके शरीर इंद्रिय मन यह तीनों स्वतंत्र होइकै आपणे आपणे व्यापारविषे किसवासतै नहीं प्रवृत्त होते ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (वशी इति) हे अर्जुन ! तिस संन्यासीनैं यह कार्यकारणरूप संघात आपणे वश कऱ्या है । यातैं ता संन्यासीके शरीर इंद्रिय मन यह तीनों स्वतंत्र होइकै किसी व्यापारविषे प्रवृत्त होवै नहीं । शंका—हे भगवन् ! ऐसा सर्व व्यापारतैं रहित संन्यासी किस स्थानविषे स्थित होवै है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (नवद्वारे पुरे इति) दो श्रोत्र दो चक्षु दो नासिका एक मुख यह सप्तद्वार तौ उपरि शिरविषे रहैंहैं और पायु उपस्थ यह दो द्वार नीचे रहैंहैं इन नवद्वारोंकरिकै विशिष्ट जो यह स्थूलशरीर है ता स्थूलशरीररूप पुरविषे सो संन्यासी रहैहै। शंका—हे भगवन् ! संन्यासी असंन्यासी विद्वान् अविद्वान् इत्यादिक सर्वप्राणीमात्र इस नवद्वारवाले देहविषेही रहैं हैं । केवल सो संन्यासीही इस देहविषे रहै नहीं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (देही) हे अर्जुन ! सो विद्वान् संन्यासी इस नवद्वारवाले देहविषे स्थित हुआभी इस देहतैं आपणे आत्माकूं भिन्नरूपकरिकै देखै है । देहरूप आत्माकूं देखता नहीं । याकारणतैं जैसे प्रवासी पुरुष किसी परगृहविषे निवास करैहै, परंतु ता गृहकी वृद्धिहानिकारिकै सो प्रवासी पुरुष हर्षशोककूं प्राप्त होवै नहीं ।

तैसे सो विद्वान् संन्यासीभी इस शरीरके पूजनपराभवकारिकै हर्षविषादकूं प्राप्तहोवै नहीं, किंतु अहंताममतातैं रहित हुआ इस देहविषे स्थित होवै है। और अज्ञानी पुरुष तौ ता देहके तादात्म्य अभिमानतैं आपणेकूं देहरूपही मानैहै। देहरूप आपणेकूं मानता नहीं। याकारणतैंही सो अज्ञानी पुरुष इस देहके अधिकरणकूंही आत्माका अधिकरण मानताहुआ मैं इस गृहविषे स्थित हूं मैं इस भूमिविषे स्थित हूं मैं इस आसनविषे स्थित हूं याप्रकारही आपणेकूं मानै है इसमैं देहविषे स्थित हूं याप्रकार सो अज्ञानी पुरुष आपणेकूं मानता नहीं। जिसकारणतैं ता अज्ञानी पुरुषनैं इस देहतैं भिन्नकरिकै आपणे आत्माकूं जान्या नहीं और इस संघाततैं भिन्नकरिकै आत्माकूं जानणेहारा जो सर्वकर्मोंका संन्यासी है सो विद्वान् संन्यासी तौ मैं इस देहविषे स्थित हूं याप्रकारही आपणेकूं मानैहै देहरूप आपणेकूं मानता नहीं। याकारणतैंही अविक्रिय आत्माविषे अविद्याकरिकै आरोपित जो देहादिकोंके व्यापार हैं तिन सर्वव्यापारोंका जो तत्त्वसाक्षात्कारकरिकै बाध है सोईही सर्वकर्मोंका संन्यास कह्याजावैहै इस प्रकारकी अज्ञानी पुरुषतैं विलक्षणताकूं अंगीकार करिकैही श्रीभगवान्नैं ता विद्वान् पुरुषका (नवद्वारे पुरे आस्ते) यह विशेषण कथन कर्‍याहै। शंका—हे भगवन्! जैसे नौकाके चलनरूप व्यापारका तीरस्थ वृक्षविषे आरोपण होवैहै तैसे आत्माविषे आरोपित जे देहादिकोंके व्यापार हैं तिन व्यापारोंका विद्याकरिकै बाधहुएभी आत्माविषे आपणे व्यापारकरिकै करतापणा होवैगा। तथा देहादिकोंके व्यापारविषे प्रयोजक करतापणा होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (नैव कुर्वन्न कारयन्न इति) हे अर्जुन! यह आत्मादेव आप किसी व्यापारकूं करताहुआ स्थित होवै नहीं। तथा प्रेरणा करिकै देह इंद्रियादिकोंतैं किसी व्यापारकूं करावताहुआभी स्थित होवै नहीं, किंतु उदासीन हुआ स्थित होवैहै इति। और किसी टीकाविषे तौ (नवद्वारे पुरे) या वचनका यह अर्थ कर्‍याहै। श्रोत्र त्वक् चक्षु रसन घ्राण प्राण बुद्धि अहंकार चित्त यह नवद्वार हैं जिसविषे ऐसे इस शरीररूप पुरविषे सो विद्वान् पुरुष स्थित होवैहै। तात्पर्य यह—जैसे लोकप्रसिद्ध पुरके राजाकूं ता पुरके द्वारोंकरिकैही बाहरले विषय प्राप्त होवैहैं तैसे इस शरीररूप पुरका अधिपति जो यह जीवात्मारूप राजा है ता जीवात्माके भोगवास्तै बाहरले शब्दादिक विषय तिन श्रोत्रादिक द्वारोंकरिकैही भीतर प्रवेश करै हैं। यातैं ते श्रोत्रादिक प्रसिद्धपुरके द्वारोंकी न्याईं द्वाररूप हैं॥ १३ ॥

हे भगवन् जैसे देवदत्तनामा पुरुषविषे वास्तवतैं स्थित जा गमनरूप क्रिया है सा गमनरूप क्रिया ता देवदत्तपुरुषके स्थितकालविषे होती नहीं तैसे आत्माविषे वास्तवतैं स्थित जो कर्तृत्व तथा कारयितृत्व है सो कर्तृत्व तथा कारयितृत्व संन्यासकालविषे ता आत्माविषे होता नहीं । यह आपके कहणेका तात्पर्य है । अथवा जैसे आकाशविषे तल मलिनतादिक वास्तवतैं हैं नहीं तैसे आत्माविषेभी सो कर्तृत्व तथा कारयितृत्व वास्तवतैं हैंही नहीं । यह आपके कहणेका तात्पर्य है । इसप्रकारके अर्जुनके संशयकी निवृत्ति करणेवास्तै श्रीभगवान् अंत्य कोटीकूं अंगीकार करिकै कहैंहैं—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य मृजति प्रभुः ॥
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) न । कर्तृत्वम् । न । कर्माणि । लोकस्य । सृजंति । प्रभुः । न । कर्मफलसंयोगम् । स्वभावः । तु । प्रवर्तते ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह आत्मादेव देहादिकोंके कर्तृत्वकूं नहीं उत्पन्न करैहै तथा कर्मोंकूंभी नहीं उत्पन्न करैहै तथा कर्मोंके फलके संबंधकूंभी नहीं उत्पन्न करैहै किंतु अज्ञानरूप मायाही सर्वकार्यके करणेविषे प्रवृत्त होवैहै ॥ १४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! देहइंद्रियादिक सर्वसंघातका स्वामीरूप जो यह आत्मादेव है सो यह आत्मादेव तिन देहइंद्रियादिकोंके कर्तृत्वकूं उत्पन्न करता नहीं अर्थात् तुम इस कार्यकूं करो याप्रकारकी प्रेरणा करिकै यह आत्मादेव किसीभी कार्यकूं करावता नहीं । यातैं इस आत्मादेवविषे प्रयोजककर्तापणारूप कारयितृत्व संभवै नहीं । और तिन देहइंद्रियादिकोंकूं वांछित जे घटादिरूप कर्म हैं तिन घटादिकरूप कर्मोंकूंभी यह आत्मादेव उत्पन्न करता नहीं अर्थात् यह आत्मादेव तिन घटादिक पदार्थोंका कर्त्ताभी होवै नहीं । यातैं इस आत्मादेवविषे कर्तृत्वभी है नहीं । और कर्मोंकूं करणेहारे लोकोंका जो तिसतिस कर्मफलके साथि संबंध है तिस कर्मफलके संबंधकूंभी यह आत्मादेव उत्पन्न करता नहीं अर्थात् यह आत्मादेव नहीं तौ किसीकूं फलके भोगावणेहारा है, तथा नहीं आप फलकूं भोक्ता है । यातैं इस आत्मादेवविषे भोजयितृत्व तथा भोक्तृत्वभी संभवै नहीं । इसी अर्थकूं (शरीरस्थोपि कौंतेय न करोति न लिप्यते) यह गीताका

वचनभी कथन करयाहै । शंका—हे भगवन् ! यह आत्मादेव जबी आप किं मात्रभी कार्यकूं करता नहीं तथा करावताभी नहीं तबी दूसरा कौन कार्यकूं करताहुआ तथा करावताहुआ प्रवृत्त होवैहै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (स्वभावस्तु प्रवर्त्तते इति) हे अर्जुन ! अज्ञानरूप जा दैवीमाया है जिस मायाकूं प्रकृतिभी कहैंहैं सा मायारूप प्रकृतिही कार्यके करणेविषे तथा करावणेविषे प्रवृत्त होवैहै इति । इहां किसी टीकाविषे (स्वभावस्तु प्रवर्त्तते) इस वचनका यह अर्थ कथन करयाहै । यह चैतन्यस्वरूप आत्मा सूर्यकी न्याई सर्वका प्रकाशमात्रही है । किसी कर्मादिकोंविषे प्रवर्त्तक है नहीं, किंतु जिसजिस वस्तुका जैसाजैसा स्वभाव होवैहै सो स्वभावही तिसतिसप्रकार प्रवृत्त होवैहै । जैसे एकही सूर्यके उदयहुए कमलोंका तौ स्वभावतैंही विकास होवैहै और कुमुदोंका स्वभावतैंही संकोच होवैहै सो सूर्य किसीका विकास तथा संकोच करता नहीं । तैसे एकही आत्माके प्रकाशमान हुए घटादिक पदार्थ तौ चेष्टाकूं करैं नहीं और मनुष्यादिक तौ नानाप्रकारकी चेष्टाकूं करैं हैं सो आत्मादेव किसीभी पदार्थकूं प्रवृत्त तथा निवृत्त करता नहीं ॥ १४ ॥

हे भगवन् ! ईश्वर तौ प्रेरणा करिकै जीवके प्रति कर्मोंके करावणेहारा है और जीव तौ तिन कर्मोंके करणेहारा है । याकारणतैं ता ईश्वरविषे तौ कारयितृत्व है । और ता जीवविषे कर्तृत्व है यह वार्त्ता श्रुतिविषे तथा स्मृतिविषे कथन करीहै । तहां श्रुति—(एष उ ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते एष उ ह्येवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषत इति ।) अर्थ यह—यह परमेश्वर जिस पुरुषकूं इस लोकतैं ऊपरि स्वर्गादिक लोकोंविषे लेजाणेकी इच्छा करैहै तिस पुरुषकूं तौ प्रेरणाकरिकै पुण्यकर्म करावैहै । और यह परमेश्वर जिस पुरुषकूं नरकादिक नीचलोकोंविषे लेजाणेकी इच्छा करैहै तिस पुरुषकूं प्रेरणाकरिकै पापकर्म करावैहै इति । यह श्रुति ईश्वरविषे तौ पुण्यपापकर्मोंका कारयितृत्व कथन करैहै । और जीवविषे तिन पुण्यपापकर्मोंका कर्तृत्व कथन करैहै । इसी अर्थकूं स्मृतिभी कथनकरैहै । तहां स्मृति—(असौ जंतुरनीशोयमात्मनः सुखदुःखयोः । ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ।) अर्थ यह—यह अज्ञानीजीव आपणे सुखविषे तथा दुःखविषे असमर्थही है, किंतु ईश्वरकरिकै प्रेरणा कऱ्याहुआ यह जीव आपणे पुण्यपापके वशतैं स्वर्ग नरकादिकोंकूं प्राप्त होवैहै

इति । और जो पुरुष पुण्यपापकर्मोंका कर्त्ता होवैहै तथा जो पुरुष प्रेरणाकरिकै ता पुण्यपापकर्मके करावणेहारा होवैहै, तिन दोनोंकूंही ता पुण्यपापकर्मका लेप अवश्यकरिकै होवैहै । यातैं जीवविषे तौ कर्तापणेकरिकै तथा ईश्वरविषे कारयितापणेकरिकै ता पुण्यपापकर्मका लेप अवश्यकरिकै होवैगा । यातैं यह आत्मादेव न करताहै न करावताहै, किंतु यह प्रकृतिरूप स्वभावही सर्वकार्योंविषे प्रवृत्त होवैहै, यह आपका कहणा श्रुति स्मृतितैं विरुद्ध होणेतैं असंगत है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं-

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ॥
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जंतवः ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) न । आदत्ते । कस्यचित् । पापम् । न । च । एव । सुकृतम् । विभुः । अज्ञानेन । आवृतम् । ज्ञानम् । तेन । मुह्यंति । जंतवः ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! परमेश्वर किसी भी जीवके पापकूं नहीं ग्रहण करैहै तथा पुण्यकूं भी नहीं ग्रहण करैहै किंतु अज्ञानकरिकै आवृत जो ज्ञान है तिसंकरिकै यह जीव मोहकूं प्राप्त होवै है ॥ १५ ॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! सर्वत्र व्यापक होणेतैं निष्क्रिय जो परमेश्वर है सो परमेश्वर किसीभी जीवके पापकूं तथा पुण्यकूं ग्रहण करता नहीं । काहेतैं परमार्थदृष्टिकरिकै इस जीवविषे तौ तिन पुण्यपापकर्मोंका कर्त्तापणा नहीं है और ईश्वरविषे तिन पुण्यपाप कर्मोंका कारयितापणा नहीं है । शंका-हे भगवन् ! जो कदाचित् परमेश्वरविषे वास्तवतैं कर्मोंका कारयितृत्व नहीं होवैहै तथा जीवविषे तिन कर्मोंका कर्तृत्व नहीं होवै तौ परमेश्वरविषे कर्मोंके कारयितृत्वकूं तथा जीवविषे कर्मोंके कर्तृत्वकूं कथनकरणेहारी पूर्व उक्त श्रुति स्मृति असंगत होवैंगी । और इस लोकविषेभी शिष्टपुरुष ईश्वरकी प्रसन्नतावासतै शुभकर्मोंकूं करैहै और तिन शुभकर्मोंके नहीं करणेतैं भयकूं प्राप्त होवैहै । यह लोकोंका व्यवहारभी असंगत होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जंतवः इति) हे अर्जुन ! आवरणविक्षेपशक्तिवाला जो मायारूप मिथ्या अज्ञान है ता अज्ञानरूप तमकरिकै आवृतहुआ जो जीव ईश्वरजगत् भेदभ्रमका अधिष्ठानरूप तथा नित्यस्वप्र-

काश सच्चिदानंद अद्वितीयरूप तथा परमार्थसत्यरूप ज्ञानहै। ता ज्ञानस्वरूप आत्माके आवरणकरिकै आपणे वास्तवस्वरूपकूं नहीं जानणेहारे यह संसारी जीव मोहकूं प्राप्त होवैं हैं अर्थात् प्रमाता प्रमाण प्रमेय, कर्त्ता कर्म करण, भोक्ता भोग्य भोग, यह नवप्रकारका संसारभ्रमरूप जो विक्षेप है ता विक्षेपरूप मोहकूं ते जीव प्राप्त होवैं हैं। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। वास्तवतैं अकर्त्ता अभोक्तारूप जो परमानंद अद्वितीय आत्मा है ता आत्माके वास्तवस्वरूपके अज्ञानकरिकैही अविवेकी मूढपुरुषोंकूं यह जीव है यह ईश्वर है यह जगत् है इत्यादिक भेदभ्रम प्रतीत होवै है। अर्थात् यह जीव पुण्यपापकर्मोंका कर्त्ता है और ईश्वर तिन पुण्यपापकर्मोंके करावणेहारा है इत्यादिक भेदभ्रम प्रतीत होवै है। तिन अज्ञानी मूढपुरुषोंके भ्रांतिज्ञानकूंही (एष उ ह्येव साधु कर्म कारयति) इत्यादिक श्रुतिस्मृतिवचन अनुवादमात्र करैं हैं, कोई तिन श्रुतिस्मृतिवचनोंका ता भेदभ्रमके बोधनविषे तात्पर्य नहीं है। यातैं वास्तवतैं अद्वितीय आत्माके बोधक जे 'तत्त्वमसि' आदिक महावाक्य हैं तिन महावाक्योंकेही ते श्रुतिस्मृतिवचन शेषरूप हैं। यातैं तिन श्रुतिस्मृतिवचनोंकाभी इहां विरोध होवै नहीं इति। और किसी टीकाविषे तौ (अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जंतवः) इस वचनका यह अभिप्राय कथन कऱ्या है। जैसे चक्रवर्त्ती महाराजाकूं जाग्रत् अवस्थाविषे मैं सर्वप्रजाका ईश्वरहूं या प्रकारका ज्ञान होवै है सो ताका ज्ञान जबी निद्रारूप अज्ञानकरिकै आवृत्त होवैहै तबी सो चक्रवर्त्ती राजा ता स्वप्नअवस्थाविषे अनेक प्रकारके संकटोंकूं देखैहै तथा मैं अत्यंत दीनहूं मैं अत्यंत दुःखीहूं इस प्रकारके मोहकूं प्राप्त होवै है। तैसे यह जीवभी 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादिक वेदके वचनोंतैं आपणे ब्रह्मभावकूं नहीं जानते हुए तथा ईश्वरतैं आपणेकूं जुदा मानते हुए अर्थात् ईश्वरकूं स्वामी मानते हुए तथा आपणेकूं ता ईश्वरका सेवक मानते हुए वारंवार जन्ममरणरूप मोहकूं प्राप्त होवैं हैं। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है। तहां श्रुति–(अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योसावन्योहमिति न स वेद यथा पशुरेव स देवानामिति । उदरमंतरे कुरुते अथ तस्य भयं भवति इति । मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।) अर्थ यह–जो पुरुष यह देवता भिन्न है तथा मैं भिन्नहूं याप्रकार देवतातैं आपणेकूं भिन्न मानिकै तिस देवताका ध्यान करै है सो भेददर्शी पुरुष देवताके स्वरूपकूं तथा आपणे स्वरूपकूं यथार्थ जानता नहीं। जैसे लोकप्रसिद्ध

अश्वमहिषादिक पशु किंचित्‌मात्रभी जानते नहीं तैसे सो भेददर्शी पुरुषभी तिन देवताओंका पशुही है। भेददर्शी अज्ञानी पुरुष देवतावोंका पशु है यह वार्ता आत्मपुराणके चतुर्थ अध्यायविषे दध्यङ् अथर्वण देवताराज इन्द्रके संवादविषे हम विस्तारतैं कथन करि आये हैं इति। और जो पुरुष ईश्वरतैं आपणा किंचित्‌मात्रभी भेद अंगीकार करै है तिस भेददर्शी पुरुषकूं महान् भयकी प्राप्ति होवै है इति। और जो पुरुष इस अद्वितीय ब्रह्मविषे नानाभावकूं देखै है, सो भेददर्शी पुरुष मृत्युतैं मृत्युकूं प्राप्त होवै है अर्थात् वारंवार जन्ममरणकूं प्राप्त होवैहै ॥ १५ ॥

हे भगवन् ! जबी सर्वही जीव ता अनादि अज्ञानकरिकै आवृत हुए तबी इस जन्ममरणरूप संसारकी निवृत्ति किस प्रकारतैं होवैगी ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं-

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ॥
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) ज्ञानेन । तु । तत् । अज्ञानम् । येषाम् । नाशितम् । आत्मनः । तेषाम् । आदित्यवत् । ज्ञानम् । प्रकाशयति । तत् । परम् ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जिन पुरुषोंका सो अज्ञान आत्माके ज्ञाननैं नाश कऱ्याहै तिन पुरुषोंका सो आत्मज्ञान सूर्यकी न्याई परब्रह्मकूं प्रकाश करै है ॥ १६ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जो अज्ञान आवरणविक्षेप शक्तिवाला है तथा अनादि है अर्थात् उत्पत्तितैं रहित है तथा जो अज्ञान अनिर्वचनीय है अर्थात् सत्, असत्, सत्असत्, या तीनों पक्षोंतैं रहित है। तथा जो अज्ञान सर्व अनर्थोंका मूलकारण है। तथा जो अज्ञान स्वाश्रय अभिन्नविषयक है अर्थात् जैसे अंधकार जिस गृहके आश्रित रहैहै तिसी गृहकूं आवृत करैहै तैसे यह अज्ञानभी जिस आत्मादेवके आश्रित रहैहै तिसी आत्मादेवकूं आवृत करैहै। तथा जिस अज्ञानकूं शास्त्रविषे माया अविद्या प्रकृति प्रधान अव्यक्त शक्ति इत्यादिक नामोंकरिकै कथन कऱ्या है ऐसा अज्ञान जिन अधिकारी पुरुषोंके आत्मविष-

यक ज्ञाननैं नाश कर्‌या है। अर्थात् जो ज्ञान ब्रह्मवेत्तापुरुषनैं उपदेश कर्‌ये हुए वेदांतमहावाक्यकरिकै जन्य है। तथा जो ज्ञान श्रवण मनन निदिध्यासनकी परिपक्वता करिकै निर्मलहुए अंतःकरणकी वृत्तिरूप है। तथा जो ज्ञान शोधित तत्त्वं पदार्थोंका अभेदरूप जो शुद्ध सच्चिदानंद अखंड एकरस वस्तु है ता वस्तु-मात्रकूं विषय करणेहारा है ऐसे निर्विकल्पक आत्मसाक्षात्कारनैं जिन अधिकारी पुरुषोंका सो अज्ञान बाधकूं प्राप्त कर्‌या है। तात्पर्य यह—जैसे शुक्तिविषे रजतभ्रमतैं अनंतर उत्पन्न भया जो यह शुक्तिही है रजत नहीं है याप्रकारका शुक्तिविषयक ज्ञान है सो शुक्तिका ज्ञान ता शुक्तिविषे ता रजतका त्रैकालिक असत्त्वरूप बाधकूं करै है। तैसे सो आत्मज्ञानभी ता अद्वितीयब्रह्मविषे ता अज्ञानका त्रैकालिक असत्त्वरूप बाधकूं करै है। कोई जैसे मुद्गरका प्रहार घटके सूक्ष्म अवस्थारूप ध्वंसकूं करै है तैसे यह आत्मज्ञान ता अज्ञानके सूक्ष्म अवस्थारूप ध्वंसकूं करता नहीं इति। ऐसा सो अधिकारी जनोंका आत्मज्ञान लोकप्रसिद्ध सूर्यकी न्याई सत्य ज्ञान अनंत आनंदरूप एक अद्वितीय परमात्मभावकूं प्रकाश करै है। तात्पर्य यह—जैसे यह सूर्य आपणे उदयमात्र करिकैही निरवशेष अंधकारकी निवृत्ति करिकै घटादिक पदार्थोंकूं प्रकाश करै है ता अंधकारकी निवृत्ति करणेविषे सो सूर्य अन्य किसीके सहायताकी अपेक्षा करता नहीं। तैसे शुद्धसत्त्वका परिणामरूप होणेतैं व्यापक प्रकाशरूप जो ब्रह्मज्ञान है सो ब्रह्मज्ञानभी आपणी उत्पत्तिमात्रकरिकै ही ता कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति करता हुआ अद्वितीय परमात्मतत्त्वकूं प्रकाश करै है। ता कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति करणेविषे सो ब्रह्मसाक्षात्कार अन्य किसीके सहायताकी अपेक्षा करता नहीं। इहां (तत् ज्ञानं परं प्रकाशयति) इस वचनकरिकै अद्वितीय स्वप्रकाश ब्रह्मविषे जो ज्ञानकृत प्रकाश्यता कथनकरी है सो अज्ञानरूप आवरणकी निवृत्तिपूर्वक ब्रह्मकी अभिव्यक्तिमात्र जानणी। जिसकूं वेदां-तशास्त्रविषे वृत्तिव्याप्ति या नामकरिकै कथन करैं हैं इति। और (अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्। ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः) या दोनों वचनोंकरिकै श्रीभगवान्‌नैं ता अज्ञानविषे आवरणरूपता तथा ज्ञानकरिकै नाश्यता कथनकरी। ता कहणे करिकै श्रीभगवान्‌नैं ता अज्ञानविषे नैयायिकोंनैं अंगीकार करीहुई ज्ञानभावरूपता निवृत्त करी। काहेतैं अभाव किसी वस्तुका आवरण करता नहीं। तथा ज्ञानका अभाव ता ज्ञानकरिकै नाशभी होइसकै नहीं। जिसकारणतैं विद्यमान वस्तुवोंकाही

परस्पर नाश्यनाशकभाव होवै है । यातैं ज्ञानके अभावका नाम अज्ञान नहीं है, किंतु मैं अज्ञानीहूं मैं आपणेकूं तथा अन्यकूं जानता नहीं इत्यादिक साक्षीरूप प्रत्यक्षकरिकै सिद्धभावरूपही अज्ञान है । और (येषां तेषां) या बहुवचनांत सामान्य अर्थके वाचक यत् तत् या दोनों शब्दोंकरिकै श्रीभगवान्नैं इस ब्राह्मणत्वादिक उत्तम जातिविषेही तथा इस उत्तम आश्रमविषेही आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवै है तथा ता ज्ञानकरिकै अज्ञानकी निवृत्ति होवै है इसतैं अन्य जातिविषे तथा इसतैं अन्य आश्रमविषे ता आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवै नहीं । तथा ता ज्ञानकरिकै अज्ञानकी निवृत्ति भी होवै नहीं । याप्रकारके नियमका अभाव कथनकरया, किंतु सर्वजातियोंविषे तथा सर्वआश्रमोंविषे श्रवणादिक साधनोंकरिकै ता आत्मज्ञानकी प्राप्ति तथा ता ज्ञानकरिकै अज्ञानकी निवृत्ति होवै इति । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति-(तद्यो यो देवानां प्रत्यबुद्ध्यत स स एव तदभवत्तथर्षीणां तथा मनुष्याणामिति) अर्थ यह-देवतावोंके मध्यविषे जो जो देवता इस अद्वितीयब्रह्मकूं मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकार आपणा आत्मारूपकरिकै जानता भयाहै सोसो देवता अज्ञानकी निवृत्तिपूर्वक ब्रह्मरूपही होताभया है । तथा ऋषियोंके मध्यविषे जोजो ऋषि तिस अद्वितीय ब्रह्मकूं आपणा आत्मारूपकरिकै जानताभयाहै सोसो ऋषि अज्ञानकी निवृत्तिपूर्वक ब्रह्मरूपही होता भयाहै । तथा मनुष्योंके मध्यविषे जो जो मनुष्य तिस अद्वितीय ब्रह्मकूं आपणा आत्मारूपकरिकै जानता भयाहै सोसो मनुष्य अज्ञानकी निवृत्तिपूर्वक ब्रह्मरूपही होताभयाहै इति । इत्यादिक श्रुतियोंनैं मनुष्यमात्रकूंही आत्मज्ञानकी प्राप्ति तथा ता आत्मज्ञानकरिकै मोक्षकी प्राप्ति कथनकरी है । यातैं ता आत्मज्ञानकी प्राप्तिविषे तथा ता ज्ञानकरिकै मोक्षकी प्राप्तिविषे उत्तम जाति आश्रमका किंचित्मात्रभी नियम नहीं है, किंतु ता आत्मज्ञानकी प्राप्तिका साधनरूप जो श्रवण है ता श्रवणविषेही नियम है । तहां ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य या त्रैवर्णिक पुरुषोंनैं तौ वेदवचनोंके श्रवणतैं आत्मज्ञानकूं संपादन करणा । और शूद्रादिकोंनैं अद्वैतके प्रतिपादक पुराणादिकोंके श्रवणकरिकै ता आत्मज्ञानकूं संपादन करणा । यह श्रवणके नियमकी प्रक्रिया आत्मपुराणके सप्तम अध्यायविषे हम विस्तारतैं कथन करिआयेहैं इति । इहां (अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं आत्माविषे अज्ञानकृत आवरण कथन कऱ्याहै । और (ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः) या वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं

आत्मज्ञानकरिकै ता आवरणकी निवृत्ति कथन करीहै । सो अज्ञानकृत आवरण दोप्रकारका होवैहै । एकतौ असत्त्वापादक आवरण होवैहै और दूसरा अभानापादक आवरण होवैहै । जैसे सो आवरण दो प्रकारका होवै है तैसे सो आत्मज्ञानभी दो प्रकारका होवैहै। तहां एक तौ परोक्षज्ञान होवैहै और दूसरा अपरोक्षज्ञान होवैहै । तहां अवांतरवाक्यके श्रवणतैं उत्पन्न भया जो ज्ञान है ताकूं परोक्षज्ञान कहैं हैं । और महावाक्यश्रवणतैं उत्पन्न भया जो ज्ञान है ताकूं अपरोक्षज्ञान कहैंहैं तहां तत्पदार्थरूप ईश्वरके तथा त्वंपदार्थरूप जीवके स्वरूपमात्रकूं कथनकरणेहारे जे वाक्य हैं तिन वाक्योंकूं अवांतरवाक्य कहैं हैं । जैसे (सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म) इत्यादिक वाक्य हैं। और ता ईश्वरके तथा जीवके अभेदकूं कथन करणेहारे जे वाक्य हैं तिन वाक्योंकूं महावाक्य कहैं हैं । जैसे "तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मि" इत्यादिक वाक्य हैं। तहां 'ब्रह्म नास्ति' याप्रकारके भ्रमका जनक जो प्रथम असत्त्वापादक आवरण है सो असत्त्वापादक आवरण तौ परोक्षअपरोक्ष साधारणप्रमाणजन्यज्ञानमात्रकरिकै निवृत्त होवैहै । काहेतैं जैसे पर्वतविषे धूमरूप हेतुके दर्शनतैं यह पर्वत अग्निवाला है याप्रकारके अनुमितिरूप परोक्षज्ञानके हुएभी पर्वतविषे अग्नि नहीं है याप्रकारके भ्रमकी निवृत्ति होइजावै है। तैसे (सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म अस्ति) इस वाक्यतैं ब्रह्मके परोक्ष निश्चयहुएभी ब्रह्म नहीं है याप्रकारके भ्रमकी निवृत्ति होइजावैहै । और ब्रह्म तौ है परंतु सो ब्रह्म हमारेकूं भासता नहीं या प्रकारके भ्रमका जनक जो दूसरा अभानापादक आवरण है सो अभानापादक आवरण तौ मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारके अपरोक्षज्ञानतैंही निवृत्त होवै है । परोक्षज्ञानकरिकै सो अभानापादक आवरण निवृत्त होवै नहीं ।मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारका ज्ञान वाक्यतैं जन्यहुआभी "दशमस्त्वमसि" इस वाक्यजन्य ज्ञानकी न्याई अपरोक्षरूपही होवैहै यह वार्त्ता सर्ववेदांतशास्त्रोंविषे निर्णीतही है ॥ १६ ॥

हे भगवन् ! ता आत्मज्ञानकरिकै परमात्मतत्त्वके प्रकाश हुए किस फलकी प्राप्ति होवै है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता आत्मज्ञानके विदेह मुक्तिरूप फलकूं कथन करैं हैं-

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ॥
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७॥

(पदच्छेदः) तद्बुद्धयः । तदात्मानः । तन्निष्ठाः । तत्परायणाः । गच्छंति । अपुनरावृत्तिम् । ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसपरब्रह्मविषे है बुद्धि जिन्होंकी तथा सो परब्रह्मही है आत्मा जिन्होंका तथा तिसे परब्रह्मविषेही है निष्ठा जिन्होंकी तथा सो परब्रह्मही है प्राप्तहोणे योग्य जिन्होंकूं तथा ज्ञानकरिकै निवृत्त हुएहैं पुण्यपाप-कर्म जिन्होंके ऐसे विद्वान् संन्यासी अपुनरावृत्तिकूं प्राप्त होवैहैं ॥ १७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! ज्ञानकरिकै प्रकाशित जो सच्चिदानंदघनपरमात्मा है ता परमात्मतत्त्वविषेही बाह्य सर्वविषयोंके परित्यागपूर्वक विवेकादिक साधनोंकी परिपक्ता तैं परिअवसानकूं प्राप्त हुईहै अंतःकरणकी साक्षात्काररूपवृत्ति जिन्होंकी ऐसे पुरुष तद्बुद्धि कहेजावैं हैं। अर्थात् जे पुरुष सर्वदा निर्विकल्पसमाधिवाले हैं । शंका—हे भगवन् ! (तद्बुद्धयः) या वचनकरिकै जीव तौ वृत्तिरूप बोधका आश्रय प्रतीत होवैहै और परब्रह्म ता वृत्तिरूपबोधका विषय प्रतीत होवैहै । यातैं तिन जीवोंका तथा परब्रह्मका परस्पर बोद्धृबोद्धव्यरूप भेद अवश्यकरिकै होवैगा । तहां बोधके आश्रयका नाम बोद्धृ है और ता बोधके विषयका नाम बोद्धव्य है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं (तदात्मानः इति) हे अर्जुन ! सो परब्रह्म ही है आत्मा जिन्होंका ऐसे विद्वान् पुरुष तदात्मा कहेजावैंहैं । यातैं मायाकरिकै कल्पित सो बोद्धृबोद्धव्यभाव वास्तवअभेदका विरोधी होवै नहीं इति । शंका—हे भगवन् ! तिन विद्वान् पुरुषोंका (तदात्मा) यह जो विशेषण आपनैं कथन कऱ्याहै सो विशेषण व्यर्थही है काहेतैं जो विशेषण तिन विद्वान् पुरुषोंकूं दूसरे अज्ञानी पुरुषोंतैं व्यावृत्त करैहै सोईही विशेषण तिन विद्वान् पुरुषोंका सार्थक होवै है । सो व्यावर्त्तकपणा (तदात्मानः) इस विशेषणविषे घटता नहीं । जिसकारणतैं अज्ञानी पुरुषभी वास्तवतैं परब्रह्मरूपहीहै । समाधान—हे अर्जुन ! (तदात्मानः) या विशेषणका देहादिकोंविषे आत्मत्वबुद्धिके निवृत्त करणेविषेही तात्पर्य है । इहां यह अभिप्राय है, अज्ञानी पुरुष तौ वास्तवतैं ब्रह्मरूप हुएभी ता परब्रह्मविषे आत्मबुद्धि करते नहीं किंतु अनात्मरूप देहादिकोंविषेही आत्मअभिमान करैंहैं यातैं ते अज्ञानीपुरुष (तदात्मानः) या नामकरिकै कहेजावैं नहीं । और ज्ञानवान् पुरुष तौ तिन अनात्मारूप देहादिकोंविषे आत्मअभिमान करते नहीं किंतु ता परब्रह्मविषेही आत्मबुद्धि करैंहैं । यातैं ते ज्ञानवान् पुरुषही (तदात्मानः) या नामकरिकै कहेजावैं

हैं। यातैं (तदात्मानः) यह ज्ञानवान्का विशेषण सार्थक है इति। शंका—हे भगवन्! लौकिकवैदिक कर्मोंके अनुष्ठानरूप विक्षेपके वियमान हुए तिन देहादिकोंके अभिमानकी निवृत्ति कैसे होवैगी? किंतु नहीं होवैगी। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं (तन्निष्ठाः इति) हे अर्जुन! तिन सर्वकर्मोंके अनुष्ठानरूप विक्षेपकी निवृत्तिकरिकै तिस परब्रह्मविषेही है स्थिति जिन्होंकी ते पुरुष तन्निष्ठाः कहेजावैंहैं। अर्थात् जे पुरुष तिन सर्वकर्मोंका संन्यासकरिकै तिस एक परब्रह्मके विचारपरायण हुए हैं इति। शंका—हे भगवन्! तिस तिस स्वर्गादिक फलविषयक रागके वियमान हुए तिसतिस फलके साधनरूप कर्मोंका परित्याग कैसे होवैगा? किंतु नहीं होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं (तत्परायणाः इति) हे अर्जुन! सो एक परब्रह्मही है प्राप्त होणेयोग्य जिनकूं ते पुरुष तत्परायण कहे जावैं हैं अर्थात् जे पुरुष तिन स्वर्गादिक सर्वफलोंतैं विरक्तहैं इति। इहां (तद्बुद्धयः) इस पदकरिकै श्रीभगवान्नैं ब्रह्मसाक्षात्कारका कथन कऱ्याहै। और (तदात्मानः तन्निष्ठाः तत्परायणाः) या तीन पदोंकरिकै श्रीभगवान्नैं ता ब्रह्मसाक्षात्कारके साधन कथन करेहैं। तहां (तदात्मानः) इस पदकरिकै श्रीभगवान्नैं देहादिक अनात्मपदार्थोंविषे आत्मअभिमानरूप विपरीतभावनाकी निवृत्ति है फल जिसका ऐसा जो परिपक्क निदिध्यासन है सो कथन कऱ्या है। और (तन्निष्ठाः) या पदकरिकै श्रीभगवान्नैं सर्वकर्मोंके संन्यास पूर्वक प्रमाणप्रमेयगत असंभावनाकी निवृत्ति है फल जिसका ऐसा जो परिपक्कश्रवणमननरूप वेदांतविचार है सो कथन कऱ्याहै। और (तत्परायणाः) इसवचनकरिकै श्रीभगवान्नैं इसलोक परलोकके विषयसुखोंतैं तीव्रवैराग्य कथनकऱ्याहै। तहां उत्तरउत्तरसाधनकूं पूर्वपूर्वसाधनकी हेतुता है। जैसे ब्रह्मसाक्षात्कारविषे तौ निदिध्यासनकूं हेतुता है और निदिध्यासनविषे श्रवणमननरूप वेदांतविचारकूं हेतुता है और ता वेदांतविचारविषे वैराग्यकूं हेतुता है इति। इस प्रकार (तद्बुद्धयः तदात्मानः तन्निष्ठाः तत्परायणाः) या च्यारि विशेषणोंकरिकै युक्त जे संन्यासी हैं ते संन्यासी पुनः शरीरके संबंधका अभावरूप अपुनरावृत्तिकूं प्राप्त होवैंहैं अर्थात् विदेहमुक्तिकूं प्राप्त होवैंहैं इति। शंका—हे भगवन्! एकवार मुक्तहुएभी तिन विद्वान् पुरुषोंकूं पुनः शरीरका संबंध किस कारणतै नहीं होवै है? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः इति) मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारके आत्मज्ञानकरिकै समूलतैं निवृत्त होइगयेहैं पुनः देहके संबंधका-

रणरूप पुण्यपापरूप कल्मष जिन्होंका तिन पुरुषोंका नाम ज्ञाननिर्धूतकल्मष है। ऐसे विद्वान् पुरुष पुनः शरीरकूं प्राप्त होवैं नहीं। तात्पर्य यह—आत्मसाक्षात्कार करिकै तिन विद्वान् पुरुषोंके अनादिअज्ञानकी निवृत्ति होइजावैहै ता अज्ञानके निवृत्त हुए अज्ञानके कार्यरूप पुण्यपापकर्मभी निवृत्त होइजावैं हैं और तिन पुण्यपापकर्मोंके वशतैंही इन जीवोंकूं पुनः देहांतरकी प्राप्ति होवैहै। तिन पुण्यपापकर्मोंके नाश हुए तिन विद्वान् पुरुषोंकूं पुनः दूसरे शरीरकी प्राप्ति किसप्रकार होवैगी? किंतु नहीं होवैगी ॥ १७ ॥

तहां (तद्बुद्धयस्तदात्मानः) इस पूर्वले श्लोकविषे देहके पाततैं अनंतर ता आत्मज्ञानका विदेहकैवल्यरूप फल कथन कऱ्या। अब प्रारब्धकर्मके वशतैं ता देहके विद्यमान हुएभी ता आत्मज्ञानके जीवन्मुक्तिरूप फलकूं श्रीभगवान् कथन करैहैं—

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ॥
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) विद्याविनयसंपन्ने। ब्राह्मणे। गवि। हस्तिनि। शुनि। च। एव। श्वपाके। च। पंडिताः। समदर्शिनः ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! ज्ञानवान् पुरुष विद्याविनयुक्त ब्राह्मणविषे तथा गौविषे तथा हस्तिविषे तथा श्वान तथा चांडालविषे समदर्शी ही होवैंहैं ॥ १८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन! वेदके अर्थका सम्यक्ज्ञानरूप जा विद्या है अथवा अद्वितीयब्रह्मका प्रतिपादन करणेहारी ब्रह्मविद्यारूप जा विद्या है और तिन विद्यादिकोंकूं प्राप्त होइकैभी निरहंकारतारूप जो विनय है ता विद्या विनय दोनोंकरिकै संपन्न जे सर्वतैं उत्तम सात्त्विक ब्राह्मण हैं और तिन ब्राह्मणोंकी अपेक्षा करिकै मध्यम तथा संस्कारोंतैं रहित ऐसी जो राजस गौ है तथा अत्यंत तमोगुण युक्त तथा सर्वतैं अधम ऐसे जे हस्ति श्वान चांडाल हैं अर्थात् यथाक्रमतैं उत्तम मध्यम अधमरूप जितनेक सात्त्विक राजस तामस प्राणी हैं तिन सर्व ऊंचनीचप्राणियोंविषे ते ज्ञानवान् पुरुष समदर्शीही होवैंहैं अर्थात् तिन सत्त्वादिक गुणोंकरिकै तथा तिन गुणोंसेजन्य संस्कारोंकरिकै नहीं स्पर्श कऱ्या हुआ जो परब्रह्म है ता परब्रह्मका नाम सम है ता परब्रह्मकूंही ते विद्वान् पुरुष सर्वत्र देखैंहैं। यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथनकरीहै। तहां श्लोक—(अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंश-

पंचकम् । आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् ।) । अर्थ यह—अस्ति भाति प्रिय नाम रूप यह पंच अंशही सर्वत्र व्यापक हैं । तहां आद्यके तीन अंश तौ ब्रह्मरूप हैं और अंतके दो अंश जगत्‌रूप हैं इति । इस प्रकार ते विद्वान् पुरुष सर्वत्र अस्ति भाति प्रिय रूप ब्रह्मकूंही देखैं हैं । तात्पर्य यह—जैसे अत्यंत पवित्र गंगाजलविषे तथा तलावके जलविषे तथा अत्यंत निषिद्ध मदिराविषे तथा अत्यंत मलिन मूत्रविषे प्रतिबिंबभावकूं प्राप्त भया जो सूर्य है तिस सूर्यकूं तिन गंगाजलादिकोंके गुणदोषोंका संबंध होवै नहीं । तैसे आपणे चिदाभासद्वारा सर्व ऊंच नीच उपाधियोंविषे प्रतिबिंबभावकूं प्राप्त भया जो ब्रह्म है ता ब्रह्मकूं तिन ऊंच नीच उपाधियोंके गुणदोषोंका संबंध होवै नहीं । इस प्रकारका निरंतर विचार करतेहुए ते ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुष सर्वत्र समदृष्टि करिकै रागद्वेषतैं रहित हुए परमानंदकी स्फूर्तिकरिकै जीवन्मुक्तिके सुखकूंही सर्वदा अनुभव करैं हैं ॥ १८ ॥

हे भगवन् ! परस्पर विषमस्वभाववाले जे सात्विक राजस तामस प्राणी हैं तिन विषमस्वभाववाले प्राणियोंविषे समत्वबुद्धि करणेका धर्मशास्त्रविषे निषेध कन्या है । तहां गौतमस्मृति—(तस्यान्नमभोज्यं भवति समासमाभ्यां विषमसमे पूजातः इति ।) अर्थ यह—च्यारि वेदोंके ज्ञातारूप करिकै तुल्य तथा सदाचारविषे प्रवृत्तिरूपता करिकै तुल्य जे दो ब्राह्मण हैं तिन दोनों ब्राह्मणोंविषे एक ब्राह्मणका जो पुरुष वस्त्र अलंकार अन्न आदिकोंके दानपूर्वक जिस प्रकारका पूजन करै है तिसी प्रकारका पूजन ता दूसरे ब्राह्मणका करता नहीं, किंतु तिस ब्राह्मणका तिसतैं न्यून पूजन करै है । और एक ब्राह्मण तौ च्यारि वेदोंका वक्ता है तथा सदाचारकरिकै युक्त है और दूसरा ब्राह्मण तौ तिसतैं अल्पवेदका वक्ता है तथा सदाचारतैं रहित है तिन अधिक न्यून दोनों ब्राह्मणोंका जो पुरुष तिन वस्त्र अलंकार अन्नादिक पदार्थोंके दानपूर्वक समानही पूजन करै है तिस पूजन करणेहारे पुरुषका अन्न शिष्टपुरुषोंनैं भोजन करणा नहीं इति । किंवा समपुरुषोंकी विषमपूजा करणेहारे पुरुषकूं तथा विषमपुरुषोंकी समपूजा करणेहारे पुरुषकूं धर्मशास्त्रनैं दोषकीभी प्राप्ति कथन करी है । तहां धर्मशास्त्र—(पूजयिता प्रतिपत्तिविशेषमकुर्वन्धर्माद्धनाच्च हीयते इति) । अर्थ यह—पूजनकरणेहारा पुरुष समविषमभावके विचारकूं नहीं करता हुआ धर्मतैं तथा धनतैं रहित होवै है इति । यद्यपि ब्राह्मण गौ हस्ती श्वान चांडाल इत्यादिक सर्व ऊंच नीच पदार्थोंविषे

समबुद्धि करणेहारे जे ब्रह्मवेत्ता संन्यासी हैं, ते संन्यासी धनके संग्रहतें तथा अन्नके संग्रहतें रहित हैं। यातें तिन संन्यासियोंविषे अभोज्यान्नत्व तथा धनहीनत्व स्वतःही विद्यमान है। तथापि ता समबुद्धितें तिन संन्यासियोंविषेभी धर्मकी हानिरूप दोष अवश्यकरिकै होवैगा। और वास्तवतैं विचारकरिकै देखिये तौ (तस्यान्नमभोज्यम्) इस वचनतैं जो अभोज्यान्नत्व कथन कन्या है सो अभोज्यान्नत्व तिन समबुद्धिवाले पुरुषोंविषे अशुचिपणेकरिकै पापके उत्पत्तिकाही उपलक्षक है। सा पापकी उत्पत्ति तिन संन्यासियोंविषेभी संभव होइसकैहै। और तपस्वी पुरुषोंका सो तपही धन होवै है। यातैं तिस तपरूप धनकी हानिभी तिन संन्यासियोंविषे संभव होइसकै है। यातैं सर्वत्र समदर्शी पंडित पुरुष जीवन्मुक्तहीहै यह आपका वचन असंगत है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं—

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ॥
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥ १९॥

(पदच्छेदः) इह । एव । तैः । जितः । सर्गः । येषाम् । साम्ये । स्थितम् । मनः । निर्दोषम् । हि । समम् । ब्रह्म । तस्मात् । ब्रह्मणि । ते । स्थिताः ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिन पुरुषोंका मन ब्रह्मभावविषे स्थित हुआहै तिन पुरुषोंनैं इस जीवितदशाविषे ही यह द्वैतप्रपंच अतिक्रमण कन्याहै जिस कारणतैं सो ब्रह्म निर्दोष है तथा सम है तिसकारणतैं ते समदर्शीपुरुष ता ब्रह्मविषेही स्थित हैं ॥ १९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! परस्पर विषमभाववालाभी सर्वभूतोंविषे जो ब्रह्म अस्ति भाति प्रिय रूपकरिकै तुल्यही वर्त्तमान है ऐसे ब्रह्मके समभावविषे जिन विद्वान् पुरुषोंका शुद्ध मन निश्चल हुआ है ऐसे समदर्शी पंडित पुरुषोंनैं इस जीवितदशाविषेही यह सर्व द्वैत प्रपंच अतिक्रमण करचा है अर्थात् इस सर्व द्वैत प्रपंचका बाध कन्या है। तात्पर्य यह—जबी जीवितदशाविषेही तिन विद्वान् पुरुषोंनैं यह द्वैतप्रपंच अतिक्रमण कन्या है तबी इस शरीरके पाततैं अनंतर ते विद्वान् पुरुष इस द्वैत प्रपंचका अतिक्रमण करैंहैं याके विषे क्या कहणा है इति। जिसकारणतैं सो परब्रह्म निर्दोष है तथा सम है अर्थात् सो परब्रह्म जन्ममरणादिक सर्वविकारोंतैं

रहित है तथा कूटस्थ नित्य एकरस अद्वितीयरूप है। तिसकारणतैं ते समदर्शी विद्वान् पुरुष ता अद्वितीय ब्रह्मविषेही अभेदरूपकरिकै स्थित हैं इति। इहां श्रीभगवान्का यह अभिप्राय है, वस्तुविषे जो दुष्टपणा होवैहै सो दुष्टपणा दोप्रकारका होवैहै। एक तौ स्वभावतैं अदुष्टवस्तुकूंभी किसी दुष्टवस्तुके संबंधतैं दुष्टपणा होवैहै। जैसे स्वभावतैं अदुष्ट जो गंगाजल है ता गंगाजलकूं मूत्रकी गर्त्तविषे पावणेतैं दुष्टपणा होवैहै। और दूसरा वस्तुविषे स्वभावतैंही दुष्टपणा होवै है। जैसे मूत्रादिक मलिन पदार्थोंविषे स्वभावतैंही दुष्टपणा होवैहै। तहां स्वभावतैं दोषवाले जे श्वान चांडालादिक हैं तिन श्वानादिकोंविषे स्पर्शकूं करिकै स्थित हुआ जो ब्रह्म है सो ब्रह्म तिन श्वानादिकोंके दोषोंकरिकै अवश्य दुष्टताकूं प्राप्त होवैगा। इसप्रकारतैं विचारहीन मूढपुरुषोंनैं ता अद्वितीय ब्रह्मविषे सो दुष्टपणा संभावना कऱ्या हुआभी सो ब्रह्म तिन सर्व दोषोंके संबंधतैं रहितही है। जिसकारणतैं सो ब्रह्म आकाशकी न्याईं असंगही है। ता असंगब्रह्मकूं किसीभी दोषका स्पर्श होवै नहीं। तहां श्रुति-(असंगो ह्ययं पुरुषः इति । असंगो नहि सज्जते इति । सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः। एकस्तथा सर्वभूतांतरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः। इति) अर्थ यह-यह आत्मादेव असंग है इति। और असंग होणेतैं यह आत्मादेव किसीभी पदार्थके साथि संबंधकूं प्राप्त होवै नहीं इति। और जैसे सर्वलोकोंका प्रकाशक सूर्य भगवान् प्रकाश्यरूप घटादिक पदार्थोंके दोषोंकरिकै लिपायमान होवै नहीं तैसे सर्वभूतोंका अंतर आत्मारूप एक अद्वितीय ब्रह्मभी देहादिकोंके दुःखादिक धर्मोंकरिकै लिपायमान होवै नहीं इति। यातैं दुष्टउपाधियोंके संबंधतैं आत्माविषे दुष्टता संभवै नहीं। तथा कामादिक धर्मवत्ताकरिकै ता आत्मादेवविषे स्वतःभी सो दुष्टपणा संभवता नहीं। काहेतैं ते कामादिक जो आत्माके धर्म होते तौ तिन कामादिकों करिकै आत्माविषे स्वतःही सो दुष्टपणा होता। परंतु ते कामादिक आत्माके धर्म हैं नहीं किंतु (कामः संकल्पो विचिकित्सा) इस श्रुतिविषे ते कामादिक सर्व अंतःकरणके ही धर्म कथन करे हैं। आत्माका कोईभी धर्म कथन कऱ्या नहीं। किंतु (साक्षी-चेता केवलो निर्गुणश्च) यह श्रुति आत्माकूं सर्वधर्मोंतैं रहित निर्गुण कहैहै। इस प्रकार सर्व दोषोंतैं रहित जो ब्रह्म है ता ब्रह्मकूंही आपणा आत्मारूप करिकै जानणेहारे जे जीवन्मुक्त संन्यासी हैं तिन जीवन्मुक्त संन्यासियोंकूं पापकी

उत्पत्ति तथा तपरूप धनकी हानि तथा धर्मकी हानि इत्यादिक दोषोंकरिकै दुष्ट कहणा अत्यंत विरुद्ध है। और (समासमाभ्यां विषमसमे पूजातः) यह जो पूर्व स्मृतिवचन कथन कऱ्याथा सो स्मृतिवचन तौ अज्ञानी गृहस्थविषयकही है। ब्रह्मवेत्ता संन्यासी विषयक सो स्मृतिवचन नहीं है। काहेतैं ता स्मृतिविषे (तस्यान्नमभोज्यम्) या प्रकारका प्रथम उपक्रम कऱ्या है। तिसतैं अनंतर मध्यविषे (समासमाभ्यां विषमसमे पूजातः) यह वचन कथन कऱ्याहै । तिसतैं अनंतर (पूजयिताप्रतिपत्तिविशेषमकुर्वन्धनाद्धर्माच्च हीयते) याप्रकारका उपसंहार कऱ्या है। ता उपक्रम उपसंहार वचनतैं अविद्वान् गृहस्थही प्रतीत होवैहै। काहेतैं जो वस्तु जहां प्राप्त होवैहै तिस वस्तुकाही तहां निषेध होवैहै अप्राप्त वस्तुका निषेध होता नहीं। अन्नका संग्रह तथा धनका संग्रह गृहस्थपुरुषकूंही प्राप्त है संन्यासीकूं ता अन्नका संग्रह तथा धनका संग्रह प्राप्त है नहीं। यातैं समोंकी विषम पूजा करणेहारे पुरुषका तथा विषमकी सम पूजा करणेहारे पुरुषका अन्न भोजन करणे योग्य नहीं है। तथा इस प्रकारकी पूजा करणेहारा पुरुष धनतैं तथा धर्मतैं रहित होवैहै। याप्रकारका निषेध ता अविद्वान् गृहस्थविषेही घटैहै। ता ब्रह्मवेत्ता संन्यासीविषे सो निषेध घटता नहीं और (अन्नमभोज्यम्) इस वचनका मुख्य अर्थ छोडिकै ता वचनकरिकै पापकी उत्पत्तिका ग्रहण करणा तथा धनशब्दका सुवर्णादिरूप मुख्य अर्थ छोडिकै ता धनशब्दकरिकै तपका ग्रहण करणा यहभी अत्यंत असंगत है। यातैं यह अर्थ सिद्धभया। जैसे सुवर्णमय जा देवताकी प्रतिमा है तथा सुवर्णमय जो ता प्रतिमाका सिंहासन है तिन दोनोंविषे सुवर्णद्रष्टा पुरुष तौ समानताकूंही देखै है और ता सुवर्णदृष्टितैं रहित केवल आकारदृष्टिवाला जो पूजा करणेहारा पुरुष है सो पूजक पुरुष तौ तिन दोनोंविषे महान् विषमताकूंही देखै है तैसे सो ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुष तौ तिन ब्राह्मण, गौ, हस्ती, श्वान, चांडाल आदिक पदार्थोंविषे एक परिपूर्ण ब्रह्मकूंही देखै है और अज्ञानी पुरुष तौ तिन पदार्थोंविषे महान् विषमताकूं देखै है यातैं सा पूजा स्मृति तौ भ्रांतिकृत्य न्यून अधिकताकूं विषय करैहै और (विद्याविनयसंपन्ने) यह भगवान्का वचन तौ परमार्थवस्तुकूं विषय करैहै । यातैं ता स्मृतिवचनका इहां विरोध होवै नहीं ॥ १९ ॥

जिस कारणतैं सो परब्रह्म निर्दोष है तथा सर्वत्र सम है तिस कारणतैं ता निर्दोष समब्रह्मकूं आपणा आत्मारूप जानताहुआ सो ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुष आपभी रागद्वेषादिकदोषोंतैं रहित हुआ स्थित होवैहै। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्॥
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः॥ २०॥

(पदच्छेदः) न। प्रहृष्येत्। प्रियम्। प्राप्य। न। उद्विजेत। प्राप्य। च। अप्रियम्। स्थिरबुद्धिः। असंमूढः। ब्रह्मवित्। ब्रह्मणि। स्थितः॥२०॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! सो विद्वान् पुरुष प्रियवस्तुकूं प्राप्त होइकै नहीं हर्षकूं प्राप्त होवैहै तथा अप्रिय वस्तुकूं प्राप्त होइकै नहीं उद्वेगकूं प्राप्त होवैहै जिस कारणतैं सो विद्वान् स्थिरबुद्धि है तथा संमोहतैं रहित है तथा ब्रह्मवित् है तथा ब्रह्मविषेही स्थित है॥ २०॥

भा॰ टी॰—हे अर्जुन! सो समदर्शी विद्वान् संन्यासी सुखके करणेहारे प्रियपदार्थकूं प्राप्त होइकै हर्षकूं नहीं प्राप्त होवैहै तथा दुःखके करणेहारे अप्रिय पदार्थकूं प्राप्त होइकै विषादकूं नहीं प्राप्तहोवै है किंतु तिन दोनोंकूं आपणे प्रारब्धकर्मका फलरूप जानिकै सर्वदा एकरसही रहै है। यह सर्व अर्थ—(दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः) इस श्लोकविषे पूर्व विस्तारतैं कथन करिआये हैं। और प्रिय अप्रिय पदार्थोंकूं प्राप्त होइकै भी हर्ष विषादतैं रहित होणा इत्यादिक जो जीवन्मुक्त पुरुषोंका स्वाभाविक चारित है ता स्वाभाविक चारितकूं मुमुक्षुजननैं प्रत्यत्नपूर्वक संपादन करणा। इस अर्थके बोधन करणेवासतै श्रीभगवान्नैं (न प्रहृष्येत् नोद्विजेत्) या दोनोंपदोंविषे विधिका वाचक लिङ् प्रत्यय कथन कर्याहै। कोई जीवन्मुक्त पुरुष ऊपरि सो विधिवचन नहीं है। तात्पर्य यह—सर्वत्र अद्वितीय आत्माकूं देखणेहारा जो विद्वान् पुरुष है तिस विद्वान् पुरुषकूं आपणेतैं भिन्नरूपकरिकै किसीभी प्रिय अप्रिय पदार्थकी प्राप्ति संभवती नहीं। और लोकविषे आपणेतैं भिन्नकरिकै जान्याहुआ पदार्थही हर्ष विषादका हेतु होवैहै आपणा आत्मा किसीके हर्ष विषादका हेतु होवै नहीं। या कारणतैं ता प्रिय अप्रिय पदार्थकी प्राप्ति करिकै ता विद्वान् पुरुषकूं हर्षविषादकी प्राप्ति संभवती नहीं इति। अब जिस अद्वितीय आत्माके ज्ञानकरिकै

ता विद्वान् पुरुषकूं हर्षविषादकी प्राप्ति नहीं होवै ता आत्मज्ञानका साधनपूर्वक निरूपण करैं हैं (स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः इति) स्थिरा कहिये संन्यासपूर्वक वेदांतवाक्योंके विचारकी परिपक्वताकारिकै संशयतैं रहित हुई है ब्रह्मविषे बुद्धि जिसकी ताका नाम स्थिरबुद्धि है । अर्थात् श्रवणका फलरूप जा प्रमाणगत असंभावनाकी निवृत्ति है तथा मनका फलरूप जा प्रमेयगत असंभावनाकी निवृत्ति है ते दोनों फल जिसपुरुषकूं प्राप्त हुएहैं इति । शंका–हे भगवन् ! ता प्रमाणगत असंभावनातैं तथा प्रमेयगत असंभावनातैं रहित जो पुरुष है तिस पुरुषकूंभी विपरीतभावनारूप प्रतिबंधके वशतैं आत्माका साक्षात्कार नहीं होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् निदिध्यासनकूं कथन करैंहैं (असंमूढ इति) तहां अनात्माकार विजातीय वृत्तियोंके व्यवधानतैं रहित जो आत्माकार सजातीयवृत्तियोंका प्रवाह है ताका नाम निदिध्यासन है । ता निदिध्यासनकी परिपक्वताकारिकै विपरीतभावनारूप संमोहतैं रहित जो पुरुष है ताका नाम असंमूढ है। इहां वेदांतशास्त्र जीवब्रह्मके अभेदका प्रतिपादक है अथवा भेदका प्रतिपादक है याप्रकारके संशय नाम प्रमाणगत असंभावना है । और यह जीवात्मा ब्रह्मरूप है अथवा नहीं है इत्यादिक संशयोंका नाम प्रमेयगत असंभावना है । और देहादिकोंविषे आत्मत्वबुद्धिका नाम विपरीत भावना है । ते असंभावना विपरीतभावना आत्मज्ञानके प्रतिबंधक होवैंहैं । ता असंभावना विपरीतभावनाकी जबी श्रवण मनन निदिध्यासनतैं निवृत्ति होवै है तबी सर्व प्रतिबंधोंतैं रहितहुआ सो पुरुष ब्रह्मवित् होवै है अर्थात् मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकार ब्रह्मकूं आपणा आत्मारूप कारिकै साक्षात्कार करैहै तिसतैं अनंतर समाधिकी परिपक्वता करिकै सो विद्वान् पुरुष ता निर्दोषसमब्रह्मविषेही अभेदरूप करिकै स्थित होवै है ता ब्रह्मतैं भिन्न दूसरे किसी पदार्थविषे स्थित होवै नहीं । इस प्रकार ब्रह्मविषे स्थितहुआ सो विद्वान् पुरुष जीवन्मुक्त कह्या जावैहै तथा स्थितप्रज्ञ कह्या जावैहै । ऐसे जीवन्मुक्त पुरुषविषे द्वैतप्रपंचका दर्शन है नहीं यातैं ता जीवन्मुक्त पुरुषकूं प्रिय अप्रिय वस्तुकी प्राप्ति हुएभी जो हर्षविषादका अभाव कथन कर्‍याहै सो उचितही है और साधक मुमुक्षुजननैं तौ ता द्वैतदर्शनके विद्यमान हुएभी तिन विषयोंविषे दोषदृष्टिकारिकै सो हर्ष विषाद प्रयत्नकारिकै परित्याग करणा ॥ २० ॥

हे भगवन् ! बाह्य शब्दादिक विषयोंविषे जा प्रीति है सा प्रीति पूर्व अनेक जन्मोंविषे अनुभूत होणेतैं अत्यंत प्रबल है । यातैं तिन बाह्य विषयोंविषे आसक्त हुआ है चित्त जिसका ऐसे पुरुषकी सर्वदृष्ट सुखोंतैं रहित अलौकिक ब्रह्मविषे स्थिति किसप्रकार होवैगी ? किंतु नहीं होवैगी। और जो आप यह कहो कि सो ब्रह्म परम आनंदरूप है यातैं बाह्यविषयोंके प्रीतिका परित्याग करिकै ता ब्रह्मविषे तिस पुरुष-की स्थिति संभव होइसकै है इति । सो यह आपका कहणाभी संभवता नहीं काहेतैं सो ब्रह्मका आनंद अनुभव होता नहीं । यातैं ता ब्रह्मानंदकूं चित्तके स्थितिकी हेतुता संभवती नहीं । अनुभव कऱ्याहुआ आनंदही चित्तके स्थितिका हेतु होवै है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं–

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विंदत्यात्मनि यत्सुखम् ॥
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) बाह्यस्पर्शेषु । असक्तात्मा । विंदति । आत्मनि । यत् । सुखम् । सः । ब्रह्मयोगयुक्तात्मा । सुखम् । अक्षय्यम् । अश्नुते ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! बाह्यशब्दादिकविषयोंविषे आसक्तितैं रहित पुरुष अंतःकरणविषे स्थित जो सुख है तिसकूं प्राप्त होवै है तथा सो तृष्णारहित ब्रह्म-योगविषे युक्तचित्तवाला नाशतैं रहित सुखकूंभी प्राप्त होवैहै ॥ २१ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै ग्रहण करणे योग्य जे शब्दादिक विषय हैं ते शब्दादिक विषय अनात्मवस्तुका धर्म होणेतैं बाह्य कहे जावैं हैं । ऐसे बाह्य शब्दादिक विषयोंविषे नहीं आसक्तिकूं प्राप्त भयाहै चित्त जिसका ऐसा जो निष्काम पुरुष है सो निष्कामपुरुष तृष्णातैं रहित होणेतैं अत्यंत विरक्तहुआ आपणे अंतःकरणविषे स्थित जो बाह्यविषयोंकी अपेक्षातैं रहित उपशमरूप सुख है तिस सुखकूंही निर्मल अंतःकरणकी वृत्ति करिकै अनुभव करै है । यह वार्त्ता भारतविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक–(यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् । तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्॥) अर्थ यह–इस लोकविषे जे कामजन्य सुखहैं तथा स्वर्गादिक लोकोंविषे जे महान् दिव्यसुख हैं ते सर्व सुख तृष्णाकी निवृत्तिजन्य सुखके षोडशवें भागके तुल्यभी नहीं होवैं हैं इति । अथवा (आत्मनि) या पदकरिकै प्रत्यक्आत्माका

ग्रहण करणा । या पक्षविषे ता वचनका यह अर्थ करणा । त्वं पदार्थरूप प्रत्यक् आत्माविषे विद्यमान जो स्वरूपभूत सुख है जो सुख सुषुप्तिअवस्थाविषे सर्व प्राणियोंकूं अनुभव होवै है। तथा जो सुख बाह्यविषयोंकी आसक्तिरूप प्रतिबंधके वशतैं प्रतीत होता नहीं तिसी स्वरूपभूत सुखकूं सो विद्वान् पुरुष बाह्यविषयोंकी आसक्तिके अभावतैं प्राप्त होवैहै इति । किंवा सो विद्वान् पुरुष केवल त्वंपदार्थ आत्माके सुखकूंही नहीं प्राप्त होवै है किंतु तत्पदार्थकी एकताके अनुभव करिकै पूर्णसुखकूंभी अनुभव करै है । इस अर्थकूं श्रीभगवान् कहैं हैं (स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते इति) परमात्मारूप ब्रह्मविषे जो समाधिरूप योग है ताका नाम ब्रह्मयोग है ता ब्रह्मयोगकरिकै युक्त है आत्मा क्या अंतःकरण जिसका अर्थात् ता ब्रह्मयोगविषे संलग्नहै अंतःकरण जिसका ताका नाम ब्रह्मयोगयुक्तात्मा है । अथवा ब्रह्मशब्दकरिकै तत्पदार्थका ग्रहण करणा । तिस तत्पदार्थरूप ब्रह्मविषे महावाक्यार्थका अनुभवरूप समाधियोग करिकै युक्तहुआ है क्या एकताकूं प्राप्तहुआ है त्वंपदार्थरूप आत्मा जिसका ताका नाम ब्रह्मयोगयुक्तात्मा है । ऐसा ब्रह्मयोगयुक्तात्मा विद्वान्पुरुष उत्पत्ति नाशतैं रहित स्वस्वरूपभूत नित्यसुखकूंही प्राप्त होवै है अर्थात् सो विद्वान् पुरुष सर्वदा सुखानुभवरूपही होवै है । यद्यपि सो आत्मास्वरूप नित्यसुख वास्तवतैं इसपुरुषकूं तत्त्वसाक्षात्कारतैं पूर्वभी प्राप्तही है यातैं ताकी प्राप्ति कहणी संभवती नहीं । पूर्व अप्राप्तवस्तुकीही प्राप्ति होवै है । तथापि तत्त्वसाक्षात्कारतैं पूर्व सो नित्यसुख अविद्याकरिकै आवृत है यहही ता नित्यसुखकी अप्राप्ति है और तत्त्वसाक्षात्कारकरिकै ता अविद्याकी निवृत्ति होइजावै है यहही ता सुखकी प्राप्ति है अर्थात् ता नित्यसुखका जो अज्ञान है सोईही ता नित्यसुखकी अप्राप्ति है । और ता नित्यसुखका जो अपरोक्षज्ञान है सोईही ता नित्यसुखकी प्राप्ति है इति । यातैं प्रत्यक्आत्माविषे अभेदरूप करिकै स्थित जो नित्यसुख है ता नित्यसुखके अनुभवकी इच्छा करताहुआ यह अधिकारीपुरुष महान् नरकोंकी प्राप्ति करणेहारी तथा क्षणिक जा बाह्यविषयोंकी प्रीति है ता प्रीतितैं आपणे इंद्रियोंकूं निवृत्त करै । ताकरिकैही इस पुरुषकी प्रत्यक् अभिन्नब्रह्मविषे स्थिति होवै है ॥ २१ ॥

हे भगवन् ! बाह्यविषयोंके प्रीतिकी जबी निवृत्ति होवै तबी आत्माके नित्यसुखका अनुभव होवै । और आत्माके नित्यसुखका जबी अनुभव होवै तबी ता अनुभवके

प्रसादतैं बाह्यविषयोंके प्रीतिकी निवृत्ति होवै है । इस प्रकार नित्यसुखका अनुभव तथा बाह्यविषयोंके प्रीतिकी निवृत्ति इन दोनोंकी अन्योन्य आश्रयता प्राप्त होवै है और जिन दोपदार्थोंविषे अन्योन्य आश्रयता प्राप्त होवैहै तिन पदार्थोंविषे एकभी पदार्थ सिद्ध होता नहीं। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् विषयोंविषे दोष-दर्शनके अभ्यासकरिकैही तिन विषयोंके प्रीतिकी निवृत्ति होवैहै यातैं ता अन्योन्य आश्रयता दोषकी प्राप्ति होवै नहीं याप्रकारका उत्तर कथन करैहैं—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ॥
आद्यंतवंतः कौंतेय न तेषु रमते बुधः ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) ये । हि । संस्पर्शजाः । भोगाः । दुःखयोनयः । एव । ते । आद्यंतवंतः । कौन्तेय । न । तेषु । रमते । बुधः ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसकारणतैं जितनेक विषय इंद्रियके संबंधजन्य भोग हैं ते सर्वभोग दुःखके हेतुही हैं तथा आदिअंतवाले हैं । तिसकारणतैं विवेकीपुरुष तिन भोगोंविषे नहीं प्रीति करैं हैं ॥ २२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! शब्दादिक विषयोंके साथि जे श्रोत्रादिक इंद्रियोंके संबंध हैं तिनोंका नाम संस्पर्श है ता संस्पर्शकरिकै जन्य जितनेक अत्यंत क्षुद्र लेशमात्र सुखके अनुभवरूप भोग हैं ते सर्वभोग इसलोकविषे तथा परलोकविषे राग द्वेषकरिकै व्याप्त होणेतैं दुःखकेही हेतु हैं अर्थात् इस मनुष्यलोकतैं आदिलैके ब्रह्म-लोकपर्यंत जितनेक भोग हैं ते सर्वभोग तीनकालविषे दुःखकेही हेतु हैं । यह वार्त्ता विष्णुपुराणविषेभी कथन करीहै । तहां श्लोक—(यावन्तः कुरुते जंतुः संबंधान्मनसः प्रियान् । तावंतोऽस्य निखंन्यंते हृदये शोकशंकवः) अर्थ यह—यह जीव जितनेक मनके प्रियसंबंधोंकूं करैहै तितनेही शोकरूपी शंकु इस पुरुषके हृदयविषे छिद्र करैहैं इति । इस प्रकारके ते भोगभी कोई स्थिर हैं नहीं किंतु आदिअंतवाले हैं । इहां विषय इंद्रियके संयोगका नाम आदि है और ताके वियोगका नाम अंत है ते आदि अंत दोनों जिनोंविषे विद्यमान होवैं तिनोंका नाम आदिअंतवत् है अर्थात् ते भोग ता आदिकालविषेभी नहीं हैं तथा अंतकालविषेभी नहीं हैं किंतु स्वप्नपदा-र्थोंकी न्याईं ते भोग केवल मध्यकालविषेही प्रतीत होवैहैं यातैं ते भोग स्वप्नपदा-र्थोंकी न्याईं क्षणिक हैं तथा मिथ्यारूप हैं । यह वार्त्ता श्रीगौडपादाचार्यैंनभी कथन

करीहै (आदावंते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा इति) अर्थ यह—जो पदार्थ आदिकालविषे भी नहीं होवैहै तथा अंतकालविषे भी नहीं होवैहै सो पदार्थ वर्त्तमानकालविषे भी वास्तवतैं नहीं होवैहै । जैसे स्वप्नके पदार्थ हैं इति । हे अर्जुन ! जिस कारणतैं यह विषयजन्य भोग इस प्रकारके हैं तिस कारणतैं विवेकी पुरुष तिन भोगोंविषे नहीं रमण करैहै अर्थात् तिन भोगोंकूं प्रतिकूल जानिकै सो विवेकीपुरुष तिन भोगोंविषे प्रीतिकूं अनुभव करै नहीं इति । यह वार्त्ता पतंजलिभगवान्‌नैं भी योगसूत्रोंविषे कथन करी है । तहां सूत्र—(परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः इति) अर्थ यह—भलीप्रकारतैं निश्चय कऱ्याहै क्लेशादिकोंका स्वरूप जिसनैं ऐसा जो विवेकी पुरुष है तिस विवेकी पुरुषकूं इस लोकके तथा परलोकके सर्व विषय सुख दुःखरूपही प्रतीत होवैं हैं । अविवेकी पुरुषकूं ते विषयसुख दुःखरूप प्रतीत होवैं नहीं । याकारणतैंही शास्त्रविषे ता विवेकी पुरुषकूं अक्षिपात्रके तुल्य कथनकऱ्याहै । जैसे ऊर्णनाभिजंतुकृत जो तंतुहै सो तंतु अत्यंत सूक्ष्म होवैहै तथा अत्यंत कोमल होवैहै ऐसा तंतुभी नेत्रविषे पड्याहुआ आपणे स्पर्शकरिकै ता नेत्रकूं दुःखकीही प्राप्ति करैहै । ता नेत्रतैं भिन्न दूसरे मुखनासिकादिक अंगोंविषे पड्याहुआ सो तंतु दुःखकी प्राप्ति करै नहीं तैसे मधु विष दोनोंकरिकै मिलित अन्नभोजनकी न्याईं तीन कालोंविषे क्लेशकरिकै व्याप्त जे विषयभोगके साधन हैं ते विषयभोगके साधन ता विवेकी पुरुषकूंही दुःखकी प्राप्ति करैहैं । अर्थात् सो विवेकी पुरुषही तिनोंकूं दुःखरूप मानैं हैं । और रात्रि दिनविषे बहुत प्रकारके दुःखोंकूं सहन करणेहारा जो अविवेकी मूढ़पुरुष है, तिस अविवेकी मूढपुरुषकूं ते विषयभोगके साधन दुःखकी प्राप्ति करैं नहीं अर्थात् सो अविवेकी पुरुष तिन भोगके साधनोंकूं दुःखरूप मानता नहीं तहां ता पतंजलिसूत्रविषे (परिणामतापसंस्कारदुःखैः) या पदकरिकै भूत वर्त्तमान भविष्यत् या तीनकालोंविषेभी दुःखकरिकै मिश्रित होणेतैं तिन विषयसुखोंविषे औपाधिक दुःखरूपता कथनकरीहै और (गुणवृत्तिविरोधात्) या पदकरिकै तिन विषयसुखोंविषे स्वरूपतैंभी दुःखरूपता कथनकरीहै तहां (परिणामतापसंस्कारदुःखैः) यावचनके अंतविषे स्थित जो दुःख यह शब्द है ता दुःख शब्दका परिणाम ताप संस्कार या तीनों शब्दोंके साथि संबंध करणा । या करिकै यह अर्थ सिद्ध होवै है, परिणामदुःख तापदुःख संस्कारदुःख या तीनों रूपताकरिकै ते विषयसुख दुःख-

रूपही हैं। सो यह प्रकार अब दिखावैं हैं। जितनाक विषयसुखका अनुभव होवैहै सो सर्वरागकरिकै युक्तही होवैहै रागतैं विना सो विषयसुखका अनुभव होवैहै नहीं। काहेतैं जिस पुरुषका जिस वस्तुविषे राग होवैहै सो पुरुषही तिस वस्तुकी प्राप्तिकरिकै सुखी होवैहै और जिस पुरुषका जिस वस्तुविषे राग नहीं होवैहै सो पुरुष तिस वस्तुकी प्राप्तिकरिकै सुखी होवै नहीं। यह वार्त्ता सर्व लोकविषे प्रसिद्ध है। यातैं विषयकी प्राप्तितैं पूर्व उद्भव हुआ जो राग है सो रागही ता विषयकी प्राप्तिकालविषे सुखरूपकरिकै परिणामकूं प्राप्त होवैहै और सो राग क्षणक्षणविषे वृद्धिकूं प्राप्त होताजावैहै। ता रागका विषय जो पदार्थ है ता पदार्थकी जबी अप्राप्ति होवैहै तबी अवश्यकरिकै दुःखकी प्राप्ति होवैहै। यातैं सो राग दुःखरूपही है। तहां भोगोंविषे परितृप्तताकरिकै जा इंद्रियोंकी उपशांति है ताका नाम सुख है। और तिन भागोंविषे लौल्यताकरिकै जा तिन इंद्रियोंकी अनुपशांति है ताका नाम दुःख है सो बहुत भोगोंके भोगणेकरिकै तिन इंद्रियोंकूं तृष्णातैं रहित करणेविषे कोईभी प्राणी समर्थ नहीं है। उलटा बहुत भोगणेकरिकै तृष्णाकी वृद्धि होती जावैहै जैसे घृतकाष्ठोंके पावणेकरिकै अग्निकी वृद्धि होती जावैहै। यातैं दुःखरूप रागका परिणाम होणेतैं सो विषयसुखभी दुःखरूपही होवै है जिसकारणतैं कार्यकारणका अभेदही होवैहै तिसकारणतैं दुःखरूप रागका परिणाम होणेतैं सो विषयसुखभी दुःखरूपही है। इतनेकरिकै ता विषयसुखविषे परिणामदुःखरूपता कथन करी। अब तापदुःखरूपता कथन करैंहैं। तहां यह पुरुष जिस कालविषे ता विषयसुखका अनुभव करैहै तिस कालविषे ता विषयसुखके प्रतिकूल जितनेक दुःखके साधन हैं तिन सर्वदुःखोंके साधनोंविषे यह पुरुष द्वेष करैहै। और तिन दुःखके साधनरूप भूतोंका नहीं हनन करिकै सो विषयसुखका भोग संभवता नहीं। यातैं ता विषयसुखवासतै सो पुरुष तिन प्रतिकूल भूतोंकूं अवश्यकरिकै हनन करैहै तहां जितनेक दुःख है ते सर्व दुःखके साधन हमारेकूं मत प्राप्त होवैं याप्रकारका जो संकल्प विशेष है ताका नाम द्वेष है ता द्वेषके विषयरूप जितनेक दुःखके साधन हैं तिन सर्वोंके निवृत्त करणेविषे कोईभी प्राणी समर्थ होवै नहीं। यातैं ता विषयसुखके अनुभवकालविषेभी ता सुखके विरोधी विषयक द्वेष सर्वदा बन्या रहै है तिस द्वेषके विद्यमान हुए सो तापदुःख निवृत्त करणेकूं अशक्य है इहां तापकूंही द्वेष कहैं हैं। इसप्रकार तिन

दुःखसाधनोंके निवृत्त करणेविषे असमर्थ जो पुरुष है सो पुरुष तिस कालविषे मोहकूंभी अवश्यकरिकै प्राप्त होवै है। यातैं तापदुःखताकी न्याईं संमोहदुःखताभी निवृत्त करणेकूं अशक्य है। तहां तिस तापरूप द्वेषतैं कर्माशय उत्पन्न होवै है। काहेतैं जो पुरुष विषयसुखके साधनोंकी इच्छा करैहै सो पुरुष शरीरकरिकै तथा मनकरिकै तथा वाणीकरिकै अवश्य प्रवृत्त होवैहै। ता प्रवृत्तितैं अनंतर आपणे अनुकूल प्राणियों ऊपरि अनुग्रह करैहै; और आपणे प्रतिकूल प्राणियोंका हनन करै है। ता अनुकूल प्राणियोंके अनुग्रहतैं तथा प्रतिकूल प्राणियोंके हननतैं सो पुरुष धर्म अधर्मकूं संपादन करै है याका नाम कर्माशय है सो कर्माशय लोभतैं तथा मोहतैं होवैहै इति। इतने करिकै तिन विषयसुखोंविषे तापदुःखता कथन करी। अब संस्कारदुःखता कथन करैं हैं। तहां वर्त्तमानकालविषे जो विषयसुखका अनुभव है सो विषयसुखका अनुभव आपणे नाशकालविषे इस पुरुषके चित्तविषे संस्कारोंकूं उत्पन्न करि जावैहै। आगेतैं ते संस्कार ता सुखविषयक स्मरणकूं उत्पन्न करैं हैं तिसतैं अनंतर सो सुखविषयक स्मरण तिन सुखोंविषे रागकूं उत्पन्न करैहै। तिसतैं अनंतर सो सुखविषयक राग ता सुखकी प्राप्तिवासतै शरीर मन वाणीकी चेष्टाकूं उत्पन्न करैहै। तिसतैं अनंतर सा शरीरादिकोंकी चेष्टा पुण्यपापरूप कर्माशयकूं उत्पन्न करैहै। तिसतैं अनंतर ते पुण्यपापकर्म जन्मादिकोंकी प्राप्ति करैंहैं। इसका नाम संस्कारदुःखता है इस प्रकार तापमोहके संस्कारभी जानिलेणे। इतनेकरिकै भूत भविष्यत् वर्त्तमान या तीनोंकालविषे दुःखकरिकै युक्त होणेतैं यह सर्व विषयसुख दुःखरूपही है, यह अर्थ कथनकऱ्या। अब तिन विषयसुखोंविषे स्वरूपतैंभी दुःखरूपता कथन करैं हैं। (गुणवृत्तिविरोधाच्च) इस वचन करिकै इहां सुखरूप जो सत्त्वगुण है तथा दुःखरूप जो रजोगुण है तथा मोहरूप जो तमोगुण है या तीनोंका गुणशब्दकरिकै ग्रहणकरणा। ते सत्त्व रज तम तीनों गुण परस्पर विरुद्ध स्वभाववाले हुएभी जैसे तेल वर्त्ति अग्नि यह तीनों मिलिकै एकही दीपकरूप कार्यकूं उत्पन्न करैं हैं तैसे इस पुरुषके भोगवासतै तीन गुणात्मक कार्यकूं उत्पन्न करैं हैं। तिस त्रिगुणात्मक कार्यविषेभी एक गुणकी तौ प्रधानता होवै है और दूसरे दो गुणोंकी गौणता होवैहै। ता एक प्रधान गुणकूं अंगीकार करिकैही सो त्रिगुणात्मक कार्यभी सात्त्विक राजस तामस याप्रकारका एक एक गुण करिकै कथन कऱ्या जावै है। तहां सुखका

उपभोगरूप जो प्रत्यय है सो प्रत्यय उद्भूत सत्त्वगुणका कार्य हुआभी अनुद्भूत रज तमकाभी कार्य होवै है। केवल सत्त्वगुणका सो प्रत्यय कार्य है नहीं। यातैं सो सुखका उपभोगरूप प्रत्ययभी त्रिगुणात्मकही है। यातैं ता सुखका उपभोगरूप प्रत्ययविषे सुखरूपता तथा दुःखरूपता तथा विषादरूपता यह तीनोंही विद्यमानहैं। या कारणतैंही विवेकी पुरुषकूं ते सर्व विषयसुखोंके अनुभव दुःखरूपही हैं। ऐसा दुःखरूप विषयसुखका उपभोगरूप प्रत्ययभी कोई स्थिर नहीं हैं। किंतु सो प्रत्यय शीघ्रही नाशकूं प्राप्त होवै है। जिस कारणतैं (चलं हि गुणवृत्तम्) इस वचन करिकै चित्तकूं शीघ्रपरिणामी कथन कऱ्या है। शंका—एकही सो प्रत्यय एकही कालविषे परस्पर विरुद्ध सुखदुःख मोहरूपताकूं कैसे प्राप्त होवैगा, किन्तु नहीं प्राप्त होवैगा। समाधान—उद्भूत अनुद्भूत या दोनोंका परस्पर विरोध होवै नहीं, किंतु समवृत्तिवाले गुणोंकाही एककालविषे परस्पर विरोध होवैहै। विषमवृत्तिवाले गुणोंका एक कालविषे परस्पर विरोध होता नहीं। जैसे इस पुरुषविषे अभिव्यक्तिकूं प्राप्त हुए जे धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य यह च्यारों हैं ते अभिव्यक्त धर्मादिक च्यारों आपणे समान अभिव्यक्तिकूं प्राप्त हुए जे अधर्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्य यह च्यारि हैं तिन च्यारोंके साथही यथाक्रमतैं विरोधकूं करैं हैं। अनभिव्यक्त अधर्मादिकोंके साथि अभिव्यक्त धर्मादिक विरोधकूं करते नहीं। इस लोकविषेभी एक प्रधान पुरुषका दूसरे प्रधान पुरुषके साथिही विरोध होवै है, दुर्बल पुरुषके साथि ता प्रधान पुरुषका विरोध होता नहीं। तैसे सत्त्व रज तम यह तीनों गुणभी एक कालविषे परस्पर प्रधानतामात्रकूं नहीं सहन करैं हैं। एक दूसरेके सद्भावमात्रकूं असहन करते नहीं। इसी प्रकार परिणामदुःख तापदुःख संस्कारदुःख या तीनों विषेभी एकही कालविषे राग द्वेष मोह या तीनोंका सद्भावभी जानिलेणा। जिस कारणतैं ते रागद्वेषादिक क्लेश प्रसुप्त तनु विच्छिन्न उदार इन च्यारि रूपों करिकै च्यारि अवस्थावोंवालेही होवैं हैं। अब तिन क्लेशोंका स्वरूप योगशास्त्रकी रीतिसैं वर्णन करैं हैं। तहां योगसूत्र— (अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पंचक्लेशाः ॥ १ ॥ अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥ २ ॥ अनित्याशुचिदुःखाऽनात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥ ३ ॥ दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ ४ ॥ सुखानुशयी रागः ॥ ५ ॥ दुःखानुशयी द्वेषः ॥ ६ ॥ स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभि-

निवेशः ॥ ७ ॥ ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ॥ ८ ॥ ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥ ९ ॥ क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टाऽदृष्टजन्मवेदनीयः ॥ १० ॥ सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥ ११ ॥) अब यथाक्रमतैं इन एकादश सूत्रोंका अर्थ निरूपण करैं हैं। अविद्या अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेश यह पंच क्लेश होवैं हैं। तहां कर्मके तथा ताके फलके प्रवर्त्तक हुए जे इस पुरुषकूं दुःखकी प्राप्ति करैं तिन्होंका नाम क्लेश है। याप्रकारका लक्षण तिन अविद्यादिक पांचोंविषे घटै है। यातैं ते अविद्यादिक पांचों क्लेश कहे जावैं हैं इति ॥ १ ॥ तिन पंच क्लेशोंविषेभी प्रथम क्लेशरूप जा अविद्या है सा अविद्याही प्रसुप्त तनु विच्छिन्न उदार या च्यारि अवस्थावाले अस्मितादिक च्यारि क्लेशोंका कारणरूप है। तहां तत् अभाववाले विषे तत्वत्ता बुद्धि विपर्यय मिथ्याज्ञान अविद्या यह च्यारों शब्द एकही अर्थके वाचक हैं इति ॥ २ ॥ सा अविद्या च्यारि प्रकारकी होवै है। तहां अनित्यपदार्थोंविषे नित्यबुद्धि करणी यह प्रथम अविद्या है। जैसे पृथिवी, चंद्र, सूर्य, तारागण, स्वर्ग, देवता इत्यादिक अनित्य पदार्थोंविषे यह सर्वपदार्थ नित्य हैं या प्रकारकी बुद्धि करणी इति। और अशुचि पदार्थोंविषे शुचि बुद्धि करणी यह दूसरी अविद्या है। जैसे अशुचि स्त्रीके शरीरविषे शुचि बुद्धि करणी। यह वार्त्ता श्रीव्यासभगवाननैंभी कथन करीहै। तहां श्लोक—(स्थानाद्बीजादुपष्टंभान्निष्पंदान्निधनादपि। कायमाधेयशौचत्वात्पंडिता ह्यशुचिं विदुः) अर्थ यह—शास्त्रके यथार्थ तात्पर्यकूं जानणेहारे विद्वान् पुरुष इस शरीरकूं स्थान, बीज, उपष्टंभ, निष्पंद, निधन, आधेयशौच, इतनैं हेतुवैंतैं अशुचिही जानैंहैं। तहां विष्ठामूत्रादिकोंकारिकै युक्त जो माताका उदर है ताका नाम स्थान है। ऐसे मलिनस्थानविषे इस शरीरकी स्थिति होवै है यातैं यह शरीर स्थानतैंभी अशुचिही है और पिताका जो सप्तम धातुरूप शुक्र है तथा माताका जो सप्तम धातुरूप शोणित है याका नाम बीज है ऐसे बीजतैं इस शरीरकी उत्पत्ति होवैहै यातैं यह शरीर बीजतैंभी अशुचिही है। और अन्नका परिणामरूप जो श्लेष्म रुधिरादिक है याका नाम उपष्टंभ है ता उपष्टंभतैंभी यह शरीर अशुचिही है। और मुख, नासिका, कर्ण, नेत्र, पायु, उपस्थ, इन सर्व द्वारोंतैं जे मलका बाहारि निकसणा है याका नाम निष्पंद है ता निष्पंदतैंभी यह शरीर अशुचिही है और मरणका नाम निधन है जिस मरणकरिकै विद्वान् ब्राह्मणका शरीरभी

अशुचि होवै है ता निधनतैंभी यह शरीर अशुचिही है और स्नान चंदन लेपादिकों करिकै जो इस शरीरविषे शुचित्वका आपादन करणा है याका नाम आधेयशौच है ता आधेयशौचता करिकैभी यह शरीर अशुचिही है इति । ऐसे अशुचि स्त्रीशरीरविषे शुचि बुद्धि करणी दूसरी अविद्या है इति । और दुःखरूप विषयभोगोंविषे सुखबुद्धि करणी यह तीसरी अविद्या है । सा दुःखविषे सुख बुद्धि तौ (परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः) इस सूत्रके व्याख्यानविषे पूर्व कथन करिआये हैं इति । और अनात्मवस्तुविषे आत्मबुद्धि करणी यह चतुर्थ अविद्या है । जैसे अनात्मरूप इस स्थूलशरीरविषे मैं मनुष्य हूं मैं ब्राह्मण हूं इस प्रकारकी आत्मबुद्धि करणी इति । इस प्रकार च्यारिप्रकारके भेदकरिकै स्थित जा अविद्या है ता अविद्याही अस्मितादिक सर्व क्लेशोंका मूलभूत है । इसी अविद्याकूं शास्त्रविषे तम या नामकरिकै कथन करैं हैं इति ॥ ३ ॥ और दृक्शक्ति जो पुरुष है तथा दर्शनशक्ति जो बुद्धि है ते दोनों भोक्ताभोग्यरूप करिकै अत्यंत भिन्न हैं ऐसे पुरुष बुद्धि दोनोंका जो अविद्याकृत अभेदअभिमान है याका नाम अस्मिता है इसी अस्मिताकूं ब्रह्मवेत्ता पुरुष हृदयग्रंथि इस नामकरिकै कथन करैं हैं और इसी अस्मिताकूं शास्त्रविषे मोह या नामकरिकै कथन करैं हैं इति ॥ ४ ॥ और तिसतिस सुखकी प्राप्तिके जे साधन हैं तिन सर्वसाधनोंतैं रहित पुरुषका जो सर्वप्रकारके सुख हमारेकूं प्राप्त होवैं याप्रकारका विपर्यय विशेष है ताका नाम राग है । इसी रागकूं शास्त्रविषे महामोह या नामकरिकै कथन करैं हैं ॥ ५ ॥ और दुःखकी प्राप्ति करणेहारे साधनोंके विद्यमान हुएभी हमारेकूं कोईप्रकारका दुःख नहीं प्राप्त होवैं याप्रकारका जो विपर्ययविशेष है ताका नाम द्वेष है । इसी द्वेषकूं शास्त्रविषे तामिस्र या नामकरिकै कथन करैं हैं इति ॥ ६ ॥ और जीवनका हेतु जो आयुष् है ता आयुष्के अभावहुएभी इन अनित्यभी देह इंद्रियादिकों साथि हमारा कदाचित्भी वियोग नहीं होवै या प्रकारका जो विद्वान् अविद्वान् सर्वप्राणियोंविषे साधारण मरणका त्रासरूप विपर्यय है ताका नाम अभिनिवेश है इसी अभिनिवेशकूं शास्त्रविषे अंधतामिस्र या नामकरिकै कथन कऱ्याहै इति ॥ ७ ॥ यह वार्त्ता पुराणविषेभी कथन करीहै । तहां श्लोक—(तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यंधसंज्ञितः । अविद्यापंचपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः) अर्थ यह—इस पुरुषकी

अविद्या तम, मोह, महामोह, तामिस्र,अंधतामिस्र इन पंचप्रकारोंकरिकै प्रादुर्भावकूं प्राप्त होवै है इति । यह अविद्यादिक पंचक्लेश प्रसुप्तअवस्था तनुअवस्था विच्छिन्न-अवस्था उदारअवस्था या च्यारि अवस्थावोंवाले होवैंहैं । तहां असत्कार्यकी कदाचित्भी उत्पत्ति होवै नहीं । यातैं तिन अविद्यादिक पंचक्लेशोंकी आपणी उत्पत्तितैं पूर्व जा अनभिव्यक्तरूप करिकै स्थिति है ताका नाम प्रसुप्तअवस्था है और अभिव्यक्तिकूं प्राप्तहुएभी तिन क्लेशोंविषे दूसरे सहकारी कारणके अलाभतैं जो कार्यकी अजनकता है ताका नाम तनुअवस्था है और जे क्लेश अभिव्यक्तिकूंभी प्राप्तहुए हैं तथा जिन क्लेशोंनैं आपणेआपणे कार्यकूंभी उत्पन्न कऱ्या है ऐसे क्लेशोंकाभी जो किसी बलवान् प्रत्ययकरिकै अभिभव है ताका नाम विच्छिन्नअवस्था है । और जे क्लेश अभिव्यक्तिकूंभी प्राप्त हुएहैं तथा दूसरे सहकारी कारणोंकी संपत्तिकूंभी प्राप्त हुएहैं ऐसे क्लेशोंविषे जो प्रतिबंधतैं रहितपणे करिकै आपणे आपणे कार्यकी जनकता है ताका नाम उदारअवस्था है । इस प्रकारकी च्यारि अवस्थावों करिकै विशिष्ट तथा विपर्यय बुद्धिरूप ऐसे जे अस्मितादिक च्यारि क्लेश हैं तिन च्यारों क्लेशोंका सामान्यरूप अविद्याही क्षेत्ररूप है अर्थात् सा अविद्या तिन च्यारों क्लेशोंके उत्पत्तिका भूमिरूप है । तिन सर्वक्लेशोंविषे विपरीतबुद्धिरूपता पूर्व कथन करिआये हैं यातैं ता अविद्याकी निवृत्ति करिकैही तिन अस्मितादिक सर्व क्लेशोंकी निवृत्ति होवैहै इति । ते क्लेशभी सूक्ष्म स्थूल या भेदकरिकै दोप्रकारके होवैं हैं । तहां प्रकृतिविषे लीन पुरुषोंके जे प्रसुप्त क्लेश हैं तथा विरोधी भावना करिकै तनु करेहुए जे योगी पुरुषोंके तनुक्लेश हैं ते प्रसुप्त अवस्थावाले क्लेश तथा तनु अवस्थावाले क्लेश दोनों सूक्ष्म कहेजावैं हैं । ते सूक्ष्म क्लेश तौ मनका निरोधरूप निर्बीज समाधिकरिकैही निवृत्त होवैं हैं । इसी मनके निरोधकूं सूत्रविषे प्रतिप्रसव इस नामकरिकै कथन कऱ्याहै इति ॥ ८ ॥ और तिन सूक्ष्म क्लेशोंका कार्यरूप जे विच्छिन्न अवस्थावाले तथा उदार अवस्थावाले क्लेश हैं ते दोनों प्रकारके क्लेश स्थूल कहेजावैं हैं तहां जे क्लेश बीचमैं विच्छेदकूं प्राप्त होइकै तिसतिस रूपकरिकै पुनः पुनः प्रादुर्भावकूं प्राप्त होवैं हैं ते क्लेश विच्छिन्न कहेजावैं हैं । जैसे रागकालविषे क्रोध विद्यमान हुआभी प्रादुर्भूत होवै नहीं किंतु कालांतरविषे सो क्रोध प्रादुर्भूत होवैहै । यातैं सो क्रोध विच्छिन्न कह्याजावै है । इसीप्रकार जिस कालमें चैत्रनामा पुरुष एक स्त्रीविषे रागवाला है तिस कालविषे

सो चैत्रनामा पुरुष अन्य स्त्रियोंविषे कोई वैराग्यकूं प्राप्त हुआ नहीं किंतु तिस काल-विषे सो चैत्रपुरुषका राग ता एक स्त्रीविषे वृत्तिकूं प्राप्त हुआ है और अन्य स्त्रियों-विषे सो राग आगे वृत्तिकूं प्राप्त होवैगा यातैं तिस कालविषे सो राग विच्छिन्न कह्याजावै है । इस प्रकारकी रीति दूसरे क्लेशोंविषेभी जानिलेणी और जे क्लेश जिसकालविषे विषयोंविषे वृत्तिकूं प्राप्त हुएहैं ते क्लेश तिस कालविषे सर्वरूप-कारिकै प्रादुर्भूत हुए उदार कहेजावैं हैं । ते विच्छिन्न अवस्थावाले तथा उदारअ-वस्थावाले दोनों प्रकारके क्लेश अत्यंत स्थूल हैं । यातैं ते दोनों प्रकारके क्लेश शुद्धसत्त्वमय भगवत्के ध्यानकरिकैंही निवृत्त होवैं हैं । ते दोनों स्थूल क्लेश आपणी निवृत्तिविषे ता मनके निरोधकी अपेक्षा करते नहीं । सूक्ष्मक्लेशही आपणी निवृत्ति-विषे ता मनके निरोधकी अपेक्षा करैं हैं । जैसे लोकविषे वस्त्रका जो स्थूल मल है सो स्थूलमल जलके प्रक्षालनतैं निवृत्त होइजावैहै और ता वस्त्रविषे जो सूक्ष्म मल है सो सूक्ष्ममल क्षारसंयोगादिकोंकरिकै निवृत्ति होवैहै । तैसे ते स्थूलक्लेश तौ भगवत्के ध्यानकरिकै निवृत्त होवैं हैं और ते सूक्ष्मक्लेश तौ ता मनके निरोध-करिकै निवृत्त होवैं हैं यातैं यह अर्थ सिद्धभया पूर्वउक्त परिणामदुःख, तापदुःख, संस्कारदुःख, या तीनोंविषे प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न या तीन रूपोंकरिकै ते सर्व क्लेश सर्वदा रहैं हैं और उदारअवस्था तौ किसीकालविषे किसी क्लेशकीही होवैहै। यह अविद्यादिक पंच बाधनारूप दुःखकूं उत्पन्न करतेहुए क्लेशशब्दका वाच्य होवै हैं इति ॥ ९ ॥ और धर्म अधर्मरूप जो कर्माशय है सो क्लेशमूलकही होवैहै अर्थात् ता कर्माशयका ते क्लेशही मूलभूत हैं । सो क्लेशमूलक कर्माशयभी दोप्रका-रका होवैहै । एकतौ दृष्टजन्मवेदनीय होवैहै । दूसरा अदृष्टजन्मवेदनीय होवै है । तहां जिस देहकरिकै ते धर्मअधर्मरूप कर्म करेजावैं हैं तिस देहकरिकै जो तिन क-र्मोंके फलका भोग भोगणा है ताका नाम दृष्टजन्मवेदनीय है । और जिस कर्मा-शयका फल इस शरीरविषे भोग्याजावै नहीं किंतु जन्मांतरविषे भोग्याजावै है सो कर्माशय अदृष्टजन्मवेदनीय कह्याजावै है इति ॥ १० ॥ तहां मूलभूत क्लेशोंके विद्यमानहुए ता धर्मअधर्मरूप कर्माशयका फल अवश्यकरिकै होवैहै । सो कर्माशयका फलभी जाति, आयुष, भोग, या भेदकरिकै तीनप्रकारका होवैहै तहां जन्मका नाम जाति है । अथवा ब्राह्मणत्व देवत्व आदिकोंका नाम जाति है । और देह प्राण या दोनोंका जो चिरकालपर्यंत संबंध है ताका नाम आयुष है । और श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै शब्दादिक विषयोंका जो अनुभव है ताका

नाम भोग है । तिन तीनों विषेभी भोग तौ मुख्य है और जाति आयुष् यह दोनों ता भोगका शेषरूप हैं इति ॥ ११ ॥ इस प्रकार तिन अविद्यादिक क्लेशोंकी संतति निरंतर प्रवृत्त होइरही है । इसी पूर्वउक्त सर्व अभिप्रायकूं मनविषे राखिकैं श्रीभगवान्नैं (ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते । आद्यंतवंतः) यह वचन कथन कऱ्या है । तहां तिन विषयभोगोंविषे दुःखयोनित्व तो (परिणाम-तापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च) इस वचनकारिकै पूर्व कथन कऱ्याहै और तिन विषयभोगोंविषे आदिअंतवत्त्व तौ (चलं हि गुणवृत्तम्) इस वचनकारिके पूर्व कथन कऱ्याहै । यह सर्व व्याख्यान योगशास्त्रके मतके अनुसार कथन कऱ्याहै और वेदांतमतविषे तौ ताका यह अर्थ है । ब्रह्मके आश्रित तथा ब्रह्मकूं विषय करणे-हारा जो अनादिभावरूप अज्ञान है ताका नाम अविद्या है। और सुखदुःखादिक धर्मसहित अहंकारका जो आत्माविषे अध्यास है ताका नाम अस्मिता है । और राग द्वेष अभिनिवेश यह तीनों तौ ता अहंकारकी वृत्तिविशेष हैं । इस प्रकार संसार अविद्यामूलक होणेतैं अविद्यारूपही है । यातैं ते सर्वविषयभोग मिथ्यारूप हुएभी रज्जुविषे सर्पअध्यासकी न्याईं दुःखकेही कारण हैं । तथा स्वप्नपदार्थोंकी न्याईं दृष्टिसृष्टिमात्रहोणेतैं आदिअंतवालेभी हैं । जिस पुरुषका अधिष्ठान आत्माके साक्षात्कारकारिकै सो अज्ञानसहित भ्रम निवृत्त होइगयाहै ऐसा जो विद्वान् पुरुष है सो विद्वान् पुरुष तिन मिथ्या विषयभोगोंविषे रमण करता नहीं । जैसे मृगतृ-ष्णाके वास्तव स्वरूपकूं जानणेहारा जो पुरुष है सो पुरुष जलके प्राप्तिकी इच्छा-कारिकै तहां प्रवृत्त होता नहीं । तैसे अधिष्ठान आत्माके ज्ञानतैं सर्वप्रपंचकूं मिथ्या जानणेहारा सो विद्वान् पुरुष तिन विषयभोगोंविषे प्रीति करै नहीं । किंतु इस संसारविषे सुखका गंधमात्र भी नहीं है या प्रकारका निश्चय कारिकै सो विद्वान् पुरुष तिस संसारतैं सर्व इंद्रियोंकूं निवृत्त करैहै ॥ २२ ॥

तहां सर्व अनर्थोंके प्राप्तिका हेतुरूप तथा श्रेयमार्गका विरोधी तथा अल्पप्रयत्न कारिकै दुर्निवार ऐसा जो यह अत्यंत कष्टरूप दोष है सो दोष महान् प्रयत्नकारिकै भी मुमुक्षुजनोंनैं निवृत्त करणेकूं योग्य है । इस प्रकार प्रयत्नकी अधिकता विधान करणेवास्तै श्रीभगवान् पुनः कथन करैहैं—

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्छरीरविमोक्षणात् ॥
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) शक्नोति । इह । एव । यः । सोढुम् । प्राक् शरीरविमोक्षणात् । कामक्रोधोद्भवम् । वेगम् । सः । युक्तः । सः । सुखी । नरः ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो धीरपुरुष शरीरके नाशपर्यंत संभाव्यमान तथा कामक्रोधजन्य ऐसे वेगकूं बाह्यइंद्रियोंकी प्रवृत्तितैं पूर्व ही सहन करणेविषे समर्थ होवैहै सोईही पुरुष युक्त है तथा सोईही पुरुष सुखी है तथा सोईही पुरुष है॥ २३ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! प्रत्यक्ष देखेहुए तथा श्रवण करे हुए तथा स्मरण करे हुए जितनेक आत्माके अनुकूल विषयसुखके साधन हैं, तिन सुखसाधनोंके सौंदर्यतादिकगुणोंका वारंवार चिंतन करणेकरिकै तिन विषयसुखके साधनोंविषे उत्पन्नभया जा रतिनामा अभिलाषा है जिस अभिलाषाकूं तृष्णा लोभ कहैहैं ताका नाम काम है । यद्यपि स्त्री पुरुष दोनोंकी जा परस्पर विषयसंबंधविषे अभिलाषा है ता अभिलाषाविषे ही सो कामशब्द निरूढ है । इस अभिप्रायकरिकैही (कामः क्रोधस्तथा लोभः) इस वचनविषे धनकी तृष्णाका नाम लोभ है और स्त्रीके संसर्गकी तृष्णाका नाम काम है इसप्रकार काम लोभ यह दोनों भिन्नभिन्न कथन करेहैं । तथापि इहां तौ काम लोभ दोनों विषे अनुगत जो तृष्णारूप सामान्य है ता तृष्णारूप सामान्यके अभिप्रायकरिकै केवल कामशब्दही कथन कऱ्या है । ता कामशब्दतैं पृथक् लोभशब्द कथन कऱ्या नहीं इति । और प्रत्यक्ष देखेहुए तथा श्रवण करेहुए तथा स्मरण करेहुए जितनेक आत्माके प्रतिकूल दुःखके साधन हैं तिन दुःखके साधनोंविषे वारंवार दोषोंके चिंतन करणे करिकै उत्पन्नभया जो प्रज्वलनरूप द्वेष है जिस द्वेषकूं मन्युभी कहैं हैं ताका नाम क्रोध है । ता काम क्रोध दोनोंकी जो उत्कट अवस्था है जा उत्कट अवस्था लोक वेदके विरोधज्ञानका प्रतिबंधक होणेतैं लोकवेदतैं विरुद्ध अर्थविषे प्रवृत्तिकी उन्मुखतारूप है । सा काम क्रोधकी उत्कट अवस्था प्रसिद्ध नदीके वेगके समान होणेतैं वेगशब्दकरिकै कही जावैहै । जैसे लोकप्रसिद्ध नदीका वेग वर्षाकालविषे अत्यंत प्रबलता करिकै लोकवेदके विरोधज्ञानतैं गर्त्तादिकोंविषे नहीं पडनेकी इच्छा करते हुए पुरुषकूंभी बलात्कारतैं ता गर्त्तविषे प्राप्त करिकै डुबावै है, तथा अधोदेशकूं लेजावै है । तैसे सो काम क्रोधका वेगभी निरंतर विषयोंका चिंतनरूप वर्षाकाल करिकै अत्यंत प्रबलताकूं प्राप्त हुआ लोकवेदके विरोधज्ञानतैं तिन विषयोंकी नहीं इच्छा करतेहुए पुरुषकूंभी ता विषयरूप गर्त्तविषे प्राप्तकरिकै संसाररूप समुद्रविषे डुबावै है तथा महान्

नरकरूप अधोदेशकूं लेजावै है । यह सर्व अर्थ श्रीभगवान्नैं (वेगम्) या शब्द-करिकै सूचन कऱ्या है । यह सर्व अर्थ (अथ केन प्रयुक्तोयं पापं चरति पूरुषः) इस श्लोकविषे पूर्व कथन करिआये हैं । इसप्रकारका अंतःकरणका क्षोभरूप जो कामका वेग है तथा क्रोधका वेग है जो कामक्रोधका वेग अनेकप्रकारके बाह्य विकाररूप लिंगोंकरिकै जान्याजावैहै । तहां रोमांचोंका खड़ा होणा तथा मुखकी प्रसन्नता होणी तथा नेत्रोंकी प्रसन्नता होणी इत्यादिक बाह्यचिह्नोंकरिकै सो काम-वेग अनुमान कऱ्याजावै है । और शरीरविषे कंपहोणा तथा प्रस्वेदका निकसणा तथा आपणे ओष्ठोंकूं दांतोंसैं दबावणा तथा नेत्रोंकी रक्तता इत्यादिक बाह्य चिह्नों-करिकैं सो क्रोधका वेग अनुमान कऱ्याजावै है । तथा जो कामक्रोधका वेग शरी-रके नाशपर्यंत अनेकप्रकारके निमित्तोंके वशतैं सर्वदा संभावना कऱ्या जावैहै ता अंतरउत्पन्नहुए कामक्रोधके वेगकूं जो धैर्यवान् संन्यासी बाह्यइंद्रियोंके व्यापार-रूप गर्त्तके पाततैं पूर्वही विषयोंविषे वारंवार दोषचिंतनजन्य वशीकारनामा वैरा-ग्यकरिकै सहन करणेविषे समर्थ होवैहै । अर्थात् जैसे तिमिंगिलनामा मत्स्य आपणे बलकरिकै नदीके वेगकूं सहन करै है। तैसे जो धैर्यवान् पुरुषरूप वैराग्यके बलतैं ता कामक्रोधके वेगकूं सहन करैहै । तहां कामक्रोधके वेगकरिकै जो बाह्य अनर्थविषे प्रवृत्ति है ता प्रवृत्तिरूप कार्यकूं न संपादन करिकै जो तिस कामक्रोधके वेगकूं निष्फल करणा है यहही ता कामक्रोधके वेगका सहन करणा है । सोईही पुरुष योगी है। तथा सोईही पुरुष सुखी है । तथा सोईही परमपुरुषार्थका संपादक होणेतैं पुरुषरूप है। तिसतैं भिन्न जितनेक विषयासक्त पुरुष हैं ते सर्व आहार, निद्रा, भय, मैथुन, इत्यादिक पशुवोंके धर्मविषे प्रीतिवाले होणेतैं मनुष्यके आकारवाले हुएभी पशुरूपही हैं । यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करीहै । तहां श्लोक— (आह्लादरूपता यस्य सुषुप्ते सर्वसाक्षिकी । तत्रोपेक्षा भवेद्यस्य तदन्यः स्यात्पशुः कथम्) अर्थ यह—जिस आत्मादेवकी आनंदरूपता सुषुप्तिअवस्थाविषे सर्वप्रा-णियोंके अनुभवकरिकै सिद्ध है तिस आनंदस्वरूप आत्माविषे जिस विषयासक्त पुरुषकी उपेक्षाही रहैहै तिस बहिर्मुख पुरुषतैं परे दूसरा कौन पशु है किंतु सो विषयासक्त बहिर्मुखपुरुषही पशु है इति। और किसी टीकाविषे तौ (प्राक् शरीरवि-मोक्षणात्) इस वचनका यह अर्थ कऱ्याहै—जैसे मरणतैं उत्तर विलापकरतीहुई सुन्दर स्त्रियोंनैं आलिंगन कऱ्याहुआभी तथा पुत्रादिकोंनैं अग्निविषे दाहकऱ्याहु-

आभी यह पुरुष प्राणोंतैं रहित होणेतैं ता कामक्रोधके वेगकूं सहन करैहै तैसे मरणतैं पूर्व जीवित अवस्थाविषेभी जो पुरुष ता कामक्रोधके वेगकूं सहन करैहै सो पुरुषही युक्त है तथा सुखी है। यह वार्त्ता वसिष्ठभगवान्नैंभी कथन करी है। तहां श्लोक-(प्राणे गते यथा देहः सुखं दुःखं न विंदति। तथा चेत्प्राणयुक्तोपि स कैवल्याश्रमे वसेत्) अर्थ यह-जैसे प्राणोंके गयेतैं अनंतर यह देह सुखदुःखकूं प्राप्त होतानहीं तैसे प्राणोंकरिकै युक्तहुआभी जो पुरुष ता सुखदुःखकूं प्राप्त होता-नहीं सो पुरुषही कैवल्यमोक्षविषे स्थित होवैहै इति। परंतु याप्रकारका व्याख्यान तबी सिद्ध होवै जबी मरण अवस्थाकी न्याईं जीवित अवस्थाविषे ता काम-क्रोधकी उत्पत्तिमात्रही नहीं अंगीकार करिये और इहां प्रसंगविषे ता कामक्रोधके वेगकी अनुत्पत्तिमात्र प्राप्त है नहीं। किंतु अंतरउत्पन्नहुए कामक्रोधके वेगका सह-नही इहां प्राप्त है। यातैं ता कामक्रोधकी अनुत्पत्तिमात्रकूं दृष्टांतरूपता संभवै नहीं यातैं पूर्व उक्त व्याख्यानही समीचीन है इति। और किसी टीकाविषे तौ (प्राक् शरीरविमोक्षणात्) इस वचनका यह अर्थ कऱ्याहै-इहां शरीरपदकरिकै शरीरके आश्रित रहणेहारा गृहस्थआश्रम ग्रहण करणा। ता गृहस्थआश्रमके परित्याग-रूप संन्यासतैं पूर्वही जो अधिकारीपुरुष विवेकवैराग्यकरिकै ता कामक्रोधके वेगकूं सहन करणेविषे समर्थ होवैहै सोईही पुरुष पश्चात् संन्यासपूर्वक श्रवणादिक साधनोंकरिकै आत्मज्ञानकूं संपादन करिकै ब्रह्मयोगयुक्त होणेकूं तथा ब्रह्मानंदी होणेकूं योग्य होवै है। और जो पुरुष ता संन्यासतैं पूर्व ता काम क्रोधके वेगकूं नहीं सहन करैहै अर्थात् ता काम क्रोधकूं जय नहीं करै है, सो अशु-द्धचित्तवाला पुरुष संन्यास आश्रमकूं करिकै श्रवणादिकोंकूं करता हुआभी आत्मज्ञानकूं तथा ज्ञानके फलरूप मोक्षरूप सुखकूं प्राप्त होवै नहीं ॥ २३ ॥

तहां यह अधिकारी पुरुष केवल ता कामक्रोधके वेगके सहनमात्र करिकैही मोक्षकूं प्राप्त होवै नहीं। किंतु तिसतैं अधिक भी किंचित् कर्त्तव्य है। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

योंऽतःसुखोंऽतरारामस्तथांतर्ज्योतिरेव यः ॥
स योगी ब्रह्म निर्वाणं ब्रह्मभूतोधिगच्छति ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) यः। अंतःसुखः। अंतरारामः। तथा। अंतर्ज्योतिः। एव। यः। सः। योगी। ब्रह्म। निर्वाणम्। ब्रह्मभूतः। अधिगच्छति॥२४॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष अंतरसुख ही है तथा अंतरारामही है तथा जो पुरुष अंतर्ज्योतिही है सो योगीपुरुष ब्रह्मरूप हुआही निर्वाणं ब्रह्मकूं प्राप्त होवैहै ॥ २४ ॥

भा०टी०—बाह्यविषयोंकी अपेक्षातैं विनाही अंतर स्वरूपभूत सुख प्राप्तहै जिसकूं ताका नाम अंतःसुख है । अर्थात् जो पुरुष बाह्यविषयजन्य सुखतैं रहित है । शंका—हे भगवन् ! ता पुरुषकूं बाह्यविषयसुखका अभवा किसकारणतैं है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (अंतरारामः इति) हे अर्जुन ! जिस कारणतैं सो पुरुष अंतराराम है तिस कारणतैं सो पुरुष बाह्यविषयसुखोंतैं रहित है । अंतरआत्माविषेही है क्रीडारूप आराम जिसकूं बाह्यविषयसुखके साधनरूप स्त्री पुत्र धनादिक विषयोंविषे सो क्रीडारूप आराम जिसकूं है नहीं ताका नाम अंतराराम है । अर्थात् जो पुरुष सर्व परिग्रहतैं रहित होणेतैं बाह्यविषयसुखके साधनोंतैं रहित है । शंका—हे भगवन् ! सर्वपरिग्रहतैं रहित जो विरक्तसंन्यासी है तिस संन्यासीकूंभी यदृच्छातैं प्राप्तहुए कोकिलादिकोंके मधुरशब्दके श्रवण करिकै तथा मंद मंद पवनके स्पर्शकरिकै तथा चंद्रमाके दर्शनकरिकै तथा मयूरनृत्यके दर्शन करिकै तथा अत्यंत मधुर शीतल गंगाजलके पानकरिकै तथा केतककी कुसुमकी सुगंधिके ग्रहणकरिकै सुखकी उत्पत्ति संभव होइसकै है । यातैं ता संन्यासीकूं बाह्यसुखका अभाव तथा ता सुखके साधनोंका अभाव कहणा संभवता नहीं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (तथांतर्ज्योतिरेव यः) हे अर्जुन ! जैसे ता विद्वान् पुरुषकूं अंतरआत्माविषे सुख है बाह्यविषयोंकरिकै सुख है नहीं । तैसे अंतरआत्माविषेही है ज्योतिः क्या वृत्तिरूप विज्ञान जिसका बाह्यइंद्रियोंकरिकै सो विज्ञानरूप ज्योति जिसका है नहीं ताका नाम अंतर्ज्योति है अर्थात् जो पुरुष श्रोत्रादिक इंद्रियजन्य शब्दादिकविषयोंके ज्ञानतैं रहित है । तात्पर्य यह—ता विद्वान् पुरुषकूं समाधिकालविषे तौ तिन शब्दादिकविषयोंकी प्रतीतिही नहीं होवैहै और ता समाधितैं व्युत्थानकालविषे यद्यपि ता विद्वान् पुरुषकूं तिन शब्दादिकोंकी प्रतीति होवैहै तथापि सो विद्वान् पुरुष तिन शब्दादिकविषयोंकूं मृगतृष्णाके जलकीन्याईं मिथ्याही जानैहै । यातैं ता विद्वान् पुरुषकूं बाह्यविषयोंकरिकै सुखकी उत्पत्ति संभवती नहीं इति । हे अर्जुन ! इसप्रकार जो पुरुष अंतःसुख है तथा अन्तराराम तथा अंत-

ज्योंति है सो विद्वान् पुरुषही मन सहित सर्वइंद्रियोंके निरोधरूप योगवाला होणेतैं योगी है । ऐसा योगीपुरुषही तत्त्वसाक्षात्कारकरिकै अविद्यारूप आवरणकी निवृत्ति करिकै परमानंदस्वरूप ब्रह्मकूं प्राप्त होवैहै । कैसा है सो ब्रह्म, निर्वाण है अर्थात् कल्पित प्रपंचकी निवृत्तिरूप है । जिस कारणतैं कल्पितवस्तुका अभाव अधिष्ठानरूपही होवैहै ता अधिष्ठानतैं भिन्न होवै नहीं । इतने कहणेकरिकै द्वैतप्रपंचरूप अनर्थकी निवृत्तिपूर्वक परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्षका कथन कऱ्या । ऐसे निर्वाणब्रह्मकूंभी यह विद्वान् पुरुष आप अब्रह्मरूप हुआ प्राप्त होवै नहीं किंतु सो विद्वान् पुरुष आप सर्वदा ब्रह्मरूप हुआही ता ब्रह्मकूं प्राप्त होवैहै अर्थात् नित्यप्राप्त ब्रह्मकूंही प्राप्त होवैहै । तहां श्रुति-(ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति) अर्थ यह—यह विद्वान् पुरुष ज्ञानतैं पूर्वही वास्तवतैं ब्रह्मरूप हुआभी अज्ञानकृत विस्मृतिके हुए आत्मज्ञानकारिकै पुनः ता ब्रह्मकूं प्राप्त होवैहै ॥ २४ ॥

तहां मोक्षके प्राप्तिका कारणरूप जो आत्मज्ञान है ता आत्मज्ञानके पूर्व अनेकप्रकारके साधन कथन करेहैं । अब ता आत्मज्ञानके दूसरे साधनोंकूंभी श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

लभंते ब्रह्म निर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ॥
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ २५ ॥

(पदच्छेदः) लभंते । ब्रह्म । निर्वाणम् । ऋषयः । क्षीणकल्मषाः । छिन्नद्वैधाः । यतात्मानः । सर्वभूतहिते । रताः ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे पुरुष पापोंतैं रहित हैं तथा संन्यासयुक्त हैं तथा संशयतैं रहित हैं तथा एकाग्रचित्तवाले हैं तथा सर्वभूतोंके हितविषे प्रीतिवाले हैं ऐसे पुरुषही ता निर्वाणब्रह्मकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ २५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जे पुरुष प्रथम यज्ञदानादिकै निष्कामकर्मों करिकै पापरूप कल्मषोंतैं रहित हुएहैं तिसतैं अनंतर अंतःकरणकी शुद्धिकरिकै जे पुरुष ऋषिभावकूं प्राप्त हुएहैं अर्थात् सूक्ष्मवस्तुके विवेककरणेविषे समर्थ संन्यासी हुएहैं । तिसतैं अनंतर जे पुरुष ब्रह्मशास्त्रके श्रवणमननकी परिपक्वताकरिकै छिन्नद्वैधा हुएहैं अर्थात् प्रमाणगत संशय प्रमेयगत संशय इत्यादिक सर्व संशयोंतैं रहित हुए हैं तिसतैं अनंतर निदिध्यासनकी परिपक्वताकरिकै यतात्मा हुएहैं

अर्थात् विपरीतभावनाकी निवृत्तिपूर्वक एक परमात्माविषेही एकाग्रचित्तवाले हुए हैं। तिसतैं अनंतर द्वैतदर्शनके अभावकरिकै जे पुरुष सर्वभूतोंके हितविषे प्रीतिवाले हुएहैं अर्थात् शरीरकरिकै तथा मनकरिकै तथा वाणीकरिकै सर्वभूतप्राणियोंकी हिंसातैं रहित हुएहैं। ऐसे ब्रह्मवेत्ता पुरुषही ता सर्वद्वैतकी निवृत्तिरूप परमानंदस्वरूप ब्रह्मकूं अभेदरूप प्राप्त होवैं हैं। तहां श्रुति-(यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः इति) अर्थ यह-जिस ज्ञानअवस्थाविषे इस विद्वान् पुरुषकूं यह सर्वभूत आपणा आत्मारूपही होतेभये हैं तिस ज्ञानअवस्थाविषे एक अद्वितीय आत्माकूं देखणेहारे ब्रह्मवेत्तापुरुषकूं द्वैतदर्शनके अभाव हुए किसी मोहकी प्राप्ति तथा किसी शोककी प्राप्ति कदाचित्भी होवै नहीं ॥ २६ ॥

तहां पूर्व (शक्नोतीहैव यः सोढुम्) इस श्लोकविषे उत्पन्नहुएभी कामक्रोधके वेगकूं इस पुरुषनैं सहनकरणा यह अर्थ कथन कऱ्याथा। अब इस अधिकारी पुरुषनैं कामक्रोधके उत्पत्तिकाही प्रतिबंध करणा अर्थात् ता काम क्रोधकूं उत्पन्न ही नहीं होणेदेणा इस अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ॥
अभितो ब्रह्म निर्वाणं वर्त्तते विदितात्मनाम् ॥ २६ ॥

(पदच्छेदः) कामक्रोधवियुक्तानाम् । यतीनाम् । यतचेतसाम् । अभितः । ब्रह्म । निर्वाणम् । वर्त्तते । विदितात्मनाम् ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे पुरुष कामक्रोधकी उत्पत्तितैं रहित हैं तथा चित्तके निग्रहवाले हैं तथा आत्मसाक्षात्कारवाले हैं ऐसे संन्यासियोंकूं सर्व अवस्थाविषे सो निर्वाणरूप ब्रह्म प्राप्त है ॥ २६ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जे यत्नशीलसंन्यासी कामक्रोध दोनोंकी अनुत्पत्तिकरिकै युक्त हैं अर्थात् जिन्होंकूं सो कामक्रोध उत्पन्नही नहीं होवैहै, इसी कारणतैं जे पुरुष चित्तके संयमकरिकै युक्त हैं तथा तत्पदार्थरूप परमात्मादेवकूं आपणा आत्मारूप करिकै साक्षात्कार कऱ्या है जिन्होंनैं ऐसे विद्वान् संन्यासियोंकूं जीवतकालविषे तथा मरणकालविषे सो निर्वाणब्रह्मरूप मोक्ष सर्वदा प्राप्तही है। जिस कारणतैं सो ब्रह्मरूप मोक्ष नित्य है स्वर्गादिकोंकी न्याईं साध्य है नहीं यातैं

तिन विद्वान् पुरुषोंकूं सो ब्रह्मरूप मोक्ष आगे प्राप्त होवैगा याप्रकारका भविष्यत् व्यवहार ता मोक्षविषे होवै नहीं ॥ २६ ॥

तहां पूर्वप्रसंगविषे यह वार्त्ता कथन करीथी। ईश्वरविषे अर्पण करे हैं सर्व कर्म जिसनैं ऐसा जो अधिकारी पुरुष है ता अधिकारी पुरुषके ता निष्कामकर्मयोगकरिकै अंतःकरणकी शुद्धि होवैहै। ता अंतःकरणकी शुद्धितैं अनंतर सर्वकर्मोंका त्यागरूप संन्यास होवैहै। ता संन्यासतैं अनंतर श्रवणमननादिकों विषे तत्पर पुरुषकूं मोक्षका साधनरूप तत्त्वज्ञान प्राप्त होवै है। यह सर्ववार्त्ता पूर्व कथन करीथी। अब (स योगी ब्रह्म निर्वाणम्) इस पूर्ववचनविषे श्रीभगवान्नैं सूचन कऱ्या जो ध्यानयोग है सो ध्यानयोगही तिस तत्त्वसाक्षात्कारका अंतरंग साधन है इस अर्थकूं विस्तारतैं कथन करणेवासतै श्रीभगवान् सूत्ररूप तीन श्लोकोंकूं कथन करैं हैं। इन सूत्ररूप तीन श्लोकोंकाही समग्र षष्ठाध्याय व्याख्यानरूप है। तिन तीन श्लोकोंविषेभी प्रथम दो श्लोकोंकरिकै तौ संक्षेपतैं ता योगका कथन कऱ्या है और तीसरे श्लोककरिकै तौ ता ध्यानयोगका फलरूप आत्मज्ञानका कथन कऱ्या है–

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवांतरे भ्रुवोः ॥
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यंतरचारिणौ ॥ २७ ॥
यतेंद्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ॥
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ २८ ॥

(पदच्छेदः) स्पर्शान्। कृत्वा। बहिः। बाह्यान्। चक्षुः। च। एव। अंतरे। भ्रुवोः। प्राणापानौ। समौ। कृत्वा। नासाभ्यंतरचारिणौ। यतेंद्रियमनोबुद्धिः। मुनिः। मोक्षपरायणः। विगतेच्छाभयक्रोधः। यः। सदा। मुक्तः। एव। सः॥ २७ ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! बाह्यस्थित शब्दादिक विषयोंकूं पुनः बाह्य करिकै तथा चक्षुकूं दोनों भ्रुवोंके मध्यविषे ही स्थितकरिकै तथा प्राण अपान दोनोंकूं समान नासिकाके भीतरही निरुद्ध करिकै जीतेहुएहैं इंद्रिय मन बुद्धि जिसनैं तथा निवृत्तहुए हैं इच्छा भय क्रोध जिसके तथा सर्वविषयोंतैं विरक्त ऐसा जो मननशील संन्यासी है सो संन्यासी सर्वदा मुक्त ही है ॥ २७ ॥ २८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! स्वभावतैं बाह्यदेशविषे रहणेहारे जे शब्दादिक विषय हैं ते शब्दादिक विषय बाह्यहुएभी श्रोत्रादिक इंद्रियद्वारा तिसतिस शब्दादि आकारकूं प्राप्त हुई अंतःकरणकी वृत्तिकूं द्वारकरिकै अंतरचित्तविषे प्रवेश करैहै। ऐसे शब्दादिक विषयोंकूं जो पुरुष पुनः बाह्यही करै है अर्थात् जो पुरुष परवैराग्यके प्रभावतैं तिसतिस शब्दाकारवृत्तिकूं उत्पन्नही करैहैं । इहां श्रीभगवान्नैं शब्दादिक विषयोंका जो (बाह्यान्) यह विशेषण कथन कऱ्याहै ताका यह अभिप्राय है–यह शब्दादिक विषय जो कदाचित् स्वभावतैंही अंतर होते तौ सहस्र उपायोंकरिकैभी ते विषय पुनः बाह्य करेजाते नहीं । जो स्वभावतैं अंतरस्थित विषयभी बाह्य करेजाते तौ तिन विषयोंके स्वभावकीही हानि होती सो वस्तुके स्वभावकी हानि होती नहीं । जैसे अग्निके उष्णस्वभावकी कदाचित्भी हानि होती नहीं । और तिन शब्दादिक विषयोंकूं जो स्वभावतैंही बाह्य अंगीकार करिये तौ रागके वशतैं अंतरचित्तविषे प्रविष्टहुए भी तिन शब्दादिक विषयोंका परवैराग्यके वशतैं पुनः बाह्यनिकसणा संभव होइसकै। जैसे स्वभावतैं शुद्ध वस्त्रविषे बाह्यतैं प्राप्तभई जा मृत्तिका सा मृत्तिका क्षारजलके प्रक्षालन करणेतैं निवृत्त करीजावै है इति । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं वैराग्यका कथन कऱ्या । अब अभ्यासका कथन करैं हैं (चक्षुश्चैवांतरे भ्रुवोः इति) हे अर्जुन ! यह अधिकारी पुरुष आपणे चक्षुकी दृष्टिकूं दोनों भ्रुवोंके मध्यविषे स्थित करै । ता भ्रुवोंके मध्यविषे चक्षुकी स्थिति ता चक्षुके अर्धनिमीलनकरिकैही होवै है । ता चक्षुके अत्यंत निमीलनकरिकै तथा अत्यंत उन्मीलन करिकै सा भ्रुवोंके मध्यविषे स्थिति होवै नहीं । तात्पर्य यह–यह अभ्यास करणेहारा पुरुष जो कदाचित् आपणे चक्षुकूं अत्यंत निमीलन करैगा तौ इस पुरुषकूं निद्रारूप लयवृत्तिही होवैगी । और यह अधिकारीपुरुष जो कदाचित् तिस आपणे चक्षुकूं अत्यंत प्रसारण करैगा तौ प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, स्मृति, यह च्यारिप्रकारकी विक्षेपरूप वृत्तियां उत्पन्न होवैंगी । और ते निद्रादिक पांचों वृत्तियां योगाभ्यासके विरोधीही होवैं हैं । यातैं इस अधिकारीपुरुषनैं ते पांचों वृत्तियां निरोधकरणेकूं योग्य हैं । सो तिन पाचों वृत्तियोंका निरोध ता भ्रुवोंके मध्यविषे चक्षुके स्थित करणेतैंही होवै है । तथा सो अधिकारी पुरुष आपणे प्राण अपान दोनोंकूं सम करिकै अर्थात् प्राणके ऊर्ध्वगतिका तथा अपानके अधोगतिका विच्छेदकरिकै कुंभककरिकै तिस प्राण अपानकूं

हृदयादिक स्थानविषेही स्थित करै । इस प्रकारके उपायकारिकै निरोधकूं प्राप्तहुएहैं इंद्रिय मन बुद्धि जिसके ऐसा जो मोक्षपरायण पुरुष है अर्थात् सर्व विषयोंतैं विरक्त है सो पुरुष मुनि होवै अर्थात् मननशील होवै । तथा जो पुरुष विगतेच्छा-भयक्रोध है अर्थात् इच्छा भय क्रोध या तीनोंतैं रहित है। (विगतेच्छाभयक्रोधः) इस वचनका अर्थ (वीतरागभयक्रोधः) इस वचनके व्याख्यानविषे पूर्व विस्तारतैं कथन करिआये हैं। इस प्रकारके लक्षणोंयुक्त जो संन्यास सर्वदा होवैहै सो संन्यासी मुक्तही है तिस संन्यासीकूं सो मोक्ष कर्त्तव्य नहीं है । अथवा (सदा) इस पदका (मुक्त एव) या पदके साथि अन्वय करणा । ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवै । इस प्रकारका सो संन्यासी जीवताहुआभी मुक्तही है ॥ २७ २८ ॥

हे भगवन् ! इस प्रकारके योगकारिकै युक्त जो पुरुष है सो अधिकारी पुरुष किस वस्तुकूं जानिकारिकै मुक्तिकूं प्राप्त होवै है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ॥
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मा शांतिमृच्छति ॥ २९ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे संन्यासयोगो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) भोक्तारम् । यज्ञतपसाम् । सर्वलोकमहेश्वरम् । सुहृदम् । सर्वभूतानाम् । ज्ञात्वा । माम् । शांतिम् । ऋच्छति ॥ २९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्व यज्ञतपोंका भोक्तारूप तथा सर्व लोकोंका महान् ईश्वररूप तथा सर्वभूतप्राणियोंका सुहृद्रूप ऐसा जो मैं भगवान् हूं तिस हमारेकूं आत्मारूप जानिकैही सो योगयुक्त पुरुष मुक्तिकूं प्राप्त होवैहै ॥ २९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! वेदकारिकै प्रतिपादित जितनेक ज्योतिष्टोमादिक यज्ञ हैं तथा जितनेक कृच्छ्रचांद्रायणादिक तप हैं तिन सर्व यज्ञोंका तथा सर्व तपोंका यजमानादिक कर्त्तारूप करिकै तथा इंद्रादिक देवतारूप करिकै भोक्तारूप तथा पालनकरणेहारा जो मैं परमेश्वर हूं तथा सर्वलोकोंका महान् ईश्वररूप जो मैं हूं अर्थात् हिरण्यगर्भादिक ईश्वरोंकूंभी आपणी आज्ञाविषे चलावणेहारा जो मैं परमेश्वर हूं तथा सर्वप्राणियोंका सुहृद्रूप जो मैं हूं अर्थात् प्रतिउपकारकी अपेक्षातैं

विनाही तिन सर्व प्राणियोंऊपरि उपकार करणेहारा जो मैं परमेश्वर हूं ऐसे सर्वांतर्यामी सर्वके प्रकाशक परिपूर्ण सत चित् आनंदस्वरूप एकरस परमार्थ सत्य सर्वका आत्मारूप मैं नारायणकूं आपणा अत्मारूपकरिकै साक्षात्कार करिकैही ते योगयुक्त पुरुष सर्व संसारकी निवृत्तिभूत मोक्षरूप शांतिकूं प्राप्त होवैं हैं। इहां हे भगवन् ! शंख, चक्र, गदा, पद्म, या च्यारोंकूं धारण करणेहारी जो यह आपकी चतुर्भुज व्यक्ति है जा व्यक्ति वसुदेवदेवकीतैं उत्पन्न हुई है तथा हमारे रथविषे स्थित है ऐसी आपकी व्यक्तिकूं जानताहुआभी मैं अर्जुन मुक्तिकूं क्यों नहीं प्राप्त होवा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके निवृत्त करणे वासतै श्रीभगवान्नैं आपणे स्वरूपके (यज्ञतपसां भोक्तारं सर्वलोकमहेश्वरं सर्वभूतानां सुहृदम्) यह तीन विशेषण कथन करे हैं। अर्थात् इस प्रकारके हमारे स्वरूपका ज्ञानही मुक्तिका कारण है। केवल इस हमारे स्थूल व्यक्तिका ज्ञान ता मुक्तिका कारण होवै नहीं इति। अब इस पंचम अध्यायके सर्व अर्थकूं संक्षेपतैं प्रतिपादन करणेहारा श्लोक कहैंहैं। (अनेकसाधनाभ्यासनिष्पन्नं हरिणेरितम्। स्वस्वरूपपरिज्ञानं सर्वेषां मुक्तिसाधनम्। इति)। अर्थ यह—अनेक प्रकारके साधनोंके अभ्यास करिकै उत्पन्न हुआ तथा सर्व अधिकारीजनोंके मुक्तिका साधनरूप ऐसा जो स्वस्वरूपका ज्ञान है सो ज्ञान श्रीभगवान्नैं इस पंचम अध्यायविषे कथन कऱ्या है ॥ २९ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीभगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः।

तहां प्रारंभका श्लोक। (योगसूत्रं त्रिभिः श्लोकैः पंचमांते यदीरितम्। षष्ठ आरभ्यतेऽध्यायस्तद्व्याख्यानाय विस्तरात्) अर्थ यह—पंचम अध्यायके अंतविषे तीन श्लोकोंकरिकै कथन कऱ्या जो योगसूत्र है तिस योगसूत्रके विस्तारतैं व्याख्यान करणेवासतै यह षष्ठाध्याय प्रारंभ करीता है इति। तहां सर्वकर्मोंके त्यागका कथन करिकै श्रीभगवान्नैं योगका विधान कऱ्या है। यातैं ते सर्व कर्म त्यागणे योग्य होणेतैं संन्यासतैं तथा योगतैं अत्यंत निकृष्ट होवेंगे। ऐसी

अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता अर्जुनकूं युद्धरूप कर्मविषे प्रवृत्त करणेवासतै दो श्लोकोंकरिकै पुनः ता कर्मयोगकी स्तुति करैं हैं—

श्रीभगवानुवाच।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः॥
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥ १॥

(पदच्छेदः) अनाश्रितः। कर्मफलम्। कार्यम्। कर्म। करोति। यः। सः। संन्यासी। च। योगी। च। न। निरग्निः। न। च। अक्रियः॥ १॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जो पुरुष कर्मके फलकूं नहीं इच्छताहुआ अवश्य करणेयोग्य नित्यकर्मकूं करै है सो पुरुष यद्यपि अग्नितैं रहित नहीं है तथा क्रियातैं रहित नहीं है तथापि सो पुरुष संन्यासी है तथा योगी है॥ १॥

भा॰ टी॰—हे अर्जुन! जो पुरुष कर्मके स्वर्गादिक फलोंकी इच्छातैं रहि होइकै शास्त्रनैं कर्त्तव्यतारूप करिकै विधान करे जे अग्निहोत्रादिक नित्यनैमित्तिक कर्म हैं तिन नित्यनैमित्तिक कर्मोंकूं श्रद्धापूर्वक करै है सो पुरुष कर्मी हुआभी संन्यासीही है तथा योगीही है। या प्रकारतैं सो कर्मी पुरुष स्तुतिकऱ्याजावै है काहेतैं त्यागका नाम संन्यास है और चित्तविषे स्थित विक्षेपके अभावका नाम योग है इसप्रकारका संन्यास तथा योग दोनों इस निष्काम पुरुषविषे विद्यमान हैं अर्थात् यह निष्कामपुरुष फलके त्यागवाला होणेतैं संन्यासी है तथा फलकी तृष्णारूप विक्षेपके अभावाला होणेतैं योगी है। इहां सकामपुरुषोंकी अपेक्षाकरिकै तिस निष्काम पुरुषविषे श्रेष्ठता कथन करणेवासतै श्रीभगवान्नैं संन्यासशब्दकी गौणीवृत्तिकूं अंगीकार करिकै ता संन्यासशब्दकरिकै कर्मके फलका त्याग कथन कऱ्या है तथा योगशब्दकी गौणी वृत्तिकूं अंगीकार करिकै ता योगशब्दकरिकै फलकी तृष्णाका त्याग कथन कऱ्या है। और ता संन्यासशब्दका फलसहित सर्वकर्मोंका त्यागरूप जो मुख्य अर्थ है तथा ता योगशब्दका सर्व चित्तवृत्तियोंका निरोधरूप जो मुख्य अर्थ है ते दोनों ता निष्कामपुरुषकूं आगे अवश्यकरिकै उत्पन्न होणेहारे हैं। यातैं सो निष्काम कर्मोंकूं करणेहारा पुरुष यद्यपि अग्नितैं रहित नहीं है अर्थात् अग्निकरिकै सिद्ध होणेहारे अग्निहोत्रादिक श्रौतकर्मोंके त्याग-वाला नहीं है तथा सो कर्मी पुरुष क्रियातैं रहितभी नहीं है अर्थात् ता अग्निकी

अपेक्षातैं रहित स्मार्तक्रियाके त्यागवालाभी नहीं है तथापि सो निष्कामकर्मोंकूं करणेहारा कर्मीपुरुष संन्यासी जानणा तथा योगीही जानणा । अथवा (स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः) या वचनका यह अर्थ करणा- श्रौतअग्नितैं रहित पुरुष कोई संन्यासी कह्याजावै नहीं । तथा क्रियातैं रहित पुरुष कोई योगी कह्याजावै नहीं । किंतु ता श्रौतअग्निवाला तथा ता क्रियावाला जो निष्कामकर्मोंके करणेहारा पुरुष है सो कर्मी पुरुषही संन्यासी जानणा तथा योगी जानणा । इसप्रकारतैं सो निष्काम कर्मी पुरुष स्तुति कऱ्याजावै इति । इहां यद्यपि अक्रियः या शब्दकरिकैही सर्वकर्मोंके संन्यासीकी प्रतीति होइसकै है यातैं निरग्निः यह पद व्यर्थ है । तथापि अग्निशब्दतैं सर्वकर्मोंका ग्रहण करिकै निरग्निः या शब्दकरिकै संन्यासीका कथन कऱ्याहै । तथा क्रियाशब्दतैं सर्व चित्तके वृत्तियोंका ग्रहण करिकै अक्रिय या शब्दकरिकै निरुद्धचित्तवृत्तिवाले योगीका कथन कऱ्याहै । यातैं यह अर्थ सिद्ध होवैहै । सो निरग्निपुरुष संन्यासी कह्याजावै नहीं तथा अक्रियपुरुष योगी कह्याजावै नहीं किंतु सो निष्कामकर्मोंके करणेहारा कर्मी पुरुषही संन्यासी तथा योगी कह्याजावैहै ॥ १ ॥

तहां जैसे (सिंहो देवदत्तः) इस वचनविषे पशुरूप सिंहतैं भिन्न मनुष्यरूप देवदत्तविषे ता सिंहके सदृश शूरता क्रूरताआदिक गुणोंकूं ग्रहणकरिकै सो सिंहशब्द प्रवृत्त होवैहै । तैसे असंन्यासविषे संन्यासशब्दकी प्रवृत्तिका तथा अयोगविषे योगशब्दके प्रवृत्तिका निमित्तरूप जो समान गुण है ता गुणकूं श्रीभगवान् कथन करैंहैं—

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पांडव ॥
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) यम् । संन्यासम् । इति । प्राहुः । योगम् । तम् । विद्धि । पांडव । न । हि । असंन्यस्तसंकल्पः । योगी । भवति । कश्चन ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसकूं श्रुतियां संन्यास इसनामकरिकै कथन करैं हैं तिसकूंही तूं योगरूप जान जिसकारणतैं संकल्पके त्यागतैं रहित कोईभी पुरुष योगी नहीं होवैहै ॥ २ ॥

भा० टी०–(न्यास एवातिरेचयत् । ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरंति) इत्यादिक अनेक श्रुतियां जि

फलसहित सर्वकर्मोंके त्यागकूं संन्यास यानामकरिकै कथन करैं हैं तिस संन्यासकूंही तूं अर्जुन योगरूप जान । इहां फलकी इच्छाका तथा कर्तृत्व अभिमानका परित्याग करिकै जो शास्त्रविहित शुभकर्मोंका अनुष्ठान है ताका नाम योग है अर्थात् ता संन्यासकूं तूं निष्काम कर्मयोगरूप जान । शंका–हे भगवन् ! जैसे अब्रह्मदत्तकूं यह ब्रह्मदत्त है याप्रकार जो कोई कहैहै ता कहणे करिकै यह जान्याजावैहै । यह ब्रह्मदत्तके सदृश है काहेतैं किसी अन्यवस्तुका वाचक जो शब्द है ता शब्दका जबी किसी अन्यवस्तुके जानवणेवासतै उच्चारण होवैहै तबी सो शब्द गौणीवृत्तिकरिकै अथवा तद्भावके आरोपकारिकै तिस अन्यवस्तुविषे स्ववाच्यार्थके सादृश्यताकूंही बोधन करैहै । सो इहां प्रसंगविषे कौन सादृश्यधर्म है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता सादृश्यधर्मकूं कथन करैं हैं (न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन इति ।) जिसकारणतैं फलसंकल्पके त्यागतैं रहित कोईभी पुरुष योगी होवै नहीं किंतु सर्व योगीजन फलसंकल्पके त्यागवालेही होवैंहैं । तिस कारणतैं फलका त्यागरूप समानधर्मतैं तथा तृष्णारूप चित्तवृत्तिके निरोधकसमानतातैं गौणीवृत्तिकरिकै सो कर्मी पुरुषही है संन्यासी है तथा योगी है । तात्पर्य यह–संन्यासीशब्दका मुख्य अर्थ जो फलसहित सर्वकर्मोंका त्यागी है ताके विषे जैसे स्वर्गादिकफलोंका त्याग रहैहै तैसे निष्कामकर्मी पुरुषविषेभी सो स्वर्गादिक फलोंका त्याग रहैहै । यातैं सो संन्यासी शब्द गौणीवृत्तिकरिकै ता कर्मीपुरुषविषे प्रवृत्त होवैहै । तथा योगीशब्दका मुख्य अर्थ जो सर्वचित्तवृत्तियोंके निरोधवाला है, ताकेविषे जैसे फलकी तृष्णारूप चित्तवृत्तिका निरोध रहै तैसे निष्कामकर्मीविषेभी सो फलकी तृष्णारूप चित्तवृत्तिका निरोध रहै है । यातैं सो योगीशब्दभी गौणीवृत्तिकरिकै ता कर्मीपुरुषविषे प्रवृत्त होवैहै इति । अब इसी अर्थकूं योगसूत्रोंकरिकै स्पष्ट करैं हैं । तहां सूत्र–(योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः । प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः इति) अर्थ यह–चित्तकी सर्व वृत्तियोंका जो निरोध है ताका नाम योग है इति । ते चित्तकी वृत्तियां प्रमाण १, विपर्यय २, विकल्प ३, निद्रा ४, स्मृति ५, यह पंचप्रकारकी होवैं हैं । तहां प्रमाका जो कारण होवै ताकूं प्रमाण कहैं हैं । सो प्रमाणभी प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि यह षट्प्रकारका होवैहै । याप्रकारका वैदिक पुरुष अंगीकार करैं हैं । और

प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, यह तीनप्रकारका प्रमाण होवै है याप्रकार योग-शास्त्रवाले अंगीकार करैं हैं । तहां किसी प्रमाणका किसीप्रमाणविषे अंतर्भाव होवैहै । और किसी प्रमाणका किसी प्रमाणतैं बहिर्भाव होवैहै । इसप्रकार तिन प्रमाणोंका परस्पर अंतर्भाव तथा बहिर्भाव अंगीकार करिकै किसी शास्त्रविषे तिन प्रमाणोंका संकोच कऱ्याहै । और किसीशास्त्रविषे तिन प्रमाणोंका विस्तार कऱ्याहै । जैसे नैयायिकोंके मतविषे प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द यह च्यारिही प्रमाण होवैं हैं । तहां नैयायिकोंनैं अर्थापत्तिप्रमाणका केवल व्यतिरेकी अनुमानविषेही अंतर्भाव कऱ्याहै और अनुपलब्धिप्रमाणका प्रत्यक्ष प्रमाणविषेही अंतर्भाव कऱ्याहै । इसप्रकार अन्यमतोंविषेभी तिन प्रमाणोंकी न्यून अधिकता जानिलेणी । यद्यपि नैयायिकादिकोंके मतविषे प्रत्यक्षादिक प्रमाके करण होणेतैं इंद्रियादिकही प्रत्यक्षादि प्रमाणरूप हैं तथापि योगशास्त्रके मतविषे इंद्रियादिकों करिकै उत्पन्नहुई जे चित्तकी वृत्तियां हैं ते वृत्तियांही प्रत्यक्षादिप्रमाणरूप हैं । और तिन वृत्तियोंविषे जो चेतनका प्रतिबिंब है सो प्रतिबिंब प्रत्यक्षादिप्रमारूप है । यातैं प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंकूं चित्तकी वृत्तिरूप कथन करचा है १, और मिथ्या-ज्ञानका नाम विपर्यय है सो विपर्ययभी अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश इस भेदकरिकै पंचप्रकारका होवैहै । तिन अविद्यादिक पंचक्लेशोंका स्वरूप पूर्व पंचम अध्यायविषे विस्तारतैं निरूपण करि आयेहैं २, और शब्द श्रवणतैं अनंतर उत्पन्न होणेहारी तथा अर्थरूप वस्तुतैं रहित ऐसी जा चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम विकल्प है । जैसे वंध्यापुत्रोऽस्ति नरशृङ्गोऽस्ति इत्यादिक शब्दोंके श्रवणतैं अनंतर ता श्रोतापुरुषकी वंध्यापुत्रविषयक तथा नरशृंगविषयक चित्तकी वृत्ति अवश्यकरिकै उत्पन्न होवैहै । और ता वृत्तिका विषयरूप वंध्यापुत्र तथा नरशृङ्ग अत्यंत असत् हैं । यातैं असत् अर्थविषयक ते वृत्तियां विकल्परूप कहीजावैं हैं । सो यह विकल्प विषयरूपवस्तुतैं रहित होणेतैं प्रमारूपभी कह्याजावै नहीं । तथा यह विकल्प बाधज्ञानके विद्यमान हुएभी अवश्यकरिकै उत्पत्तिवाला होणेतैं तथा व्यवहारका हेतु होणेतैं विपर्ययरूपभी नहीं है । जैसे चैतन्यही पुरुष होवैहै याप्रकारतैं चैतन्यपुरुष दोनोंके अभेदके निश्चय हुएभी पुरुषका चैतन्य है याप्रकारके शब्दश्रव-णतैं अनंतर चैतन्यपुरुषके भेदकूं विषय करणेहारा विकल्पज्ञान होवैहै यातैं सो विकल्पज्ञान विपर्ययरूपभी नहीं है । बाधज्ञानके विद्यमान हुए सो विपर्ययज्ञान

उत्पन्न होता नहीं किंतु सो विकल्पज्ञान प्रमाज्ञानतैं तथा भ्रमज्ञानतैं विलक्षणही होवै है । यहही विकल्पका स्वरूप (शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः) इस सूत्रविषे पतंजलिभगवान्नैं कथन कऱ्याहै ३, और प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, स्मृति या च्यारिप्रकारकी वृत्तियोंके अभावका कारणरूप जो तमोगुण है तिस तमोगुणकूं विषय करणेहारी जा वृत्तिविशेष है ताका नाम निद्रा है । इतने कहणे करिकै ज्ञानादिकोंके अभावमात्रका नाम निद्रा है या मतकाभी खंडन कऱ्या । यहही निद्राका स्वरूप (अभावप्रत्ययालंबनावृत्तिर्निद्रा) इस सूत्रविषे पतंजलि भगवान्नैं कथन कऱ्याहै ४, और पूर्व अनुभवजन्य संस्कारमात्रतैं जो ज्ञान उत्पन्न होवैहै ताका नाम स्मृति है सा स्मृति सर्ववृत्तियोंकरिकै जन्य होवैहै, यातैं पतंजलि भगवान्नैं ता स्मृतिकूं सर्ववृत्तियोंके अंतविषे कथन कऱ्याहै ५, यद्यपि लज्जा-दिक अनेकप्रकारकी वृत्तियां होवैहैं तथापि तिन लज्जादिक सर्ववृत्तियोंका इन प्रमाणादिक पंचवृत्तियोंविषेही अंतर्भाव है । इसप्रकारकी सर्वचित्तवृत्तियोंका जो निरोध है सो निरोधही योग कह्याजावैहै तथा समाधि कह्याजावैहै । और कर्मोंके फलका जो संकल्प सो संकल्पभी पंचप्रकारके विपर्ययविषे रागनामा तीसरा विपर्ययविशेष है तिस रागरूप फलसंकल्पके निरोधमात्रकूंही इहां गौणीवृत्तिकरिकै योग नाम करिकै तथा संन्यासनामकरिकै कथन कऱ्याहै । यातैं किंचित्मात्रभी इहां विरोध होवै नहीं ॥ २ ॥

हे भगवन् ! पूर्व आपने कर्मयोगकी श्रेष्ठता कथन करी यातैं यह जान्या जावै है । श्रेष्ठ होणेतैं सो कर्मयोगही इस अधिकारी पुरुषकूं जीवितकालपर्यंत करणे योग्यहै । और (यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति) यह श्रुतिभी जीवितकालपर्यंत अग्निहोत्रादिक कर्मोंकी कर्त्तव्यताकूंही कथन करैहै । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता कर्मयोगकी अवधिकूं कथन करैं हैं—

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ॥
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) आरुरुक्षोः । मुनेः । योगम् । कर्म । कारणम् । उच्यते । योगारूढस्य । तस्य । एव । शमः । कारणम् । उच्यते ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! योगविषे आरूढ होणेकी इच्छावान् मुनिकूं ता योगकी प्राप्तिविषे नित्यकर्महीं समाधानरूप कथन कर्‍याहै तथा ता योगविषे आरूढहुए तिसीही पुरुषको ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिवासतै संन्यास ही साधनरूप कथन कर्‍याहै ॥ ३ ॥

भा॰टी॰—अंतःकरणकी शुद्धिपूर्वक जो सर्वविषयसुखोंतैं तीव्र वैराग्य है ताका नाम योग है ऐसे योगविषे आरूढ होणेकी इच्छावाला जो पुरुष है ताका नाम आरुरुक्षु है और सो आरुरुक्षु पुरुष अंतःकरणकी शुद्धितैं अनंतर आगे सर्व कर्मोंके त्यागरूप संन्यासवाला होणा है यातैं अबी ताकूं मुनि कह्याहै । अथवा अबीही फलकी तृष्णातैं रहितहै यातैं ताकूं मुनि कह्याहै । ऐसे आरुरुक्षुमुनिके प्रति ता योगविषे आरूढ होणेवास्ते अर्थात् ता योगकी प्राप्तिवास्ते वेदविहित निष्काम अग्निहोत्रादिक नित्यनैमित्तिक कर्महीं साधनरूपकरिकै हमने तथा वेदभगवान्नै विधान कर्‍याहै । और सोईही कर्मीपुरुष जबी तिन निष्कामकर्मोंकरिकै अंतःकरणकी शुद्धिरूप योगकूं प्राप्तहोवैहै तबी सो पुरुष योगारूढ कह्याजावै है । ऐसे योगारूढ पुरुषकूं पुनः ते कर्म कर्त्तव्य नहीं हैं । किंतु ता योगारूढ पुरुषकूं ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिवास्ते सर्वकर्मोंका संन्यासरूप शमही साधनरूपकरिकै विधान कर्‍याहै । तात्पर्य यह—जितने कालपर्यंत इस अधिकारी पुरुषकूं अंतःकरणकी शुद्धिपूर्वक वैराग्यकी प्राप्ति नहीं भई तितने कालपर्यंत यह अधिकारी पुरुष ता वैराग्यकी प्राप्तिवास्ते फलकी इच्छातैं रहित होइकै शास्त्रविहित नित्यनैमित्तिक कर्मोंकूंही करै । और जिसकालविषे यह अधिकारी पुरुष तिन निष्कामकर्मोंकरिकै अंतःकरणकी शुद्धिपूर्वक ता वैराग्यकूं प्राप्तहोवै तिसकालविषे यह अधिकारी पुरुष पुनः तिन कर्मोंकूं करै नहीं किंतु तिसकालविषे श्रवणमननादिद्वारा ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिवास्ते सर्वकर्मोंके त्यागरूप संन्यासकूंही करै । यातैं अंतःकरणकी शुद्धिपर्यंतही ते कर्म कर्त्तव्य हैं जीवितकालपर्यंत ते कर्म कर्त्तव्य नहीं हैं । और यावज्जीवं यह श्रुति तौ वैराग्यहीन पुरुष ऊपरि है वैराग्यवान् पुरुष ऊपरि यह श्रुति है नहीं॥ ३॥

हे भगवन् ! जिस योगारूढ अवस्थाकूं प्राप्तहुआ यह अधिकारी पुरुष सर्वकर्मोंके त्याग करणेका अधिकारी होवै है, तिस योगारूढ अवस्थाकूं यह अधिकारी पुरुष किसकालविषे प्राप्त होवै है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता कालका निरूपण करैं हैं—

यदा हि नेंद्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ॥
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) यदा । हि । न । इंद्रियार्थेषु । न । कर्मसु । अनुषज्जते । सर्वसंकल्पसंन्यासी । योगारूढः । तदा । उच्यते ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसकालविषे यह अधिकारी पुरुष शब्दादिकविषयों-विषे नहीं आसक्त होवै है तथा कर्मोंविषे नहीं आसक्त होवै है तथा सर्वसंकल्पोंतैं रहित होवैहै तिस कालविषे योगारूढ कह्याजावै है ॥ ४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जिस चित्तके निरोधकालविषे यह अधिकारीपुरुष श्रोत्रादिक इंद्रियोंके शब्दादिक विषयोंविषे अनुषंगकूं नहीं करै है तथा नित्यकर्म, नैमित्तिककर्म, काम्यकर्म, लौकिककर्म, प्रतिषिद्धकर्म, इत्यादिक कर्मोंविषे अनुषंगकूं नहीं करै है अर्थात् तिन शब्दादिक विषयोंविषे तथा तिन कर्मोंविषे मिथ्यात्वबुद्धि करिकै तथा अकर्त्ता अभोक्ता अद्वितीय परमानंदस्वरूप आत्माके दर्शन करिकै तिन विषयोंतैं तथा तिन कर्मोंतैं स्वप्रयोजनके अभावका निश्चय करिकै जो पुरुष इन कर्मोंका मैं कर्त्ता हूं तथा मेरेकूं यह शब्दादिक विषय भोगणेयोग्य हैं या प्रकारके अभिनिवेशरूप अनुषंगकूं नहीं करै है। याकारणतैंही जो पुरुष सर्वसंकल्पोंका संन्यासी है अर्थात् यह कर्म हमने करणा है यह फल हमने भोगणा है इस प्रकारके मनकी वृत्तिविशेषरूप जे संकल्प हैं तथा तिन संकल्पोंके विषयभूत जे नानाप्रकारके काम हैं तथा तिन कर्मोंके साधनरूप जितनेक कर्म हैं तिन सर्वोंका त्याग कऱ्या है जिसनैं ऐसा आसक्तितैं रहित पुरुष तिस कालविषे समाधिरूप योगविषे आरूढ होणेतैं योगारूढ कह्या जावै है। तात्पर्य यह–शब्दादिक विषयोंविषे तथा कर्मोंविषे जो अभिनिवेशरूप अनुषंग है तथा ता अनुषंगका कारणरूप जो संकल्प है यह दोनोंही ता योगारूढपणेके प्रतिबंधक हैं। तिस प्रतिबंधकका जिसकालविषे अभाव होवै है तिस कालविषे यह अधिकारी पुरुष योगारूढ कह्या जावै है ॥ ४ ॥

किंवा जो अधिकारी पुरुष जिसकालविषे इस प्रकारका योगारूढ होवै है सो अधिकारी पुरुष तिस कालविषे आपणे आत्माकूं आत्माकरिकैही इस संसार-समुद्रतैं उद्धार करै है। यातैं यह अधिकारी पुरुष योगारूढ होइकै आपणे

आत्माकूं इस संसारसमुद्रतैं अवश्यकरिकै उद्धार करै । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ॥
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) उद्धरेत् । आत्मना । आत्मानम् । न । आत्मानम् । अवसादयेत् । आत्मा । एव । हि । आत्मनः । बंधुः । आत्मा । एव । रिपुः । आत्मनः ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह अधिकारीपुरुष आपणे जीवात्माकूं विवेकयुक्त मन-करिकै इस संसारतैं उद्धार करै ता जीवात्माकूं संसारसमुद्रविषे नहीं डुबावै जिस का-रणतैं आपणा आत्माही आत्माका बंधु है तथा आत्मा ही आत्माका शत्रु है ॥५॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! लोकप्रसिद्ध समुद्रकी न्याई यह संसारसमुद्रभी स्त्री, पुत्र, धन, मित्र, इत्यादिक पदार्थोंकूं विषय करणेहारे महामोहरूप अनेक आवर्त्तों करिकै युक्त है। तथा काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, ममकार इत्यादिक चित्तके विकाररूप अनेक महाग्राहों करिकै युक्त है । तथा अनेक प्रकारके महारोगरूप तिमिंगिलोंकरिकै युक्त है । तथा अशनया पिपासादिरूप महान् कल्लोलोंकरिकै युक्त है। तथा तीन तापरूप वडवानल करिकै युक्त है। तथा प्रियपदार्थोंके वियोग-जन्य अनेक प्रकारके प्रलापरूप महाध्वनिरूप शब्द करिकै युक्तहै । तथा नित्य निरंतर दुर्वासनारूप शैवालपटल करिकै युक्त है । तथा विषयरूप विष-करिकै परिपूर्ण है । इस प्रकारके संसारसमुद्रविषे निमग्न हुआ जो यह जीवात्मा है तिस आपणे जीवात्माकूं यह अधिकारी पुरुष विवेकयुक्त शुद्धमनकरिकै ता संसारसमुद्रतैं बाह्य निकासे अर्थात् विषयासक्तिका परित्याग करिकै तिस योगारूढ-ताकूं संपादन करे यहही जीवात्माका ता संसारसमुद्रतैं उद्धरण है। परंतु यह अधिकारी पुरुष तिन विषयोंविषे आसक्तिकरिकै आपणे आत्माकूं ता संसारसमुद्र-विषे निमग्न करे नहीं जिस कारणतैं यह आत्मा आपही आपणा हितकारी बंधु है अर्थात् इस संसारबंधनतैं मुक्त करणेहारा है । आत्मातैं भिन्न दूसरा कोई बंधु इस आत्माका हितकारी नहीं है । काहेतैं इस लोकविषे प्रसिद्ध जितनेक स्त्री, पुत्र, भ्राता, आदिक बांधव हैं ते बांधव तौ आपणेविषे स्नेहकी उत्पत्तिद्वारा तथा भरण पोषणकी चिंताद्वारा इस जीवके बंधनकेही हेतु होवैंहैं । यातैं तिन्होंविषे

बंधुरूपता संभवती नहीं। और जैसे कोशकारजंतु आपही आपणा अहितकारी होवैहै तैसे विषयरूप बंधनगृहविषे प्रवेश करणेतैं यह आत्मा आपही आपणा अहितकारी शत्रु होवै है। दूसरा कोई इस आत्माका शत्रु है नहीं। और जे लोकप्रसिद्ध बाह्यशत्रु हैं तिनोंविषेभी इस आत्मानैंही शत्रुता करी है। यातैं यह जीवात्मा आपही आपका शत्रु है ॥ ५ ॥

हे भगवन्! किसप्रकारका आत्मा आपणा बंधु होवै है, तथा किसप्रकारका आत्मा आपणा शत्रु होवै है? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् बंधुआत्माका तथा शत्रुआत्माका लक्षण कथन करैहैं–

बंधुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ॥
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) बंधुः। आत्मा। आत्मनः। तस्य। येन। आत्मा। एव। आत्मना। जितः। अनात्मनः। तु। शत्रुत्वे। वर्त्तेत। आत्मा। एव। शत्रुवत् ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जिस आत्मानैं यह संघात विवेकयुक्तमनकारिकै ही जीत्याहै तिस आत्माका स्वस्वरूपही आत्माका बंधु है और अजितआत्माके शत्रुभावविषे बाह्यशत्रुकी न्याईं आपणा आत्मा ही वर्त्तै है ॥ ६ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन! जिस आत्मानैं यह देहइंद्रियादिरूपसंघात केवल विवेकयुक्त शुद्धमनकारिकैही आपणे वश कऱ्या है। दूसरे किसी शास्त्रादिक उपायों करिकै ता संघातकूं वश कऱ्या नहीं तिस आत्माका आपणा आत्माही आत्माका बंधु है। काहेतैं जैसे शृंखलारूप बंधनयुक्त पुरुषकी यथाइच्छापूर्वक प्रवृत्ति होवै नहीं तैसे तिस आत्माकीभी यथाइच्छापूर्वक कहांभी प्रवृत्ति होवै नहीं। और इस जीवात्माकी नेत्रादिक इंद्रियद्वारा जा रूपादिक विषयोंविषे प्रवृत्ति है सा प्रवृत्तिही इस आत्माके अनेकप्रकारके अनर्थका हेतु है। सा प्रवृत्ति तिन देहइंद्रियादिकोंके वश करणेतैं निवृत्त होइजावै है। यातैं विवेकयुक्त मनकारिकै ता संघातकूं वश करणेहारा आत्मा आपही आपणा बंधु है। और जिस आत्माने ता देहइंद्रियादिरूप संघातकूं विवेकयुक्त मनकारिकै आपणे वश नहीं कऱ्याहै तिस आत्माका आपणा आत्मास्वरूपही बाह्यशत्रुकी न्याईं शत्रुभावविषे

वर्त्तैहै । तात्पर्य यह–जैसे शृंखलारूप बंधनतैं रहित पुरुष आपणी इच्छा-पूर्वक विचरै है तैसे जिस आत्मानैं विवेकयुक्त मनकरिकै ता देहइंद्रियादिरूप संघा-तकूं आपणे वश नहीं कऱ्याहै सो आत्माभी यथाइच्छापूर्वक शब्दादिक विषयों-विषे विचरै है । ता विषयपरायण प्रवृत्तिकरिकै सो आत्मा आपही आपणा शत्रु होवैहै ॥ ६ ॥

अब ता संघातके वशकरणेहारे आत्माकूं आपणा बंधुपणा स्पष्टकरिकै कथन करैं हैं–

जितात्मनः प्रशांतस्य परमात्मा समाहितः ॥
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) जितात्मनः । प्रशांतस्य । परमात्मा । समाहितः । शीतोष्णसुखदुःखेषु । तथा । मानापमानयोः ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! शीतउष्णसुखदुःखके प्राप्तहुएभी तथा मानअपमानके प्राप्तहुएभी जो आत्मा जितात्मा है तथा प्रशांत है तिस आत्माकाही परमात्मा समाधिका विषय होवै है ॥ ७ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! चित्तकूं विक्षेपकी प्राप्तिकरणेहारे जे शीतउष्ण सुख-दुःख इत्यादिक द्वंद्वधर्म हैं तिन द्वंद्वधर्मोंके वियमानहुएभी तथा चित्तकूं विक्षेपकी प्राप्तिकरणेहारा जो पूजारूप मान है तथा पराभवरूप अपमान है ता मानअप-मानके वियमान हुएभी तिन शीतउष्णादिकोंकी प्राप्तिविषे समत्व बुद्धिकरिकै जो आत्मा जितात्मा है अर्थात् श्रोत्रादिक सर्व इंद्रिय जिसने आपणे वश करे हैं तथा जो आत्मा प्रशांत है अर्थात् सर्वत्र समबुद्धिकरिकै रागद्वेषादिक विकरोंतैं रहित है ऐसे जीवात्माका स्वप्रकाशज्ञानस्वभाव आत्मा समाहित क्या समाधिका विषय होवैहै अर्थात् योगारूढ होवैहै । अथवा (परमात्मा) इस वचनविषे परम् आत्मा यह दोपद पृथक् करणे । तहां परं या पदका केवल यह अर्थ करणा । ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवै है । जो आत्मा जितात्मा है तथा प्रशांत है तिस आत्माकाही केवल आत्मा समाहित होवै है तिसतैं भिन्न आत्माका सो आत्मा समाहित होवै नहीं । यातैं यह जीवत्मा जितात्मा तथा प्रशांत अवश्यकरिकै होवै ॥ ७ ॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेंद्रियः॥
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्ठाश्मकांचनः॥ ८॥

(पदच्छेदः) ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा । कूटस्थः । विजितेंद्रियः । युक्तः । इति । उच्यते । योगी । समलोष्ठाऽश्मकांचनः ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ज्ञानविज्ञानकरिकै तृप्तहुआहै चित्त जिसका तथा सर्व विक्रियातैं रहित तथा जीतेहुएहैं इंद्रिय जिसनैं तथा समान हैं मृत्पिंडपाषणकांचन जिसकूं ऐसा योगीपुरुष योगारूढ इस नामकरिकै कह्याजावै है ॥ ८ ॥

भा० टी०–गुरुके उपदेशतैं उत्पन्नभई जा शास्त्र उक्त पदार्थोंकूं विषय करणेहारी बुद्धि है ता बुद्धिका नाम ज्ञान है और ता बुद्धिविषयक अप्रामाण्यशंकाकी निवृत्ति है फल जिसका ऐसा जो विचार है ता विचारकरिकै तिसीप्रकार तिन शास्त्रउक्त पदार्थोंका जो आपणे अनुभवकरिकै अपरोक्ष करणा है ताका नाम विज्ञान है ऐसे ज्ञान विज्ञान दोनोंकरिकै तृप्तहुआहै आत्मा क्या चित्त जिसका ताका नाम ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा है । या कारणतैंही जो पुरुष कूटस्थ है अर्थात् जैसे लुहारपुरुषका कूट चलायमानतातैं रहित होवैहै तैसे जो पुरुष विषयोंके समीप प्राप्त हुएभी तथा तिन विषयोंके भोगणेविषे समर्थ हुआभी चलायमान होता नहीं। या कारणतैंही जो पुरुष विजितेंद्रिय है तहां रागद्वेषपूर्वक जो शब्दादिक विषयोंका ग्रहण है तिसतैं निवृत्त करेहैं श्रोत्रादिक इंद्रिय जिसनैं ताका नाम विजितेंद्रिय है, विजितेंद्रिय होणेतैंही जो पुरुष समलोष्टाश्मकांचन है अर्थात् यह वस्तु हमारेकूं ग्रहण करणेयोग्य है यह वस्तु हमारेकूं परित्याग करणेयोग्य है या प्रकारकी ग्रहण त्याग बुद्धितैं रहित होणेतैं समान है लोष्ट क्या मृत्पिंड तथा अश्म क्या पाषाण तथा कांचन क्या सुवर्ण जिसकूं ऐसा परमहंसपरिव्राजक योगी परवैराग्यरूप योगकरिकै युक्तहुआ योगारूढ इस नामकरिकै कह्या जावैहै ॥ ८ ॥

किंवा जिस पुरुषकी शत्रुमित्रादिकोंविषे समबुद्धि है सो पुरुष तौ सर्वयोगीजनोंतैं श्रेष्ठ है । इस अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैंहैं–

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ॥
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु । साधुषु । अपि । च । पापेषु । समबुद्धिः । विशिष्यते ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सुहृद मित्र अरि उदासीन मध्यस्थ द्वेष्य बंधु इन सर्वोंविषे तथा साधुवोंविषे तथा पापियोंविषे तथा अन्य सर्वप्राणियोंविषे समबुद्धि-करणेहारा पुरुष सर्वतैं उत्कृष्ट है ॥ ९ ॥

भा० टी०–प्रतिउपकारी नहीं अपेक्षा करिकै पूर्व स्नेहतैं विनाही तथा पूर्व संबंधतैं विनाही जो पुरुष उपकार करैहै ताका नाम सुहृद है और पूर्वस्नेहकी अपेक्षाकारिकैही जो पुरुष उपकार करैहै ताका नाम मित्र है और स्वकृत अपकारकी नहीं अपेक्षा करिकै केवल आपणे क्रूरस्वभावतैंही जो पुरुष अपकार करैहै ताका नाम अरि है और परस्पर विवाद करते हुए जे दो पुरुष हैं तिन दोनोंपुरुषोंके हितकी तथा अहितकी नहीं इच्छा करताहुआ जो पुरुष तिन दोनोंकी उपेक्षाही करै है ताका नाम उदासीन है और परस्पर विवाद करतेहुए जे दो पुरुष हैं तिन दोनोंके हितकी इच्छा करणेहारा जो पुरुष है ताका नाम मध्यस्थ है और स्वकृत अपकारकी अपेक्षाकारिकैही जो पुरुष अपकार करैहै ताका नाम द्वेष्य है और किंचित् संबंधकारिकै जो पुरुष उपकार करैहै ताका नाम बंधु है और जे पुरुष शास्त्रविहित शुभकर्मोंकूं करैहैं तिनोंका नाम साधु है और जे पुरुष शास्त्रनिषिद्ध अशुभ कर्मोंकूं करैं हैं तिनोंका नाम पाप है इस प्रकार सुहृद, मित्र, अरि, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य, बंधु, साधु, पाप, इन सर्वोंविषे तथा अन्यसर्व प्राणियोंविषे जो पुरुष समबुद्धि करैहै अर्थात् कौन पुरुष किस कर्मवाला है याप्रकार बुद्धिविषे न ल्याइकै सर्वत्र रागद्वेषतैं रहित है ऐसा समबुद्धिवाला पुरुष सर्वतैं उत्कृष्ट है । और किसी पुस्तकविषे (विशिष्यते) इसपदके स्थानविषे (विमुच्यते) यहभी पाठ होवैहै ता पक्षविषे यह अर्थ करणा सो सर्वत्र समबुद्धिवाला पुरुष इस संसारबंधनतैं मुक्त होवैहै ॥ ९ ॥

तहां पूर्वश्लोकोंविषे श्रीभगवान्नैं योगारूढ पुरुषका लक्षण तथा फल कथन कऱ्या । अब श्रीभगवान् (योगी युंजीत सततम्) इस वचनतैं आदिलैके (स योगी परमो मतः) इस वचनपर्यंत तेईस श्लोकोंकरिकै तिस योगारूढ पुरुषकूं अंगोंसहित योगकूं कथन करैं हैं–

योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ॥
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) योगी । युंजीत । सततम् । आत्मानम् । रहसि । स्थितः । एकाकी । यतचित्तात्मा । निराशीः । अपरिग्रहः ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो योगारूढ पुरुष एकांतदेशविषे स्थित होइकै तथा एकाकी होइकै तथा यतचित्तात्मा होइकै तथा निराशी होइकै तथा परिग्रहतैं रहित होइकै आपणे चित्तकूं निरंतर समाहित करै ॥ १० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! सो योगारूढ पुरुष आपणे चित्तकूं निरंतर समाहित करै अर्थात् क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त या तीन भूमिकावोंका परित्याग करिकै एकाग्र, निरोध या दोनों भूमिकावोंकरिकै ता चित्तकूं समाहित करै। किसप्रकारका हुआ सो योगारूढ पुरुष ता चित्तकूं समाहित करै? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ता प्रकारकूं वर्णन करैंहैं (रहसि स्थितः इति) हे अर्जुन ! सो योगारूढ पुरुष योगकी सिद्धिविषे प्रतिबंध करणेहारे जे दुष्टजन हैं तिन दुर्जनादिकोंतैं रहित किसी पर्वतकी गुहादिक एकांतदेशविषे स्थित होवै तथा एकाकी होवै अर्थात् गृहके सर्व परिजनोंका परित्याग करिकै संन्यासी होवै। तथा यतचित्तात्मा होवै। इहां चित्त नाम अंतःकरणका है और आत्म नाम इंद्रियसहित शरीरका है ते दोनों योगके प्रतिबंधकव्यापारतैं रहित हुएहैं जिसके ताका नाम यतचित्तात्मा है। तथा निराशी होवै अर्थात् दोषदृष्टिपूर्वक वैराग्यकी दृढताकरिकै सर्वपदार्थोंकी तृष्णातैं रहित होवै। तथा अपरिग्रह होवै अर्थात् योगकी सिद्धिविषे प्रतिबंध करणेहारे जे पदार्थ हैं तिन पदार्थोंके संग्रहतैं रहित होवै। इसप्रकारका होइकै सो योगारूढ पुरुष आपणे चित्तकूं समाहित करै। इहां (सततं) या पदकरिकै ता योगाभ्यासके करणेविषे निरंतरता कथन करी। और (निराशीः) या पदकरिकै सत्कार कथन करया अर्थात् निरंतर सत्कारपूर्वक करया हुआ योगाभ्यासही फलका हेतु होवै है ॥ १० ॥

तहां तिस योगकी सिद्धिवासतै प्रथम आसनका नियम अवश्य करिकै चाहिये। यातैं ता आसनके नियमकूं श्रीभगवान् दो श्लोकोंकरिकै कथन करैंहैं–

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ॥
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) शुचौ। देशे। प्रतिष्ठाप्य। स्थिरम्। आसनम्। आत्मनः। न। अति। उच्छ्रितम्। न। अति। नीचम्। चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो योगारूढ पुरुष पवित्र देशविषे आपणे निश्चल आसनकूं स्थापनकरै जो आसन नहीं तौ अत्यंत ऊंचा होवै तथा नहीं अत्यंत नीचा होवै तथा कुशोंके ऊपरि मृगचर्म तथा वस्त्रकरिकै युक्त होवै ॥ ११ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जो देश स्वभावतैंही शुद्धहोवै अथवा मृत्तिकादिकोंके लेपनतैं जो देश शुद्ध कऱ्या होवै तथा जो देश जनोंके समुदायतैं रहित होवै तथा भयतैं रहित होवै ऐसे गंगातट अथवा पर्वतकी गुहा आदिक समानस्थलविषे यह अधिकारी पुरुष आपणे निश्चल आसनकूं स्थापन करै । इहां (स्थिरम्) या पदकरिकै ता आसनकी निश्चलता कथन करी । सा निश्चलता मृत्तिकामय स्थलरूप आसनविषेही संभवै है काष्ठमय आसनविषे सा निश्चलता संभवती नहीं । यातैं स्थिरं या आसनके विशेषणकरिकै काष्ठमय आसनकी व्यावृत्ति कथन करी। कैसा होवै सो आसन । अत्यंत उँचाभी नहीं होवै । तथा अत्यंत नीचाभी नहीं होवै । काहेतैं अत्यंत उँचे आसनविषे तौ कदाचित् परवशता करिकै नीचेभी पतन होइजावैहै और अत्यंत नीचे आसनविषेभी शीत उष्ण वर्षजलका प्रवेश पाषणादिकोंका घर्षण आदिक होवैं हैं । ताकरिकै योगाभ्यासविषे विघ्न प्राप्त होवैं हैं । यातैं अत्यंत उँचा तथा अत्यंत नीचा आसन करणा नहीं किंतु दोनोंतैं विलक्षण करणा । तथा ता मृत्तिकामय स्थलरूप आसनऊपरि प्रथम कुशा बिछावणे । तिन कुशावों ऊपरि अत्यंत कोमल मृगका चर्म अथवा व्याघ्रका चर्म बिछावणा और ता मृगादिचर्मऊपरि कोमल वस्त्र बिछावणा । यद्यपि (वस्त्रं दारिद्र्यदुःखाय दारुरोगाय चोपलः) इस स्मृतिवचननैं वस्त्रका निषेध कऱ्याहै तथापि सो निषेध केवल गृहस्थविषयक है संन्यासीविषयक सो निषेध हैनहीं । इहां (आत्मनः) यापदकरिकै अन्य पुरुषकृत आसनकी निवृत्ति कथन करी । जिसकारणतैं अन्यपुरुषके इच्छाका कोई नियम नहीं है । कदाचित् ता अन्यपुरुषकी इच्छाकृत कार्य आपणे अनुकूलभी होवैहै कदाचित् प्रतिकूलभी होवैहै । यातैं अन्यपुरुषकृत आसनभी योगके विक्षेपकाही हेतु होवैहै । यातैं यह अभ्यासवान् पुरुष आपणा आसन आपही स्थापन करै ॥ ११ ॥

हे भगवन् ! इस प्रकारके आसनकूं स्थापनकरिकै सो योगाभ्यासवान् पुरुष क्या कार्य करै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ताकी कर्तव्यता कथन करैंहैं—

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेंद्रियक्रियः ॥
उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) तत्र । एकाग्रम् । मनः । कृत्वा । यतचित्तेंद्रियक्रियः । उपविश्य । आसने । युंज्यात् । योगम् । आत्मविशुद्धये ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिस आसनऊपरि बैठकरिकै चित्तइंद्रियोंकी क्रियाके जयवाला पुरुष आपणे मनकूं एकाग्र करिकै अंतःकरणकी शुद्धिवासतै समाधिविषयक अभ्यास करै ॥ १२ ॥

भा॰टी॰–हे अर्जुन ! सो योगाभ्यास करणेहारा पुरुष ता पूर्वउक्त आसन ऊपरि बैठिकरिकै निग्रह करीहै चित्तकी क्रिया तथा श्रोत्रादिक इंद्रियोंकी क्रिया जिसनैं ऐसा हुआ समाधिरूप योगका अभ्यास करै। तहां शब्दादिकविषयोंका स्मरण करणा यह चित्तकी क्रिया है और तिन शब्दादिकविषयोंका ग्रहण करणा यह श्रोत्रादिक इंद्रियोंकी क्रिया है। ते दोनों प्रकारकी क्रिया ता समाधिरूप योगका प्रतिबंधक होवैंहैं। यातैं ता अभ्यासवान् पुरुषनैं तिन क्रियावोंका निग्रह अवश्यकरिकै करया चाहिये। शंका–हे भगवन् ! सो योगके अभ्यासवाला पुरुष किस प्रयोजनकी सिद्धिवासतै ता समाधिका अभ्यास करै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (आत्मविशुद्धिये इति) इहां आत्मशब्दकरिकै अंतःकरणका ग्रहण करणा। ता अंतःकरणकी शुद्धिवासतै ता अभ्यासकूं करै इहां ता अंतःकरणविषे सर्वविक्षेपोंकी निवृत्तिकृत जो अत्यंत सूक्ष्मता है ता सूक्ष्मताकरिकै प्राप्तभई जा ब्रह्मसाक्षात्कारकी योग्यता है यह ही ता अंतःकरणकी शुद्धि जानणी। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै। तहां श्रुति–(दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः) अर्थ यह–सूक्ष्मदर्शी पुरुषोंनैं एकाग्र सूक्ष्मबुद्धिकरिकैही यह प्रत्यक् अभिन्नब्रह्म साक्षात्कार करीताहै इति। शंका–हे भगवन् ! सो अधिकारी पुरुष क्या करिकै ता योगाभ्यासकूं करै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (एकग्रं मनः कृत्वा इति) पूर्व कथनकरी हुई जे राजसतामसरूप क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त यह व्युत्थानरूप तीन भूमिका हैं तिन्होंका परित्याग करिकै विजातीय वृत्तियोंके व्यवधानतैं रहित एक प्रत्यक्ब्रह्मविषयक जो अनेक सजातीयवृत्तियोंका प्रवाह है ता वृत्तियोंके प्रवाहकरिकै युक्त जो सत्त्वगुणप्रधान मन है

ताकूं एकाग्रमन कहैंहैं । ऐसी मनकी एकाग्रताकूं दृढभूमिकायुक्त प्रयत्नतैं संपादन करिकै ता एकाग्रताकी वृद्धिवासतै संप्रज्ञातसमाधिरूप योगका अभ्यास करै । सो ब्रह्माकार मनके वृत्तियोंका प्रवाहही निदिध्यासन कह्या जावैहै । यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक-(ब्रह्माकारमनोवृत्तिप्रवाहोऽहंकृतिं विना । संप्रज्ञातसमाधिः स्याद्धयानाभ्यासप्रकर्षतः ।) अर्थ यह-अहंकृतितैं विनाही जो ब्रह्माकार मनके वृत्तियोंका प्रवाह है ताका नाम संप्रज्ञातसमाधि है सा संप्रज्ञातसमाधि ध्यानाभ्यासकी अधिकताकरिकै सिद्ध होवैहै । इसी अभिप्रायकरिकै श्रीभगवान् (योगी युंजीत सततं, युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये । युक्त आसीत मत्परः) इत्यादिक अनेक वचनोंकरिकै ता ध्यानाभ्यासके अधिकताकूं कथन करताभया है ॥ १२ ॥

तहां (शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य) इत्यादिक श्लोकोंकरिकै पूर्व ता योगाभ्यासके वासतै बाह्य आसनका कथन करया । अब ता बाह्य आसनऊपरि बैठिकै सो योगाभ्यासवान् पुरुष किसप्रकार आपणे शरीरका धारण करै या अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैंहैं-

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ॥
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) समम् । कायशिरोग्रीवम् । धारयन् । अचलम् । स्थिरः । संप्रेक्ष्य । नासिकाग्रम् । स्वम् । दिशः । च । अनवलोकयन् ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो योगाभ्यासवान् पुरुष दृढप्रत्नवाला होइकै कायशिरग्रीवा या तीनोंकूं समान तथा अचल धारण करताहुआ तथा आपणे नासिकाके अग्रकूं देखताहुआ तथा दिशावोंकूं नहीं देखताहुआ स्थित होवै ॥ १३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! सो योगाभ्यासवान् पुरुष अत्यंत दृढप्रयत्नवाला होइकै आपणे शरीरके मध्यदेशरूप कायकूं तथा शिरकूं तथा ग्रीवाकूं समान धारण करताहुआ अर्थात् वक्रभावतैं रहित दंडकी न्याईं ऋजु धारण करताहुआ तथा शिरकूं तथा ग्रीवाकूं अचल धारण करताहुआ अर्थात् कंपतैं रहित धारण करताहुआ स्थित होवैहै । यद्यपि ता कायशिरग्रीवाके ऋजु धारण किये हुए वामदक्षिण भागविषै स्थित तथा पृष्ठदेशविषे स्थित कोईभी वस्तु देखी

जावै नहीं तथा स्पर्शकरि जावै नहीं। तथापि मशकपिपीलिकादिक जीवोंकृत उपद्रवके हुए कदाचित् शरीरके चलायमानताकी संभावना होइसकैहै। ताकी निवृत्ति करणेवासतै श्रीभगवान्नैं अचल यह विशेषण कथन कऱ्याहै। तथा सो योगाभ्यासवान् पुरुष आपणे नासिकाके अग्रभागकूं चक्षुकरिकै देखता हुआ स्थित होवैहै। इहां चक्षुकरिकै नासिकाके अग्रभागका जो दर्शन कथन कऱ्या है सो चक्षुकरिकै रूपादिकविषयोंकूं नहीं ग्रहण करै इस नियमके वास्तै कथन कऱ्या। कोई नासिकाके अग्रभागके देखणे वासतै सो वचन कथन करचा नहीं। जो कदाचित् ता वचनकरिकै नासिकाके अग्रभागका दर्शनही भगवान्कूं विवक्षित होवै तौ मन तदाकारता करिकै ता नासिकाके अग्रभागविषेही स्थित होवैगा ताकरिकै चित्तकी ब्रह्मविषे स्थिति नहीं होवैगी और ब्रह्मविषे जो चित्तका स्थापन है ताका नामही समाधि है। यहही समाधिस्वरूप श्रीभगवान्नैं (आत्मसंस्थं मनः कृत्वा) इस वचनकरिकै कथन करचाहै। यातैं नासिकाके अग्रभागका देखणा रूपादिकोंके अग्रहणकूं लखावैहै। तथा चक्षुइंद्रियके चंचलताकी निवृत्तिवासतै है। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया जैसे (संप्रेक्ष्य नासिकाग्रम्) यावचनकरिकै श्रीभगवान्कूं चक्षुकरिकै रूपादिक विषयोंका अग्रहण विवक्षित है तैसे श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै शब्दादिक विषयोंका अग्रहणभी विवक्षित है। काहेतैं जैसे चक्षुइंद्रियका व्यापार योगका प्रतिबंधक है तैसे श्रौत्रिक इंद्रियोंके व्यापारभी ता योगके प्रतिबंधक है। तथा सो योगाभ्यासवान् पुरुष पूर्वपश्चिमादिकदिशावोंकूं नहीं देखताहुआ स्थित होवै। यद्यपि नासिकाके अग्रभागके देखणे करिकै ही दिशादिक सब पदार्थोंके देखणेका निषेध सिद्ध होवैहै। यातैं पृथक् तिन दिशावोंके देखणेका निषेध करणा संभवता नहीं तथापि कदाचित् तिन पूर्व पश्चिमादिक दिशावोंविषे किसी भयानक विपरीत शब्दके उत्पन्नहुए तिन दिशावोंके देखणेकी संभावना होइसकै है सो ऐसे विपरीत शब्दके उत्पन्न हुएभी तिन दिशावोंकूं देखे नहीं और (दिशश्च) या वचनविषे स्थित जो चकार है ता चकारकरिकै आपणे शरीरका ग्रहण करणा अर्थात् सो योगाभ्यासवान् पुरुष तिस कालविषे आपणे शरीरकूंभी नहीं देखै। जिस कारणतैं तिन दिशावोंका देखणा तथा शरीरका देखणा योगका प्रतिबंधकही है। इसप्रकार सर्व वृत्तियोंका निरोध करिकै सो योगाभ्यासवान् पुरुष तिस आसनऊपरि स्थित होवै ॥ १३ ॥

किंच-

प्रशांतात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ॥
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) प्रशांतात्मा । विगतभीः । ब्रह्मचारिव्रते । स्थितः । मनः । संयम्य । मच्चित्तः । युक्तः । आसीत । मत्परः ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो अभ्यासवान् पुरुष प्रशांतआत्मा हुआ तथा भयतैं रहित हुआ तथा ब्रह्मचारीके व्रतविषे स्थित हुआ तथा मनकूं निग्रहकरिकै मेरेविषे चित्तवाला हुआ तथा मैं परमेश्वरपरायण हुआ संप्रज्ञातसमाधिवान हुआ स्थित होवै ॥ १४ ॥

भा॰ टी॰-रागद्वेषादिकोंके कारणकी निवृत्तिकरिकै प्रशांत हुआहै क्या रागद्वेषादिकोंतैं रहित हुआहै आत्मा क्या अंतःकरण जिसका ताका नाम प्रशांतात्मा है । तथा शास्त्रके दृढनिश्चयकरिकै निवृत्त होइगया है भय जिसका ताका नाम विगतभी है । तहां सर्वकर्मोंका त्याग करणा हमारेकूं युक्त है अथवा नहीं युक्त है याप्रकारकी ता कर्मोंके त्यागविषे जा शंका है ता शंकाका नाम भय है । सो शंकारूप भय जिसका शास्त्रके दृढनिश्चयकरिकै निवृत्त होगया है तथा ब्रह्मचर्य गुरुशुश्रूषा भिक्षा भोजन इत्यादिक जो ब्रह्मचारीका व्रत है ता व्रतविषे स्थित होइकै आपणे मनकूं विषयाकारवृत्तियोंतैं शून्यकरिकै मैं प्रत्यक्चैतन्यरूप परमेश्वरके सगुणरूपविषे अथवा निर्गुणरूपविषे चित्त है जिसका ताका नाम मच्चित्त है अर्थात् जो पुरुष मैं परमेश्वरविषयकही चित्तवृत्तियोंके प्रवाहवाला है । शंका-हे भगवन् चिंतनकरणेयोग्य स्त्री पुत्र धनादिक प्रियपदार्थोंके विद्यमान हुए सो मच्चित्तपणा कैसे होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (मत्परः इति) मैं परमेश्वरही परमानंदस्वरूप होणेतैं परमपुरुषार्थरूप हूं अर्थात् परमप्रियरूप हूं जिसकूं ताका नाम मत्परहै ऐसा मत्परपुरुष अन्यपदार्थोंकूं प्रियरूप जानता नहीं । तहां श्रुति-(तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादंतरतरं यदयमात्मा इति) अर्थ यह-जो आनंदस्वरूप आत्मा देहइंद्रियप्राणमनबुद्धि आदिक सर्व पदार्थोंतैं अत्यंत अंतर है सो यह आत्मादेव पुत्रतैंभी प्रिय है तथा धनतैंभी प्रिय है तथा अन्य स पदार्थोंतैंभी प्रिय है इति । इसप्रकार विषयाकार सर्व वृत्तियोंका निरोध करि एक भगवत्आकार किया है चित्तके वृत्तियाका प्रवाह जिसनें ऐसा संप्रज्ञातसमाधि

रूप योगवाला पुरुष यथाशक्ति परिमाण तहां स्थित होवै। स्वइच्छाकरिकै शीघ्रही तहांतैं उठै नहीं इति। इहां (मच्चित्तः मत्परः) या दोनों पदोंका श्रीभाष्यकारोंनैं यह अर्थ कऱ्याहै। जैसे कोई विषयासक्त रागीपुरुष आपणे चित्तविषे निरंतर स्त्रीका चिंतन करताहुआ स्त्रीचित्त तौ होवैहै परंतु सो रागीपुरुष ता स्त्रीकूं परत्वरूप करिकै तथा आराध्यत्वरूप करिकै ग्रहण करता नहीं किंतु सो रागीपुरुष महाराजाकूं अथवा किसी देवताकूं परत्वरूप करिकै तथा आराध्यत्वरूप करिकै ग्रहण करैहै और यह अधिकारी पुरुष तौ एक मैं परमेश्वरविषेही मच्चित्त होवैहै तथा मत्पर होवैहै अर्थात् सर्व आराध्यत्वरूपकरिकै मैं परमेश्वरकूंही मानै है इति। इस प्रकारके भाष्यकारोंके व्याख्यानतैं पूर्वउक्त किंचित् विलक्षण व्याख्यानकूं करिकै तिस टीकाकारनैं श्रीभाष्यकारोंतैं इस प्रकार आपणी न्यूनता कथन करीहै। तहां श्लोक— (व्याख्यातृत्वेपि मे नात्र भाष्यकारेण तुल्यता। गुंजायाः किंनु हेम्नैकतुलारोहेपि तुल्यता।) अर्थ यह—इस गीताके व्याख्यान करणेहारेभी हमारी भगवान् भाष्यकारोंके साथ तुल्यता होवै नहीं। जैसे एकही तुलाविषे सुवर्णके साथि आरूढहुए जे गुंजा हैं तिन गुंजावोंकी ता सुवर्णके साथि तुल्यता होवै नहीं। तैसे एकही गीताशास्त्रके व्याख्यान करणेविषे प्रवृत्तहुए जो श्रीभाष्यकार हैं तथा मैं टीकाकार हूं तिस हमारी श्रीभाष्यकारोंके साथि तुल्यता होवै नहीं ॥ १४ ॥

हे भगवन् ! इसप्रकार संप्रज्ञातसमाधिरूप योगकरिकै स्थितहुआ जो पुरुष है तिस पुरुषकूं कौन फल प्राप्त होवैहै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए अधिकारीजनोंकूं ता समाधिरूप योगविषे प्रवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान् ताके फलका कथन करैं हैं—

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ॥
शांतिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) युंजन्। एवम्। सदा। आत्मानम्। योगी। नियतमानसः। शांतिम्। निर्वाणपरमाम्। मत्संस्थाम्। अधिगच्छति ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पूर्वउक्त प्रकारसैं आपणे मनकूं समाहित करताहुआ सर्वदा योगाभ्यासवान् पुरुष मनके निरोधवाला हुआ मेरा स्वरूपभूत निर्वाणपरम शांतिकूं प्राप्त होवैहै ॥ १५ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! एकांतदेशविषे स्थितितैं आदिलैके जितनेक नियम पूर्व कथन करेहैं तिन सर्व नियमोंकारिकै आपणे मनकूं अभ्यास वैराग्यके बलतैं समाहित करता हुआ सर्वदा योगाभ्यासपरायण जो योगी पुरुष है सो योगी पुरुष नियतमानस हुआ शांतिकूं प्राप्त होवैहै । तहां अभ्यासकी दृढताकारिकै निरुद्ध कऱ्याहै आपणा मन जिसनैं ताका नाम नियतमानस है । अथवा ता अभ्यासकी दृढता करिकै निवृत्त करेहैं मनके वृत्तिरूप विकार जिसनैं ताका नाम नियतमानस है । ऐसा नियतमानस सो योगीपुरुष सर्ववृत्तियोंकी उपरामतारूप प्रशांतवाहिता नामा शांतिकूं प्राप्त होवैहै । कैसीहै शांति निर्वाणपरमा है अर्थात् जा शांति तत्त्वसाक्षात्कारकी उत्पत्तिद्वारा सर्व कामकर्म अविद्याकी निवृत्तिरूप मुक्तिविषे पारिअवसानवाली है । पुनः कैसी है शांति मत्संस्था है अर्थात् मेरे परमानंदस्वरूपकी निष्ठारूप है । इस प्रकारकी शांतिकूंही सो योगीपुरुष प्राप्त होवै है । अनात्मवस्तुवोंकूं विषय करणेहारे सांसारिक ऐश्वर्यतारूप जे समाधिके फल हैं तिन फलोंकूं सो योगीपुरुष प्राप्त होता नहीं । काहेतैं ते ऐश्वर्यरूपसिद्धियां मोक्षके उपयोगी समाधिके विघ्नरूपही होवैं हैं । यह वार्त्ता पतंजलिभी योगसूत्रोंविषे समाधिके तिस तिस व्यावहारिक सिद्धिरूप फलोंकूं कथन करिकै कहता भया है । तहां सूत्रद्वय-(ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥ १ ॥ स्थान्युपमंत्रणे संगस्मयाऽकरणं पुनरनिष्टप्रसंगात् ॥ २ ॥) अर्थ यह-पूर्व कथन करीहुई नानाप्रकारकी सिद्धियोंकारिकैही यह योगीपुरुष कृतकृत्य होवैगा । ऐसी आशंका करिकै श्रीपतंजलिभगवान् कहैहैं । मोक्षरूप फलकी प्राप्ति करणेहारे समाधिविषे प्रीतिमान् जो योगी पुरुषहै तिस योगी पुरुषकूं तौ ते पूर्व उक्त व्यावहारिक सिद्धियां विघ्नरूपही होवैं हैं । यातैं मोक्षके प्राप्तिकी इच्छावान् पुरुष तिन प्रतिबंधक सिद्धियोंकी उपेक्षाही करै । जिस कारणतैं आत्मज्ञानतैं विना कोटिसिद्धियोंकारिकैभी सा कृतकृत्यता होवै नहीं । और जो योगीपुरुष तिस मोक्षके हेतुभूत समाधिविषे प्रीतिमान् नहीं है किंतु व्युत्थानविषेही प्रीतिमान् है तिस योगी पुरुषकूं तौ ते व्यावहारिक सिद्धियां ही होवैं हैं इति १ तहां तिस तिस स्थानके अधिपतिरूप जे महेंद्रादिक देवता हैं ते देवता तिस योगीपुरुषके प्रति याप्रकारकी प्रार्थना करैं हैं । हे योगिन् ! इन स्वर्गादिक स्थानोंविषे आप आइके निवास करौ तथा रमण करौ । देखो यह देवकन्या कैसी रमणीक हैं । तथा यह दिव्य भोग कैसे रमणीक हैं । तथा यह रसायन अमृतादिक जरामृत्युके

निवृत्त करणेहारे हैं। तथा यह विमान कैसे दिव्य हैं। ऐसे दिव्य पदार्थोंकूं इहां आइकै भोगो। इस प्रकार तिन देवतावोंकरिकै प्रार्थना कऱ्या हुआभी सो योगी पुरुष तिन पदार्थोंविषे कामरूपकूं कदाचितभी नहीं करै। तथा इस हमारे योगका बहुत आश्चर्यरूप प्रभाव है। जिस करिकै साक्षात् देवताभी हमारे आगे इस प्रकारकी प्रार्थना करते हैं। या प्रकारके गर्वरूप स्मयकूंभी सो योगी पुरुष कदाचित् नहीं करै किंतु सो योगी पुरुष तिन विषयभोगोंविषे याप्रकारकी दोष-दृष्टि करै। बहुत कालतैं इस संसाररूप अग्निविषे जलते हुए तथा जन्ममरणके प्रवाहरूप चक्रविषे आरूढ हुए हमनैं किसी पूर्वले पुण्यकर्मके प्रभावतैं बहुत प्रयत्नसैं यह क्लेशकर्मरूप अंधकारके नाश करणेहारा योगरूप दीपक प्रज्वलित कऱ्या है ता योगरूप दीपकके नाश करणेहारा यह तृष्णाका जनक विषयरूप वायु है। ऐसे योगरूप दीपकके प्रकाशकूं प्राप्त होइकैभी मैं अनेकवार इस विषयरूप मृग-तृष्णाके जलकरिकै वंचितहुआभी पुनः तिन विषयोंकी प्राप्तिवास्तै इस संसाररूप अग्निका आपणेकूं काष्ठरूप किसवास्तै करौं ? किंतु पुनः ऐसा करणा हमारेकूं योग्य नहीं है। यातैं कृपणपुरुषों करिकै प्रार्थना करणे योग्य तथा स्वप्नपदार्थोंकी न्याईं मिथ्यारूप ऐसे भोगतैं हम उपराम हैं। इसप्रकार तिन भोगोंविषे दोषदृष्टि करिकै सो योगीपुरुष ता समाधिकूं दृढ करै। और ता कामनारूप संगविषे पतितताकूं तथा गर्वरूपस्मयविषे कृतकृत्यताकूं मानणेहारे पुरुषकूं योगकी सिद्धि होवै नहीं। ता संग स्मयके वशतैं ता योगभ्रष्ट पुरुषकूं पुनः अनिष्टरूप संसारकी प्राप्ति होवै है। यातैं ता संग स्मय दोनोंका जो नहीं करणा है सो कैवल्यमोक्षके विघ्नके निवृत्तिका उपाय है इति २ तहां (युंजन्नेवं सदात्मानम्) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं एकाग्रभूमिकाविषे संप्रज्ञातसमाधि कथन कऱ्या। और (नियतमानसः) इस वचनकरिकै निरोधभूमिकाविषे ता संप्रज्ञातसमाधिका फलभूत असंप्रज्ञातसमाधि कथन कऱ्या। और (शांतिं) या पदकरिकै ता निरोधसमाधिजन्य संस्कारोंका फलभूत प्रशांतवाहिता कथन करी। और (निर्वाण-परमां) या वचन करिकै धर्ममेघनामा समाधिकूं तत्त्वज्ञानद्वारा कैवल्यमुक्तिकी हेतुता कथन करी। और (मत्संस्थाम्) या वचनकरिकै वेदांतसिद्धांतविषे अंगीकृत कैवल्यमोक्ष कथन कऱ्या। इन समाधियोंका योगशास्त्रविषे विस्तारतैं निरूपण कऱ्या है। जिस कारणतैं इस प्रकारके महान् फलकी प्राप्ति करणेहारा

यह योग है तिस कारणतें यह अधिकारी पुरुष महान् प्रयत्न करिकैभी ता योगका संपादन करै ॥ १५ ॥

अब श्रीभगवान् दो श्लोकों करिके ता योगाभ्यासवान् पुरुषके आहारादिकोंके नियमकूं कथन करैं हैं-

नात्यश्नतस्तु योगोस्ति न चैकांतमनश्नतः ॥
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) न । अति । अश्नतः । तु । योगः । अस्ति । न । च । एकांतम् । अनश्नतः । न । च । अति । स्वप्नशीलस्य । जाग्रतः । न । एव । च । अर्जुन ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अत्यंत अन्नके भोजन करणेहारेका भी सो योग नहीं सिद्ध होवैहै तथा अत्यंत नहीं भोजन करणेहारेकाभी सो योग नहीं सिद्ध होवैहै तथा अत्यंत निद्रालुपुरुषकाभी सो योग नहीं सिद्ध होवैहै तथा अत्यंत जागणेहारे पुरुषका भी सो योग नहीं सिद्ध होवैहै ॥ १६ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जो अन्न भोजन कऱ्याहुआ जठराग्निकरिकै जीर्णभावकूं प्राप्त होइजावै है तथा शरीरविषे कार्यकरणेकी सामर्थ्यताकूं सपादन करैहै सो अन्न शास्त्रविषे आत्मसंमित कह्या जावै है । ता आत्मसंमित अन्नकूं नहीं भोजन करिकै जो पुरुष लोभके वशतें अधिक अन्नकूं भोजन करैहै तिस पुरुषकूंभी सो समाधिरूप योग सिद्ध होवै नहीं । काहेतें सो भोजनकऱ्याहुआ अधिक अन्न अजीर्णभावकूं प्राप्त होइकै तिस पुरुषविषे धातुवोंकी विषमताद्वारा नानाप्रकारकी ज्वरशूलादिक व्याधियोंकूं उत्पन्न करै है । तिन ज्वरशूलादिक व्याधियोंकरिकै पीडित हुए पुरुषतैं सो योगाभ्यास कऱ्याजावै नहीं । और जो पुरुष अत्यंत अन्नका भोजनही नहीं करै है अथवा अत्यंत अल्प अन्नका भोजन करैहै तिस पुरुषकाभी सो योग सिद्ध होवै नहीं । काहेतें अन्नके नहीं भोजन करणेतें अथवा अत्यंत अल्प भोजन करणेतें शरीरका रसादिक धातुवों करिकै पोषण होवै नहीं । ताकरिकै सो शरीर किसीभी कार्यकरणेविषे समर्थ होवै नहीं । तथा क्षुधाकरिकै पीडित पुरुषकी वृत्तिभी एकाग्र होवै नहीं । ऐसे असमर्थ शरीरतैं सो योगाभ्यास सिद्ध होइसकै नहीं । यह वार्ता शतपथकी श्रुतिविषेभी कथन करीहै । तहां श्रुति-

(यदुह वा आत्मसंमितमन्नं तदवति तन्न हिनस्ति यद्भूयो हिनस्ति तद्यत्कनीयो न तदवति इति) अर्थ यह–जो आत्मसंमित अन्न भोजन कऱ्याजावैहै सो अन्न ता भोक्तापुरुषविषे वेद अर्थके अनुष्ठानकी योग्यता संपादन करिकै ता अनुष्ठानद्वारा ता भोक्तापुरुषका रक्षण करैहै । सो आत्मसंमित अन्न धातुवोंकी विषमताकूं करिकै ज्वर शूलादिक व्याधियोंकी उत्पत्तिद्वारा ता भोक्ता पुरुषका हनन करै नहीं । और ता आत्मसंमित अन्नतैं जो अधिक अन्न भोजन कऱ्याजावैहै सो अधिक अन्न तौ धातुवोंकी विषमताद्वारा ज्वरशूलादिक व्याधियोंकूं उत्पन्न करिकै ता भोक्ता पुरुषकूं हनन करैहै । तथा ता पुरुषके धर्मकाभी नाश करैहै और जो अत्यंत अल्प अन्न भोजन कऱ्याजावैहै सो अल्प अन्न तौ ता भोक्तापुरुषकूं रक्षण करै नहीं अर्थात् क्षुधाकी निवृत्ति करणेवासतै तथा धर्मके निर्वाह करणेवासतै समर्थ होवै नहीं । यातैं योगाभ्यासवान् पुरुषनैं अत्यंत अधिक अन्नका तथा अत्यंत अल्प अन्नका तथा अत्यंत नहीं भोजनका या तीनोंका परित्याग करिकै सो आत्मसंमित अन्नही भोजन करणा इति । अथवा (पूरयेदशनेनार्द्धं तृतीयमुदकेन तु । वायोः संचरणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्) अर्थ यह–यह योगाभ्यासवान् पुरुष आपणे उदरके दोभागोंकूं तौ अन्नकरिकै पूरण करै और तीसरे भागकूं जलकरिकै पूरण करै और प्राणवायुके सुखपूर्वक संचारवास्तै चतुर्थ भागकूं खाली राखै इति । इसप्रकार योगशास्त्रविषे अन्नके भोजनकरणेका परिमाण कथन कऱ्याहै । तिस परिमाणतैं न्यून परिमाण अथवा अधिक परिमाण अन्नके भोजन करणेतैं सो योग सिद्ध होवै नहीं किन्तु तिस योगशास्त्रउक्त परिमाण अन्नके भोजनतैंही सो योग सिद्ध होवैहै । और जो पुरुष अत्यंत निद्रावालाही होवैहै तिस पुरुषकाभी सो योग सिद्ध होवै नहीं । जिस कारणतैं सा निद्रा योगका प्रतिबंधकही है । और जो पुरुष अत्यंत जाग्रतकूंही करैहै तिस पुरुषकाभी सो योग सिद्ध होवै नहीं । काहेतैं अत्यंत जागरण करणेतैं ता योगाभ्यासकालविषे अवश्यकरिकै निद्राकी प्राप्ति होवैगी । तहां (नैव चार्जुन) या वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार इहां नहीं कथन करेहुए दोषोंके ग्रहण करावणेवासतै है । ते दोष मार्कंडेय पुराणविषे कथन करे हैं । तहां श्लोक–(नाध्मातः क्षुधितः श्रांतो न च व्याकुलचेतनः. ॥ युंजीत योगं राजेंद्र योगी सिद्ध्यर्थमात्मनः ॥ १ ॥ नाति शीते न चैवोष्णे न द्वंद्वे अनिलान्विते ॥ काले-

ष्वेतेषु युंजीत न योगं ध्यानतत्परः ॥ २ ॥) अर्थ यह—हे राजेंद्र यह योगीपुरुष अत्यंत अन्न खाइकै फूल्याहुआ अत्यंत क्षुधातुर हुआ तथा अत्यंत श्रमयुक्त हुआ तथा व्याकुलचित्तवाला हुआ योगकूं करै नहीं ॥ १ ॥ तथा अत्यंत शीतकालविषे तथा अत्यंत उष्णकालविषे तथा अत्यंत पवनकालविषे यह ध्यानपरायण पुरुष ता योगकूं करै नहीं ॥ १६ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे आहारादिकोंके नियमतैं रहित पुरुषकूं ता योगकी प्राप्ति होवै नहीं याप्रकारके व्यतिरेककरिकै तिन आहारादिकोंके नियमविषे योगकी कारणता कथन करी। अब तिन आहारादिकोंके नियमवाले पुरुषकूं ता योगकी प्राप्ति अवश्यकरिकै होवैहै याप्रकारके अन्वयकरिकै भी तिन आहारादिकोंके नियमविषे ता योगकी कारणताकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ॥
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) युक्ताहारविहारस्य। युक्तचेष्टस्य। कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य। योगः। भवति। दुःखहा ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! नियमतैं है आहार तथा विहार जिसका तथा प्रणवजपादिकर्मोंविषे नियमतैं है प्रवृत्ति जिसकी तथा नियमतैं है निद्रा तथा जाग्रत् जिसका ऐसे पुरुषकाही सो समाधिरूप योग दुःखके नाश करणेहारा सिद्ध होवैहै ॥ १७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! अन्नरूप जो आहार है तथा गमन आगमनरूप जो विहार है ते आहार विहार दोनों युक्त हैं क्या नियमपूर्वक हैं जिसके तथा प्रणवादिक मंत्रोंका जप तथा उपनिषदोंका पाठ इत्यादिक जे कर्म हैं तिन कर्मोंविषे युक्त है क्या कालके नियमपूर्वक है चेष्टा क्या प्रवृत्ति जिसकी। तथा निद्रारूप जो स्वप्न है तथा जाग्रत्रूप जो प्रबोध है ते दोनों युक्त हैं क्या कालके नियम पूर्वक हैं जिसके ऐसे साधनसंपन्न पुरुषकाही तिन साधनोंकी दृढताकरिकै सो समाधिरूप योग सिद्ध होवैहै। तिन आहारविहारादिकोंके नियमतैं रहित पुरुषका सो समाधिरूप योग सिद्ध होवै नहीं। शंका—हे भगवन् ! इस प्रकारके प्रयत्नविशेष करिकै संपादन कऱ्या जो योग है ता योगकरिकै तिस

योगीपुरुषकूं कौन फल प्राप्त होवैहै । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (दुःखहा इति) हे अर्जुन ! संसारसंबंधी सर्वदुःखोंका कारण जा अविद्या है ता अविद्याके नाश करणेहारी जा ब्रह्मविद्या है ता ब्रह्मविद्याके उत्पन्न करणेहारा यह योग है । यातैं यह समाधिरूप योग ब्रह्मविद्याकी उत्पत्तिद्वारा मूलअविद्यासहित सर्व दुःखोंके निवृत्तिका हेतु है ऐसे महान् फलवाले. इस समाधिरूप योगकूं यह अधिकारीपुरुष अवश्यकरिकै संपादन करै। तहां आहारका नियम तौ पूर्वश्लोकविषे (यद्भुक्त्वा) इस श्रुतिवचनकरिकै तथा (पूरयेदशनेनार्द्धम्) इस योगशास्त्रके वचनकरिकै कथन करिआये हैं और गमन आगमनरूप विहारका नियम तौ (योजनान्न परं गच्छेत्) अर्थ यह—योजन परिमाणतैं अधिक नहीं चले किंतु योजन परिमाणके भीतर भीतर चलै। इत्यादिक वचनोंकरिकै कथन कऱ्याहै और वाक्आदिक इन्द्रियोंके चपलताका जो परित्याग है यह ही तिन जपादि कर्मोंविषे चेष्टाका नियम है और सूर्यके अस्तकालतैं लैके पुनः उदयकालपर्यंत जितनीक रात्रि है ता संपूर्ण रात्रिके समान तीन विभाग करणे, तिन तीनों विभागोंविषे प्रथम विभागविषे तथा अंत्यके विभागविषे तौ जागरण करणा और मध्यके विभागविषे निद्रा करणी यहही जाग्रत्का तथा निद्राका नियम है । इसतैं आदिलैके अनेकप्रकारके नियम योगशास्त्रविषे कथन करेहैं ॥ १७ ॥

तहां पूर्वप्रसंगकरिकै एकाग्रभूमिकाविषे संप्रज्ञात समाधिका कथन कऱ्या अब निरोधभूमिकाविषे असंप्रज्ञात समाधिके कहणेवासतै प्रारंभ करैं हैं—

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ॥
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) यदा । विनियतम् । चित्तम् । आत्मनि । एवं । अवतिष्ठते । निःस्पृहः । सर्वकामेभ्यः । युक्तः । इति । उच्यते । तदा॥१८॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसकालविषे विरुद्धहुआ चित्त आत्माविषे ही स्थित होवै तथा सर्वविषयोंतैं निस्पृह होवैहै तिस कालविषे युक्त इस नामकरिकै कह्याजावै है ॥ १८ ॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन। जिस कालविषे यह अंतःकरणरूप चित्त आपणे स्वच्छस्वभावके वशतैं स्वविषयके आकारकूं ग्रहण करणेविषे समर्थ हुआभी पर-वैराग्यके वशतैं सर्व वृत्तियोंके निरोधवाला हुआ तथा रज तमतैं रहित हुआ प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप आत्माविषेही सर्वदा अचल स्थित होवैहै। तिस सर्ववृत्तियोंके निरोधकालविषे समाधिरूप योगकरिकै युक्त कह्याजावैहै। कौन युक्त कह्याजावैहै ऐसी शंकाके हुए कहैं हैं (निःस्पृहः सर्वकामेभ्यः इति) इस लोकके तथा पर-लोकके जितनेक विषय हैं तिन्होंका नाम काम है तिन विषयरूप सर्वकामोंतैं निवृत्त हुई है तृष्णारूप स्पृहा जिसकी ताका नाम निःस्पृह है। ऐसा निःस्पृह पुरुष युक्त इस नामकरिकै कह्याजावैहै। इतने कहणेकरिकै दोषदृष्टिपूर्वक पर वैराग्यविषे असंप्रज्ञात समाधिकी साधनरूपता कथन करी ॥ १८ ॥

अब समाधिविषे सर्ववृत्तियोंतैं रहितहुए चित्तके उपमानकूं कथन करैं हैं–

यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता ॥
योगिनो यतचित्तस्य युंजतो योगमात्मनः ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) यथा। दीपः। निवातस्थः। न। इंगते। सा। उपमा। स्मृता। योगिनः। यतचित्तस्य। युंजतः। योगम्। आत्मनः ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जैसे वायुतैं रहित देशविषे स्थित दीपक नहीं चलाय-मान होवैहै सोईही दृष्टांत निरुद्ध चित्तवाले तथा योगकूं अनुष्ठान करणेहारे योगी पुरुषके अंतःकरण कथन कऱ्याहै ॥ १९ ॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन ! दीपकके चलनका हेतु जो वायु है तिस वायुतैं रहित देशविषे स्थित जो दीपक है सो दीपक जैसे चलावणेहारे वायुके अभाव होणेतैं चलायमान होता नहीं तैसे जो योगीपुरुष एकाग्रभूमिकाविषे संप्रज्ञातसमाधिरूप योगवाला है तथा अभ्यासकी बाहुल्यताकरिकै निरुद्ध करीहै सर्व चित्तकी वृत्तियां जिसनैं तथा जो योगीपुरुष निरोधभूमिकाविषे असंप्रज्ञात समाधिरूप योगकूं अनुष्ठान करणेहारा है ऐसे योगीपुरुषका जो अंतःकरणहै सो अंतःकरण ता दीपककी न्याईं निश्चल है। तथा सत्त्वगुणकी अधिकताकारिकै प्रकाशक है यातैं ता योगीपुरुषके अंतःकरणका योगशास्त्रवेत्ता पुरुषोंनैं सो निश्चलदीपकरूप दृष्टांत कथनकऱ्या अर्थात् जैसे सो दीपक चलायमानतातैं रहित होवैहै तैसे ता योगी-

पुरुषका अंतःकरणभी चलायमानतातैं रहित होवैहै इति । और किसी टीकाविषे तौ (आत्मनः) या पदकरिकै अंतःकरणका ग्रहण कऱ्या नहीं किंतु ता आत्मशब्द करिकै प्रत्यक् आत्माकाही ग्रहण कऱ्याहै। तहां (आत्मनः योगं युंजतः) या प्रकारतैं पदोंका अन्वय करिकै आत्माविषयक योगकूं करणेहारा जो योगीपुरुष है या प्रकारका अर्थ कऱ्याहै । सो इस व्याख्यानविषे दीपकरूप उपमानका कोई उपमेय सिद्ध होता नहीं । दृष्टांतका नाम उपमान है और दार्ष्टांतिकका नाम उपमेय है । किंवा इस व्याख्यानविषे (आत्मनः) यह पदही व्यर्थ होवैहै । काहेतैं सर्व अवस्थाविषे ता चित्तकूं आत्माकारता स्वभावतैंही सिद्ध है । कोई योगनैं ता चित्तकी आत्माकारता संपादन करीती नहीं किंतु ता चित्तविषे कर्मजन्य जा कादाचित्क अनात्माकारता है सा अनात्माकारता ता योगनैं निवृत्त करीती है। यह वार्त्ता संक्षेपशारीरकविषेभी कथन करीहै। तहां श्लोक–(स्वाभाविकी हि वियदन्वितता घटादेः क्षीरादिवस्तुघटना पुनरन्यहेतुः। एवं धियामपिचिदन्वितताऽनिमित्तं शब्दादिवस्तुघटना खलु कर्महेतुः) अर्थ यह–घटादिकोंका आकाशके साथि जो संबंध है सो तौ स्वाभाविकही है किसीके प्रयत्नकारिकै कऱ्या नहीं और तिसी घटादिकोंका क्षीरादिक पदार्थोंके साथि जो संबंध है सो संबंध तौ स्वाभाविक है नहीं किंतु कर्मजन्य है। तैसे बुद्धियोंका जो चेतनके साथि संबंध है सो संबंध किसी कर्मजन्य नहीं है। किंतु सो संबंध स्वभावसिद्ध है। तिन बुद्धियोंका जो विषयोंके साथि संबंध है सो संबंध तौ केवल कर्मजन्यही है स्वभावसिद्ध है नहीं इति। यातैं (आत्मनः) यह पद प्रत्यक्आत्माका वाचक नहीं है। किंतु अंतःकरणरूप दार्ष्टांतिकका बोधक है। अथवा इस व्याख्यानविषे दार्ष्टांतिकके लाभवासतै (यतचित्तस्य) या पदविषे (यतं च तत् चित्तं च) अर्थ यह– निरुद्ध हुआ ऐसा जो चित्त है या प्रकारका कर्मधारय समास अंगीकार करिकै ता चित्तकाही ग्रहण करणा ॥ १९ ॥

इस प्रकार सामान्यरूपतैं समाधिका कथन करिकै अब तिसी असंप्रज्ञातनामा निरोधसमाधिकूं विस्तारतैं निरूपण करताहुआ श्रीभगवान् प्रारंभ करैं हैं–

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ॥
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) यत्र[२] । उपरमते[५] । चित्तम्[४] । निरुद्धम्[३] । योगसेवया[१] । यत्र[७] । च[६] । एव[१२] । आत्मना[८] । आत्मानम्[९] । पश्यन्[१०] । आत्मनि[११] । तुष्यति[१३] ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! योगाभ्यासके[१] सेवन करिकै जिसे[२] परिणामविशेषके उत्पन्न हुए यह निरुद्धहुआ[३] चित्त[४] उपशमकूं[५] प्राप्त होवैहै तथा[६] जिस[७] परिणामके हुए शुद्ध[८] अंतःकरणकरिकै प्रत्यक्[९]चैतन्य आत्माकूं साक्षात्कार[१०] करताहुआ ता[११] आत्मा-विषे ही[१२] तोषकूं प्राप्त[१३] होवैहै ताकूं योग जानणा ॥ २० ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! निरंतर श्रद्धापूर्वक ता योगाभ्यासके सेवनकरिकै जिस परिणामविशेषके उत्पन्न हुए यह निरुद्ध हुआ चित्त एकवस्तुकूं विषय करणेहारी वृत्तियोंका प्रवाहरूप एकाग्रताकूं परित्याग करिकै इंधनोंतैं रहित अग्निकी न्याईं उपशमकूं प्राप्त होवैहै । अर्थात् सो चित्त सर्ववृत्तियोंतैं रहित होणेतैं सर्ववृत्तियोंके निरो-धरूपकरिकै परिणामकूं प्राप्त होवैहै । तथा जिस परिणामविशेषके उत्पन्न हुए रज तमकरिकै नहीं पराभवकूं प्राप्तहुए शुद्ध सत्त्वमात्ररूप अंतःकरणकरिकै परमात्मातैं अभिन्न सत् चित् आनंदघन अनंत अद्वितीय प्रत्यक्आत्माकूं वेदांतप्रमाणजन्य वृत्ति-करिकै साक्षात्कार करताहुआ तिस परमानंदघन आत्माविषेही तोषकूं प्राप्त होवैहै । ता आत्मातैं भिन्न देहइंद्रियादिरूप संघातविषे तथा ता संघातके भोग्यपदार्थोंविषे तुष्टिकूं प्राप्त होवै नहीं । तहां श्रुति-(स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा) अर्थ यह-ब्रह्मातैं आदिलैके स्तंबपर्यंत सर्व प्राणियोंकूं आनंदकी प्राप्ति करणेहारा जो पर-मात्मा देव है ता परमात्मा देवकूं साक्षात्कार करिकै सो विद्वान् पुरुष मैं कृतार्थ हूं याप्रकारके मोदकूं प्राप्त होवैहै इति । तिस सर्ववृत्तियोंके निरोधरूप अंतःकरणके परि-णामकूंही योगशब्दका अर्थरूप जानणा । इसप्रकार (तं विद्याद्दुःखसंयोग-) इस तेवीसवें श्लोकके साथि इस इस वीसवें श्लोकका तथा वक्ष्यमाण एकवीसवें बावीसवें श्लोकका अन्वय करणा । और किसी टीकाविषे तौ (यत्र उपरमते चित्तम्) इस वचनविषे स्थित यत्र इस शब्दका जिसकालविषे याप्रकारका अर्थ कर्‍याहै सो इस व्याख्यानविषे (तं विद्यात्) इस वक्ष्यमाण वचनविषे स्थित तत् शब्दका ता कालके साथि अन्वय संभवता नहीं । जिसकारणतैं कालविषे योग-शब्दकी अर्थरूपता संभवती नहीं यातैं यह व्याख्यान समीचीन नहीं ॥ २० ॥

तहां इस पूर्व श्लोकविषे प्रत्यक्‌आत्माविषेही तोषकूं प्राप्त होवैहै यह अर्थ कथन कऱ्या। अब ता अर्थकी सिद्धिविषे हेतुका कथन करैं हैं-

सुखमात्यंतिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतींद्रियम् ॥
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) सुखम्[२] । आत्यंतिकम्[३] । यत्[१] । तत्[६] । बुद्धिग्राह्यम्[५] । अतींद्रियम्[४] । वेत्ति[८] । यत्र[७] । न[१४] । च[९] । एव[१३] । अयम्[११] । स्थितः[१०] । चलति[१५] । तत्त्वतः[१२] ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो[१] सुख[२] अनंत[३] है तथा इन्द्रियका अविषय[४] है तथा केवल शुद्धबुद्धिकरिकै[५] ग्रहण होवैहै तिस सुखकूं[६] यह योगी पुरुष जिस[७] अवस्था-विशेषविषे अनुभव[८] करेहै तथा[९] जिसविषे स्थित[१०]हुआ यह[११] विद्वान् आपणे[१२] आत्मा-स्वरूपतैं कदाचित्[१३]भी नहीं[१४] चलायमान[१५] होवैहै तिसकूंही योगशब्दका अर्थरूप जानणा ॥ २१ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जो सुख आत्यंतिक है अर्थात् देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित निरतिशय ब्रह्मरूपहै। तथा जो सुख अतींद्रिय है । अर्थात् नेत्रादिक इंद्रियोंके संबंधजन्य ज्ञानका विषय नहीं है। तथा जो सुख रजतमरूप मलतैं रहित केवल सत्त्वप्रधान बुद्धिकरिकैही ग्रहण कऱ्याजावैहै ऐसे स्वरूपसुखकूं यह योगी पुरुष जिस अवस्थाविशेषविषे अनुभव करैहै तथा जिस अवस्थाविशेषविषे स्थित-हुआ यह विद्वान् पुरुष आपणे परिपूर्ण अद्वितीय आत्मस्वरूपतैं कदाचित्भी चलायमान होता नहीं। तिस निरोधपरिणामरूप अवस्थाकूंही योगशब्दका अर्थरूप जानणा। इहां श्रीभगवान्नैं ता स्वरूपसुखके (आत्यंतिकम् अतींद्रियं बुद्धिग्राह्यं) यह तीन विशेषण कथन करे हैं तहां (आत्यंतिकं) या विशेषणकरिकै तौ ता ब्रह्मरूप सुखका (यो वै भूमा तत्सुखम्) इस श्रुतिकरिकै सिद्ध देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित अनंतस्वरूप कथनकऱ्या । और (अतींद्रियं) या विशेषणकरिकै ता ब्रह्मरूप सुखविषे विषयजन्य सुखतैं भिन्नपणा कथन कऱ्या । जिसकारणतैं सो विषय-जन्य सुख विषयइंद्रियके संबंधकी अपेक्षा अवश्यकरिकै करैहै और (बुद्धिग्राह्यं) या विशेषणकरिकै ता ब्रह्मरूप सुखविषे सुषुप्तिके सुखतैं भिन्नपणा कथन कऱ्या । काहेतैं सुषुप्तिअवस्थाविषे बुद्धिके लय होणेतैं सो सुषुप्तिका सुख बुद्धिकरिकै ग्रहण

होवै नहीं । और समाधिअवस्थाविषे तौ सा बुद्धि सर्ववृत्तियोंतैं रहित हुई स्थित होवैहै । यातैं समाधि अवस्थाविषे सो ब्रह्मरूप सुख बुद्धिकरिकै ग्रहण होवैहै । यह वार्त्ता गौडपादाचार्यनैंभी कथनकरी है । तहां श्लोकार्द्धम्–(लीयते तु सुषुप्तौ तन्निगृहीतं न लीयते ।) अर्थ यह–सो मन सुषुप्तिअवस्थाविषे तौ अज्ञानमें लयभावकूं प्राप्त होवैहै। और समाधिविषे तौ सो निगृहीत मन लयभावकूं प्राप्त होवै नहीं इति । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति–(समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत् । न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा यदेतदंतःकरणेन गृह्यते ॥) अर्थ यह–समाधिकरिकै निवृत्त होइगयाहै रजतमरूप मल अथवा पापरूप मल जिसका ऐसा जो आत्माविषे स्थित चित्त है ता चित्तकूं तिस कालविषे जो सुख प्राप्त होवैहै सो सुख वाणीकरिकै वर्णन कऱ्याजावै नहीं । किंतु निरुद्ध हुईहैं सर्ववृत्तियाँ जिसकी ऐसे अंतःकरणकरिकैही सो सुख ग्रहण कऱ्याजावैहै इति । किंवा ता समाधिअवस्थाविषे वृत्तियोंकरिकै सुखका आस्वादन करणा श्रीगौडपादाचार्यनैंही विषेध कऱ्याहै । तहां श्लोकार्द्ध–(नास्वादयेत्सुखं तत्र निःसंगः प्रज्ञया भवेत ॥) अर्थ यह–इस समाधिविषे मैं इस महान् सुखकूं अनुभव करताहूं याप्रकारकी सविकल्पकवृत्तिका नाम प्रज्ञा है । ता प्रज्ञा करिकै जो सुखका आस्वादन है सो व्युत्थानरूप होणेतैं समाधिका विरोधीही है। यातैं ता प्रज्ञाकरिकै सुखके आस्वादनकूं योगी पुरुष कदाचित्भी नहीं करै । इसी कारणतैं सो योगी पुरुष ता प्रज्ञाके साथि संगतैं रहित होवै अर्थात् ता वृत्तिरूप प्रज्ञाकूं निरोध करै इति । और सर्ववृत्तियोंतैं रहित चित्तकरिकै ता स्वरूपसुखका अनुभव तौ तिसी गौडपादाचार्यनैंही (स्वस्थं शांतं सनिर्वाणमकथ्यं सुखमुत्तमम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै प्रतिपादन कऱ्याहै । इस अर्थकूं आगे स्पष्ट करैंगे ॥२१॥

तहां पूर्व श्लोकविषे (यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः) इस वचनकरिकै जिस अवस्थाविशेषविषे स्थितहुआ यह योगी पुरुष आपणे अद्वतीय आत्मस्वरूपतैं चलायमान होता नहीं यह अर्थ कथनकऱ्या। अब इस श्लोककरिकै तिसी अर्थका उपपादन करैहैं–

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ॥
यस्मिँस्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) यम् । लब्ध्वा । च । अपरम् । लाभम् । मन्यते । न । अधिकम् । ततः । यस्मिन् । स्थितः । न । दुःखेन । गुरुणा । अपि । विचाल्यते ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस अवस्थाविशेषकूं प्राप्त होइकै सो योगीपुरुष दूसरे लाभकूं तिसतैं अधिक नहीं मानताहै तथा जिस अवस्थाविषे स्थितहुआ सो योगी पुरुष महान् दुःखनैं भी नहीं चलायमान करीताहै ॥ २२ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! निरतिशय आत्मास्वरूप नित्यसुखका अभिव्यञ्जक जा सर्ववृत्तियोंतैं रहित चित्तकी निरोधनामा अवस्थाविशेष है । ऐसी जिस अवस्थाविशेषकूं निरंतर योगाभ्यासकी परिपक्वतातैं संपादन करिकै योगी पुरुष जिस अवस्थाविशेषतैं परे दूसरे किसी लाभकूं अधिक मानता नहीं, किंतु तिस अवस्थाविषेशकी प्राप्ति करिकैही सो योगी पुरुष आपणेकूं कृतकृत्य मानेहैं । तथा प्राप्तप्रापणीय मानेहैं । अनेक उपयोंकरिकै प्राप्त होणेहारे सुख जिसकूं एकही कालविषे प्राप्त होवैं ताकूं प्राप्तप्रापणीय कहैं हैं । तहां स्मृति–(आत्मलाभान्न परं विद्यते ।) अर्थ यह–आनंदस्वरूप आत्मातैं भिन्न जितनेक स्वर्गलोक वैकुंठलोक गोलोक ब्रह्मलोक इत्यादिक लोक हैं ते सर्वलोक सातिशयता तथा दीनता तथा नीचै पतनका भय तथा ईर्षा इत्यादिक दोषोंकारिकै सर्वदा ग्रस्त हैं । यातैं ते सर्वलोक अलाभरूपही हैं । यद्यपि वेदांतसिद्धांतविषे प्रत्यक्अभिन्न ब्रह्मसाक्षात्कारही परमलाभ कह्याहै यातैं चित्तकी निरोध अवस्थाकूं परमलाभरूपता संभवती नहीं । तथापि जैसे श्रुतिविषे सत्यब्रह्मकी प्राप्ति करणेहारे महावाक्यजन्यवृत्तिरूप ज्ञानकूंभी सत्यरूपकरिकै कथन कऱ्याहै तैसे इहां श्रीभगवान्नैंभी ता परमलाभरूप आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति करणेहारी चित्तकी निरोधअवस्थाकूं परमलाभरूपकरिकै कथनकऱ्याहै इति । तहां श्लोकके पूर्वार्द्धकरिकै बाह्यविषयोंकी वासनाकरिकै ता योगी पुरुषका तिस समाधितैं विचलन नहीं होवैहै यह वार्त्ता कथन करी । अब शीत आतप वायु मशक इत्यादिकोंनैं कऱ्या जो उपद्रव है ता उपद्रवके निवृत्त करणेवासतैभी ता योगी पुरुषका तिस समाधितैं विचलन नहीं होवैहै इस अर्थकूं श्लोकके उत्तरार्द्धकरिकै कथनकरैहै (यस्मिन् स्थितः । इति) जिस आत्मास्वरूप सुखका अभिव्यंजक सर्ववृत्तियोंतैं रहित चित्तकी अवस्थाविशेषविषे स्थितहुआ योगी पुरुष शस्त्रप्रहारादिक निमित्तजन्य महान् दुःखनैंभी चलायमान

करीता नहीं तौ शीत आतपादिकोंके उपद्रवजन्य अल्पदुःख ता योगी पुरुषकूं कैसे चलायमान करिसकैंगे, किंतु ते दुःख नहीं चलायमान करिसकैंगे ॥ २२ ॥

तहां (यत्रोपरमते चित्तं) इस श्लोकतैं लैके तीन श्लोकोंकारिकै कथनकरी जा चित्तकी अवस्थाविशेष है ता अवस्थाविशेषविषे योगशब्दकी अर्थरूपताकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्॥
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) तम् । विद्यात् । दुःखसंयोगवियोगम् । योगसंज्ञितम् । सः । निश्चयेन । योक्तव्यः । योगः । अनिर्विण्णचेतसा ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! दुःखके संबंधतैं रहित तिस निरोधअवस्थाकूंही योगशब्दका अर्थ जानणा सो योग निश्चयकरिकै तथा उद्वेगतैं रहित चित्तकरिकैही अभ्यास करणे योग्य है ॥ २३ ॥

भा० टी०-(यत्रोपरमते चित्तम्) इस वचनतैं आदि लैके बहुत विशेषणोंकरिकै कथनकऱ्या जो सर्ववृत्तियोंतैं रहित तथा परमानंदका अभिव्यंजक चित्तकी निरोधनामा अवस्थाविशेष है सो चित्तवृत्तियोंका निरोध चित्तवृत्तिमय सर्वदुःखोंका विरोधि होणेतैं तिन दुःखोंके संबंधका वियोगरूपही है । अर्थात् अध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक जितनेक दुःख हैं, तिन सर्वदुःखोंके संबंधका जिस निरोधविषे अभाव है । यातैं सो सर्ववृत्तियोंका निरोध यद्यपि वियोग इस नामकरिकै कहणेकूं योग्य है तथापि विरोधिलक्षणाकरिकै तिस निरोधकूं योगशब्दका अर्थ जानणा । ता योगशब्दके अनुसारतैं सो निरोध किंचित् मात्रभी संबंधकूं प्राप्त होवै नहीं । इसी अर्थकूं भगवान् पतंजलिनेभी कथन कऱ्याहै । तहां सूत्र-(योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः) । अर्थ यह-सर्वचित्तवृत्तियोंका जो निरोध है ताका नाम योग है इति । इतनैं कहणेकरिकै (योगो भवति दुःखहा) इस वचनकरिकै जो पूर्व योगका फल कथन कऱ्याथा ताका उपसंहार कऱ्या । अब निश्चयविषे तथा निर्वेदतैं रहितपणेविषे तिस योगकी साधनरूपताकूं श्रीभगवान् कथन करैंहैं । (स निश्चयेन योक्तव्यः इति) इसप्रकारके महान् फलकी प्राप्ति करणेहारा सो योग इस अधिकारी पुरुषनैं निश्चयकरिकै अभ्यास करणेकूं योग्य है इहां आचार्यके वचनोंके तथा शास्त्रके वचनोंके तात्पर्यका विषयीभूत जो जो अर्थ है सो सर्व

अर्थ सत्य है याप्रकारकी दृढबुद्धिका नाम निश्चय है ऐसे निश्चयकरिकै सो योगाभ्यास करणा। तथा इस अधिकारी पुरुषनैं निर्वेदतैं रहित होइकैभी ता योगाभ्यासकूं करणा। इहां इतनैं कालपर्यंत अभ्यास करते हुएभी हमारेकूं योग सिद्ध हुआ नहीं तौ इसतैं आगे कैसे सिद्ध होवैगा याप्रकारके अनुतापका नाम निर्वेद है। ऐसे निर्वेदतैं रहित चित्तकरिकै ता योगाभ्यासकूं करै अर्थात् निरंतर अभ्यास करतेहुए इस जन्मविषे अथवा जन्मांतरविषे अवश्यकरिकै योग सिद्ध होवैगा याकेविषे अतिशीघ्रता करणेका क्या प्रयोजन है। याप्रकारके धैर्ययुक्त मनकरिकै तिस योगाभ्यासकूं करै। यह वार्त्ता श्रीगौडपादाचार्यनैंभी कथन करीहै। तहां श्लोक–(उत्सेक उदधेर्यद्वत्कुशाग्रेणैकबिंदुना ॥ मनसो निग्रहस्तद्वद्भवेदपरिखेदतः ॥) अर्थ यह–जैसे कोई टिटिभ पक्षी समुद्रके सुखावणेका निश्चयकरिकै कुशाके अग्रभाग समान आपणी चंचुसे समुद्रके जलके बिंदुकूं ग्रहण करिकै तीर ऊपरि पावताभया। तैसे खेदतैं रहित होइकै अभ्यास करणेतैंही इस मनका निग्रह होवैहै। इहां वेदांतसंप्रदायके वेत्ता वृद्धपुरुष याप्रकारकी आख्यायिकाकूं कहते भयेहैं। समुद्रके तीरविषे स्थित किसी टिटिभनामा पक्षीके अंडोंकूं समुद्र आपणे तरंगके वेगकरिकै हरण करताभया तिसतैं अनंतर सो टिटिभपक्षी क्रोधवान् होइकै इस समुद्रकूं मैं अवश्यकरिकै सुकावौंगा या प्रकारका निश्चय करिकै तिस समुद्रके सुकावणेविषे प्रवृत्त होता भया। तहां आपणे मुखके अग्रभाग करिकै एक जलके बिंदुकूं ग्रहण करिकै ता समुद्रतैं बाहरि जाइकै छोडताभया। तिस कालविषे ता टिटिभ पक्षीकूं आपणे बांधव बहुत पक्षी ता समुद्र सुकावणेतैं निवृत्त करते भये। तौ भी सो टिटिभ पक्षी तिसतैं उपराम नहीं होता भया। तिसतैं अनंतर तिस स्थानविषे दैवयोगतैं नारद मुनि आवता भया। सो नारदमुनिभी तिस टिटिभ पक्षीकूं ता समुद्रके सुकावणेतैं निवृत्त करता भया। तौभी सो टिटिभ पक्षी तिसतैं निवृत्त नहीं होताभया, किंतु इस जन्मविषे अथवा दूसरे जन्मविषे मैं इस समुद्रकूं अवश्य करिकै सुकावौंगा या प्रकारकी प्रतिज्ञा सो टिटिभ पक्षी नारदके आगे करता भया। तिसतैं अनंतर दैवकी अनुकूलतातैं सो कृपालु नारद गरुडके समीप जाइकै या प्रकारका वचन कहता भया। हे गरुड! यह समुद्र तुम्हारे सजातीय पक्षियोंका द्रोहकरिकै तुम्हाराही अपमान करै है। या प्रकारका वचन कहिकै सो नारदमुनि ता गरुडकूं तहां भेजता भया। तिस गरुडके पक्षोंके पवन

करिकै सूकता हुआ सो समुद्रभी भयभीत होइकै तिन अंडोंकूं तिस टिटिभ पक्षीके ताईं देताभया इति । इस प्रकार जो योगी पुरुष खेदतैं रहित होइकै तिस मनके निरोधरूप परमधर्मविषे प्रवृत्त होवैहै तिस योगी पुरुष ऊपरि साक्षात् आप ईश्वरही अनुग्रह करैहै ता ईश्वरके अनुग्रह करिकै तिस टिटिभ पक्षीकी न्याईं तिस योगी पुरुषकाबी सो मनका निरोधरूप वांछित अर्थ अवश्य करिकै सिद्ध होवैहै । यह टिटिभ पक्षीका आख्यान आत्मपुराणके एकादश अध्यायविषे हम विस्तारतैं कथन करि आये हैं ॥ २३ ॥

तहां किस उपाय करिकै सो योगअभ्यास करणे योग्य है ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ता योगके उपायका वर्णन करैं हैं—

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ॥
मनसैवेंद्रियग्रामं विनियम्य समंततः ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) संकल्पप्रभवान् । कामान् । त्यक्त्वा । सर्वान् । अशेषतः । मनसा । एव । इंद्रियग्रामम् । विनियम्य । समंततः ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह अधिकारी पुरुष संकल्पजन्य सर्व कामोंकूं वासनासहित परित्याग करिकै तथा मनकरिकै ही इंद्रियोंके समूहकूं सर्वविषयोंतैं रोकिकरिकै मनका निरोध करै ॥ २४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जे विषय इस लोकविषे तथा परलोकविषे अनर्थका हेतु होणेतैं अत्यंत दुष्ट हैं । ऐसे दुष्ट विषयोंविषे रह्याहुआ जो अशोभनपणा है, ता अशोभनपणेकूं न देखिकै जो तिन विषयोंविषे यह विषय बहुत रमणीक हैं या प्रकारका शोभनपणेका अध्यास है ताका नाम संकल्प है । ता संकल्पतैं उत्पन्नभये जे यह विषय हमारेकूं प्राप्त होवैं या प्रकारके विषय अभिलाषारूप काम हैं । तिन शोभन अध्यासजन्य विषयकी अभिलाषारूप सर्व कामोंकूं अशेषतैं परित्याग करिकै यह अधिकारी पुरुष शनैःशनैः करिकै मनका निरोध करै । अर्थात् अध्यात्मशास्त्रके विचारतैं उत्पन्न भया जो तिन विषयोंविषे अशोभनत्व निश्चय है । ता अशोभनत्व निश्चयकरिकै तिस शोभनत्व अध्यासके बाधहुएतैं अनंतर स्रक् चंदन वनिता आदिक दृष्टविषयोंविषे तथा चंद्रलोक पारिजात अमृत अप्सरा इत्यादिक अदृष्टविषयोंविषे श्वानके वांतग्रासकी न्याईं सर्व

कर्मोंका सूक्ष्मवासना सहित परित्याग करिकै मनका निरोध करै । और ता विषयकी अभिलाषारूप कामपूर्वकही नेत्रादिक इंद्रियोंकी तिन विषयोंविषे प्रवृत्ति होवैहै । कामतैं विना तिन इंद्रियोंकी प्रवृत्ति होवै नहीं । यातैं ता कामके अभाव हुए विवेकयुक्त मनकारिकै चक्षु आदिक इंद्रियोंके समूहकूं रूपादिक सर्व विषयोंतैं निवृत्त करिकै यह अधिकारी पुरुष शनैःशनैः करिकै आपणे मनका निरोध करै । इस प्रकार आगले श्लोकके साथि इस श्लोकका अन्वय करणा । इहां (अशेषतः) यापदकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या । जैसे किसी पात्रविषे तैलकूं पाइकै तिस पात्रतैं पुनः सो तैल निकासि देइये । तिसतैं अनंतर ता पात्रविषे जो लेपरूपकरिकै तैल रहै है ताका नाम शेष है । तैसे विषय अभिलाषारूप कामके परित्याग किये हुएभी जबपर्यंत तिस कामका वासनारूप शेष रहै है । तब पर्यंत तिन वासनावोंकरिकै आकर्षणकूं प्राप्तहुआ सो मन समाधिविषे स्थित होवै नहीं । यातैं वासनारूप शेष जैसे बाकी नहीं रहै तैसे तिन सर्व कामोंका परित्याग करै । और (मनसैव) यावचनकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या । यह नेत्रादिक इंद्रिय मनके संबंधतैं विना किसीभी विषयविषे स्वतंत्र प्रवृत्त होवैं नहीं, किंतु मनके संबंधकूं प्राप्त होइकैही यह नेत्रादिक आपणे आपणे विषयोंविषे प्रवृत्त होवैं हैं । यातैं तिन नेत्रादिक इंद्रियोंके साथि जो मनका संबंध नहीं करणा है यहही तिन नेत्रादिक इंद्रियोंका नियम है ॥ २४ ॥

शनैःशनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया ॥
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत्॥२५॥

(पदच्छेदः) शनैः । शनैः । उपरमेत् । बुद्ध्या । धृतिगृहीतया । आत्मसंस्थम् । मनः । कृत्वा । न । किंचित् । अपि । चिंतयेत् ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो योगी पुरुष धैर्ययुक्त बुद्धिकारिकै शनैः शनैःकरिकै मनका निरोध करै तथा प्रत्यक् आत्माविषे स्थित मनकूं करिकै किंचित्मात्र भी नहीं चिंतन करै ॥ २५ ॥

भा० टी०—धैर्यरूप जा धृति है ता धृतिकारिकै अनुगृहीत जा अवश्यकर्त्तव्यताका निश्चयरूप बुद्धि है । अर्थात् जिसी किसी कालविषे यह योग अवश्यकरिकै सिद्ध होवैगा याकेविषे बहुत शीघ्रता करणेका क्या प्रयोजन है ? याप्रकारके धैर्यकरिकै

अनुगृहीत जा बुद्धि है ता बुद्धिकारिकै यह अधिकारी पुरुष गुरुउपदिष्टमार्गकारिकै भूमिकावोंके जयक्रमतैं शनैःशनैःकारिकै मनका निरोध करै । इतनैं कहणेकारिकै पूर्व योगका साधनरूपकारिकै कथन कऱ्ये जे अनिर्वेद तथा निश्चय तेदोनों दिखाये। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथनकरीहै। तहां श्रुति–(यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि । ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छांत आत्मनीति ॥) अर्थ यह– लौकिक तथा वैदिक जितनीक वाचा है तिस वाचाकूं यह बुद्धिमान् अधिकारी सव्यापारमनविषे लय करै अर्थात् वाक्इंद्रियके सर्वव्यापारका परित्यागकारिकै केवल मनके व्यापारमात्रवाला होवै । तहां श्रुति–(नानुध्यायाद्बहूञ्शब्दान्वाचोविग्लापनं हि तत् ॥) अर्थ यह–अनात्म पदार्थोंके वाचक बहुत शब्दोंकूं यह अधिकारी पुरुष नहीं उच्चारण करै । जिसकारणतैं ते शब्द वाक्इन्द्रियकूं केवल परिश्रमकीही प्राप्ति करणेहारे हैं इति । और वागादिक पंच कर्म इन्द्रिय तथा श्रोत्रादिक पंच ज्ञानइन्द्रिय यह दश इन्द्रिय हैं सहकारी जिसके तथा नानाप्रकारके संकल्पविकल्पोंका साधनरूप ऐसा जो कारणरूप मन है तिस मनकूं ज्ञानरूप आत्माविषे लय करै इहां (जानातीति ज्ञानम्) अर्थ यह–जो वस्तुकूं जानैं ताका नाम ज्ञान है । या प्रकारकी व्युत्पत्तिकारिकै ज्ञान शब्द ज्ञाताका वाचक है। ऐसा ज्ञाता आत्माविषे ता मनकूं लय करै अर्थात् आत्माविषे ज्ञातृपणेका उपाधि जो अहंकार है ता अहंकारविषे तिस मनका लय करै। तात्पर्य यह–तिस मनके संकल्पविकल्पादिक सर्वव्यापारोंकूं परित्याग कारिकै ता अहंकारमात्रकूं पारिशेषतैं राखै। तिसतैं अनंतर तिस ज्ञातृपणेका उपाधि अहंकाररूप ज्ञानकूं सर्वत्र व्यापक महत्तत्त्व आत्माविषे लय करै । तहां सो अहंकार दोप्रकारका होवैहै । एक तौ विशेषरूप अहंकार होवैहै। दूसरा सामान्यरूप अहंकार होवैहै । तहां यह देवदत्तनामा मैं इस यज्ञदत्तका पुत्रहूं इसप्रकार जो स्पष्ट अभिमानहै सो विशेषरूप अहंकार है । यहही विशेषरूप अहंकार व्यष्टिअहंकार कह्याजावैहै । और 'अहमस्मि' इतनामात्र जो अभिमानहै सो अभिमान सामान्य अहंकार है। सो सामान्यअहंकारही समष्टि अहंकार कह्याजावैहै। सो समष्टिअहंकार सर्वत्र अनुस्यूत होणेतैं हिरण्यगर्भ तथा महान् आत्मा कह्याजावैहै । तिस दोनों प्रकारके अहंकारतैं पृथक् कऱ्याहुआ जो सर्वके अंतर चिदेकरस आत्मा है ताका नाम शांत आत्मा है तिस शांत आत्माविषे तिस

समष्टिबुद्धिरूप महान् आत्माकूं लय करै । इसप्रकार ता समष्टिबुद्धिरूप महत्तत्त्वका कारणरूप जो अव्यक्त है तिस अव्यक्तकूंभी ता शांत आत्माविषे लय करै । इस प्रकार सर्व कार्यकारणरूप संघातके लय कियेतैं अनंतर इस अधिकारी पुरुषकूं सर्व उपाधियोंतैं रहित त्वंपदका लक्ष्य अर्थरूप शुद्ध आत्माका साक्षात्कार होवैहै । तहां तिस शुद्ध चिदेकरस प्रत्यक् आत्माविषे जडशक्तिरूप अनिर्वचनीय अव्यक्त नामा प्रकृति उपाधिरूप है । सा प्रकृति प्रथम ता सामान्य अहंकाररूप महत्तत्त्वनामकूं धारण करिकै प्रगट होवैहै । तिसतैं अनंतर बाह्यविशेष अहंकाररूप करिकै प्रगट होवैहै । तिसतैं अनंतर तिसतैंभी बाह्य मनरूपकरिकै प्रगट होवैहै । तिसतैं अनंतर तिसतैंभी बाह्य वाक् इन्द्रियरूप करिकै प्रगट होवैहै इति । यह सर्व अर्थ साक्षात् श्रुतिनैंही कथन कऱ्याहै । तहां श्रुति–(इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था-अर्थेभ्यश्च परं मनः । मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः । महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः । पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः । इति) अर्थ यह–श्रोत्रादिक इंद्रियोंतैं शब्दादिक अर्थ पर हैं । और तिन अर्थोंतैं मन पर है । और ता मनतैं व्यष्टिबुद्धि पर है । और ता व्यष्टिबुद्धितैं महत्तत्त्वनाम समष्टि बुद्धि पर है । और ता महत्तत्त्वतैं अव्यक्त पर है । और ता अव्यक्ततैं अधिष्ठानरूप परमात्मा पुरुष पर है । ता पुरुषतैं परे कोईभी पदार्थ है नहीं, किंतु सो पुरुषही सर्वकी अवधिरूप है तथा परागतिरूप है इति । तहां जैसे गोमहिषादिक पशुवोंविषे वाक् इंद्रियका निरोध रहै है, तैसे वाक् इंद्रियका निरोध करणा यह प्रथम भूमिका कहीजावैहै । और जैसे बालकविषे तथा मूढपुरुषविषे निर्मनस्त्व रहैहै तैसे निर्मनस्त्ववाला होणा यह दूसरी भूमिका कहीजावैहै । और जैसे तंद्रा अवस्थाविषे मैं ब्राह्मण हूं, मैं मनुष्य हूं याप्रकारका अहंकार रहता नहीं तैसे सर्वदा अहंकारतैं रहित होणा यह तृतीय भूमिका कही जावैहै और जैसे सुषुप्तिविषे महत्तत्त्व नहीं रहैहै तैसे जो महत्तत्त्वतैं रहितपणा है सा चतुर्थ भूमिका कहीजावैहै । इन च्यारि भूमिकावोंकी अपेक्षाकरिकैही श्रीभगवान्नैं (शनैः शनैरुपरमेत्) यह वचन कथन कऱ्याहै । इहां यद्यपि महत्तत्त्व तथा शांत आत्मा या दोनोंके मध्यविषे (इंद्रियेभ्यः परा ह्यर्थाः) इस श्रुतिनैं ता महत्तत्त्वका उपादानकारण अव्याकृत नामा तत्त्व कथन कऱ्याहै । तथापि जैसे वागादिक तत्त्वोंका मनादिक तत्त्वोंविषे लय श्रुतिनैं कथन कऱ्याहै तैसे तिस

महत्तत्त्वनामा तत्त्वका अव्याकृतनामा तत्त्वविषे लय श्रुतिनैं कथन करचा नहीं । याकेविषे यह कारण है जो कदाचित् ता महत्तत्त्वका तिस अव्याकृतविषे लय करिये, तौ सुषुप्तिकी न्याईं स्वरूपलयकीही प्राप्ति होवैगी । और सो अव्याकृतविषे महत्तत्त्वका लय भोगप्रदकर्मोंके क्षयहुएतैं अनंतर पुरुषप्रयत्नतैं विना स्वतःही सिद्धहै । तथा सो अव्यक्तविषे महत्तत्त्वका लय तत्त्वदर्शनविषे उपयोगीभी है नहीं । और (दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः) याप्रकारका वचन पूर्व कथन करिकै तिस सूक्ष्मताकी सिद्धिवासतै (यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञः) इस श्रुतिनैं निरोधसमाधिका विधान करचाहै । यातैं सो निरोधसमाधि जिज्ञासुजनकूं तौ तत्त्वसाक्षात्कारकी प्राप्तिवासतै अपेक्षित है । और तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं तौ सर्व क्लेशोंकी निवृत्तिरूप जीवन्मुक्तिकी प्राप्तिवासतै अपेक्षित है । यातैं जिज्ञासुजननैं तथा तत्त्ववेत्ता पुरुषनैं सो निरोधसमाधि अवश्य करिकै संपादन करणा । शंका—हे भगवन् ! शांत आत्माविषे अवरुद्ध जो चित्त है सो चित्त तिस कालविषे सर्व वृत्तियोंतैं रहित है । यातैं सुषुप्तचित्तकी न्याईं तिस चित्तविषे आत्मदर्शनकी हेतुवाही संभवती नहीं । समाधान—तिस निरोध कालविषे सर्व वृत्तियोंके अभाव हुएभी तिस निरुद्ध चित्तकरिकै स्वतः सिद्ध जो आत्माका दर्शन है ताकूं कोईभी वादी निवृत्तकरणेविषे समर्थ है नहीं यह वार्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक—(आत्मानात्माकारं स्वभावतोऽवस्थितं सदा चित्तम् । आत्मैकाकारतया तिरस्कृता नात्मदृष्टिं विदधीत ।) अर्थ यह—यह चित्त आपणे सविषयस्वभावतैंही सर्वदा आत्माकार अथवा अनात्माकार हुआही स्थित होवै है । तहां यह अधिकारी पुरुष ता चित्तकी आत्मैकाकारताकूं संपादन करिकै अनात्मदृष्टिका परित्यागकरिकै वा चित्तका निरोध करै । इहां यह तात्पर्य है । जैसे उत्पन्न हुआ घट स्वतः आकाशकरिकै पूर्णहुआही उत्पन्न होवैहै । किसी पुरुषप्रयत्नकरिकै सो घट आकाशकरिकै पूर्ण कन्याजावै नहीं । और ता घटविषे जलतण्डुलादिक पदार्थोंका जो पूरण होवैहै सो तौ ता घटके उत्पन्न हुएतैं अनंतर पुरुषके प्रयत्नकरिकै होवैहै । तहां तिस घटतैं जलतंडुलादिकोंके निकास्ये हुएभी सो आकाश ता घटतैं बाहरि निकास्या जावै नहीं । तथा ता घटके मुखके बंद कियेहुएभी सो आकाश ता घटके अंतरही रहैहै । तैसे यह चित्तभी उत्पन्नहुआही चैतन्य आत्माकरिकै पूर्णही उत्पन्न होवैहै ।

उत्पन्नहुए तिस चित्तविषे पश्चात् मूषाविषे पायेहुए द्रुतताम्रकी न्याईं घटदुःखादि-रूपता भोगके हेतु धर्म अधर्म सहकृत सामग्रीके वशतैं प्राप्त होवैहै । तहां योगाभ्या-सके बलतैं तिस चित्तवैं ता घट दुःखादिक अनात्माकारताके निवृत्त कियेहुएभी विनाही निमित्ततैं जो चित्तविषे चिदाकारताहै सा चिदाकारता ता चित्ततैं निवृत्त करी जावै नहीं । यातैं निरोध समाधिकारिकै सर्व वृत्तियोंतैं रहित तथा संस्कार-मात्ररूप होणेतैं अत्यंत सूक्ष्म ऐसा जो निरुपाधिक चेतन आत्माके अभिमुख चित्त है, ता निरुद्ध चित्तकारिकै वृत्तितैं विनाही निर्विघ्न आत्माका अनुभव संभव होइसकैहै । इसी पूर्व उक्त सर्व अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं । (आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत्) सर्व उपाधितैं रहित प्रत्यक् आत्माविषे है संस्था क्या समाप्ति जिसकी ताका नाम आत्मसंस्थ है । अर्थात् सर्वप्रकारकी वृत्तियोंतैं रहित स्वभावसिद्ध आत्माकारमात्र जो मन है । ऐसे आत्मसंस्थ मनकूं पूर्व उक्त धैर्यकरिकै अनुगृहीत बुद्धितैं संपादन करिकै असंप्रज्ञात समाधिविषे स्थित हुआ यह योगी पुरुष किसीभी वस्तुका चिंतन करै नहीं । अर्थात् किसी अनात्मपदार्थकूं अथवा प्रत्यक् आत्माकूं वृत्तिकारिकै विषय करै नहीं । काहेतैं तिस असंप्रज्ञात समाधिकालविषे जो कदाचित् अनात्माकार वृत्तिकूं उत्पन्न करैगा तौ तिस समाधितैं व्युत्थानही प्राप्त होवैगा और कदाचित् आत्माकार वृत्तिकूं उत्पन्न करैगा तौ संप्रज्ञात समाधिही प्राप्त होवैगी । असंप्रज्ञात समाधि रहैगी नहीं यातैं सो योगी पुरुष ता असंप्रज्ञात समाधिकी स्थिरता करणेवासतै किसीभी आत्माकार वृत्तिकूं अथवा अनात्माकार वृत्तिकूं उत्पन्न करै नहीं॥ २५॥

इसप्रकार निरोध समाधिकूं करताहुआ योगी पुरुष आपणे मनकूं सर्व ओरतैं रोकिकै अंतर आत्माविषे निरुद्ध करै । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैहैं—

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम् ॥
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २६ ॥

(पदच्छेदः) यतः । यतः । निश्चरति मनः । चंचलम् । अस्थिरम् । ततः । ततः । नियम्य । एतत् । आत्मनि । एव । वशम् । नयेत् ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस जिस निमित्ततैं विक्षेपके अभिमुख हुआ तथा लयके अभिमुख हुआ यह मन विषयाकार वृत्तिकूं उत्पन्न करै है तिस तिस निमित्ततैं इस मनकूं रोकिकै आत्माविषेही निरोधकूं प्राप्त करै ॥ २६ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! चित्तकूं विक्षेपकी प्राप्ति करणेहारे जे शब्दादिक विषय हैं तिन शब्दादिक विषयोंके मध्यविषे जिसजिस शब्दादिक विषयरूप निमित्ततैं तथा रागद्वेषादिक निमित्ततैं विक्षेपके अभिमुख हुआ यह मन निश्चरताहै । अर्थात् विषयके अभिमुख हुई जे प्रमाण विपर्यय विकल्प स्मृति यह समाधिकी विरोधि च्यारिप्रकारकी वृत्तियां हैं तिन वृत्तियोंविषे किसीभी वृत्तिकूं उत्पन्न करैहै तथा लयके हेतुरूप जे निद्राशेष बहु अन्नभोजन परिश्रम इत्यादिक निमित्त हैं, तिन्होंके मध्यविषे जिसजिस निमित्ततैं लयके अभिमुख हुआ यह मन निश्चरताहै । अर्थात् लीन हुआ समाधिकी विरोधि निद्रारूप वृत्तिकूं उत्पन्न करैहै । तिसतिस विक्षेपके निमित्ततैं तथा लयके निमित्त इस मनकूं नियम करिकै अर्थात् सर्व वृत्तियोंतैं रहित करिकैं स्वप्रकाश परमानंदघन आत्माविषेही निरुद्ध करै । जिस आत्माविषे निरुद्ध हुआ यह मन विक्षेपकूंभी प्राप्त होवैहै नहीं तथा लयकूंभी प्राप्त होवै नहीं । यह सर्व अर्थ श्रीगौडपादाचार्यनैंभी कथन कऱ्याहै । तहां श्लोक-(उपायेन निगृह्णीयाद्विक्षिप्तं कामभोगयोः ॥ सुप्रसन्नं लये चैव यथाकामो लयस्तथा ॥ १ ॥ दुःखं सर्वमनुस्मृत्य कामभोगान्निवर्त्तयेत् ॥ अजं सर्वमनुस्मृत्य जातं नैव तु पश्यति ॥ २ ॥ लये संबोधयेच्चित्तं विक्षिप्तं शमयेत्पुनः ॥ सकषायं विजानीयाच्छमप्राप्तं न चालयेत् ॥ ३ ॥ नास्वादयेत्सुखं तत्र निःसंगः प्रज्ञया भवेत् ॥ निश्चलं निश्चलं चित्तमेकीकुर्यात्प्रयत्नतः ॥ ४ ॥ यदा न लीयते चित्तं न च विक्षिप्यते पुनः ॥ अलिंगनमनाभासं निष्पन्नं ब्रह्म तत्तदा ॥५॥) अब यथाक्रमतैं इन पंच श्लोकोंका अर्थ निरूपण करैं हैं । कामभोग या दोनोंविषे विक्षिप्त जो मन है, अर्थात् प्रमाण विपर्यय विकल्प स्मृति या च्यारि वृत्तियोंविषे किसीभी वृत्तिरूपकरिकै परिणामकूं प्राप्तभया जो मन है तिस मनकूं यह योगी पुरुष वक्ष्यमाण वैराग्य अभ्यासरूप उपायकरिकै प्रत्यक् आत्माविषेही निरुद्ध करै । तहां शब्दादिक विषयोंकी दो प्रकारकी अवस्था होवैं हैं । एक तौ चिंत्यमान अवस्था है । और दूसरी भुज्यमान अवस्था होवैहै । तहां शब्दादिक विषयोंका चिंतन करणा याका नाम चिंत्यमान अवस्था है । और तिन शब्दादिक विषयोंका जो भोगणा है ताका नाम भुज्यमान अवस्था है । तिन दोनों अवस्थावोंके बोधन करणेवासतैं (कामभोगयोः) या वचनविषे द्विवचन कथन कऱ्याहै । ते दोनों अवस्था मनके विक्षेपकाही हेतु होवैं हैं । और लयभावकूं प्राप्त होवै जिसविषे ताका नाम लय है

ऐसी सुषुप्ति है ता सुषुप्तिरूप लयविषे यह मन सुप्रसन्न होवैहै अर्थात् सर्व आयासतैं रहित होवैहै। ऐसे सुप्रसन्न मनकूंभी सो योगी पुरुष निग्रह करै। शंका—सुषुप्तिविषे सर्वविक्षेपरूप आयासतैं जो मन रहित होवैहै तौ किसवासतै ता मनका निग्रह करणा ऐसी शंकाके हुए कहैं हैं (यथाकामो लयस्तथा, इति) जैसे काम विषयगोचर प्रमाणादिक वृत्तियोंकूं उत्पन्न करिकै समाधिका विरोधी होवै है । तैसे सो लयभी निद्रारूप वृत्तिकूं उत्पन्न करिकै समाधिका विरोधीही होवैहै । जिसकारणतैं सर्व वृत्तियोंका निरोधही समाधि कह्याजावैहै । यातैं कामादिककृत विक्षेपतैं जैसे सो मन निरोध करणे योग्य है । तैसे परिश्रमादिकृत लयतैंभी सो मन निरोध करणे योग्य है इति १ तहां प्रथम श्लोकविषे (उपायेन निगृह्णीयात्) या वचनकरिकै सामान्यतैं उपाय कथन कऱ्या । सो मनके निग्रह करणेका उपाय कौन है ऐसी शंकाके हुए ता उपायका कथन करैं हैं। (दुःखं सर्वमनुस्मृत्येति ।) अविद्याकरिकै रचित जितनाक यह द्वैतप्रपंच है सो सर्व द्वैतप्रपंच परिच्छिन्न होणेतैं दुःखरूपही है इसप्रकारका निरंतर चिंतन करिकै अर्थात् (यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति अथ यदल्पं तन्मर्त्यं तद्दुःखमिति ।) अर्थ यह-जो चेतन देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित है सोईही सुखरूपहै । परिच्छिन्न पदार्थोंविषे सुखरूपता होवै नहीं । जो जो पदार्थ परिच्छन्न है सो सो पदार्थ नाशवान् है । तथा दुःखरूप है इति । इत्यादिक श्रुतियोंके अर्थकूं गुरुके उपदेशतैं अनंतर निश्चयकरिकै सो योगी पुरुष कामभोगोंकूं आपणे मनतैं निवृत्त करै अर्थात् चिंत्यमान अवस्थावाले विषयोंकूं तथा भुज्यमान अवस्थावाले विषयोंकूं आपणे मनतैं निवृत्त करै । अथवा तिसकामभोगतैं आपणे मनकूं निवृत्त करै । इतनैं कहणेकरिकै द्वैतप्रपंचके स्मरणकालविषे वैराग्यभावनामैं ता मनके निग्रहीत उपायरूपता कथन करी । अब सर्वद्वैतप्रपंचका विस्मरणरूप परम उपायकूं कथन करैं हैं (अजं सर्वमनुस्मृत्य इति) जन्मतैं रहित जो ब्रह्म है तद्रूपही यह सर्व जगत् है तिस ब्रह्मतैं अतिरिक्त किंचित् मात्रभी वस्तु है नहीं । इसप्रकार गुरुशास्त्रके उपदेशतैं अनंतर विचार करिकै तिस अद्वितीय ब्रह्मतैं विपरीत इस द्वैतमात्रकूं सो योगी पुरुष देखता नहीं । जिसकारणतैं अधिष्ठानके ज्ञान हुए ताकेविषे कल्पित द्वैतप्रपंचका अभावही होवैहै । जैसे रज्जुरूप अधिष्ठानके ज्ञान हुए ताकेविषे कल्पित सर्प दंडादिकोंका अभावही होवैहै तैसे अधिष्ठान ब्रह्मके साक्षात्कार

हुए ताकेविषे कल्पित द्वैतप्रपंचका अभावही होवैहै। तहां वैराग्यभावनारूप पूर्व उक्त उपायकी अपेक्षाकरिकै इस सर्व द्वैतकी निवृत्तिरूप उपायविषे विलक्षणता बोधन करणेवासतै श्लोकविषे तु यह शब्द कथन कऱ्या है इति २ इसप्रकार वैराग्य-भावना तथा तत्त्वदर्शन या दोनों उपायोंकरिकै विषयोंतैं निवृत्त कऱ्याहुआ जो चित्त है सो चित्त जो कदाचित् दिनदिनविषे लय होणेके अभ्यासवशतैं ता लयके अभि-मुख होवै तौ निद्राशेष बहु अन्नभोजन अतिपरिश्रम इत्यादिक जे लयके कारण हैं तिन कारणोंका निरोध करिकै सो योगी पुरुष उत्थानके प्रयत्न करिकै ता चित्तकूं तिस लयतैं प्रबोधन करै। इस प्रकार तिस लयतैं प्रबोधन कऱ्याहुआ सो चित्त जो कदाचित् दिनदिनविषे ता प्रबोधनके अभ्यासवशतैं पुनः ता काम भोगविषे विक्षिप्त होवै तौ पूर्व उक्त वैराग्यभावनाकरिकै तथा तत्त्वसाक्षात्कारक-रिकै पुनः ता चित्तकूं निरुद्ध करै। इसप्रकार पुनःपुनः अभ्यासके बलतैं ता लयतैं प्रबोधन कऱ्याहुआ तथा शब्दादिक विषयोंतैं निवृत्त करयाहुआ जो चित्त है। अर्थात् लय विक्षेप या दोनों दोषोंतैं रहित करयाहुआ जो चित्त है सो चित्त जबी ब्रह्मरूप समभावकूं नहीं प्राप्त होवैहै, किंतु मध्यविषे स्थित हुआ सो चित्त स्तब्ध होइजावैहै ता स्तब्धभावकूं कषायदोष कहैं हैं सो कषायदोष राग द्वेषादिकोंकी प्रबलवासनारूप रागके वशतैं प्राप्त होवैहै। ता कषायदोषकरिकै युक्त जो चित्त है ताकूं सकषाय कहैं हैं। ऐसे सकषाय चित्तकूं सो योगी पुरुष समाहित चित्ततैं विवेककरिकै जानैं। तिसतैं अनंतर यह हमारा चित्त अबी समाहित न होगयाहै इसप्रकारका निश्चयकरिकै सो योगी पुरुष जैसे लयविक्षेपदोषतैं ता चित्तकूं निवृत्त करयाथा तैसे ता कषायदोषतैंभी तिस चित्तकूं निवृत्त करै। तिसतैं अनंतर लय-विक्षेप कषायदोषतैं रहित हुआ सो चित्त परिशेषतैं तिस समरूप ब्रह्मकूंही प्राप्त होवैहै। ता समब्रह्मविषे प्राप्त हुए चित्तकूं सो योगी पुरुष कषायलयकी भ्रांतिकरिकै नहीं चलायमान करै, किंतु धैर्य अनुगृहीत बुद्धिकरिकै ता लयकषायकी प्राप्तितैं विवेचन करिकै तिस समब्रह्मकी प्राप्तिविषेही अत्यंत प्रयत्न करिकै तिस चित्तकूं स्थापन करै इति ३ किंवा सो निरोध समाधि यद्यपि परम सुखका अभि-व्यंजक है तथापि सो योगी पुरुष ता निरोध समाधिविषे ता सुखकूं आस्वादन नहीं करै। अर्थात् इतनैं कालपर्यंत मैं सुखी हुआ स्थित हूं इसप्रकारकी सुखके आस्वादनरूप वृत्तिकूं सो योगी पुरुष नहीं उत्पन्न करै। जो कदाचित् ता सुखा-

कार वृत्तिकूं करैगा तौ तिस असंप्रज्ञात समाधिकाही भंग होवैगा। यह वार्त्ता पूर्वही कथन करि आयेहैं। किंवा प्रज्ञाकरिकै जो सुख प्रतीत होवैहै सो सुख अविद्याकरिकै कल्पित होणेतैं मिथ्याही है याप्रकारकी भावनाकरिकै सो योगी पुरुष सर्व सुखोंविषे निःसंग होवै अर्थात् ता सुखकी इच्छातैं रहित होवैहै। अथवा (निःसंगः प्रज्ञया भवेत्) इस वचनका यह दूसरा अर्थ करणा। सविकल्प सुखाकारवृत्तिरूप जा प्रज्ञा है तिस प्रज्ञाके साथि सो योगी पुरुष संगका परित्याग करै। और सर्ववृत्तियोंतैं रहित चित्तकरिकै जो स्वरूपसुखका अनुभव होवैहै ता अनुभवका तौ सो योगी पुरुष कदाचित्‌भी परित्याग करै नहीं। जिस कारणतैं वृत्तितैं विना स्वभावतैंही प्राप्त जो स्वरूपसुखका अनुभव है सो निवृत्त करणेकूं अशक्य है। इसप्रकार सर्व ओरतैं निवृत्तकरिकै प्रत्ययके बलतैं निश्चल कन्या जो चित्त है सो चित्त जो कदाचित् आपणे चंचल स्वभावतैं विषयोंकी अभिमुखताकरिकै बाह्य गमन करै तौ भी सो योगी पुरुष निरोधके प्रयत्नतैं तिस चित्तकूं पुनः ता सम ब्रह्मविषे एकताकूं प्राप्त करै इति ४ ता सम ब्रह्मविषे प्राप्त हुआ सो चित्त किसप्रकारका होवै है ऐसी जिज्ञासाके हुए ताका स्वरूप कथन करैं हैं (यदा न लीयते इति) जिस कालविषे सो चित्त लयकूंभी नहीं प्राप्त होवैहै। तथा स्तब्धभावरूप कषायकूंभी नहीं प्राप्त होवैहै। तथा शब्दादिक विषयाकारवृत्तिरूप विक्षेपकूंभी नहीं प्राप्त होवैहै। तथा ता समाधिके सुखकूंभी वृत्तिकरिकै नहीं आस्वादन करैहै। यद्यपि श्लोकविषे लय विक्षेप या दोनोंकाही कथन कऱ्याहै। कषाय सुखास्वाद या दोनोंका कथन कऱ्या नहीं तथापि लय कषाय यह दोनों दोष तमोगुणके कार्यतैं होवैं हैं। यातैं तामसत्व धर्मकी समानताकूं लैके सो लय शब्द ता कषायकाभी उपलक्षक है। इसप्रकार विक्षेप सुखास्वाद यह दोनों दोष रजोगुणके कार्य हैं। यातैं राजसत्व धर्मकी समानताकूं लैके सो विक्षेप शब्द ता सुखास्वादकाभी उपलक्षकहै। इसी सुखास्वादकूं योगशास्त्रविषे रसास्वादभी कहैं हैं। और पूर्व जो तिन च्यारों दोषोंकूं पृथक्‌पृथक् कथन कऱ्याथा सो तिन लयादिक दोषोंकी निवृत्ति करणेवासतै पृथक्‌पृथक् प्रयत्नके करणे वासतै कथन कऱ्याथा इसप्रकार लय कषाय या दोनों दोषोंतैं रहित तथा विक्षेप सुखास्वाद या दोनों दोषोंतैं रहित जो चित्त अनिंगनहै। इहां इंगननाम चलनकाहै जैसे वायुविषे स्थित दीपक लयकी अभिमुखतारूप इंगनवाला होवैहै तैसे लयकी

अभिमुखतारूप जो इंगन है तिस इंगनतैं रहित जो चित्त है सो अनिंगन कह्या जावैहै। अर्थात् वायुतैं रहित देशविषे स्थित दीपककी न्याई जो चित्त ता चलनरूप इंगनतैं रहित है। तथा जो चित्त अनाभास है अर्थात् जो चित्त किसीभी विषयाकारकरिकै नहीं प्रतीत होवैहै। इसप्रकार जिस कालविषे सो चित्त लय कषाय विक्षेप सुखास्वाद या च्यारों दोषोंतैं रहित होवैहै तिस कालविषे सो चित्त तिस समब्रह्मकूं प्राप्त होवैहै इति ५ इसीप्रकारका योग साक्षात् श्रुतिनैंभी कथन कऱ्याहै। तहां श्रुति—(यदा पंचावतिष्ठंते ज्ञानानि मनसा सह। बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम्। तां योग-मिति मन्यंते स्थिरामिंद्रियधारणाम्। अप्रमत्तस्तदा भवति योगोहि प्रभवाप्ययौ। इति) अर्थ यह—जिस कालविषे मनसहित पंच ज्ञान इंद्रिय विरोधकूं प्राप्त होवैहैं तथा बुद्धिभी किसी चेष्टाकूं करती नहीं तिस स्थिर इंद्रियोंकी धारणाकूं योगशास्त्रवेत्ता पुरुष परमगति कहैं हैं तथा योग कहैं हैं। तिस कालविषे विनाही प्रयत्नतैं सो चित्त ब्रह्माकारताकूं प्राप्त होवै है इति। इसी मूलभूत श्रुतिकूं अंगीकार करिकै पतंजलि भगवाननैं (योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः) यह सूत्र कथन कऱ्या है। यातैं (ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।) यह जो वचन श्रीभगवाननैं कथन कऱ्याहै सो श्रुतिसूत्रके अनुसार होणेतैं यथार्थ है ॥ २६ ॥

इस प्रकार योगाभ्यासके बलतैं तिस योगी पुरुषका मन प्रत्यक् आत्माविषेही निरोधकूं प्राप्त होवै है। तिसतैं ता योगी पुरुषकूं जो फल प्राप्त होवै है ताकूं अब श्रीभगवान् कथन करैंहैं—

प्रशांतमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ॥
उपैति शांतरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥ २७॥

(पदच्छेदः) प्रशांतमनसम्। हि। एनम्। योगिनम्। सुखम्। उत्तमम्। उपैति। शांतरजसम्। ब्रह्मभूतम्। अकल्मषम् ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! प्रशांत है मन जिसका तथा निवृत्त हुआ है रजोगुण जिसका तथा निवृत्त हुआहै तमोगुण जिसका तथा ब्रह्मरूप ऐसे इस योगी पुरुषकूं निरतिशय सुख प्राप्त होवैहै ॥ २७ ॥

भा०टी०—प्रशांत हुआहै मन जिसका अर्थात् सर्व वृत्तियोंतैं रहितता करिकै निरुद्ध हुआहै संस्कारमात्र अवशेष मन जिसका ताका नाम प्रशांत मनस है। इसीकूंही शास्त्रविषे निर्मनस्कभी कहैंहैं। अब ता योगी पुरुषकी निर्मनस्कताविषे हेतुगर्भितदो विशेषण कथन करैं हैं। (शांतरजसम् अकल्मषमिति) शांत हुआहै क्या निवृत्त हुआ है विक्षेपका हेतु रजोगुण जिसका ताका नाम शांतरजस है अर्थात् जो योगी पुरुष विक्षेप दोषतैं रहित है तथा नहीं विद्यमान है कल्मष क्या लयका हेतु तमोगुण जिसविषे ताका नाम अकल्मष है अर्थात् जो योगी पुरुष लयदोषतैं रहित है। इहां (शांतरजसम्) इस पदकूंही जो तमोगुणका उपलक्षण अंगीकार करिये तौ (अकल्मषम्) इस पदका यह अर्थ करणा। संसारका हेतुभूत जो धर्मअधर्मादिरूप कल्मष है ता कल्मषतैं रहित जो योगी पुरुष है ताका नाम अकल्मष है। तथा जो योगी पुरुष ब्रह्मभूत है अर्थात् यह सर्वजगत् ब्रह्मरूपही है याप्रकारके निश्चयकरिकै ता समब्रह्मकूं प्राप्त हुआ जो जीवन्मुक्त पुरुष है इसप्रकारके योगी पुरुषकूं निरतिशयसुख प्राप्त होवै है। तहां मन तथा मनकी वृत्ति या दोनोंके अभाव हुएभी सुषुप्तिविषे स्वरूप सुखका अनुभव प्रसिद्धहीहै। ता प्रसिद्धिके बोधन करणेवासतैं मूलश्लोकविषेही यह शब्द कथन कऱ्या है सो यह वार्त्ता (सुखमात्यंतिकं यत्तत्) इस श्लोकविषे पूर्व कथन करि आये हैं॥ २७॥

अब तिस योगी पुरुषके कथनकरे हुए सुखकूं स्पष्टकरिकै निरूपण करैं हैं—

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः॥
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतं सुखमश्नुते॥ २८॥

(पदच्छेदः) युंजन्। एवम्। सदा। आत्मानम्। योगी। विगतकल्मषः। सुखेन। ब्रह्मसंस्पर्शम्। अत्यंतम्। सुखम्। अश्नुते॥ २८॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! इसप्रकार सर्वदा आपणे मनकूं आत्माविषे समाहित करताहुआ धर्मअधर्मतैं रहित सो योगी पुरुष अनायासतैं ब्रह्मस्वरूप अपरिच्छिन्न सुखकूंही अनुभव करै है॥ २८॥

भा० टी०—(मनसैवेंद्रियग्रामं विनियम्य समंततः) इत्यादिक वचनोंकरिकै पूर्व कथन कऱ्या जो क्रम है तिस पूर्व उक्त क्रमकरिकै जो योगी पुरुष आपणे

मनकूं सर्वदा प्रत्यक् आत्माविषे समाहित करता हुआ स्थित है तथा जो योगी पुरुष विगतकल्मष है अर्थात् संसारकी प्राप्ति करणेहारे जे धर्म अधर्मरूप कल्मषहैं ते कल्मष निवृत्त होगयेहैं जिसके ऐसा योगी पुरुष ईश्वरके प्रणिधानतैं सर्व अंतरायोंकी निवृत्ति करिकै अनायासतैंही सुखकूं अनुभव करै है । अब जन्यसुखकी व्यावृत्ति करणेवासतै ता सुखके दो विशेषण कथन करैं हैं । (ब्रह्मसंस्पर्शम्, अत्यंतमिति) विषयके स्पर्शतैं रहित ब्रह्मका तादात्म्यरूप संस्पर्श है जिस सुखविषे ताका नाम ब्रह्मसंस्पर्श है । अर्थात् जो सुख ब्रह्मरूपही है तथा जो सुख अत्यंत है इहां देशकालवस्तुपरिच्छेदका नाम अंत है ता परिच्छेदरूप अंतकूं जो सुख अतिक्रमण करिकै वर्त्तै है ता सुखका नाम अत्यंत है । इसी अपरिच्छिन्नब्रह्मरूप सुखकूं (यो वै भूमा तत्सुखम्) यह श्रुति प्रतिपादन करै है । ऐसे निरतिशय ब्रह्मानंदकूं सो योगी पुरुष सर्व ओरतैं निर्वृत्तिक चित्तकरिकै लयविक्षेपतैं विलक्षण अनुभव करै है । तहां विक्षेपके वियमान हुए वृत्ति अवश्य होवै है: और लयके हुए मनका स्वरूपतैंही असत्त्व होवै है । यातैं ता सुखके अनुभवकूं लयविक्षेपतैं विलक्षण कह्या है और सर्ववृत्तियोंतैं रहित सूक्ष्म मनकरिकै सुखका अनुभव केवल असंप्रज्ञात समाधिविषेही होवै है अन्यत्र होवै नहीं । इहां (सुखेन) या शब्दकरिकै प्रतिबंधक अंतरायोंकी निवृत्ति कथन करी । ते अंतराय योगसूत्रोंविषे पतंजलि भगवान्नैं कथन करैहैं । तहां सूत्र—(व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रांतिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेंऽतरायाः ॥) अर्थ यह—व्याधि १ स्त्यान २ संशय ३ प्रमाद ४ आलस्य ५ अविरति ६ भ्रांतिदर्शन ७ अलब्धभूमिकत्व ८ अनवस्थितत्त्व ९ यह नवप्रकारके चित्तविक्षेप अंतराय कहे जावैं हैं । तहां जे चित्तकूं योगतैं विक्षिप्त करैं हैं अर्थात् ता योगतैं बहिर्मुख करैं हैं ते चित्तविक्षेप कहे जावैंहैं । ते ही चित्तविक्षेप योगके विरोधी होणेतैं अंतराय कहे जावैं हैं । तिन्होंविषेभी संशय भ्रांतिदर्शन यह दोनों तौ ता वृत्तिनिरोधरूप योगके साक्षातही विरोधी होवैं हैं । और व्याधि आदिक दूसरे निमित्त तौ सर्वदा वृत्तिके सहचारित होणेतैं ता वृत्तिकेही विरोधी होवैं हैं । तहां वातपित्तादिक धातुवोंकी विषमता है निमित्त जिन्होंविषे ऐसे जे ज्वरादिक विकार हैं तिन्होंका नाम व्याधि है॥ १ ॥ और अकर्मण्यताका नाम स्त्यानहै अर्थात् योगशास्त्रवेत्ता पुरुषनैं सिखाए हुएभी शिष्यविषे जो आसनादिक कर्मोंकी अयोग्य-

वा है ताका नाम स्त्यान है ॥ २ ॥ और यह योग हमारेकूं सिद्ध करणे योग्य है अथवा नहीं इस प्रकार भाव अभावरूप दो कोटियोंकूं विषय करणेहारा जो ज्ञान है ताका नाम संशय है। यद्यपि तत् अभाववाले विषे तत्बुद्धिरूप ता विपर्ययकी न्याई संशय विषेभी है। यातैं सो संशय विपर्यके अंतर्भूतही होइसकेहै। तथापि संशयविषे तौ दो कोटियोंका भान होवैहै। और विपर्ययविषे एकही कोटिका भान होवैहै। इतनी अवांतरविशेषताकूं अंगीकारकरिकै इहां संशयकूं विपर्ययतैं भिन्न कथन कऱ्या है इति ॥ ३ ॥ और समाधिके साधनोंके अनुष्ठान करणेकी सामर्थ्यताके विद्यमान हुएभी जो तिन साधनोंका अनुष्ठान नहीं करणाहै ताका नाम प्रमाद है अर्थात् दूसरे विषयोंविषे प्रवृत्तिपणेकरिकै जो योगसाधनोंविषे उदासीनताहै ताका नाम प्रमाद है ॥ ४ ॥ और तिस उदासीनताके निवृत्त हुएभी कफादिक धातुवोंकी वृद्धिकरिकै अथवा तमोगुणकी वृद्धिकरिकै जो शरीरविषे तथा चित्तविषे गुरुत्व है ताका नाम आलस्यहै, सो आलस्य व्याधिरूपकरिकै अप्रसिद्ध हुआभी योगविषे प्रवृत्तिका विरोधीही है ॥ ५ ॥ और किसी विशेषविषयविषे जो चित्तकी निरंतर अभिलाषाहै ताका नाम अविरतिहै ॥ ६ ॥ और योगके असाधनोंविषेभी जा योगसाधनत्वबुद्धि है तथा योगके साधनोंविषेभी जा योगसाधनत्वबुद्धि है ताका नाम भ्रांतिदर्शन है ॥ ७ ॥ और समाधिकी जा एकाग्रता भूमिका है वा भूमिकाका जो अलाभ है अर्थात् क्षिप्त मूढ विक्षिप्तरूपताकी जा प्राप्ति है ताका नाम अलब्धभूमिकत्वहै ॥ ८ ॥ और वा समाधिकी भूमिकाके प्राप्तहुएभी आपणे प्रयत्नकी शिथिलताकरिकै जो चित्तकी तिस भूमिकाविषे नहीं स्थिति है ताका नाम अनवस्थितत्व है ॥ ९॥ यह नवप्रकारके चित्तविक्षेप योगमल कहेजावैहैं तथा योगप्रतिपक्ष कहेजावैहैं तथा योगअंतराय कहेजावैहैं इति। किंवा इसतैं अन्य दूसरेभी विघ्नरूप अंतराय पतंजलि भगवान्नै कथन करैहैं। तहां सूत्र। (दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ॥) अर्थ यह—दुःख १ दौर्मनस्य २ अंगमेजयत्व ३ श्वास ४ प्रश्वास ५ यह पंच अंतराय समाहित चित्तकूं होवैं नहीं किंतु विक्षिप्त चित्तकूंही होवैहैं। यावैं यह पांचों विक्षेपसहभुवःअंतराय कहेजावैंहै। तहां चित्तका बाधनारूप जो राजस परिणाम है ताका नाम दुःखहै। सो दुःख आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक इस भेदकरिकै तीन प्रकारका होवैहै तहां ज्वरादिक व्याधियोंकरिकै उत्पन्नभया जो शारीर दुःखहै तथा कामक्रोधादिक

आधियोंकरिकै उत्पन्नभया जो मानस दुःख है ते दोनों प्रकारके दुःख आध्यात्मिक दुःख कहेजावैंहै । और व्याघ्र सर्प चौर आदिकोंकरिकै जन्य जो दुःख है सो दुःख आधिभौतिक दुःख कह्याजावैंहै । और ग्रहपीडादिकोंकरिकै जन्य जो दुःख है सो आधिदैविक दुःख कह्याजावैंहै । सो यह त्रिविध दुःख द्वेषरूप विपर्ययका हेतु होणेतैं समाधिका विरोधीही है १ और इच्छाविघातादिक बलवान् दुःखके अनुभवकरिकै जन्य जो चित्तका तामसपरिणामविशेष है ताकूं क्षोभ कहैंहैं तथा स्तब्धीभावभी कहैंहैं ताका नाम दौर्मनस्य है सो दौर्मनस्य कषायरूप होणेतैं लयकी न्याईं समाधिका विरोधीही है २ और हस्तपादादिक अंगोंका जो कंपन है ताकूं अंगमेजयत्व कहैं हैं सो अंगमेजयत्व आसनके स्थिरताका विरोधी होवैंहै ३ और प्राणकरिकै बाह्य वायुका जो अंतरप्रवेश है ताका नाम श्वास है सो श्वास समाधिके अंगभूत रेचकका विरोधी होवैंहै ४ और प्राणकरिकै भीतरले वायुका जो बाह्य निकासणा है ताका नाम प्रश्वास है सो प्रश्वास समाधिके अंगभूत पूरकका विरोधी होवैंहै इति ५ यह पूर्व उक्त दो सूत्रोंकरिकै कथन करे जे चतुर्दश अंतराय हैं ते विघ्नरूप अंतराय अभ्यासवैराग्यकरिकै निवृत्त होवैं हैं । अथवा ईश्वरप्रणिधानकरिकै निवृत्त होवैं हैं । वहां योगसूत्रोंविषे पतंजलि भगवान् (तीव्रसंवेगानामासन्नः) इस सूत्रविषे तीव्र वैराग्यवान् पुरुषोंकूं अत्यंत समीप असंप्रज्ञात समाधिका लाभ कथन करिकै (ईश्वरप्रणिधानाद्वा) इस सूत्रविषे पक्षांतरकूं कहिकै तिस प्रणिधेय ईश्वरके स्वरूपकूं (क्लेशकर्मविपाकाशयैरपामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः । तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् । स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्) इन तीन सूत्रोंतैं प्रतिपादन करिकै ता ईश्वरके प्रणिधानकूं (तस्य वाचकः प्रणवः । तज्जपस्तदर्थभावनम्) या दो सूत्रोंकरिकै कथन करताभयाहै । तिसतैं अनंतर सो पतंजलि भगवान् (इतः प्रत्यक्चेतनाधिगमोप्यंतरायाभावश्च) यह सूत्र कथन करताभयाहै ॥ अब (ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ १ ॥ क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥ २ ॥ तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ॥ ३ ॥ स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ ४ ॥ तस्य वाचकः प्रणवः ॥ ५ ॥ तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ ६ ॥ ततःप्रत्यक्चेतनाधिगमोप्यंतरायाभावश्च ॥ ७ ॥) इन सप्त सूत्रोंका यथाक्रमतैं अर्थ निरूपण करैंहैं । ईश्वरविषे जो कायिक वाचिक मानस यह तीन प्रकारकी भक्ति विशेष है ताका नाम

ईश्वरप्रणिधान है। तिस ईश्वरप्रणिधानतैं इस योगी पुरुषकूं अत्यंत समीप असंप्रज्ञात समाधिका लाभ होवैहै। तहां सूत्रके अंतविषे स्थित जो वा यह शब्द है सो वा शब्द पूर्व उक्त तीव्रवैराग्यरूप उपायके साथि इस ईश्वरप्रणिधानरूप उपायका विकल्प बोधन करणेवासतैंहै अर्थात् जैसे तीव्रवैराग्यतैं ता समाधिका लाभ होवै है तैसे ईश्वरप्रणिधानतैंभी ता समाधिका लाभ होवैहै। जिसकारणतैं ता भक्तिकरिकै प्रसन्न हुआ ईश्वर यह इष्टवस्तु इस भक्तजनकूं प्राप्त होवो या प्रकारका अनुग्रह अवश्यकरिकै करैहै इति १। अब जिस ईश्वरके प्रणिधानतैं अंतरायकी निवृत्तिपूर्वक ता समाधिका लाभ होवैहै ता ईश्वरके स्वरूपकूं तीन सूत्रोंकारिकै वर्णन करैं हैं। क्लेश कर्म विपाक आशय या च्यारोंकारिकै तीन कालविषे असंबद्ध जो पुरुषविशेष है ताका नाम ईश्वरहै। तहां अविद्या अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेश या पांचोंका नाम क्लेश है इन क्लेशोंका स्वरूप पूर्व पंचम अध्यायविषे निरूपण करिआयेहैं। और विहितप्रतिषिद्धक्रियातैं जन्य जो धर्म अधर्म है ताका नाम कर्म है। और ता धर्म अधर्मका जो फल है ताका नाम विपाकहै। और वा फलभोगके अनुकूल जे संस्कार हैं तिन्होंका नाम आशय है जैसे इसपुरुषकूं जबी पापकर्मके वशतैं उष्ट्रका जन्म होवैहै तबी वह कंटक भक्षण करणेके संस्कार उद्भव होवैंहैं। इस प्रकार यह जीव जिसजिस जातिवाले शरीरकूं प्राप्त होवैहै तिसतिस जातिवाले शरीरके भोगोंविषे जो प्रवृत्त होवैहै सो पूर्वले संस्कारोंके वशतैंही प्रवृत्त होवैहै। तिन संस्कारोंके उद्भवतैं विना तिस तिस शरीरका जीव संभवै नहीं। ऐसे चित्तविषे स्थित क्लेशादिकोंकारिकै यह संसारी पुरुषही संबद्ध होवैहै। ते क्लेशादिक तीन कालविषे जिसमैं हैं नहीं ऐसा पुरुषविशेष ईश्वर कह्या जावैहै। इहां सूत्रविषे स्थित जो विशेष यह शब्द है सो तीन कालविषे असंबंधरूप अर्थ वाचक है ऐसे विशेषपदकारिकै ता ईश्वरविषे मुक्तपुरुषोंतैंभी व्यावृत्ति कथन करी। तिन मुक्तपुरुषोंविषे यद्यपि तिस कालविषे सो क्लेशादिरूप बंध नहीं है तथापि तत्त्वसाक्षात्कारतैं पूर्वकालविषे सो बंध तिन मुक्त पुरुषोंविषेभी विद्यमान था। यातैं तीन कालविषे तिन क्लेशादिकोंके संबंधका अभाव तिन मुक्त पुरुषोंविषे संभवता नहीं, किंतु (यः सर्वज्ञः सर्ववित्) इत्यादिक श्रुतियोंकारिकै प्रतिपादित जो सर्वज्ञ ईश्वर है ता ईश्वरविषेही सो संभवै है इति २। अब ता ईश्वरकी सर्वज्ञताविषे अनुमानप्रमाणका कथन करैहैं। तहां अस्मदादिक जीवों-

का जो ज्ञान है सो ज्ञान सातिशय होणेतैं निरतिशय ज्ञानकरिकै व्याप्त है। जो जो पदार्थ सातिशय होवैहै सो सो पदार्थ आपणे समानजातीय निरतिशय पदार्थकरिकै व्याप्तही होवैहै जैसे घटका परिमाण सातिशय है यातैं परिमाणत्वरूपतैं आपणे समानजातीय विभुपरिमाणकरिकै व्याप्त है। ऐसा निरतिशय ज्ञान केवल ईश्वरविषेही रहैहै अन्यकिसीविषे रहै नहीं। और सो निरतिशय ज्ञानही सर्वज्ञताका ज्ञापक होवैहै । अर्थात् जहां निरतिशय ज्ञान होवैहै तहां सर्वज्ञताही जानीजावैहै। यातैं निरतिशयज्ञानवाला होणेतैं सो ईश्वर सर्वज्ञ है इति ३। अब ता ईश्वरविषे ब्रह्मादिक देवतावोंतैं विशेषता कथन करैहैं। सृष्टिके आदिकालविषे उत्पन्नभये जे ब्रह्मादिक देवता हैं ते सर्व कालपरिच्छेदवाले हैं। ऐसे कालपरिच्छिन्न ब्रह्मादिकोंकाभी सो ईश्वर गुरुरूप है काहेतैं सो ईश्वर कालकरिकै अपरिच्छिन्न है अर्थात् आदिअंततैं रहित है। तहां श्रुति–(यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ॥) अर्थ यह–जो ईश्वर सृष्टिके आदिकालविषे हिरण्यगर्भरूप ब्रह्माकूं उत्पन्न करताभया। तथा जो ईश्वर तिस ब्रह्माके ताईं सर्व वेद देताभया इति। इत्यादिक श्रुतिवचनोंतैं तिस ईश्वरविषे ब्रह्मादिकोंका गुरुपणा सिद्ध होवैहै इति ४। तहां पूर्व तीन सूत्रोंकरिकै कथन कऱ्या जो ईश्वर ता ईश्वरके प्रणिधानकूं अब दो सूत्रोंकरिकै कथन करैहैं। तिन पूर्व उक्त ईश्वरका वाचक ॐ काररूप प्रणव है इति ५। तिस ईश्वरके वाचक प्रणवका जो निरंतर जप है तथा ता प्रणवके अर्थरूप ईश्वरका जो ध्यान है ताका नाम ईश्वरप्रणिधान है इति ६। और तिस प्रणवके जपरूप तथा ता प्रणवके अर्थका ध्यानरूप ईश्वरप्रणिधानतैं तिस योगी पुरुषकूं प्रत्यक्चेतन आत्माका साक्षात्कार होवैहै। तथा पूर्व (व्याधि स्त्यान) इत्यादिक दो सूत्रोंकरिकै कथन करेहुए चतुर्दश विघ्नरूप अंतरायोंकाभी अभाव होवैहै इति ७। जैसे ता ईश्वरप्रणिधानतैं तिन अंतरायोंकी निवृत्ति होवैहै तैसे अभ्यास वैराग्यकरिकैभी तिन अंतरायोंकी निवृत्ति होवैहै। तहां अभ्यासवैराग्यकरिकै तिन अंतरायोंकी निवृत्ति करणेविषे ता अभ्यासकी दृढता करणेवासतै पतंजलि भगवान्नैं यह दो सूत्र कथन करे हैं। तहां सूत्र–(तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥ १ ॥ मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥ २ ॥) अर्थ यह–पूर्व कथन करे हुए विघ्नरूप अंतरा-

यांकी निवृत्ति करणेवासतैं सो योगी पुरुष किसीएक इष्टतत्त्वविषे चित्तका पुनः पुनः निवेशरूप अभ्यासकूं करै इति १। इहां सुहृदताका नाम मैत्रीहै। और कृपाका नाम करुणा है। और हर्षका नाम मुदिता है। और उदासीनताका नाम उपेक्षा है। और सुख दुःख पुण्य अपुण्य यह च्यारि शब्द यथाक्रमतैं सुखवालेका तथा दुःखवाले-का तथा पुण्यवालेका तथा अपुण्यवालेका वाचक हैं। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। सुखभोगकरिकै संपन्न जे प्राणी हैं तिन सर्वप्राणियोंविषे इन हमारे मित्रोंकूं जो यह सुख प्राप्तभयाहै सो सर्वदा बनारहै याप्रकारकी मैत्रीकूं सो अधिकारी पुरुष करै। तिन सुखी पुरुषोंकूं देखिकै यह सुख इन्होंकूं क्यूं प्राप्तभयाहै याप्रका-रकी ईर्षाकूं सो अधिकारी पुरुष करै नहीं। और इस लोकविषे जे दुःखी प्राणी हैं तिन दुःखीप्राणियोंविषे सो अधिकारी पुरुष किसी प्रकारकरिकै इन्होंके दुःखकी निवृत्ति होवै तौ श्रेष्ठ है याप्रकारकी कृपाकूंही करै। तिन दुःखी प्राणियोंविषे उपेक्षाबुद्धि करै नहीं तथा ईर्षाकूं भी करै नहीं। और जे पुरुष पुण्यवान् हैं तिन पुण्यवानोंविषे तौ तिन्होंके पुण्यकी स्तुति कथनपूर्वक हर्षकूंही करै तिन पुण्यवानों-विषे द्वेषकूंभी नहीं करै तथा उपेक्षाकूंभी नहीं करै। और जे पापात्मा दुष्ट पुरुषहैं तिन्होंविषे तौ उदासीनतारूप उपेक्षाकूंही करै तिन पापियोंविषे हर्षकूं तथा द्वेषकूं करै नहीं। इसप्रकार मैत्री करुणा मुदिता उपेक्षा या च्यारोंके सेवन-करणेहारे पुरुषविषे एक शुक्लधर्म उत्पन्न होवैहै। तिस धर्मविशेषके प्रभावतैं रागद्वेषादिक मलतैं रहित प्रसन्न चित्त हुआ एकाग्रताके योग्य होवैहै इति २। इहां मैत्रीआदिक च्यारि धर्म दूसरे दैवीसंपतरूप धर्मोंकेभी उपलक्षण हैं ते दूसरे धर्म (अभयं सत्त्वसंशुद्धिः) इत्यादिक वचनकरिकै तथा (अमानित्वमदंभित्वम्) इत्यादिक वचनकरिकै श्रीभगवान् आपही आगे कथन करैंगे। ते सर्व धर्म शुभवा-सनारूप होणेतैं मलिनवासनाके निवर्त्तकही हैं। यातैं सर्व पुरुषार्थके प्रतिबंधक होणेतैं परमशत्रुरूप जे रागद्वेषादिक हैं ते रागद्वेषादिक इस अधिकारी पुरुषनैं महान् प्रयत्नकरिकैभी निवृत्त करणे। और पतंजलि भगवानूनैं योगशास्त्रविषे इसचित्तके प्रसादनवासतै जैसे मैत्री करुणादिक उपाय कथन करेहैं। तैसे प्राणा-यामादिक दूसरे उपायभी कथन करे हैं। सो ऐसा चित्तका प्रसादन भगवत्के अनुग्रहकरिकै जिस पुरुषकूं उत्पन्न भयाहै तिसी भगवत्अनुगृहीत पुरुषके प्रतिही (सुखेन) यह वचन भगवाननैं कथन कऱ्या है। ता भगवत्अनुग्रहणतैं विना मनका निग्रह होइसकता नहीं ॥ २८ ॥

इसप्रकार निरोधसमाधिकरिकै त्वं पदके लक्ष्य अर्थरूप तथा तत्पदके लक्ष्य अर्थरूप शुद्धचेतनके साक्षात्कार हुएतैं अनंतर ता लक्ष्यचेतनके एकताकूं विषय करणेहारी तथा तत्त्वमसि इत्यादिक वेदांतवाक्यकरिकै जन्य निर्विकल्पक साक्षात्काररूप अंतःकरणकी वृत्ति उत्पन्न होवैहै । जिस वृत्तिकूं वेदवेत्तापुरुष ब्रह्मविद्या इस नामकरिकै कथन करैं हैं । तिस तत्त्वसाक्षात्काररूप ब्रह्मविद्यातैं सर्व अविद्याकी तथा ताके कार्यप्रपंचकी निवृत्तिकरिकै यह अधिकारी पुरुष अपरिच्छिन्न ब्रह्मरूप सुखकूं अनुभव करैहै । इस सर्व अर्थकूं अब तीन श्लोकों-करिकै श्रीभगवान् प्रतिपादन करैं हैं । तहां इस प्रथम श्लोककरिकै प्रथम त्वंप-दके लक्ष्यअर्थका निरूपण करैहैं—

सर्वभूतस्थमात्मनं सर्वभूतानि चात्मनि ॥
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ २९ ॥

(पदच्छेदः) सर्वभूतस्थम् । आत्मानम् । सर्वभूतानि । च । आत्मनि । ईक्षते । योगयुक्तात्मा । सर्वत्र । समदर्शनः ॥ २९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! योगयुक्त आत्मा सर्वप्रपंचविषे समबुद्धिवाला हुआ सर्वभूतोंविषे स्थित आत्माकूं तथा आत्माविषे सर्वभूतोंकूं देखैहै ॥ २९ ॥

भा० टी०—स्थावरजंगमशरीररूप जितनेक भूत हैं तिन सर्वभूतोंविषे भोक्ता-रूपकरिकै स्थितहुआ जो एक अद्वितीय विभु सच्चिदानंदरूप प्रत्यक्साक्षी आत्मा है तिस प्रत्यक् साक्षी आत्माकूं अनृत जड़ परिच्छिन्न दुःखरूप साक्ष्य पदार्थोंतैं पृथक् करिकै साक्षात्कार करैहै । तथा तिस प्रत्यक् साक्षी आत्माविषे आध्यासिक संबंधकरिकै स्थित जे मिथ्याभूत परिच्छिन्न जड दुःखरूप सर्वभूत हैं तिन साक्ष्य-रूप सर्वभूतोंकूं तिस प्रत्यक्साक्षी आत्माविषे कल्पितरूपकरिकै साक्षात्कार करैहै । कौन पुरुष तिन्होंकूं साक्षात्कार करैहै ऐसी जिज्ञासाके हुए कहैंहैं (योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः इति) तहां वस्तुके विचारकी परमकुशलतारूप योगकरिकै युक्तहुआहै क्या प्रसादकूं प्राप्त हुआहै आत्मा क्या अंतःकरण जिसका ताका नाम योगयुक्तात्मा है । तथा ता योगजन्य ऋतंभर नामा प्रत्यक्षकरिकै एकही कालविषे सर्व सूक्ष्म वस्तुवोंकूं तथा व्यवहित वस्तुवोंकूं तथा विप्रकृष्ट वस्तुओंकूं तुल्यही देखैहै । इसप्रकारतैं सर्व वस्तुवोंविषे समान है दर्शन जिसकूं ताका नाम समदर्शन है । ऐसा समदर्शन

हुआ सो योगयुक्त आत्मा प्रत्यक्आत्माकूं तथा ताकेविषे कल्पित अनात्मप्रपंचकूं पूर्व उक्त रीतिसैं यथावत् जानैहै, यह वार्त्ता युक्त है इति। अथवा इस श्लोकका यह दूसरा अर्थ करणा। जो पुरुष योगयुक्तात्मा है तथा जो पुरुष सर्वत्र समदर्शन है सो पुरुषही इस प्रत्यक्साक्षी आत्माकूं साक्षात्कार करैहै। इतने कहणेकरिकै योगी पुरुष तथा समदर्शी पुरुष दोनोंही आत्मसाक्षात्कारके अधिकारी कथन करे। तात्पर्य यह—जैसे चित्तकी वृत्तिका निरोधरूप योग साक्षी आत्माके साक्षात्कारका हेतु है तैसे जडप्रपंचका विवेककरिकै सर्वत्र अनुस्यूत चैतन्य आत्माका ता जडप्रपंचतैं पृथक्करणारूप विचारभी ता साक्षी आत्माके साक्षात्कारका हेतु है ता आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिविषे केवल योगही अवश्य अपेक्षित नहीं है। इसी अभिप्रायकूं लैकै श्रीवसिष्ठ भगवान्नैं रामचंद्रके प्रति यह वचन कह्याहै। तहां श्लोक—(द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञानं च राघव ॥ योगो वृत्तिनिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम् ॥ १ ॥ असाध्यः कस्यचिद्योगः कस्यचित्तत्त्वनिश्चयः ॥ प्रकारौ द्वौ ततो देवो जगाद परमः शिवः ॥ २ ॥) अर्थ यह—हे रामचंद्र ! साक्षी आत्माका उपाधिभूत जो चित्तहै ता चित्तकूं तिस साक्षी आत्मातैं पृथक् करिकै जो तिस साक्षी आत्माका दर्शन है यहही तिस चित्तका नाश है। ऐसे चित्तनाशके दो उपाय हैं एक तौ योग उपाय है दूसरा ज्ञान उपाय है। तहां सर्व वृत्तियोंका निरोधरूप जो असंप्रज्ञातसमाधि है ताका नाम योग है। ता असंप्रज्ञातसमाधिकी प्राप्ति संप्रज्ञातसमाधितैं होवैहै। तहां संप्रज्ञातसमाधिविषे तौ एक आत्माकारवृत्तियोंके प्रवाहयुक्त अंतःकरणसत्त्व साक्षीचैतन्यनैं अनुभव करीता है। और असंप्रज्ञातसमाधिविषे तौ सर्ववृत्तियोंके निरोधयुक्त सो अंतःकरणसत्त्व उपशांत होणेतैं ता साक्षी चैतन्यनैं अनुभव करीता नहीं। इतनीही तिन दोनों समाधियोंविषे विशेषता है इति। और साक्षी आत्माविषे कल्पित यह साक्ष्यप्रपंच मिथ्या होणेतैं तीन कालविषे नहीं है एक साक्षी आत्माही है परमार्थ सत्य है याप्रकारके सम्यक् विचारका नाम ज्ञान है १। तहां किसी अधिकारी पुरुषकूं तौ सो योग कठिन पडैहै विचार सुगम पडैहै और किसी अधिकारी पुरुषकूं तौ सो योग सुगम पडै है विचार कठिन पडैहै इसीकारणतैं परमात्मा देव शिव तिन दो प्रकारोंकूं कथन करताभयाहै इति २। तहां इन दोनों उपायोंविषे प्रथम योगरूप उपायकूं तौ प्रपंचकूं परमार्थ सत्य मानणेहारे हैरण्यगर्भादिक

पुरुष अंगीकार करैहैं । तिनोंके मतविषे परमार्थसत्य चित्तके अदर्शनविषे साक्षी आत्माके दर्शनविषे चित्तनिरोधतैं अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय है नहीं किंतु केवल सो चित्तका निरोधही ता साक्षी आत्माके दर्शनका उपाय है इति । और श्रीमत् शंकराचार्यके मतकूं अनुसरण करणेहारे जे प्रपंचकूं मिथ्या मानणेहारे औपनिषद पुरुष हैं ते औपनिषद पुरुष तौ दूसरे विचाररूप उपायकूंही अंगीकार करैं हैं । तिन औपनिषद पुरुषोंकूं तौ अधिष्ठान चेतनके दृढ साक्षात्कार हुएतैं अनंतर तिस अधिष्ठानविषे कल्पित चित्तका तथा दृश्य प्रपंचका अदर्शन अनायासतैंही संभव होइसकै है । ता प्रपंचके अदर्शनविषे तिनोंकूं योगकी अपेक्षा रहै नहीं । इसीकारणतैं श्रीमत् शंकराचार्यनैं किसीभी स्थलविषे ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंके ता योगकी अपेक्षा प्रतिपादन करी नहीं । इसीकारणतैं ते औपनिषद परमहंस संन्यासी ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिवास्तै ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाइकै वेदांतवाक्योंके श्रवणमननरूप विचारविषेही प्रवृत्त होवैं हैं, योगविषे प्रवृत्त होते नहीं । काहेतैं तिस योगकरिकै जे चित्तके कामक्रोधादिक दोष निवृत्त करेजावैंहैं ते चित्तके दोष जो कदाचित् ता योगतैं विना अन्य किसी उपायकरिकै नहीं निवृत्त होते तौ सो योगही अवश्य अपेक्षित होता परन्तु ते चित्तके दोष तौ विचारकरिकैभी निवृत्त होइसकैंहैं । यातैं तिन औपनिषद पुरुषोंकूं ता ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिवास्तै सो योग अवश्य अपेक्षित नहीं है, किंतु सो वेदांतवाक्योंका विचारही अवश्य अपेक्षित है इसीकारणतैं तैत्तिरीयउपनिषदविषे वरुणऋषि भृगुपुत्रके प्रति वारंवार विचाररूप तपकाही विधान करताभयाहै ॥ २९ ॥

तहां इस पूर्वश्लोकविषे शुद्ध त्वंपदार्थका निरूपण कऱ्या । अब इस श्लोकविषे शुद्ध तत्पदार्थका निरूपण करैं हैं–

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ॥
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ३० ॥

(पदच्छेदः) यः । माम् । पश्यति । सर्वत्र । सर्वम् । च । मयि । पश्यति । तस्य । अहम् । न । प्रणश्यामि । सः । च । मे । न । प्रणश्यति ॥ ३० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो योगी पुरुष सर्व प्रपंचविषे मैं परमेश्वरकूं देखैहै तथा तिस सर्व प्रपंचकूं मैं परमेश्वरविषे देखै है तिस योगी पुरुषकूं मैं परमेश्वर नहीं परोक्ष होवोंहूं तथा सो योगी पुरुष मैं परमेश्वरकूंभी नहीं परोक्ष होवैहै ३० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! तत्त्वमसि इसवाक्यविषे स्थित तत्पदका अर्थरूप जो मैं परमेश्वर हूं कैसा हूं सो मैं मायाउपाधिवाला हुआ सर्व प्रपंचका कारणरूप हूं। तथा वास्तवतैं सर्व उपाधियोंतैं रहित हूं। तथा परमार्थसत्य आनंदघन हूं। तथा देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित होणेतैं अनंतरूप हूं। तथा सर्व प्रपंचविषे सत्तास्फुरणरूपकरिकै अनुस्यूत हूं। ऐसे परमेश्वरकूं जो योगी पुरुष सर्व प्रपंचविषे व्यापक देखैहै अर्थात् योगजन्य प्रत्यक्ष ज्ञानकरिकै मैं परमेश्वरकूं अपरोक्ष करै है। तथा जो योगी पुरुष इस सर्व प्रपंचकूं मैं परमेश्वरविषे देखै है अर्थात् मैं परमेश्वरविषे मायाकरिकै आरोपित जो यह सर्व प्रपंच है तिस प्रपंचकूं मैं अधिष्ठान परमेश्वरतैं पृथक् मिथ्यारूप करिकैही देखै है। इस प्रकार मैं परमेश्वरके स्वरूपकूं तथा प्रपंचके स्वरूपकूं यथार्थ जानणेहारा जो योगी पुरुष है तिस योगी पुरुषकूं मैं तत्पदार्थरूप परमेश्वर कदाचित्भी परोक्ष होता नहीं। अर्थात् सो ईश्वर हमारेतैं भिन्न है याप्रकारतैं ता योगी पुरुषके परोक्षज्ञानका विषय मैं परमेश्वर होता नहीं किंतु तिस योगी पुरुषके योगजन्य अपरोक्षज्ञानका विषयही मैं परमेश्वर होता हूं। यद्यपि तत्पदार्थ ईश्वरविषे जो वाक्यजन्य अपरोक्षज्ञानकी विषयता है सा त्वंपदार्थजीवके साथि अभेदरूप करिकैही है केवल ईश्वरविषे वाक्यजन्य अपरोक्षज्ञानकी विषयता संभवती नहीं। तथापि योगजन्य अपरोक्षज्ञानकी विषयता केवल ईश्वरविषेभी संभव होइसकैहै। इसप्रकार योगजन्य प्रत्यक्षज्ञानकरिकै मैं परमेश्वरकूं अपरोक्ष करता हुआ सो योगी पुरुष मैं परमेश्वरकूंभी परोक्ष होवै नहीं। काहेतैं सो विद्वान् पुरुष मैं परमेश्वरकूं आपणा आत्मारूपही है। तथा अत्यंत प्रिय है यह सर्व वार्त्ता (ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै आगेभी स्पष्ट होवैगी। और आपणा आत्मा किसीकूंभी परोक्ष होता नहीं, किंतु सर्वकूं अपरोक्षही होवै है। यातैं सो विद्वान् पुरुष सर्वदा हमारे अपरोक्षज्ञानकाही विषय होवै है। यह सर्व वार्त्ता (ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम्) इस गीतावचनतैंही सिद्ध है और यह वार्त्ता महाभारतविषे युधिष्ठिरके प्रति भगवान्नैंभी कथन करी है (अविद्वांस्तु स्वात्मानमपि सतं भगवंतं न पश्यति। अतो भगवान् पश्यन्नपि तं न पश्यति इति।) अर्थ यह—हे युधिष्ठिर ! आत्मज्ञानतैं रहित जो अविद्वान् पुरुष है सो अविद्वान् पुरुष तौ आपणा आत्मारूपकरिकै विद्यमान हुएभी परमेश्वरकूं देखता नहीं इसकारणतैं सो परमेश्वरभी

आपणे सर्वज्ञस्वभावतैं सर्व प्रपंचकूं देखता हुआभी ता अविद्वान् पुरुषकूं देखता नहीं, इति । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति-(स एनमविदितो न भुनक्ति ।) अर्थ यह-सो परमात्मा देव यद्यपि इस जीवका आत्मारूपहीहै, तथापि अज्ञात हुआ सो परमात्मा देव इस जीवकूं जन्ममरणरूप संसारतैं रक्षण करता नहीं । जैसे गृहविषे स्थित हुईभी निधि अज्ञात हुई इस गृही पुरुषके दारिद्रताकूं निवृत्त करिसकै नहीं इति । और विद्वान् पुरुष तौ सर्वदा अत्यंत समीप भगवान्के अनुग्रहका पात्र है ॥ ३० ॥

तहां पूर्व दो श्लोकोंकारिकै शुद्ध त्वं पदार्थका तथा शुद्ध तत्पदार्थका निरूपण कऱ्या । अब इस श्लोकविषे तिन शुद्ध तत्त्वंपदार्थोंका अभेदरूप तत्त्वमसि वाक्यका अर्थ निरूपण करैं हैं-

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ॥
सर्वथा वर्त्तमानोपि स योगी मयि वर्त्तते ॥ ३१ ॥

(पदच्छेदः) सर्वभूतस्थितम् । यः । माम् । भजति । एकत्वम् । आस्थितः । सर्वथा । वर्त्तमानः । अपि । सः । योगी । मयि । वर्त्तते ॥३१॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो योगी पुरुष सर्व भूतोंविषे स्थित मैं तत्पदार्थकूं आपणे त्वंपदार्थके साथि अभेदकूं निश्चय करताहुआ अपरोक्ष करै है सो योगी पुरुष जिसकिंस प्रकारतैं व्यवहार करताहुआ भी मैं परमात्माविषेही अभेदरूपकरिकै वर्त्तै है ॥ ३१ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! सर्व भूतोंविषे अधिष्ठानरूप करिकै स्थित तथा सर्व प्रपंचविषे सत्तास्फुरणरूपकरिकै अनुस्यूत जो सत्तामात्र तत्पदका लक्ष्यअर्थरूप मैं ईश्वरहूं तिस मैं ईश्वरका आपणे त्वंपदके लक्ष्यअर्थरूप प्रत्यक्साक्षीके साथि अभेद निश्चय करताहुआ अर्थात् जैसे घटरूप उपाधिके परित्याग किये हुए घटाकाश महाकाशरूपही है । तैसे अविद्या अंतःकरणादिक उपाधियोंका परित्याग करिकै मैं परमेश्वरका आपणे आत्माके साथि अभेद निश्चय करता हुआ जो अधिकारी पुरुष मैं परमेश्वकूं भजै है अथात् अहं ब्रह्मास्मि इस वेदांतवाक्य करिकै जन्य साक्षात्कार करिकै जो पुरुष मैं परमेश्वरकूं अपरोक्ष करै है सो अधिकारी पुरुष कार्यसहित अविद्याकी निवृत्ति करिकै जीवन्मुक्त हुआ कृत-

कृत्यही होवै है तिस जीवन्मुक्त पुरुषकूं बाधितानुवृत्ति करिकै जितनेक कालपर्यंत शरीरादिकोंका दर्शन वियमान है तितने काल पर्यंत विलक्षण प्रारब्धकर्मकी प्रबलतातैं सो ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुष याज्ञवल्क्यादिकोंकी न्याईं सर्व कर्मोका परित्याग करिकै वर्त्तमान हुआ अथवा वसिष्ठजनकादिकोंकी न्यांई अग्निहोत्रादिक विहितकर्मोंके अनुष्ठानकरिकै वर्त्तमान हुआ अथवा दत्तात्रेयादिकोंकी न्याईं प्रतिषिद्ध कर्मोंकारिकै वर्त्तमानहुआ जिसकिसीरूपकारिकै व्यवहारकूं करता हुआ सो ब्रह्मवेत्ता योगी पुरुष मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकार जानता हुआ मैं परमात्माविषेही अभेदरूप करिकैं वर्त्तै है। तिस मेरे परमानंद स्वरूपतैं सो विद्वान् पुरुष कदाचित्भी प्रच्युत होवै नहीं अर्थात् तिस विद्वान् पुरुषकूं सर्वप्रकारतैं मोक्षके प्रतिबंधककी शंका है नहीं। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै। तहां श्रुति–(तस्य ह न देवाश्च नाभूत्या ईशत आत्मा ह्येषां स भवति।) अर्थ यह–महान् प्रभाववाले जे इंद्रादिक देवता हैं ते इंद्रादिक देवताभी तिस विद्वान् पुरुषके मोक्षविषे प्रतिबंध करणेमें समर्थ नहीं हैं जिसकारणतैं सो विद्वान्पुरुष तिन देवताओंका आत्मारूपही है। और आपणे आत्माकी कोईभी हानि करता नहीं। जबी इंद्रादिक देवताभी प्रतिबंध करणेकूं समर्थ नहीं भये तबी अन्य क्षुद्र जीव ताका प्रतिबंध नहीं करैं हैं याकेविषे क्या कहणाहै इति। यद्यपि निषिद्ध कर्मोंविषे प्रवृत्त करणेहारे जे राग द्वेष हैं ते राग द्वेष तिस ब्रह्मवेत्ता पुरुषविषे हैं नहीं। यातैं तिस विद्वान् पुरुषको निषिद्धकर्मोंविषे प्रवृत्ति संभवती नहीं तथापि ब्रह्मवेत्ता पुरुषकी निषिद्धकर्मोंविषे प्रवृत्तिकूं अंगीकार करिकै आत्मज्ञानकी स्तुति करणेवासतै श्रीभगवान्नैं (सर्वथा वर्त्तमानोपि) यह वचन कथन कर्‍याहै जैसे पूर्व (हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हंति न निबध्यते) यह वचन ज्ञानकी स्तुतिवासतै कथन कर्‍याथा तैसे (सर्वथा वर्त्तमानोपि) यह वचनभी ज्ञानकी स्तुतिवासतैही है। और दत्तात्रेय भगवान्की जो निषिद्ध कर्मविषे प्रवृत्ति हुईहै सो कोई राग द्वेषतैं नहीं हुई, किंतु बहिर्मुखलोकोंके सहवासकी निवृत्ति करणेवासतै सा प्रवृत्ति हुईहै। यह सर्व वार्त्ता आत्मपुराणके एकादश अध्यायविषे हम विस्तारतैं निरूपण करि आयेहैं॥ ३१ ॥

इसप्रकार ब्रह्मसाक्षात्कारके उत्पन्न हुएभी कोई विद्वान् पुरुष मनोनाश वासनाक्षय या दोनोंके अभावतैं जीवन्मुक्तिके सुखकूं अनुभव करता नहीं। तथा चित्तके विक्षेपकारिकै दृष्टदुःखकूं अनुभव करै है। सो विद्वान् पुरुष अपरमयोगी

कह्याजावैहै । जिसकारणतैं सो विद्वान् पुरुष इस देहके पाततैं अनंतर तौ विदेह-कैवल्यकूं अवश्यकरिकै प्राप्त होवैहै । और इस शरीरके विद्यमान कालपर्यंत तौ विक्षेपकरिकै दृष्टदुःखका अनुभव करैहै तिसकारणतैं सो विद्वान् अपरमयोगी कह्याजावैहै । और जो विद्वान् पुरुष तत्त्वज्ञान मनोनाश वासनाक्षय या तीनोंका एक कालविषे अभ्यासतैं दृष्ट दुःखकी निवृत्तिपूर्वक जीवन्मुक्तिके सुखकूं अनुभव करताहुआ प्रारब्धकर्मके वशतैं समाधितैं व्युत्थान कालविषे सर्व प्राणियोंकूं आपणे आत्माके तुल्य देखै है सोईही विद्वान् पुरुष परमयोगी कह्याजावैहै । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ॥
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ ३२॥

(पदच्छेदः) आत्मौपम्येन । सर्वत्र । समम् । पश्यति । यः । अर्जुन । सुखम् । वा । यदि । वा । दुःखम् । सः । योगी । परमः । मतः ॥३२॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष सर्व प्राणियोंविषे आपणे आत्माके दृष्टांतकरिकै सुखकूं अथवा दुःखकूं तुल्यही देखै है सो ब्रह्मवेत्ता योगी श्रेष्ठ मान्याजावैहै ॥ ३२ ॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! जो विद्वान् पुरुष सर्व प्राणीमात्रविषे सुखकूं अथवा दुःखकूं आपणे आत्माके दृष्टांतकरिकै तुल्यही जानै है अर्थात् जो विद्वान् पुरुष द्वेषतैं रहित होणेतैं जैसे आपणे अनिष्टकूं नहीं संपादन करै है तैसे अन्य प्राणियोंके भी अनिष्टकूं संपादन करता नहीं । इसप्रकार जो विद्वान् पुरुष रागतैं रहित होणेतैं जैसे आपणे इष्टकूं संपादन करैहै तैसे अन्य प्राणियोंकेभी इष्टकूं संपादन करैहै । सो निर्वासनताकरिकै शांतमनवाला ब्रह्मवेत्ता योगीपुरुष पूर्व उक्त अपरमयोगीतैं श्रेष्ठ है अर्थात् मनोनाश वासनाक्षयतैं रहित केवल तत्त्ववेत्ता पुरुषतैं सो मनोनाश वासनाक्षयसहित तत्त्ववेत्ता पुरुष श्रेष्ठ है । यातैं तत्त्वज्ञान मनोनाश वासनाक्षय या तीनोंका यथाक्रमतैं अभ्यास करणेवासतै इस अधिकारी पुरुषनैं महान् प्रयत्न करणा इति । अब तत्त्वज्ञान मनोनाश वासनाक्षय या तीनोंका स्वरूप वर्णन करैं हैं । तहां यह सर्व द्वैतप्रपंच अद्वितीय सच्चिदानंदरूप परमात्मादेवविषे मायाकरिकै कल्पित होणेतैं मिथ्याभूतही है । एक परमात्मादेवही परमार्थसत्यरूप है । ऐसा अद्वितीय

परमात्मादेव मैं हूं याप्रकारके ज्ञानकूं तत्त्वज्ञान कहैहैं । और प्रदीपकी ज्वालावोंके संतानकी न्याईं वृत्तियोंके संतानरूपकरिकै परिणामकूं प्राप्त भया जो अंतःकरणरूप द्रव्य है सो अंतःकरण मननरूपताकारिकै मन कह्या जावै है । और तिस वृत्तिरूप परिणामका परित्याग करिकै तिन सर्व वृत्तियोंका विरोधी जो निरोधाकारकरिकै परिणाम है यहही तिस मनका नाश है और पूर्व अपरके विचारतैं बिना शीघ्रही उत्पन्न हुए जे काम क्रोधादिक वृत्तिविशेष हैं तिनोंके हेतुभूत जे चित्तविषे स्थित संस्कारविशेषहैं तिन संस्कारोंका नाम वासना है । तहां विवेककारिकै जन्य जे चित्तके प्रशमकी दृढ वासना हैं तिनोंकी प्रबलतातैं क्रोधादिकोंकी उत्पत्ति करणेहारे बाह्य निमित्तोंके विद्यमानहुएभी जो तिन क्रोधादिकोंकी नहीं उत्पत्ति है ताका नाम वासनाक्षय है । अब इन तीनोंका परस्पर कार्यकारणभाव दिखावैहैं । तहां तत्त्वज्ञानके उत्पन्न हुएतैं अनंतर मिथ्याभूत जगत्‌विषे नरविषाणादिकोंकी न्याईं बुद्धिकी वृत्ति उत्पन्न होवै नहीं । और तिस कालविषे आत्मा अपरोक्ष है । यातैं आत्माविषेभी वृत्तिका कोई उपयोग नहीं है । परिशेषतैं इंधनोंतैं रहित अग्निकी न्याईं सो मन नाशकूंही प्राप्त होवै है । इस रीतिसैं सो तत्त्वज्ञान मनोनाशका कारण है और ता मनके नाश हुएतैं अनंतर संस्कारोंके उद्बोधक बाह्य निमित्तोंकी प्रतीति होवै नहीं । तिसतैं ते संस्काररूप वासनाभी क्षय होइजावैं हैं । इसरीतिसैं सो मनोनाश वासनाक्षयका हेतु है । और तिन वासनावोंके क्षय हुएतैं अनंतर कारणके अभाव होणेतैं ते क्रोधादिक वृत्तियां उत्पन्न होवैं नहीं । तिसतैं सो मनभी नाश होइजावैहै । इस रीतिसै सो वासनाक्षय मनोनाशविषे कारण है । और ता मनके नाश हुएतैं अनंतर शमदमादिक साधनोंकी संपत्तिकारिकै सो तत्त्वज्ञान उत्पन्न होवैहै । इस रीतिसै सो मनोनाश तत्त्वज्ञानका कारण है । और तत्त्वज्ञानके उत्पन्न हुएतैं अनंतर ते रागद्वेषादिरूप वासनाभी क्षय होइजावैं हैं । यातैं सो तत्त्वज्ञान वासनाक्षयका हेतु है । और तिन वासनावोंके क्षय हुएतैं अनंतर प्रतिबंधके अभाव हुएतैं सो तत्त्वज्ञान उत्पन्न होवैहै । यातैं सो वासनाक्षय तत्त्वज्ञानका हेतु है । इसरीतिसे तत्त्वज्ञान मनोनाश वासनाक्षयका तीनोंका परस्पर कार्यकारणभाव है । यह वार्त्ता वासिष्ठग्रंथविषे वसिष्ठ भगवान्‌नैंभी श्रीरामचंद्रके प्रति कथन करी है । तहां श्लोक—(तत्त्वज्ञानं मनोनाशो वासनाक्षय एव च ॥ मिथः कारणतां गत्वा दुःसाध्यानि स्थितानि हि ॥ १ ॥ तस्माद्राघव यत्नेन

पौरुषेण विवेकिना ॥ भोगेच्छां दूरतस्त्यक्त्वा त्रयमेतत्समाश्रयेत् ॥ २ ॥) अर्थ यह—तत्त्वज्ञान मनोनाश वासनाक्षय यह तीनों परस्पर कार्यकारणभावकूं प्राप्त-होइकै इहां दुःसाध्य हुए स्थित हैं ॥ १ ॥ तिसकारणतैं हे रामचंद्र ! विवेकयुक्त पौरुषयत्नकरिकै भोगकी इच्छाकूं दूरतैं परित्याग करिकै यह अधिकारी पुरुष इन तीनोंकूं आश्रयणकरै । इहां जिसीकिसी उपायकरिकै इन तीनोंकूं मैं अवश्यकरिकै संपादन करौंगा या प्रकारका जो उत्साहविशेष है ताका नाम पौरुषयत्न है । और तिन तीनोंके पृथक्पृथक् करिकै साधनोंका निश्चय है ताका नाम विवेक है । जैसे तत्त्वज्ञानके तौ श्रवणादिक साधन हैं और मनोनाशका योग साधन है और वासनाक्षयका प्रतिकूलवासनावोंकी उत्पत्ति साधन है । ऐसे विवेकयुक्त पौरुष यत्नकरिकै भोगके इच्छाकूं दूरतैं परित्याग करिकै तत्त्वज्ञान, मनोनाश, वासनाक्षय इन तीनोंकूं आश्रयण करै । तहां जैसे घृतादिक हविष् अग्निके वृद्धिका हेतु होवैहै तैसे अत्यंत अल्पभी भोगोंकी इच्छा वासनाके वृद्धिकाही हेतु होवैहै यातैं ता भोगकी इच्छाका दूरतैंही त्याग कथन कऱ्याहै इति ॥ २ ॥ इहां यह अभिप्राय है—ब्रह्मवि-द्याका अधिकारी दो प्रकारका होवैहै । एक तौ कृतोपास्ति होवैहै और दूसरा अकृ-तोपास्ति होवैहै तहां जो पुरुष उपास्यदेवताके साक्षात्कारपर्यंत उपासनाकूं करिकै पश्चात् तत्त्वज्ञानवासतै प्रवृत्तहुआहै सो पुरुष कृतोपास्ति कह्याजावैहै । तिस कृतोपा-स्तिपुरुषकूं मनोनाश, वासनाक्षय यह दोनों तत्त्वज्ञानतैं पूर्वही दृढहैं । यातैं तत्त्वज्ञानतैं उत्तर तिस कृतोपास्तिपुरुषकूं सा जीवन्मुक्ति स्वतःही सिद्ध होवैहै । और जिसपुरुष-नैं तत्त्वज्ञानतैं पूर्व सा उपासना नहीं करीहै सो पुरुष अकृतोपास्ति कह्याजावैहै । सो इदानींकालके मुमुक्षुजन विशेषकरिकै तौ अकृतोपास्तिही होवैहैं । सो अकृतो-पास्ति मुमुक्षु औत्सुक्यमात्रतैं शीघ्रही विद्याविषे प्रवृत्त होवैहैं । और असंप्रज्ञात-समाधिरूप योगतैं विनाही चेतनजडवस्तुके विवेकमात्र करिकैही तात्कालिक मनोनाश वासनाक्षयकूं संपादनकारकै शमदमादि संपत्तिकरिकै श्रवणमनननिदि-ध्यासनकूं संपादन करैहैं तिन दृढअभ्यास करेहुए श्रवणादिकोंकरिकै सर्व बंधोंका नाशकरणेहारा तत्त्वज्ञान उत्पन्न होवैहै । तिस तत्त्वज्ञानतैं अविद्याग्रंथि अब्रह्मत्व हृदयग्रंथि संशय कर्म असर्वकामत्व मृत्यु जन्म असर्वत्व इत्यादिक सर्वबंध निवृत्त होवैं हैं । तहां श्रुति—(एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रंथिं विकिरतीति हे सौम्य ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति ॥ भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयंते

चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे । सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्वान्कामान्सह । तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति । यस्तु विज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदा शुचिः । स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते । य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति) अब यथाक्रमतैं इन सर्वश्रुतियोंका अर्थ निरूपण करैंहैं—हे प्रियदर्शन ! जो पुरुष हृदयरूप गुहाविषे स्थित इस आत्मादेवकूं साक्षात्कार करैहै सो पुरुष अविद्याग्रंथिकूं नाश करैहै । और जो पुरुष ब्रह्मकूं साक्षात्कार करैहै सो पुरुष ब्रह्मरूप होवैहै । और परमात्मादेवके साक्षात्कार हुए इस विद्वान् पुरुषकी हृदयग्रंथि भेदनकूं प्राप्त होवै है । तथा सर्वसंशयभी छेदनकूं प्राप्त होवैं हैं । तथा प्रारब्धकर्मतैं अतिरिक्त सर्वकर्मभी नाशकूं प्राप्त होवैंहैं । और परमव्योमरूप हृदयगुहाविषे स्थित सत्यज्ञान अनंत ब्रह्मकूं जो पुरुष साक्षात्कार करैहै सो पुरुष सर्वकामोंकूं प्राप्त होवैहै । और तिस आत्माकूं साक्षात्कार करिकै यह विद्वान् पुरुष मृत्युतैं रहित होवैहै । और जो पुरुष विज्ञानवाला है तथा मनके निरोधवाला है तथा सर्वदा शुचि है, सो पुरुष तिस परमपदकूं प्राप्त होवैहै । जिसतैं पुनः जन्मकूं प्राप्त होता नहीं । और जो पुरुष मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकार जानै है सो पुरुष इस सर्वजगत्का आत्मा होवै है इति । इत्यादिक श्रुतियां तत्त्वज्ञानकरिकै सर्वबंधकी निवृत्तिकूं प्रतिपादन करैं हैं । इसप्रकारके सर्वबंधोंकी निवृत्तिरूप जा विदेहमुक्ति है सा विदेहमुक्ति इस देहके विद्यमान हुएभी तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तिके समानकालही जानणी । काहेतैं ब्रह्मविषे अविद्याकरिकै आरोपित जो पूर्वउक्त बंध है सो सर्वबंध तत्त्वज्ञानतैं पूर्वही रहैहै । तत्त्वज्ञानकरिकै अविद्याके नाश हुएतैं अनंतर सो बंधभी निवृत्त होइजावैहै । और तत्त्वज्ञानकरिकै एकवार नाशकूं प्राप्तहुआ सो अविद्यासहित बंध पुनः उत्पन्न होवै नहीं । यातैं तत्त्वज्ञानकी शिथिलता करणेहारे कारणके अभावतैं सो तत्त्वज्ञान तौ तिस विद्वान् पुरुषका तिसीप्रकारका बन्यारहैहै और पूर्व तिस तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिवासतै जो तात्कालिक मनोनाश वासनाक्षय संपादन कियेथे सो मनोनाश तथा वासनाक्षय तौ दृढअभ्यासके अभावतैं तथा भोगके देणेहारे प्रारब्धकर्मकरिकै बाध्यमान होणेतैं वायुवाले देशविषे स्थित प्रदीपकी न्याईं शीघ्रही निवृत्त होइजावैं हैं । इसीकारणतैं इदानींकालके अकृतोपास्ति तत्त्वज्ञानवाले पुरुषकूं सर्वसिद्ध तत्त्वज्ञानविषे तौ किंचित्मात्रभी प्रयत्नकी अपेक्षा नहीं है

किंतु तिस विद्वान् पुरुषकूं मनोनाश वासनाक्षय यह दोनों प्रयत्नकरिकै साध्य हैं । तहां मनका नाश तौ पूर्व असंप्रज्ञातसमाधिके निरूपणकरिकै कथन करि आयेहैं यातैं अब वासनाक्षयका निरूपण करैं हैं । तहां वासनाके जानेतैं विना ता वासनाक्षय कऱ्याजावै नहीं । यातैं प्रथम वासनाका स्वरूप जान्या चाहिये । तहां वासनाका स्वरूप वसिष्ठभगवाननैं यह कह्याहै । तहां श्लोक-(दृढभावनया त्यक्तपूर्वापरविचारणम् । यदा दानं पदार्थस्य वासना सा प्रकीर्तिता ॥) अर्थ यह-दृढभावना करिकै पूर्व अपरके विचारतैं रहित होइकै जो पदार्थका ग्रहण करणा है ताका नाम वासना है । इहां आपणे आपणे देशके आचारविषे तथा आपणे कुलके धर्मविषे तथा आपणे आपणे स्वभावविषे तथा आपणे आपणे देशादिकोंविषे स्थित जे अपशब्दहैं तथा साधु शब्द हैं तिन शब्दोंविषे जो प्राणियोंका अभिनिवेश है ताका नाम वासना है । यह सामान्यतैं वासनाका स्वरूप कह्या अब विशेषतैं कहैंहैं । सा वासना दो प्रकारकी होवैहै एक तौ शुद्धवासना होवैहै और दूसरी मलिनवासना होवैहै । तहां अमानित्व अदंभित्व इत्यादिक वक्ष्यमाण दैवीसंपत् शुद्धवासना कही जावैहै सा शुद्धवासना तत्त्वज्ञानका साधनरूप होणेतैं एकरूपही होवैहै और दूसरी मलिनवासना तीनप्रकारकी होवैहै । एक तौ लोकवासना होवैहै, दूसरी शास्त्रवासना होवैहै, तीसरी देहवासना होवैहै । तहां यह सर्वलोक जैसे हमारी निंदा नहीं करैं किंतु यह सर्वलोक हमारी स्तुतिही करैं तिसीप्रकारके आचारणकूं मैं करौं याप्रकारका जो अशक्य अर्थका अभिनिवेश है ताकूं लोकवासना कहैं हैं सा लोकवासना संपादनकरणेकूं अशक्य है । काहेतैं पूर्व जे रामकृष्णादिक अवतार हुएहैं तिनोंकीभी सर्वलोकोंनैं स्तुति करी नहीं किंतु केईक दुष्टलोक तिनोंकीभी निंदा करते रहैंहैं । जबी साक्षात् ईश्वरोंकीभी सर्वलोकोंनैं स्तुति नहीं करी तबी इदानींकालके जीवोंकी सर्वलोक स्तुति कैसे करैंगे किंतु नहीं करैंगे । यातैं सा लोकवासना संपादनकरणेकूं अशक्य है । तथा सा लोकवासना पुरुषार्थका उपयोगीभी नहीं है । याकारणतैं सा लोकवासना मलिन है इति । और दूसरी शास्त्रवासना तीन प्रकारकी होवैहै । एक तौ पाठका व्यसनरूप होवैहै । और दूसरी बहुतशास्त्रका व्यसनरूप होवैहै । और तीसरी शास्त्रअर्थके अनुष्ठानका व्यसनरूप होवैहै । तहां पाठका व्यसनरूप शास्त्रवासना तौ भारद्वाजकूं होतीभई है । और बहुतशास्त्रका व्यसनरूप शास्त्रवा-

सना तौ दुर्वासाकूं होतीभई है । और अनुष्ठानका व्यसनरूप शास्त्रवासना तौ निदाघकूं होती भईहै । सा त्रिविधशास्त्रवासना बहुत क्लेशोंकरिकै व्याप्त है तथा पुरुषार्थकाभी अनुपयोगी है तथा अभिमानका हेतु है तथा जन्मकाभी हेतु है । या कारणतें सा शास्त्रवासनाभी लोकवासनाकी न्याईं मलिनही है इति । और तीसरी देहवासनाभी तीन प्रकारकी होवैहै । तहां एक तौ देहविषे आत्मत्वभ्रांतिरूप देहवासना होवै है । और दूसरी गुणाधानत्वभ्रांतिरूप देहवासना होवै है । और तीसरी दोषापनयनत्वभ्रांतिरूप देहवासना होवैहै । तहां देहविषे आत्मत्वभ्रांतिरूप देहवासना विरोचनादिकोंविषे तथा तिनोंके अनुयायी इदानींकालके बहुतलोकोंविषे प्रसिद्धही है । और दूसरा गुणाधान दोप्रकारका होवै है । एकतौ लौकिक गुणाधान होवै है और दूसरा शास्त्रीयगुणाधान होवैहै । तहां समीचीन शब्दादिकविषयोंका संपादन करणा याका नाम लौकिक गुणाधान है । और गंगास्नान शालिग्रामतीर्थ आदिकोंका संपादन करणा याका नाम शास्त्रीयगुणाधान है । और ता गुणाधानकी न्याईं तीसरा दोषापनयनभी दोप्रकारका होवै है । एक तौ लौकिक दोषापनयन होवै है । और दूसरा शास्त्रीय दोषापनयन होवैहै । तहां चिकित्सा करणेहारे पुरुष उक्त औषधोंकारिकै ज्वरादिक व्याधियोंकी निवृत्ति करणी याका नाम लौकिक दोषापनयन है । और शास्त्रउक्त स्नान आचमनादिकोंकरिकै अशौचादिकोंकी निवृत्ति करणी याका नाम शास्त्रीय दोषापनयन है । यह त्रिविध देहवासना अप्रामाणिक है तथा करणेकूंभी अशक्य है तथा पुरुषार्थविषेभी अनुपयोगी है तथा पुनः जन्मके प्राप्तिका हेतु है । याकारणतें इस देहवासनाविषे मलिनपणा शास्त्रविषे प्रसिद्धही है । इसप्रकार मलिनरूपकरिकै प्रसिद्ध जे लोकवासना तथा शास्त्रवासना तथा देहवासना यह तीन प्रकारकी वासना हैं ते तीनों वासना यद्यपि अविवेकी पुरुषोंकूं उपादेयरूपकरिकै प्रतीत होवैंहैं तथापि यह तीनों वासना जिज्ञासु पुरुषकूं तौ ज्ञानकी उत्पत्तिविषे विरोधी हैं । और विद्वान् पुरुषकूं तौ ज्ञाननिष्ठाका विरोधी हैं । यातैं जिज्ञासु पुरुषनैं तौ ज्ञानकी प्राप्तिवासतै यह तीनों वासना परित्याग करणे योग्य हैं। और विद्वान् पुरुषनैं तौ ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिवासतै यह तीनों वासना परित्याग करणेयोग्य हैं । इतने कहणेकरिकै बाह्यविषयवासना तीन प्रकारकी निरूपण करी । और अंतर मलिनवासना तौ काम, क्रोध, दंभ, दर्प इत्यादिक आसुरसंपत्तरूप होवै है ।

सा आसुरसंपत्‌रूप वासना सर्व अनर्थोंका मूलभूत मानसवासना कहीजावै है। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया लोकवासना, शास्त्रवासना, देहवासना यह तीनों बाह्यवासना तथा आसुरसंपत्‌रूप अंतरवासना या च्यारों मलिनवासनावोंका इस अधिकारी पुरुषनैं शुभवासनाकरिकै नाश करणा। यह वार्त्ता वसिष्ठभगवान्‌नैंभी श्रीरामचंद्रके प्रति कथन करीहै। तहां श्लोक—(मानसीवासनाः पूर्वं त्यक्त्वा विषयवासनाः। मैत्र्यादिवासना राम गृहाणामलवासनाः ॥) अर्थ यह—हे रामचंद्र ! लोकवासना, शास्त्रवासना, देहवासना या तीनों वासनावोंका नाम विषयवासना है। ऐसी मलिनविषयवासनावोंका परित्याग करिकै तथा काम क्रोध दंभ दर्पादिक आसुरसंपत्‌रूप मलिन मानसवासनावोंकूं परित्याग करिकै मैत्री करुणा मुदिता इत्यादिक शुभवासनावोंकूं तूं ग्रहण कर। अथवा इस श्लोकविषे स्थित विषयवासना मानसीवासना या दोनों पदोंका यह दूसरा अर्थ करणा। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध या पांचोंका नाम विषय है तिन शब्दादिक विषयोंकी दो दशा होवैं हैं। एक तौ भुज्यमानत्वदशा होवैहै। दूसरी काम्यमानत्व दशा होवै है। तहां भोगकी विषयताका नाम भुज्यमानत्व है और कामनाकी विषयताका नाम काम्यमानत्व है। तहां तिन शब्दादिक विषयोंके भुज्यमानत्वदशाजन्य संस्कारोंका नाम विषयवासना है। और काम्यमानत्व दशाजन्य संस्कारोंका नाम मानसवासना है। इस पक्षविषे पूर्व कथन करीहुई च्यारि प्रकारकी वासनावोंका इन दोनों वासनावोंविषेही अंतर्भाव है जिस कारणतैं बाह्य अभ्यंतर या दोनों प्रकारकी वासनावोंतैं भिन्न दूसरी कोई वासना है नहीं सर्ववासनावोंका इन दोवासनावोंविषे ही अंतर्भाव है तहां तिन मलिनवासनावोंतैं विरुद्ध मैत्री करुणादिक शुभवासनावोंका जो उत्पादन है यहही तिन मलिनवासनावोंका परित्याग है। ते मैत्रीआदिक शुभ वासना पतंजलिभगवान्‌नैं योगसूत्रोंविषे कथन करीहैं। ते मैत्रीआदिक शुभवासना यद्यपि पूर्व संक्षेपतैं प्रतिपादन करिआयेहैं तथापि तिस पूर्वउक्त अर्थकी दृढता करणेवासतै पुनः तिन मैत्रीआदिकोंका स्वरूप कथन करैं हैं। तहां इस पुरुषके चित्तकूं राग द्वेष पुण्य अपुण्य यह च्यारोंही मलिन करैं हैं तहां किसी सुखके अनुभव हुएतैं अनंतर तिस सुखका स्मरण करिकै तिस सुखके सजातीय दूसरे सुखोंविषे तथा तिन सुखोंके साधनोंविषे यह साधनोंसहित सर्व विषयसुख हमारेकूं प्राप्त होवैं या प्रकारकी अंतःकरणकी राजसवृत्तिविशेषरूप जा तृष्णा है ताका

नाम राग है। तहां तिन सर्वसुखोंकी प्राप्तिकरणेहारी जा दृष्ट अदृष्टरूप कारण सामग्री है ता सामग्रीके अभाव होणेतैं तिन सर्वसुखोंका संपादन करणा अत्यंत अशक्य है। यातैं विषयकी प्राप्तितैं रहित हुआ सो राग इस पुरुषके चित्तकूं मलिन करैहै। और यह अधिकारी पुरुष जबी सर्व सुखीप्राणियोंविषे यह सर्वसुखी प्राणी हमारेही हैं याप्रकारकी मैत्री संपादन करैहै तबी सो सर्वप्राणियोंका सुख आपणाही सिद्ध होवैहै। इस प्रकारकी भावना करणेहारे पुरुषका तिन सुखोंविषे सो राग निवृत्त होइजावैहै। जैसे किसी राजाकूं आप तौ राज्यतैं वैराग्यकी प्राप्ति हुएभी आपणे पुत्रादिकोंके राज्यकूंही आपणा राज्यकरिकै मानैहै। तैसे सो पुरुषभी आपणे सुखविषयक रागके निवृत्तहुएभी दूसरे प्राणियोंके सुखकूंही आपणा करिकै मानैहै। इसप्रकार मैत्रीभावना करिकै जबी ता रागकी निवृत्ति होवैहै तबी वर्षाके निवृत्त हुएतैं अनंतर जैसे जल शुद्ध होवैहै तैसे सो चित्त शुद्ध होवैहै इति। और किसी दुःखके अनुभव हुएतैं अनंतर ता दुःखका स्मरणकरिकै तिस दुःखके सजातीय दूसरे दुःखोंविषे तथा तिन दुःखोंके साधनोंविषे यह साधनोंसहित सर्व दुःख हमारेकूं कदाचित्भी मत प्राप्त होवैं याप्रकारकी जा तमोगुणमिलित रजोगुणका परिणामरूप अंतःकरणकी वृत्तिविशेषहै ताका नाम द्वेष है। तहां दुःखके हेतुरूप शत्रुव्याघ्रादिकोंके विद्यमान हुए सो दुःख निवृत्त करणेकूं अशक्य है। और तिन सर्व दुःखोंके हेतुवोंकूं हनन करणेविषेभी कोई समर्थ नहीं है। यातैं सो द्वेष इस पुरुषके चित्तकूं सर्वदा दाह करैहै। और यह अधिकारी पुरुष जबी सर्वदुःखी प्राणियोंविषे आपणेकी न्याईं इन सर्वप्राणियोंकूं यह दुःख मत प्राप्त होवै याप्रकारकी करुणा करैहै तबी इस पुरुषका वैरी आदिकोंविषे सो द्वेष निवृत्त होइजावैहै। ता द्वेषके निवृत्त हुएतैं अनंतर इस अधिकारी पुरुषका चित्त निर्मल होवैहै। यह वार्त्ता स्मृतिविषेभी कथन करी है। तहां श्लोक-(प्राणा यथात्मनोभीष्टा भूतानामपि ते तथा। आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वंति साधवः॥) अर्थ यह-जैसे इस पुरुषकूं आपणे प्राण अत्यंत प्रिय होवैहैं तैसे सर्व भूतोंकूं ते आपणे आपणे प्राण अत्यंत प्रिय होवैं हैं या प्रकारका विचारकरिकै श्रेष्ठ महात्मा पुरुष आपणे आत्माकी न्याईं सर्वभूत प्राणियोंविषे दयाकूंही करैं हैं इति। इसी अर्थकूं श्रीभगवान् इहां (आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन) इस श्लोकविषे कथन करता भया है इति। और यह प्राणी स्वभावतैंही पुण्यकर्मोंकूं अनुष्ठान

करते नहीं तथा पापकर्मोंकूं अनुष्ठान करैं हैं यह वार्त्ताभी शास्त्रविषे कथन करी है। तहां श्लोक-(पुण्यस्य फलमिच्छंति पुण्यं नेच्छंति मानवाः । न पापफलमिच्छंति पापं कुर्वंति यत्नतः ॥) अर्थ यह-यह मनुष्य पुण्यकर्मके सुखरूप फलकी तौ इच्छा करैं हैं परंतु ता पुण्यकर्मकी इच्छा करते नहीं। और यह मनुष्य पापके दुःखरूप फलकी तौ इच्छा करते नहीं और तिस पापकर्मकूं तौ प्रयत्नतैं करैं हैं इति। तहां ते पुण्यकर्म तौ नहीं करेहुए इस पुरुषकूं पश्चात्तापकी प्राप्ति करैं हैं और पापकर्म तौ करेहुए इस पुरुषकूं पश्चात्तापकी प्राप्ति करैं हैं। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै। तहां श्रुति-(किमहं साधु नाकरवं किमहं पापमकरवम्॥) अर्थ यह-जो पुरुष पुण्यकर्मोंकूं नहीं करैहै सो पुरुष दूसरे पुण्यवान् पुरुषोंकूं सुखी हुआ देखिकै ऐसे सुखकी प्राप्ति करणेहारे पुण्यकर्मोंकूं मैं किसवासतै नहीं करताभया याप्रकारके पश्चात्तापकूं करैहै यातैं पुण्यकर्म तौ नहीं करे हुए इस पुरुषकूं पश्चात्तापकी प्राप्ति करैंहै। और जो पुरुष पापकर्मकूं करैहै सो पुरुष जबी तिस पापकर्म दुःखरूप फलकूं प्राप्त होवैहै तबी सो पुरुष ऐसे दुःखकी प्राप्ति करणेहारे पापकर्मोंकूं मैं किसवासतै करताभया याप्रकारके पश्चात्तापकूं करैहै। यातैं ते पापकर्म करेहुए इस पुरुषकूं पश्चात्तापकी प्राप्ति करैं हैं इति। और यह अधिकारी पुरुष जबी पुण्यवान् पुरुषोंविषे मुदिता करैहै तबी ता शुभवासनावाला हुआ सो पुरुष आपभी साधन हुआ अशुक्लकृष्णनामा पुण्यविशेषविषे प्रवृत्त होवैहै। यह वार्त्ता योगसूत्रोंविषे पतंजलि भगवान्नैंभी कथन करीहै। तहां सूत्र-(कर्माशुक्लकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥) अर्थ यह-योगी पुरुषोंका कर्म तौ अशुक्ल कृष्ण होवैहै और अयोगी पुरुषोंका कर्म तौ शुक्ल, कृष्ण, शुक्लकृष्ण यह तीन प्रकारका होवैहै। तहां जो कर्म केवल मनवाणीकरिकैही साध्य होवैहै तथा एक सुखरूप फलकीही प्राप्ति करैहै सो कर्म शुक्लकर्म कह्याजावैहै ऐसा शुक्लकर्म वेदाध्ययनपरायण ब्रह्मचारी पुरुषोंका तथा तपस्वी पुरुषोंका होवैहै। और जो कर्म केवल दुःखकीही प्राप्ति करैहै सो कर्म कृष्णकर्म कह्याजावैहै ऐसा कृष्णकर्म तौ दुरात्मा पुरुषोंका होवैहै। और जो कर्म सुखदुःखमिश्रित फलकी प्राप्ति करैहै तथा व्रीहियवादिक बाह्य साधनोंकरिकै साध्य होवैहै सो कर्म शुक्लकृष्ण कह्या जावैहै सो शुक्लकृष्ण कर्म तौ सोमयागादिकोंविषे प्रीतिमान् पुरुषोंका होवैहै। काहेतैं तिन सोमयागादिकोंविषे व्रीहि आदिकोंके कूटणेकरिकै पिपीलिकादिक जंतुवोंकूं पीडाकी प्राप्ति

होवैहै और दक्षिणादिकोंके देणेकरिकै ब्राह्मणादिकोंकी प्रसन्नताभी होवैहै। यातैं तिन यागिक पुरुषोंका सो कर्म शुक्लकृष्ण होवैहै। यह तीन प्रकारका कर्म अयोगी पुरुषोंकाही होवैहै। और संन्यासी योगी पुरुषनैं तौ व्रीहियवादिक बाह्यसाधनों करिकै सिद्ध होणेहारे यागादि कर्मोंका परित्याग कऱ्याहै यातैं तिन योगी पुरुषोंका सो शुक्लकृष्णकर्म होवै नहीं। और ते योगीपुरुष अविद्यादिक सर्व क्लेशोंतैं रहित हैं। यातैं तिन योगी पुरुषोंका सो कृष्णकर्मभी होवै नहीं। और ते योगी पुरुष योगजन्य धर्मके फलकी इच्छाकूं न करिकै ता धर्मका ईश्वरविषे अर्पण करैंहैं। यातैं तिन योगी पुरुषोंका सो शुक्लकर्मभी होवै नहीं, किंतु चित्तकी शुद्धिद्वारा तथा विवेकख्यातिद्वारा एक मोक्षरूप फलकी प्राप्तिकरणेहारा अशुक्लकृष्ण नामा पुण्यकर्म तिन योगी पुरुषोंका होवैहै इति। और जो अधिकारी पुरुष पापात्मा पुरुषोंविषे उपेक्षा करैहै सो अधिकारी पुरुष तिस वासनावाला हुआ आपभी तिन पापकर्मोंतैं निवृत्त होवैहै। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। पुण्यवान् पुरुषोंविषे मुदिता करणेहारे पुरुषोंकूं तथा पापी पुरुषोंविषे उपेक्षा करणेहारे पुरुषोंकूं पुण्यकर्मोंके न करणनिमित्तक पश्चात्ताप तथा पापकर्मोंके करणनिमित्तक पश्चात्ताप प्राप्त होवै नहीं। ता पश्चात्तापके अभाव हुए तिस पुरुषका चित्त निर्मलताकूं प्राप्त होवैहै इति। किंवा इसप्रकार सुखी प्राणियोंविषे मैत्रीभावना करणेहारे पुरुषका केवल एक रागही निवृत्त नहीं होवैहै किंतु ता मैत्रीभावनाकरिकै असूया तथा ईर्ष्या आदिक भी निवृत्त होवैंहैं। तहां अन्य पुरुषोंके गुणोंविषे जो दोषोंका प्रगटकरणाहै ताका नाम असूया है। और परके गुणोंका जो नहीं सहन करणाहै ताका नाम ईर्ष्याहै। जबी मैत्रीभावनाके वशतैं यह अधिकारी पुरुष सर्वप्राणियोंके सुखकूं आपणाही करिकै मानैहै तबी ता पुरुषकी परगुणोंविषे असूया तथा ईर्ष्या कदाचित्भी होवै नहीं। इसप्रकार दुःखी प्राणियोंविषे करुणाभावना करणेहारे पुरुषका शत्रु आदिकोंके वध करणेहारा द्वेष जबी निवृत्त होइजावैहै तबी दूसरेकूं दुःखी देखिकै तथा आपणेकूं सुखी देखिकै जो दर्प उत्पन्न होवैहै सो दर्पभी निवृत्त होइजावैहै। इसप्रकारतैं दूसरे दोषोंकी निवृत्तिभी जानिलेणी। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया, इस अधिकारी पुरुषनैं जीवन्मुक्तिके सुखवास्तै तत्त्वज्ञान मनोनाश वासनाक्षय या तीनोंका अभ्यास करणा। तहां जिसीकिसी प्रकारतैं पुनः पुनः जो तत्त्वका स्मरण है ताकूं तत्त्वज्ञानाभ्यास कहैं हैं। यह वार्त्ता अन्य शास्त्रविषेभी कथन करीहै। तहां श्लोक—(तच्चिंतनं

तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनमम् ॥ एतदेकपरत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः ॥ १ ॥ सर्गादावेव नोत्पन्नं दृश्यं नास्त्येव तत्सदा ॥ इदं जगदहं चेति बोधाभ्यासं विदुः परम्॥ २॥) अर्थ यह-तिसी अद्वितीय ब्रह्मका जो वारंवार चिंतन है तथा तिसी ब्रह्मका जो वारंवार कथन है तथा तिसी ब्रह्मका जो परस्पर बोधन है तथा निरंतर तिसी एक ब्रह्मपरता जो है ताकूं विद्वान् पुरुष ब्रह्माभ्यास कहैंहैं इति १। और यह दृश्य प्रपंच सृष्टिके आदिकालविषेही उत्पन्न हुआ नहीं। यातैं यह दृश्य प्रपंच तीनकालविषे है नहीं। और मैं स्वयंज्योति अधिष्ठान आत्मा सर्वदा विद्यमान हूं याप्रकारका जो निरंतर विचार है ताकूं बोधाभ्यास कहैं हैं इति २। और दृश्य प्रपंचके अवभासका विरोधी जो योगाभ्यास है ताकूं मनोनिरोधाभ्यास कहैं हैं यह वार्त्ताभी शास्त्रविषे कथन करी है। तहां श्लोक-(अत्यंताभावसंपत्तौ ज्ञातुर्ज्ञेयस्य वस्तुनः ॥ युक्त्या शास्त्रैर्यतंते ये तेप्यत्राभ्यासिनः स्थिताः॥) अर्थ यह-ज्ञाता ज्ञेय वस्तु या दोनोंविषे जो मिथ्यात्व बुद्धि है ताका नाम अभावसंपत्ति है । और तिन दोनोंकी जा स्वरूपतैंही अप्रतीति है ताका नाम अत्यंताभावसंपत्ति है । ता अत्यंताभावसंपत्तिके वास्तै जे पुरुष योगकरिकै तथा शास्त्रोंकरिकै प्रयत्न करैंहैं, ते पुरुष मनोनिरोधके अभ्यासवाले कहे जावैं हैं इति । और दृश्य प्रपंचके असंभव बोधकरिकै जो रागद्वेषादिकोंकी क्षीणता करणीहै ताकूं वासनाक्षयका अभ्यास कहैंहैं। यह वार्त्ताभी अन्य शास्त्रविषे कथन करी है। तहां श्लोक-(दृश्यासंभवबोधेन रागद्वेषादितानवे । रतिर्घनोदितायासौ ब्रह्माभ्यासः स उच्यते ॥) अर्थ यह-इस दृश्यप्रपंचके असंभव बोधकरिकै इन रागद्वेषादिकोंकी क्षीणता करणेविषे जा दृढरति उत्पन्न होवै है सो ब्रह्माभ्यास कहा जावै है इति । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । जो पुरुष तत्त्वज्ञानके अभ्यास करिकै तथा मनोनाशके अभ्यास करिकै तथा वासनाक्षयके अभ्यासकरिकै रागद्वेषादिक विकारोंतैं रहित हुआ आपणे पराये सुखदुःखादिकोंविषे समदृष्टि है सो पुरुष तौ परम योगी है और जो पुरुष विषमदृष्टिवाला है सो पुरुष तौ तत्त्वज्ञानवाला हुआ भी अपरमयोगीही है ॥ ३२॥

तहां श्रीभगवान्नैं पूर्व विस्तारतैं कथन करया जो मनका निरोधरूप योग है ताका निषेध करता हुआ अर्जुन प्रश्न करै है-

अर्जुन उवाच।

योयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ॥
एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥३३॥

(पदच्छेदः) यः। अयम्। योगः। त्वया। प्रोक्तः। साम्येन। मधुसूदन। एतस्य। अहम्। न। पश्यामि। चंचलत्वात्। स्थितिम्। स्थिराम् ॥ ३३ ॥

(पदार्थः) हे मधुसूदन ! तुमनैं जो यह योग समत्वकरिकै कथन करया है सो इस योगके स्थिर स्थितिकूं मैं अर्जुन नहीं देखताहूं मनकूं अतिचंचल होणेतैं ॥ ३३ ॥

भा॰ टी॰–हे मधुसूदन ! अर्थात् हे सर्ववैदिकसंप्रदायका प्रवर्त्तक तैं सर्वज्ञ ईश्वरने जो यह सर्वत्र समदृष्टिरूप परमयोग पूर्व समभावकरिकै कथन कऱ्या है अर्थात् चित्तविषे स्थित विषमदृष्टिके हेतुभूत जे रागद्वेषादिक हैं तिन रागद्वेषादिकोंका निराकरण करिकै जो यह योग कथन करया है इस सर्व मनोवृत्ति निरोधरूप योगकी दीर्घकाल पर्यंत रहणेहारी विद्यमानतारूप स्थितिकूं मैं अर्जुन देखता नहीं अर्थात् ऐसे सर्व वृत्तियोंके निरोधरूप योगकी दीर्घकालपर्यंत स्थिति होती है, याप्रकारकी संभावना हमारेकूं होती नहीं। शंका–हे अर्जुन ! ऐसी संभावना तुम्हारेकूं किसवासतै नहीं होती ? ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन ताकेविषे हेतु कहैहै (चंचलत्वात् इति)। हे भगवन् ! यह मन अत्यंत चंचल है एक क्षणमात्रभी स्थिर होता नहीं याकारणतैं तिस अर्थकी संभावना हमारेकूं होती नहीं ॥ ३३ ॥

अब अर्जुन तिस मनके चंचल स्वभावकूं सर्व लोकशास्त्रकी प्रसिद्धता करिकै उपपादन करैहै–

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ॥
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ ३४ ॥

(पदच्छेदः) चंचलम्। हि। मनः। कृष्ण। प्रमाथि। बलवत्। दृढम्। तस्य। अहम्। निग्रहम्। मन्ये। वायोः। इव। सुदुष्करम् ॥ ३४ ॥

(पदार्थः) हे कृष्ण ! यह मन प्रसिद्ध चंचल है तथा प्रमाथि है तथा बलवान् है तथा दृढ है तिस मनके निग्रहकूं मैं अर्जुन वायुके निग्रहकी न्याईं अत्यंत कठिन मानताहूं ॥ ३४ ॥

भा॰ टी॰—हे कृष्ण भगवन् ! यह मन चंचल है अर्थात् अत्यंत चलनस्वभाववाला है कदाचित्भी स्थिर होता नहीं । ऐसा मनका चंचलस्वभाव सर्व लोकोंकूं अनुभव सिद्ध है । हे भगवन् ! यह मन केवल चंचलही नहीं है किंतु प्रमाथिभी है । तहां शरीरकूं तथा इंद्रियोंकूं क्षोभकी प्राप्ति करणेका जिसका स्वभाव होवै है ताका नाम प्रमाथि है अर्थात् यह मन तिन शरीर इंद्रियोंका क्षोभक होणेतैं तिन शरीरइंद्रियोंके विवशताका हेतु है । यातैं प्रमाथि है । हे भगवन् ! यह मन केवल चंचल तथा प्रमाथि नहीं किंतु यह मन बलवान्भी है अर्थात् यह मन अभिप्रेतविषयतैं किसीभी उपायकरिकै निवृत्त करणेकूं अशक्य है । इस लोकविषेभी किसी कार्यविषे प्रवृत्त हुए जिस पुरुषकूं कोईभी निवृत्त करणेमैं समर्थ नहीं होवैहै तिस पुरुषकूं बलवान् कहैहैं । तैसे किसी विषयविषे प्रवृत्त हुआ यह मन तिस विषयतैं निवृत्त कऱ्या जाता नहीं । यातैं यह मन अत्यंत बलवान् है । तथा यह मन दृढ है । अर्थात् अनेक जन्मोंकी अनेक सहस्रसहस्र विषयवासनाओंकरिकै युक्त होणेतैं भेदन करणेकूं अशक्य है । अथवा तंतुनागकी न्याईं अच्छेद्य होणेतैं यह मन दृढ है । इहां नागपाशका नाम तंतुनाग है अथवा जलके महाह्रदविषे रहणेहारे किसी जंतुविशेषका नाम तंतुनाग है जिस जंतुविशेषकूं गुर्जरादिक देशोंविषे तांतनी या नामकरिकै कथन करैहैं । इहां अर्जुननैं (चंचलं प्रमाथि बलवत् दृढम्) यह च्यारि विशेषण मनके कथन करे । तिन च्यारोंविशेषणोंविषे पूर्वपूर्व विशेषणकी सिद्धिविषे उत्तरउत्तर विशेषण हेतुरूप है । जैसे यह मन अत्यंत दृढ होणेतैं बलवान् है । तथा बलवान् होणेतैं यह मन प्रमाथि है । तथा प्रमाथि होणेतैं यह मन अत्यंत चंचल है । हे भगवन् ! जैसे महामत्त वनहस्तीका निग्रह करणा अत्यंत कठिन होवैहै । तैसे इस मनके निग्रहकूं अर्थात् सर्व वृत्तियोंतैं रहित करिकै स्थित करणेकूं मैं अर्जुन दुष्कर मानताहूं अर्थात् सर्वप्रकारतैं रोकणेकूं अशक्य मानताहूं । ता मनके निग्रहकी अशक्यताविषे अर्जुन दृष्टांतकूं कहैहै (वायोरिव इति) हे भगवन् ! जैसे आकाशविषे चलायमान होइरह्या जो वायु है ता वायुकी निश्चलताकूं संपादन करिकै ता वायुका निरोध करणा

अत्यंत अशक्य है। तैसे सर्वथा चंचल मनकी निश्चलताकूं संपादन करिकै ता मनका निरोध करणा अत्यंत अशक्य है यह वार्ता अन्य शास्त्रविषेभी कथन करीहै। तहां श्लोक-(अप्यब्धिपानान्महतः सुमेरून्मूलनादपि। अपि वह्न्यशनात्साधो विषमश्चित्तनिग्रहः।) अर्थ यह-हे साधो ! महान् समुद्रके पान करणेतैंभी तथा सुमेरु पर्वतके मूलतैं उखाड़नेतैंभी तथा अग्निके भक्षण करणे-तैंभी यह चित्तका निग्रह करणा अत्यंत कठिन है इति। इहाँ हे कृष्ण ! या-संबोधनकरिकै अर्जुननैं श्रीभगवान्के प्रति यह अर्थ सूचन कऱ्या। (दोषान् कृषति निवारयतीति कृष्णः। अथवा पुरुषार्थनाकर्षति प्रापयतीति कृष्णः) अर्थ यह-भक्तजनोंके जे पापादिक दोष निवृत्त करणेकूं अशक्य हैं तिन पापा-दिक दोषोंकूंभी जो निवृत्त करैहै ताका नाम कृष्ण है। अथवा तिन भक्तजनोंकूं सर्वप्रकारतैं प्राप्त होणेकूं अशक्य जे पुरुषार्थ हैं तिन पुरुषार्थोंकूंभी जो प्राप्त करैहै ताका नाम कृष्ण है ऐसे कृष्ण नामवाले आप हो। यातैं आपणे नामकूं सार्थक करणेवासतै दुर्निवारभी हमारे चित्तकी चंचलताकूं आप अवश्य करिकै निवृत्त करौगे। तथा दुष्प्रापभी समाधिसुखकूं आप अवश्यकरिकै प्राप्त करौगे इति। इहां अर्जुनका यह अभिप्राय [illegible]त्त्वज्ञानके उत्पन्न हुएभी प्रार-ब्धकर्मके भोगवासतै जीवते हुए विद्वान् पुरुषके कर्तृत्व भोक्तृत्व सुख दुःख राग द्वेष इत्यादिक चित्तके धर्म बाधितानुवृत्तिकरिकै विद्यमान हुएभी क्लेशके हेतु होणेतैं बंधरूपही होवैंहैं। और सर्व चित्तवृत्तियोंके निरोधरूप योगकरिकै जो तिस बंधकी निवृत्ति है ताका नाम जीवन्मुक्ति है। जिस जीवन्मुक्तिके संपादन करणेकरिकै सो विद्वान् पुरुष परम योगी कह्याजावैहै। यह वार्त्ता आपनैं पूर्व कथन करीहै। या अर्थविषे हमारा यह कहणा है सो बंध साक्षी चेतनतैं निवृत्त करतेहो अथवा चित्ततैं सो बंध निवृत्त करतेहो। तहां प्रथम पक्ष जो अंगीकार करौ सो संभवता नहीं। काहेतैं पूर्व उत्पन्न हुए तत्त्वज्ञाननैंही ता साक्षीके बंधकी निवृत्ति करीहै। तिस बंधकी निवृत्तिविषे ता योगका किंचित्मात्रभी उपयोग नहीं है। और सो बंध चित्ततैं निवृत्त करीताहै, यह दूसरा पक्ष जो अंगीकार करौ सोभी संभवता नहीं। काहेतैं सो बंध साक्षी चेतनविषे जैसे आरोपित है तैसे जो चित्तविषे आरोपित होता तौ सो बंध चित्ततैं निवृत्त कऱ्याजाता परंतु सो बंध ता चित्तविषे आरो-पित नहीं है किंतु सो बंध चित्तका स्वभावहीहै। और जो जिसका स्वभाव होवैहै

तिस स्वभावकी सहस्र उपायों कारिकैभी निवृत्ति होवै नहीं । जैसे जलका स्वभाव जो आर्द्रपणा है तथा अग्निका स्वभाव जो उष्णपणा है सो स्वभाव ता जलतैं तथा अग्नितैं अनेक उपायों कारिकैभी निवृत्त कऱ्याजावै नहीं । तैसे सो चित्तका स्वभावभी निवृत्त कऱ्याजावै नहीं और शास्त्रविषे ता चित्तकूं क्षणक्षणविषे परिणाम स्वभाववाला कथन कऱ्याहै । तहां शास्त्रवचन-(प्रतिक्षणपरिणामिनो हि भावा ऋते चितिशक्तेः ।) अर्थ यह-चैतन्य आत्मातैं भिन्न जितनेक अनात्म पदार्थ हैं ते सर्व अनात्म पदार्थ क्षणक्षणविषे परिणामकूं प्राप्त होवैं हैं इति । किंवा प्रारब्धकर्मरूप प्रतिबंधके विद्यमान हुए ता बंधकी निवृत्ति संभवै नहीं । काहेतैं अविद्याके तथा ता अविद्याके कार्यके नाश करणेविषे प्रवृत्त भया जो तत्त्वज्ञानहै ता तत्त्वज्ञानकाभी प्रतिबंधकरिकै सो प्रारब्धकर्म आपणे फल देणेवासतै इस देहइन्द्रियादिक संघातकूं स्थित करैहै अर्थात् ता संघातकूं निवृत्त होणे देवै नहीं और चित्तकी वृत्तियोंतैं विना सो प्रारब्ध कर्म आपणे सुखदुःखके भोगरूप फलकूं संपादन करिसकै नहीं । काहेतैं सुखाकार तथा दुःखाकार जा चित्तकी वृत्तिहै ताहीकूं शास्त्रविषे भोग कहैं हैं, ता चित्तकी वृत्तितैं विना सुखदुःखका भोग संभवै नहीं । यातैं यद्यपि स्वाभाविकभी चित्तके परिणामोंका योगकारिकै यथाकथंचित् अभिभव होइसकैहै तथापि जैसे तत्त्वज्ञानतैं सो प्रारब्धकर्म प्रबल है तैसे सो प्रारब्ध कर्म योगतैंभी प्रबल है । ऐसे प्रारब्ध कर्मके विद्यमान हुए सा चित्तकी चंचलताभी अवश्यकारिकै रहैगी । यातैं योगकारिकै ता चित्तकी चंचलताके निवृत्तकरणेकूं मैं अर्जुन आपणे ज्ञानतैं अशक्य मानताहूं । यातैं आपणे आत्माकी न्याईं सर्वत्र समदर्शी पुरुष परमयोगी है यह आपका वचन अनुपपन्न है । यह अर्जुनका आक्षेप दो श्लोकोंकारिकै सिद्ध भया ॥ ३४ ॥

अब श्रीभगवान् तिस अर्जुनके आक्षेपकूं निवृत्त करते हुए कहैं हैं-

श्रीभगवानुवाच ।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ॥
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ३५ ॥

(पदच्छेदः) असंशयम् । महाबाहो । मनः । दुर्निग्रहम् । चलम् । अभ्यासेन । तु । कौंतेय । वैराग्येण । च । गृह्यते ॥ ३५ ॥

(पदार्थः) हे महाबाहो ! यह मन दुर्निग्रह है तथा चंचल है यह वार्त्ता संशयतैं रहित है तौ भी हे कौंतेय सो मन अभ्यासकरिकै तथा वैराग्यकरिकै निग्रह कऱ्या जावैहै ॥ ३५ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! तुम्हारे वचनतैं तुम्हारे चित्तका वृत्तांत हमनैं सम्यक् जान्याहै परन्तु तूं अर्जुन इस मनके निग्रह करणेविषे समर्थ है इसप्रकार ता अर्जुनका संतोष करणेवास्तै श्रीभगवान् ता अर्जुनका संबोधन कहैं हैं (हे महाबाहो इति) साक्षात् महादेवसैभी युद्ध करणेतैं महान् हैं दोनों बाहु जिसकी ताका नाम महाबाहु है । इतने कहणेकारिकै भगवान्नैं अर्जुनविषे निरतिशय उत्कृष्टता सूचन करी । अर्थात् ऐसी निरतिशय उत्कृष्टतावाला तूं अर्जुन इस मनके निग्रह करणेविषे अवश्य करिकै समर्थ होवैगा इति। हे अर्जुन ! पूर्व जो तुमनैं यह वचन कह्याथा जो यह मन दुर्निग्रह है अर्थात् प्रारब्ध कर्मकी प्रबलतातैं असंयतात्मा पुरुषकूं सो मन दुःखकरिकैभी निग्रह करणेकूं अशक्य है तथा यह मन स्वभावतैंही चंचल है । इहां (दुर्निग्रहम्) यह जो मनका विशेषण कथन कऱ्या है सो पूर्व उक्त (प्रमाथिबलवद्दृढम्) या तीन विशेषणोंकूं इकट्ठाकरिकै कथन कऱ्या है । सो इस तुम्हारे कहणेविषे किंचित्मात्रभी संशय है नहीं अर्थात् सो तुम्हारा कहणा सत्य है । तथापि संयतात्मा पुरुषनैं तौ समाधिमात्ररूप उपायकरिकै तथा योगी पुरुषनैं अभ्यासवैराग्यरूप उपायकरिकै सो मन निग्रह करीताहै अर्थात् सो मन सर्व वृत्तियोंतैं शून्य करीताहै । इहां मनके नहीं निग्रह करणेहारे असंयतात्मा पुरुषतैं मनके निग्रह करणेहारे संयतात्मा पुरुषविषे विशेषताके बोधन करणेवास्तै श्लोकविषे तु यह शब्द कथन कऱ्याहै । और ता मनके निग्रहविषे अभ्यास वैराग्य या दोनोंके समुच्चय बोधन करणेवास्तै च यह शब्द कथन करयाहै । और (हे कौंतेय !) या संबोधन करिकै भगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन कऱ्या, हमारे पिताकी भगिनीका तूं पुत्र है यातैं मैं भगवान् तुम्हारेकूं अवश्यकरिकै सुखकी प्राप्ति करौंगा । इहां इस श्लोकके पूर्वार्द्धकरिकै श्रीभगवान्नैं चित्तका हठनिग्रह नहीं संभवैहै यह अर्थ कथन कऱ्याहै । और श्लोकके उत्तरार्द्धकरिकै ता चित्तका क्रमनिग्रह संभवैहै यह अर्थ कथन कऱ्या । इहां भगवान्का यह अभिप्राय है ता मनका निग्रह दो प्रकारतैं होवैहै । एक तौ हठकरिकै मनका निग्रह होवैहै और दूसरा क्रमकरिकै

मनका निग्रह होवैहै । तहां चक्षुश्रोत्रादिक पंच ज्ञानइंद्रिय तथा वाक्पाणि आदिक पंच कर्मइंद्रिय यह दशइंद्रिय जैसे गोलकमात्रके निरोधकरिकै हठतैं निग्रह करेजावैं हैं तैसे इस मनकूंभी मैं हठकरिकै निग्रह करौंगा । इसप्रकारकी भ्रांति मूढपुरुषोंकूं होवै है परंतु तिन इंद्रियोंकी न्याईं मनका हठमात्रतैं निग्रह होइसकै नहीं काहेतैं ता मनके रहणेका गोलक जो हृदयकमल है सो हृदयकमल निरोध करणेकूं अशक्यहै । यातैं तिस मनका क्रमकरिकै निग्रह करणाही युक्त है यह वार्ता वसिष्ठ भगवान्नैंभी कथन करी है । तहां श्लोक—(उपविश्योपविश्यैव चित्तज्ञेन मुहुर्मुहुः । न शक्यते मनो जेतुं विना युक्तिमनिंदिताम् ॥ १ ॥ अंकुशेन विना मत्तो यथा दुष्टमतंगजः । अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसंगम एव च ॥ २ ॥ वासनासंपरित्यागः प्राणस्पंदनिरोधनम् । एतास्ता युक्तयः पुष्टाः संति चित्तजये किल ॥ ३ ॥ सतीषु युक्तिष्वेतासु हठान्नियमयंति ये ॥ चेतस्ते दीपमुत्सृज्य विनिघ्नंति तमोंजनैः ॥ ४ ॥) अर्थ यह—चित्तके स्वभावकूं जानणेहारे पुरुषनैं उत्तम युक्तितैं विना केवल वारंवार आसन ऊपरि स्थित होइकै यह मन जय करिसकीता नहीं १ । जैसे महामत्त दुष्ट हस्ती अंकुशतैं विना वश होइसकै नहीं तैसे यह मनभी उत्तम युक्तियोंतैं विना वश होइसकै नहीं । ते युक्तियां यह हैं एक तौ अध्यात्मविद्याकी प्राप्ति दूसरा महात्माजनोंका समागम २ । तीसरा वासनावोंका परित्याग चौथा प्राणोंके स्पंदका निरोध यह च्यारि युक्तियांही तिस चित्तके जयका उपायरूप हैं ३ । इन च्यारों युक्तियोंके विद्यमान हुएभी जे पुरुष चित्तका हठतैं निग्रह करैं हैं ते पुरुष दीपकका परित्यागकरिकै तमकूं अंजनोंकरिकै निवृत्त करैं हैं ४ । अब याही अर्थकूं स्पष्टकरिकै निरूपण करैं हैं । तहां क्रमकरिकै मनके निग्रहविषे एक तौ अध्यात्मविद्याकी प्राप्ति उपाय है । काहेतैं सा अध्यात्मविद्या दृश्य प्रपंचविषे तौ मिथ्यात्वकूं बोधन करै है और द्रष्टा साक्षी आत्माविषे तौ परमार्थसत्यरूपताकूं तथा परमानंदस्वप्रकाशताकूं बोधन करै है । ऐसे बोध हुएतैं अनंतर यह मन आपणे विषयभूत दृश्यपदार्थोंविषे मिथ्यात्व हेतुतैं प्रयोजनके अभावकूं निश्चय करता हुआ यथा प्रयोजनवाले परमार्थसत्य परमानंदस्वरूप द्रष्टाविषे स्वप्रकाशतारूप हेतुतैं आपणे अविषयताकूं निश्चय करताहुआ इंधनोंतैं रहित अग्निकी न्याईं सो मन आपेही शांतिकूं प्राप्त होवै है । यातैं सा अध्यात्मविद्याकी प्राप्ति मनके निग्रहका उपायरूप है । और जो पुरुष बोधन करे हुए तत्त्वकूंभी सम्यक् जानिसकता नहीं अथवा

जो पुरुष बोधन करे हुए तत्त्वकूं विस्मरण करिदेवैहै तिन दोनों प्रकारके पुरुषोंकूं ता मनके निग्रहविषे साधुसमागही उपायरूपहै । काहेतैं ते महात्मा जन इस अधिकारी पुरुषकूं पुनःपुनः तत्त्वका बोधन करैं हैं । तथा पुनः पुनः तिस तत्त्वका स्मरण करावैं हैं और जो पुरुष वियामदादिक दुर्वासनाकारिकै पीडित हुआ तिस साधुसमागमकूं करता नहीं तिस पुरुषकूं तौ पूर्व उक्त विवेककरिकै ता वासनाका परित्यागही मनके निग्रहविषे उपाय है । और तिन वासनावोंकूंभी अतिप्रबल होणेतैं जो पुरुष तिन वासनावोंके त्याग करणेकूंभी समर्थ नहीं है तिस पुरुषकूं तौ प्राणोंके स्पंदनका निरोधही ता मनके निग्रहका उपाय है । काहेतैं प्राणोंका स्पंद तथा वासना यह दोनोंही चित्तके प्रेरकहैं। तिन दोनोंके निरोध हुए चित्तकी शांति अवश्यकरिकै होवै है । यह वार्त्ता वसिष्ठ भगवान्नैंभी कथन करीहै । तहां श्लोक–(द्वे बीजे चित्तवृक्षस्य प्राणस्पंदनवासने । एकस्मिंश्च तयोः क्षीणे क्षिप्रं द्वेपि विनश्यतः ॥ १ ॥ प्राणायामदृढाभ्यासैर्युक्त्या च गुरुदत्तया । आसनाशनयोगेन प्राणस्पंदो निरुध्यते॥ २॥ असंगव्यवहारित्वाद्भवभावनवर्जनात् । शरीरनाशदर्शित्वाद्वासना न प्रवर्तते॥ ३॥ वासनासंपरित्यागाच्चित्तं गच्छत्यचित्तताम् । प्राणस्पंदनिरोधाच्च यथेच्छसि तथा कुरु॥ ४॥ एतावन्मात्रकं मन्ये रूपं चित्तस्य राघव । यद्भावनं वस्तुनोंतर्वस्तुत्वेन रसेन च ॥५॥ यदा न भाव्यते किंचिद्धेयोपादेयरूपि यत् । स्थीयते सकलं त्यक्त्वा तदा चित्तं न जायते ॥६॥ अवासनत्वात्सततं यदा न मनुते मनः । अमनस्ता तदोदेति परमात्मपदप्रदा ॥ ७ ॥) अर्थ यह–हे रामचंद्र ! इस चित्तरूप वृक्षके दो बीज हैं एक तौ प्राणोंका स्पंद दूसरा वासना तिन दोनों बीजोंविषे एकके नाश हुए दोनों नाश होइजावैं हैं १ । तहां प्राणायामके दृढ अभ्यासकरिकै तथा गुरुनैं बताई युक्तिकरिकै तथा आसनभोजनादिकोंके नियमकरिकै सो प्राणोंका स्पंद निरोध कऱ्याजावै है २। और असंग व्यवहारके राखणेतैं तथा प्रपंचके चिंतनके परित्यागतैं तथा शरीरकूं नाशवान् देखणेतैं इस अधिकारी पुरुषकी वासना प्रवृत्त होवै नहीं ३ । और वासनाके परित्यागतैं तथा प्राणस्पंदके निरोधतैं सो चित्त अचित्तभावकूं प्राप्त होवैहै आगे जो तुम्हारी इच्छा होवै सो करो ४ । हे राघव ! बाह्य अनात्म पदार्थोंका जो वस्तुत्वरूपकरिकै तथा रागकरिकै अंतरचिंतन है इतनामात्रही मैं चित्तका स्वरूप मानताहूं ५ । और जिसकालविषे यह पुरुष परित्याग करणे योग्य तथा ग्रहणकरणेयोग्य किंचित्मात्र वस्तुकाभी चिंतन करतानहीं किंतु सर्वका परित्याग कारिकै स्थित होवैहै

तिस कालविषे सो चित्त उत्पन्न होवै नहीं ६ । और जिस कालविषे यह मन सर्व वासनावोंतैं रहित होणेतैं किंचित्मात्रभी वस्तुका मनन करता नहीं तिस कालविषे अमनस्ता उत्पन्न होवै है जा अमनस्ता परमात्मपदके देणेहारी है इति ७ । इतने कहणेकरिकै यह दो उपाय सिद्ध भये । एक तौ प्राणस्पंदके निरोधवासतै अभ्यासरूप उपाय दूसरा वासनाके परित्यागवासतै वैराग्यरूप उपाय और साधुसमागम तथा अध्यात्मविद्याकी प्राप्ति यह दोनों उपाय तौ अभ्यास वैराग्य या दोनोंके उपपादक होणेतैं अन्यथा सिद्ध हैं । यातैं यह दोनों उपाय अभ्यास वैराग्य दोनोंविषेही अंतर्भूत हैं । इसकारणतैंही श्रीभगवान्नैं अभ्यास वैराग्य यह दोउ उपायही कथन करेहैं इसी अर्थकूं भगवान् पतंजलिभी योगसूत्रोंविषे कथन कराभयाहै । तहां सूत्र—(अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः) अर्थ यह—पूर्व कथन करी जे प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृति यह पांच प्रकारकी वृत्तियां है ते पांच वृत्तियां असुरत्वरूपकरिकै क्लिष्ट कहीजावैहैं और देवत्वरूपकरिकै अक्लिष्ट कहीजावैहैं । ऐसी सर्व वृत्तियोंका जो निरोध है अर्थात् इंधनतैं रहित अग्निकी न्याईं जो उपशमरूप परिणामविशेष है सो निरोध अभ्यास वैराग्य या दोनों उपायोंकरिकै होवैहै इति । यह वार्ता योगभाष्यविषे श्रीव्यास भगवान्नैंभी कथन करीहै । तहां भाष्यवचन—(चित्तनदीनामोभयतो वाहिनी वहति कल्याणाय वहति पापाय च ।) अर्थ यह—जैसे श्रीगंगा यमुनादिक प्रसिद्ध नदियां निम्नभूमिविषे चलिके समुद्रविषे जाइकै परिअवसानकूं प्राप्त होवैं हैं तैसे जा चित्तरूप नदी विवेकरूप निम्नभूमिविषे चलिकै कैवल्यरूप फलविषे परिअवसानकूं प्राप्त होवैहै सा चित्तरूप नदी कल्याणवहा कहीजावै है ।और जा चित्तरूप नदी अविवेकरूप निम्नभूमिविषे चलिकै संसारविषे परिअवसानकूं प्राप्त होवैहै सा चित्तरूप नदी पापवहा कहीजावैहै । इसप्रकारतैं सा चित्तरूप नदी दोनों तरफ चलैहै । तहां विषयोंविषे वारंवार दोषदृष्टिकरिकै उत्पन्न भया जो वैराग्य है ता वैराग्यनैं तौ तिस चित्तरूप नदीका विषयोंकी तरफका प्रवाह रोकीता है । और विवेकदर्शनरूप अभ्यासनै तौ ता चित्तरूप नदीका प्रत्यक्आत्माविषे प्रवाह करीताहै । इसप्रकारतैं वैराग्य अभ्यास दोनोंके अधीनही चित्तवृत्तियोंका निरोधहै । केवल वैराग्यतैं अथवा केवल अभ्यासतैं सो निरोध होवै नहीं । तात्पर्य यह—जैसे तीव्र वेगकरिकै युक्त जो नदीका प्रवाह है ता प्रवाहकूं काष्ठमृत्तिकादिकोंका सेतु बांधिकै निवृत्तकरिकै तहांसै

कुल्या खोदकै क्षेत्रके सम्मुख दूसरा एक वक्रप्रवाह उत्पन्न कऱ्याजावैहै तसे वैराग्यकरिकै चित्तरूप नदीके विषयाभिमुख प्रवाहकूं निवृत्तकरिकै समाधिके अभ्यासकरिकै प्रत्यक्प्रवाह उत्पन्न कह्याजावैहै। इसप्रकार वैराग्य अभ्यास दोनोंका चित्तके निरोधविषे भिन्नभिन्नद्वार होणेतैं तिन दोनोंका समुच्चयही संभवैहै। जो कदाचित् तिन दोनोंका एकही द्वार होवै तौ जैसे एकही होमविषे व्रीहि यव दोनोंका एकही द्वार होणेतैं विकल्प है। तैसे वैराग्य अभ्यास दोनोंकाभी विकल्पही होवैगा इति। शंका—मंत्र तप देवता ध्यान आदिक क्रियारूप हैं यातैं तिन मंत्रादिकोंका तौ पुनःपुनः आवृत्तिरूप अभ्यास संभवैहै परंतु सर्व व्यापारोंका उपरामरूप जो समाधि है ताका कोई अभ्यास संभवता नहीं। ऐसी शंकाके निवृत्त करणेवासतै सो पतंजलि भगवान् इसप्रकारका अभ्यासका स्वरूप कहतेभये हैं। तहां सूत्र—(तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः) अर्थ यह— स्वस्वरूपविषे स्थित जो द्रष्टा शुद्ध चिदात्मा है ता शुद्ध चिदात्माविषे सर्व वृत्तियोंतैं रहित चित्तकी जा प्रशांतवाहितारूप निश्चल स्थिति है ता स्थितिके वासतै जो मानस उत्साहरूप यत्न है अर्थात् आपणे चंचल स्वभावतैं बाह्य प्रवाहवाले इस चित्तकूं मैं सर्व प्रकारतैं निरोध करौंगा याप्रकारका जो मनविषे उत्साहविशेष है सो उत्साहरूप यत्न वारंवार आवृत्तिकऱ्याहुआ अभ्यास कह्याजावैहै इति। अन्यसूत्र—(स तु दीर्घकालनैरंतर्यसत्कारसेवितो दृढभूमिः) अर्थ यह— सो पूर्व उक्त अभ्यास उद्वेगतैं रहित होइकै दीर्घ कालपर्यंत सेवनकऱ्याहुआ तथा व्यवधानके अभावकरिकै निरंतर सेवन कऱ्याहुआ तथा श्रद्धा अतिशयरूप सत्कारकरिकै सेवन कऱ्याहुआ दृढभूमि होवैहै अर्थात् सो अभ्यास विषयसुखकी वासनावोंकरिकै चलायमान होइसकै नहीं। तहां तिस अभ्यासका अदीर्घ कालपर्यंत सेवन कियेहुए तथा दीर्घ कालपर्यंत सेवन कियेहुएभी बीचमें व्यवधान राखिकै सेवन कियेहुए तथा दीर्घकाल निरंतर सेवन कियेहुएभी श्रद्धा अतिशयके अभाव हुए लय विक्षेप कषाय सुखास्वाद या च्यारोंके नहीं निवृत्ति हुए व्युत्थानसंस्कारोंकी प्रबलतातैं अदृढभूमिहुआ सो अभ्यास फलकी प्राप्तिवासतै होवैगा नहीं इसीकारणतैं पतंजलि भगवान्नैं दीर्घकाल नैरंतर्य सत्कार यह तीनों कथन करे हैं इति। इतने कहणेकरिकै अभ्यासका स्वरूप कथन कऱ्या। अब वैराग्यका स्वरूप कथन करैं हैं। तहां वैराग्य दो प्रकारके होवैहैं एक तौ अपरवैराग्य होवैहै और दूसरा परवैराग्य

होवैहै तहां यतमान व्यतिरेक एकेंद्रिय वशीकार या भेदकरिकै सो अपरवैराग्य च्यारि प्रकारका होवैहै। तहां पूर्व भूमिकाके जयकरिकै उत्तरभूमिकाके संपादनकी विवक्षाकरिकै सो पतंजलि भगवान् चौथा वशीकारनामा वैराग्यही कथन करता भयाहै। तहां सूत्र-(दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्।) अर्थ यह-स्त्री अन्न पान मैथुन ऐश्वर्य इत्यादिक विषय सर्व लोकोंकूं प्रत्यक्ष होणेतैं दृष्टविषय कहेजावैंहैं। और स्वर्ग विदेहता प्रकृतिलय इत्यादिक विषय केवल शास्त्रप्रमाणकरिकै गम्य होणेतैं आनुश्रविक विषय कहेजावैंहैं। तिन दोनों प्रकारके विषयोंकी तृष्णाके हुएभी विवेककी न्यून अधिकताकरिकै यतमानादिक तीव्र वैराग्य सिद्ध होवैंहैं। तहां इस जगत्‌विषे कौन वस्तु सार है तथा कौन वस्तु असार है इस वार्त्ताकूं मैं गुरुशास्त्रतैं निश्चय करौं याप्रकरका जो उद्योग है ताकूं यतमाननामा वैराग्य कहैं हैं। और आपणे चित्तविषे पूर्व विद्यमान जे दोष हैं तिन दोषोंके मध्यविषे अभ्यस्यमान विवेककरिकै इतने दोष पक्क हुए इतनै दोष बाकी रहतेहैं इसप्रकारतैं चिकित्साकी न्यांई जो विवेचन है ताकूं व्यतिरेकनामा वैराग्य कहैं हैं। और दृष्टआनुश्रविकविषयोंकी प्रवृत्तिकूं दुःखरूप जानिकै बाह्य इंद्रियोंके प्रवृत्तिकूं नहीं उत्पन्न करती हुईभी तृष्णाका जो औत्सुक्यमात्रकरिकै मनविषे अवस्थान है, ताका नाम एकेंद्रियनामा वैराग्य है। और तिस मनविषेभी तृष्णाके अभावकरिकै जो सर्वप्रकारतैं वैतृष्ण्य है अर्थात् तृष्णाकी विरोधी ज्ञानप्रसादरूप जा चित्तकी वृत्ति विशेषहै ताका नाम वशीकारनामा वैराग्यहै। सो वशीकारनामा वैराग्य संप्रज्ञातसमाधिका तौ अंतरंग साधन होवैहै और असंप्रज्ञातसमाधिका बहिरंग साधन होवैहै। ता असंप्रज्ञातसमाधिका तौ परवैराग्यही अंतरंग साधन होवैहै। सो परवैराग्यका स्वरूप पतंजलि भगवान्‌नैं योगसूत्रोंविषे यह कह्याहै। तहां सूत्र-(तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्) अर्थ यह-संप्रज्ञातसमाधिकी दृढता करिकै त्रिगुणात्मक प्रधानतैं पृथक् करेहुए पुरुषका साक्षात्कार उत्पन्न होवैहै। तिसतैं अनंतर संपूर्ण तीन गुणोंके व्यवहारोंविषे जो वैतृष्ण्य होवै है सो परवैराग्य कह्या जावै है अर्थात् सर्वतैं श्रेष्ठ फलभूत वैराग्य कह्याजावै है। तिस परवैराग्यकी परिपाकतातैं चित्तके उपशमकी परिपाकता होइकै शीघ्रही कैवल्यकी प्राप्ति होवैहै। इसी सर्व अभिप्रायकूं लेकै श्रीभगवान्‌नैं (अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते।) यह वचन कथन कऱ्या है॥ ३५॥

हे अर्जुन ! पूर्व तुमनैं जो यह कह्याथा तत्त्वज्ञानतैंभी प्रबल जो प्रारब्धकर्म है सो प्रारब्धकर्म आपणे फलके देणेवासतै मनके वृत्तियोंकूं अवश्यकारिकै उत्पन्न करैगा वृत्तियोंतैं विना सो फलका भोग बनता नहीं। ऐसी मनकी वृत्तियोंके उत्पन्न हुए तिन वृत्तियोंका निरोध कऱ्या जावै नहीं इति। सो इसका उत्तर अब तूं श्रवण कर–

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः॥
वश्यात्मनतु यतता शक्यो वाप्तुमुपायतः॥ ३६॥

(पदच्छेदः) असंयतात्मना। योगः। दुष्प्रापः। इति। मे। मतिः। वश्यात्मना। तु। यतता। शक्यः। अवाप्तुम्। उपायतः॥३६॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! असंयतात्मा पुरुषनैं सो योग दुःखकारिकैभी नहीं पाइसकीताहै यह वार्त्ता हमारेकूं संमत है तौभी यतमान वश्यात्मा पुरुषनैं उपायतैं प्राप्त होणेकूं शक्य है॥ ३६॥

भा० टी०–तत्त्वसाक्षात्कारके उत्पन्न हुएभी वेदांतशास्त्रके व्याख्यानादिकों विषे चित्तकी संलग्नतातैं अथवा आलस्यादिक दोषोंतैं अभ्यास वैराग्यकारिकै नहीं निरुद्ध कऱ्या है अंतःकरण जिसनैं ताका नाम असंयतात्मा है ऐसा असंयतात्मा पुरुष यद्यपि तत्त्वसाक्षात्कारवालाभी है तथापि सो असंयतात्मा पुरुष प्रारब्धकर्मकृत चित्तकी चंचलतातैं मनकी सर्व वृत्तियोंके निरोधरूप योगकूं दुःखकारिकैभी प्राप्त होइ सकै नहीं। इसप्रकारका वचन जो तुमनैं कह्या है सो तुम्हारा कहणा हमारेकूंभी संमत है अर्थात् सो तुम्हारा कहणा यथार्थ है। शंका–हे भगवन् ! असंयतात्मा पुरुष जबी तिस योगकूं नहीं प्राप्त होवै है तबी सरा कौन पुरुष तिस योगकूं प्राप्त होवै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए श्रीभगवान् कहैंहैं (वश्यात्मना तु इति) वैराग्यके परिपाककरिकै वासनाके क्षयहुए वश्य हुआ है क्या स्वाधीन हुआ है अर्थात् विषयोंकी परतंत्रतातैं शून्य हुआ है आत्मा क्या अंतःकरण जिसका ताका नाम वश्यात्मा है। इहां (वश्यात्मना तु) या वचनके अंतविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द पूर्व उक्त असंयतात्मा पुरुषतैं इस वश्यात्मा पुरुषविषे विलक्षणताके बोधन करणेवासतैहै अथवा निश्चयार्थक है। तथा जो पुरुष वैराग्यकरिकै चित्तरूप नदीके विषयाभिमुख प्रवाहकूं रोकिकै प्रत्यक्आत्माके-

अभिमुखताका प्रवाह करणेवासतै पूर्व उक्त अभ्यासकूं करै है ताका नाम यतत है । ऐसा वश्यात्मा यतमान पुरुषही चित्तकी चंचलता करणेहारे प्रारब्ध कर्मोंकाभी अभिभवकरिकै ता सर्व चित्तवृत्तियोंके निरोधरूप योगकूं प्राप्त होणेवासतै समर्थ होवै है । शंका—अत्यंत बलवान् जे प्रारब्ध कर्म हैं तिन प्रारब्ध कर्मोंका अभिभव किसप्रकारतैं होवै है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (उपायतः इति) हे अर्जुन ! पुरुष प्रयत्नरूप जो उपाय है तिस उपायतैंही तिस प्रारब्धकर्मका अभिभव होवै है । काहेतैं सो लौकिक पुरुषप्रयत्न तथा वैदिकपुरुषप्रयत्न ता प्रारब्धकर्मकी अपेक्षा करिकै प्रबल है । जो कदाचित् ता पुरुषप्रयत्नकूं प्रारब्धकर्मतैं प्रबल नहीं अंगीकार करिये तौ लौकिकपुरुषोंके कृषि आदिक प्रयत्नकूं तथा वैदिकपुरुषोंके ज्योतिष्टोमादिक प्रयत्नकूं व्यर्थता प्राप्त होवैगी । और सर्व कार्यविषे प्रारब्धकर्मके सत्त्वका तथा असत्त्वका विकल्पही प्राप्त होवैगा । ता करिकै किसीभी कार्यविषे प्रवृत्ति नहीं होवैगी । काहेतैं प्रारब्धकर्मके सत्त्वहुए तिसतैंही फलकी प्राप्ति होइ जावैगी ता फलकी प्राप्तिविषे पुरुषप्रयत्नका कछु प्रयोजन नहीं है। और प्रारब्धकर्मके असत्त्व हुएतैं सर्व प्रकारतैं फलकी प्राप्ति होणी असंभव है यातैंभी पुरुषप्रयत्नका कछु प्रयोजन नहीं है । इस प्रकारका विचार करिकै कोईभी पुरुष किसीभी लौकिक वैदिक कार्यविषे प्रवृत्त होवैगा नहीं । शंका—सो प्रारब्धकर्म आप अदृष्टरूप है । जो अदृष्टकारण होवैहै सो दृष्टकारणतैं विना कार्यका जनक होवै नहीं किंतु दृष्टकारणकी सहायताकरिकैही सो अदृष्टकारण कार्यका जनक होवैहै । यातैं अदृष्टकारणरूप सो प्रारब्धकर्मभी दृष्टसाधनसंपत्तितैं विना फलकी उत्पत्ति करणेविषे समर्थ होवै नहीं । यातैं कृषि आदिक लौकिक कार्योंविषे तथा ज्योतिष्टोमादिक वैदिक कार्योंविषे ता प्रारब्धकर्मकूं सो पुरुषप्रयत्न अवश्य अपेक्षित है । समाधान—यह वार्त्ता तौ योगाभ्यासविषेभी समानही है । काहेतैं ता योगाभ्यासकरिकै साध्य जा जीवन्मुक्ति है ता जीवन्मुक्तिकूंभी सुखातिशयरूपता होणेतैं प्रारब्धकर्मके फलविषेही अंतर्भाव है । याकारणतैंही अध्यात्मशास्त्रोंविषे ता जीवन्मुक्तिकूं अनेकजन्मोंके पुण्यकर्मोंका फलरूप कथन कऱ्या है । यातैं ता जीवनमुक्तिरूप फलकी प्राप्तिवासतै दृष्टकारणरूप योगाभ्यासका संपादन करणा संभवै है । अथवा तत्त्ववेत्ता पुरुषके देहइंद्रियादिक संघातकी स्थितिकूं देखिकै जैसे प्रारब्धकर्मकूं तत्त्वज्ञानतैं प्रबलता कल्पना करी

जावै है तैसे तिस प्रारब्धकर्मतैंभी सो योगाभ्यास प्रबल होवौ। काहेतैं शास्त्रप्रतिपादित यत्नकूं सर्वतैं प्रबलताही देखणेविषे आवै है। यह वार्त्ता वसिष्ठ भगवान्नैंभी कथन करी है। तहां श्लोक–(सर्वमेवेह हि सदा संसारे रघुनंदन॥ सम्यक्प्रयुक्तात्सर्वेण पौरुषात्समवाप्यते॥ १॥ उच्छास्त्रं शास्त्रितं चेति पौरुषं द्विविधं स्मृतम्॥ तत्रोच्छास्त्रमनर्थाय परमार्थाय शास्त्रितम्॥ २॥ शुभाशुभाभ्यां मार्गाभ्यां वहंती वासनासरित्॥ पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि॥ ३॥ अशुभेषु समाविष्टं शुभेष्वेवावतारय॥ स्वमनः पुरुषार्थेन बलेन बलिनां वर॥ ४॥ प्रागभ्यासवशाद्याति यदा ते वासनोदयम्॥ तदाभ्यासस्य साफल्यं विद्धि त्वमरिमर्दन॥ ५॥ संदिग्धायामपि भृशं शुभामेव समाहर॥ शुभायां वासनावृद्धौ तात दोषो न कश्चन॥ ६॥ अव्युत्पन्नमना यावद्भवानज्ञाततत्पदः॥ गुरुशास्त्रप्रमाणैस्त्वं निर्णीतं तावदाचर॥ ७॥ ततः पक्ककषायेण नूनं विज्ञातवस्तुना॥ शुभोप्यसौ त्वया त्याज्यो वासनौघो निरोधिना॥८॥) अर्थ यह–हे रघुनंदन! इसलोकविषे सर्वपुरुष सम्यक् करेहुए पुरुषप्रयत्नतैं सर्व पदार्थोंकूं प्राप्त होवैंहै। ऐसा कोई पदार्थ है नहीं जो पुरुषप्रयत्नकरिकै नहीं प्राप्त होवै १। हे रामचंद्र! सो पुरुषप्रयत्नरूप पौरुष दो प्रकारका होवै है। एक तौ उत्शास्त्र होवैहै दूसरा शास्त्रित होवैहै। तहां शास्त्रकरिकै प्रतिषिद्ध पौरुषकूं उत्शास्त्र कहैं हैं और शास्त्रकरिकै विहित पौरुषकूं शास्त्रित कहैं हैं। तहां उत्शास्त्र पौरुष तौ नरककी प्राप्तिवासतैही होवैहै। और शास्त्रित पौरुष तौ अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा मोक्षकी प्राप्तिवासतैही होवैहै २। हे रामचंद्र! यह वासनारूप नदी शुभ अशुभ या दोनों मार्गोंतैं वहन करैहै। तहां इस अधिकारी पुरुषनैं पुरुषप्रयत्नकरिकै यह वासनारूप नदी अशुभमार्गतैं रोकिकै शुभमार्गविषे प्रवृत्त करणी ३। हे सर्व बलवान्पुरुषोंविषे श्रेष्ठ रामचंद्र! अशुभ कर्मोंविषे प्रवृत्तहुए आपणे मनकूं तूं पुरुषप्रयत्नकरिकै तिन अशुभकर्मोंतैं निवृत्त करिकै शुभकर्मोंविषे प्रवृत्त कर ४। हे शत्रुवोंकूं नष्ट करणेहारा रामचंद्र! पूर्वले अभ्यासके वशतैं जबी तुम्हारी शुभवासना उत्पन्न होवै तबीही तुमनै आपणे अभ्यासकी सफलता जानणी ५। ता वासनाके अनिर्णय हुएभी तूं निरंतर शुभवासनाकूंही संपादन कर। हे पुत्र! ता शुभवासनाकी वृद्धिहुए किंचित्मात्रभी दोष होवै नहीं। अशुभवासनाकी वृद्धितैंही दोषकी प्राप्ति होहै ६। हे रामचंद्र! जब पर्यंत तूं अव्युत्पन्न मनवाला है तथा परमपदके ज्ञानतैं रहित है तबपर्यंत गुरुशास्त्रप्रमाण

करिकै निर्णीत अर्थकूंही तूं श्रद्धाभक्तिपूर्वक अनुकरण कर ७ । हे रामचंद्र ! इसप्रकारके उपायतैं जबी तुम्हारे पापरूप कषाय निवृत्त होवैं तथा आत्मवस्तुका निश्चय होवै तथा मनका निरोध होवैं तबी तुमनै ता शुभवासनाकाभी परित्यागही करणा इति ८ । इत्यादिक अनेक वचनोंकारिकै वसिष्ठ भगवान्नैं पुरुषप्रयत्नकी प्रबलता कथन करीहै । यातैं सो शास्त्रीय पुरुषप्रयत्न सर्वतैं प्रबल है । ता पुरुषप्रयत्नकारिकै तिस प्रारब्धकर्मका अभिभव संभवैहै । इतनैं कहणे करिकै पूर्व उक्त अर्जुनके प्रश्नका यह उत्तर सिद्ध भया । साक्षी आत्माविषे स्थित जो अविवेकसिद्ध संसारबंध है ता संसारबंधकी विवेकसाक्षात्कारतैं निवृत्त हुएभी प्रारब्धकर्मनैं स्थित करे हुए चित्तकी स्वाभाविकभी वृत्तियोंकूं जो पुरुष योगाभ्यासके प्रयत्न करिकै निवृत्त करैहै सो जीवन्मुक्त पुरुष परमयोगी कह्याजावैहै । और तिन चित्तवृत्तियोंके नहीं निरोधकियेहुए यह पुरुष तत्त्वज्ञानवाला हुआभी परमयोगी कह्याजावैनहीं किंतु अपरमयोगी कह्याजावैहै ॥ ३६ ॥

तहां इस पूर्वग्रंथकारिकै यह वार्त्ता कथन करी जिस पुरुषकूं तत्त्वज्ञानकी तौ प्राप्ति हुईहै परंतु जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति हुई नहीं सो पुरुष अपरमयोगी कह्याजावैहै । और जिस पुरुषकूं तत्त्वज्ञानकीभी प्राप्ति हुईहै तथा जीवन्मुक्तिकीभी प्राप्ति हुईहै सो पुरुष परमयोगी कह्याजावैहै इति । तहां अपरमयोगी तथा परमयोगी दोनोंका तत्त्वज्ञानकारिकै अज्ञानके नाश हुएभी जबपर्यंत प्रारब्धकर्म विद्यमान है तबपर्यंत देहइंद्रियसंघात बन्यारहैहै । और ता प्रारब्धकर्मका जबी भोगतैं नाश होवैहै तबी तिन दोनोंका देहइंद्रियसंघातभी नाश होइजावैहै । और एकवार नाशकूं प्राप्तहुआ सो संघात पुनः कदाचित्भी उत्पन्न होवै नहीं । जिसकारणतैं ता संघातके उत्पादक अविद्याका कर्म तिन तत्त्ववेत्ता पुरुषोंके नाश होइगयेहैं । यातैं तिन दोनों प्रकारके विद्वान् पुरुषोंकूं विदेहकैवल्यकी प्राप्तिविषे किंचित्मात्रभी शंका नहीं है परंतु जो पुरुष पूर्व करेहुए निष्काम कर्मोंकारिकै विविदिषा पर्यंत चित्तशुद्धिकूं प्राप्त हुआहै तिसतैं अनंतर शास्त्रविधिपूर्वक तिन सर्व कर्मोंका परित्याग करिकै विविदिषारूप परमहंस संन्यासकूं प्राप्त हुआहै । तिसतैं अनंतर श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ जीवन्मुक्तसंन्यासी गुरुके समीप जाइकै तिस ब्रह्मवेत्ता गुरुतैं वेदांतमहावाक्यके उपदेशकूं प्राप्त होइकै ता उपदेशविषे असंभावना विपरीतभावनारूप प्रतिबंधकी निवृत्तिवासतै (अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ॥) इस सूत्रतैं आदिलैके (अनावृत्तिः शब्दात् ॥) इस सूत्रपर्यंत

समग्र च्यारि अध्यायरूप उत्तरमीमांसाशास्त्रकारिकै श्रवण मनन निदिध्यासन या तीनोंकूं गुरुके प्रसादतैं करणेका आरंभ करैहै। सो अधिकारी पुरुष श्रद्धावान् हुआभी आयुषकी अल्पताकारिकै अल्पप्रयत्नवाला होणेतैं इस जन्मविषे आत्मज्ञानकूं प्राप्त-हुआ नहीं किंतु ता श्रवणमनननिदिध्यासनके करतेहुएही मध्यविषे मरणकूं प्राप्त होइगया सो पुरुष आत्मज्ञानतैं रहित होणेतैं अज्ञानके नाशतैं रहित है यातैं सो पुरुष मोक्षकूं तौ प्राप्त होवै नहीं और तिस पुरुषनैं कर्मोंका तथा उपासनाका पूर्व परित्याग कऱ्याहै यातैं सो पुरुष अर्चिरादि मार्गकारिकै उपासनासहित कर्मके देवलो-करूप फलकूंभी प्राप्त होवै नहीं। तथा सो पुरुष धूमादिक मार्गकारिकै केवल कर्मोंके पितृलोकरूप फलकूंभी प्राप्त होवै नहीं किंतु सो योगभ्रष्ट पुरुष कीटपतंगादिक भावकी प्राप्तिकरिकै कष्टगतिकूंही प्राप्त होवैगा। आत्मज्ञानतैं रहित हुआ देवयान पितृयाण मार्गके असंबंधवाल होणेतैं वर्णआश्रमके आचारतैं भ्रष्टहुए पुरुषकी न्याईं अथवा सो पुरुष ता कष्टगतिकूं नहीं प्राप्त होवैगा। शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंके अभाववाला होणेतैं वामदेवकी न्याईं इसप्रकारके संशयकारिकै व्याकुल हुआहै मन जिसका ऐसा जो अर्जुन है सो अर्जुन ता संशयकी निवृत्ति करणेवासतै श्रीभगवान्के प्रति प्रश्न करैहै—

अर्जुनउवाच।

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः॥
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति॥३७॥

(पदच्छेदः) अयतिः। श्रद्धया। उपेतः। योगात्। चलितमानसः। अप्राप्य। योगसंसिद्धिम्। काम्। गतिम्। कृष्ण। गच्छति॥ ३७॥

(पदार्थः) हे कृष्ण! जो पुरुष अल्पप्रयत्नवाला है तथा श्रद्धाकरिकै युक्त है तथा तत्त्वसाक्षात्कारतैं चलायमान हुआ है मन जिसका सो पुरुष तत्त्वज्ञानके फलकूं न प्राप्तहोइकै मरणकूं प्राप्तहुआ किसै गतिकूं प्राप्त होवैहै॥ ३७॥

भा०टी०—हे कृष्ण भगवन्! आयुषकी अल्पताकारिकै जो पुरुष अल्पप्रयत्नवा-लाहै तथा गुरुवेदांतवाक्योंविषे विश्वासबुद्धिरूप जा श्रद्धा है ता श्रद्धाकारिकै युक्त है। इहां श्रद्धा आपणे सहवर्त्ति शमदमादिकोंकाभी उपलक्षण है। ते श्रद्धासहित शमदमादिक (शांतो दांत उपरतस्तितिक्षुः श्रद्धावित्तो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्यति।)

इस श्रुतिविषे कथन करेहैं । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया, नित्य अनित्य वस्तुका विवेक तथा इसलोक परलोकके फलभोगोंविषे वैराग्य तथा शम दम उपरति तितिक्षा श्रद्धा समाधान यह षट्संपत्ति तथा मोक्षकी इच्छारूप मुमुक्षुता इन च्यारि साधनोंकारिकै संपन्नहुआ जो पुरुष श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके समीप जाइकै वेदांतवाक्योंके श्रवणमननादिकोंकूं करताभी है परंतु आयुष्यकी अल्पताकारिकै तथा मरणकालविषे इंद्रियोंकी व्याकुलताकारिकै तिन श्रवणादिक साधनोंके दृढ अनुष्ठानके असंभवतैं जो पुरुष योगतैं चलितमनवाला हुआहै इहां श्रवणमननादिकोंके परिपाककरिकै उत्पन्नभया जो तत्त्वसाक्षात्कार है ताका नाम योग है ता योगतैं चलित हुआहै क्या तिस योगके फलकूंही प्राप्त हुआहै मन जिसका ऐसा जो पुरुष है सो पुरुष ता योगसंसिद्धिकूं न प्राप्त होइकै अर्थात् तत्त्वसाक्षात्काररूप योगकारिकै प्राप्त होणेहारी जा अपुनरावृत्तिसहित कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति है ताका नाम योगसंसिद्धि है ताकूं न प्राप्त होइकै अतत्त्वज्ञ हुआही मध्यविषे मृत्युकूं प्राप्तहुआ किस गतिकूं प्राप्त हुआ, किस गतिकूं प्राप्त होवैहै अर्थात् सो पुरुष सुगतिकूं प्राप्त होवैहै अथवा दुर्गतिकूं प्राप्त होवैहै । तात्पर्य यह—तिस पुरुषनैं नित्यनैमित्तिक कर्मोंका तौ परित्याग कऱ्याहै तथा ज्ञानकी उत्पत्ति हुई नहीं यातैं तिसपुरुषकूं दुर्गतिके प्राप्तिकी भी संभावना होवैहै । और तिस पुरुषनैं शास्त्रउक्त मोक्षसाधनोंका अनुष्ठान कऱ्याहै तथा शास्त्रप्रतिषिद्ध कर्मोंका परित्याग कऱ्याहै यातैं तिस पुरुषकूं सुगतिके प्राप्तिकी भी संभावना होवैहै ॥ ३७ ॥

अब इसी पूर्व उक्त संशयके बीजकूं स्पष्टकारिकै निरूपण करैं हैं—

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ॥
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥३८॥

(पदच्छेदः) कच्चित् । न । उभयविभ्रष्टः । छिन्नाभ्रम् । इव । नश्यति । अप्रतिष्ठः । महाबाहो । विमूढः । ब्रह्मणः । पथि ॥ ३८ ॥

(पदार्थः) हे महान् बाहुवाले कृष्ण ! ब्रह्मप्राप्तिके ज्ञानरूप मार्गविषे विमूढ तथा कर्मउपासनातैं रहित ऐसा उभयभ्रष्ट पुरुष विच्छिन्नहुए अभ्रकी न्याईं क्यों नहीं नाशकूं प्राप्त होवैगा ॥ ३८ ॥

भा० टी०—हे महाबाहो ! अर्थात् सर्व भक्तजनोंके सर्व उपद्रवोंके निवृत्त करणेविषे समर्थ हैं च्यारों भुजा जिसकी अथवा सर्व भक्तजनोंके प्रति धर्म अर्थ

काम मोक्ष या च्यारि प्रकारके पुरुषार्थ देणेविषे समर्थ हैं च्यारि भुजा जिसकी ताका नाम महाबाहु है। इहां (हे महाबाहो) या संबोधनके कहणेकरिकै अर्जुननैं श्रीभगवान्‌विषे स्वप्रश्ननिमित्तक क्रोधका अभाव सूचन कऱ्या । तथा तिस प्रश्नके उत्तरदेणेका सामर्थ्य सूचन कऱ्या। और (कच्चित्) यह पद अभिलाषासहित प्रश्नका वाचक है सो दिखावैं हैं । हे भगवन् ! जो पुरुष अद्वितीयब्रह्मकी प्राप्तिके आत्मज्ञानरूप मार्गविषे विमूढ है अर्थात् ता ब्रह्म आत्माके ऐक्यसाक्षात्कारकी उत्पत्तितैं रहित है तथा जो पुरुष अप्रतिष्ठ है अर्थात् पितृयाणमार्गविषे गमनका साधनरूप जो कर्म है तथा देवयानमार्गविषे गमनका साधनरूप जा उपासना है ता कर्म उपासना दोनोंतैं रहित है जिसकारणतैं उपासनासहित सर्व कर्मोंका तिस पुरुषनैं पूर्वही परित्याग कऱ्याहै ऐसा जो उभयभ्रष्ट पुरुष है अर्थात् कर्ममार्गतैं तथा ज्ञानमार्गतैं दोनोंतैं भ्रष्ट है ऐसा पुरुष छिन्न अभ्रकी न्याईं क्यों नाशकूं नहीं प्राप्त होइकै अर्थात् जैसे वायुनैं पूर्व मेघतैं पृथक् कऱ्या जो अभ्र है सो अभ्र जैसे पूर्व मेघतैं भ्रष्ट होइकै तथा उत्तर मेघकूं न प्राप्त होइकै वृष्टिके अयोग्य हुआ मध्यविषेही नाशकूं प्राप्त होवैहै तैसे सो योगभ्रष्ट पुरुषभी पूर्वकर्ममार्गतैं विच्छिन्न हुआ तथा उत्तरज्ञानमार्गकूं नहीं प्राप्तहुआ मध्यविषेही नाशकूं प्राप्त होवैगा ।ऐसा योगभ्रष्ट पुरुष कर्मके फलकूं तथा ज्ञानके फलकूं प्राप्त होणेवासतै अयोग्य नहीं है क्या इति। इतनैं कहणेकरिकै ज्ञान कर्म दोनोंका समुच्चयभी निराकरण कऱ्या काहेतैं इस समुच्चयपक्षविषे ज्ञानके फलके अलाभ हुएभी कर्मके फलका लाभ संभव होइसकैहै। यातैं ता समुच्चयकूं करणेहारे पुरुषविषे उभयभ्रष्टपणा संभवता नहीं । इहां जो कोई यह शंका करै, तिस पुरुषकूं कर्मोंके संभव हुएभी तिस पुरुषनैं कर्मोंके फलकी कामना परित्याग कऱ्याहै। यातैं कर्म करतेहुएभी तिस पुरुषविषे उभयभ्रष्टपणा संभव होइसकैहै सो यह शंकाभी संभवै नहीं, काहेतैं जैसे सकामकर्मोंका फल होवैहै तैसे निष्काम कर्मोंकाभी फल होवैहै यह वार्त्ता पूर्व आपस्तंबऋषिका वचन प्रमाण देकै कथन करिआयेहैं । यातैं ज्ञान कर्म दोनोंके समुच्चयकूं अनुष्ठान करणेहारे पुरुषऊपरि यह प्रश्न नहीं है किंतु सर्वकर्मोंके त्यागी संन्यासी ऊपरिही यह प्रश्न है। जिसकारणतैं अनर्थके प्राप्तिकी शंका तिस सर्वकर्मोंके त्यागी संन्यासीविषेही संभव होइसकैहै ॥ ३८ ॥

अब इस पूर्व उक्त संशयके निवृत्त करणेवासतै सो अर्जुन अंतर्यामी कृष्ण भगवान्‌के प्रति प्रार्थना करैहै—

एतन्मे संशयं कृष्ण च्छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥
त्वदन्यः संशयस्यास्य च्छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥ ३९ ॥

(पदच्छेदः) एतत् । मे । संशयम् । कृष्ण । छेत्तुम् । अर्हसि । अशेषतः । त्वदन्यः । संशयस्य । अस्य । छेत्ता । न । हि । उपपद्यते॥३९॥

(पदार्थः) हे कृष्ण ! हमारे इस संशयकूं अशेषतैं निवृत्त करणेकूं आपही योग्य हो जिसकारणतैं तुम्हारेतैं अन्य कोईभी इस संशयके छेदनकरणेहारा नहीं संभवै है ॥ ३९ ॥

भा० टी०—हे कृष्ण भगवन् ! पूर्व दोश्लोकोंकरिकै हमनैं दिखाया जो आपणा संशय है तिस हमारे संशयकूं अशेषतैं निवृत्त करणेकूं अर्थात् ता संशयके मूलभूत जे अधर्मादिक हैं तिन अधर्मादिकोंके उच्छेदनपूर्वक ता संशयके निवृत्त करणेकूं एक आपही योग्य हो। शंका—हे अर्जुन ! मेरेतैं अन्य कोई ऋषि अथवा कोई देवता तुम्हारे इस संशयकूं निवृत्त करैगा ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहैहै (त्वदन्यः इति) हे भगवन् ! सर्वज्ञ तथा सर्व शास्त्रोंका कर्त्ता तथा परमगुरुरूप तथा परमकृपालु ऐसे जो आप परमेश्वर हो तिस आपतैं भिन्न जितनेक ऋषि हैं तथा जितनेक देवता हैं ते सर्व अनीश्वर होणेतैं असर्वज्ञही हैं यातैं कोई ऋषि तथा कोई देवता इस योगभ्रष्ट पुरुषके परलोकगतिविषयक हमारे संशयके सम्यक् उत्तर देकरिकै नाश करणेहारा संभवता नहीं । यातैं सर्वका परमगुरु तथा सर्व अर्थकूं प्रत्यक्ष देखणेहारा आप ईश्वरही इस हमारे संशयके निवृत्त करणेकूं योग्य हो ॥ ३९ ॥

इसप्रकार अर्जुनकी योगी पुरुषके नाशकी शंकाकूं निवृत्त करणेवास्तै श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं—

श्रीभगवानुवाच ।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ॥
नहि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥ ४० ॥

(पदच्छेदः) पार्थ । न । एव । इह । न । अमुत्र । विनाशः । तस्य । विद्यते । न । हि । कल्याणकृत् । कश्चित् । दुर्गतिम् । तात । गच्छति ॥ ४० ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! तिस योगभ्रष्ट पुरुषका इस लोकविषे कदाचित्भी विनाश नहीं होवैहै तथा परलोकविषेभी विनाश नहीं होवैहै जिसकारणतैं हे तात ! शास्त्रविहितकारी कोईभी पुरुष दुर्गतिकूं नहीं प्राप्त होवैहै ॥ ४० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! उभयभ्रष्ट हुआ सो योगी पुरुष नाशकूंही प्राप्त होवैहै, यह जो वचन पूर्व तुमनैं कथन कऱ्याथा तिस वचनका क्या अर्थ है क्या सो पुरुष वेदविहित कर्मोंके परित्याग करणेतैं इस लोकविषे किसी प्रमादी पुरुषकी न्याई श्रेष्ठ पुरुषोंकारिकै निंदाकरणे योग्य होवैहै। अथवा सो पुरुष परलोकविषे निकृष्ट गतिकूं प्राप्त होवैहै । जा परलोकविषे निकृष्ट गति श्रुतिनैं कथन करीहै । तहां श्रुति–(अथैतयोः पथोर्न कतरेण च न ते कीटाः पतंगा यदि दंदशूकम् ।) अर्थ यह–देवलोकके प्राप्तिका जो देवयान मार्ग है तथा पितृलोकके प्राप्तिका जो पितृयाण मार्ग है तिन दोनों मार्गोंविषे एक मार्गविषेभी जे पुरुष प्रवृत्त नहीं होवैहैं ते अज्ञानी पुरुष कीट पतंग मशकादिक क्षुद्र शरीरोंकूं वारंवार प्राप्त होवैहैं इति । सो यह दोनों प्रकारका नाश तिस योगभ्रष्टपुरुषका होवै नहीं । इस अर्थकूं श्रीभगवान् कहैहैं । हे पार्थ ! जिस पुरुषनैं शास्त्र उक्त विधिपूर्वक सर्व कर्मोंका परित्यागरूप संन्यास कऱ्याहै तथा जो पुरुष सर्वतैं विरक्त हुआहै तथा जो पुरुष ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाइकै वेदांतशास्त्रके श्रवणादिकोंकूं करैहै तथा जो पुरुष तिन श्रवणमननादिकोंके करतेहुएही मध्यविषे मरणकूं प्राप्त हुआहै ऐसा जो योगभ्रष्ट पुरुष है तिस योगभ्रष्ट पुरुषका इस लोकविषे तथा परलोकविषे विनाश होवै नहीं । इसी अर्थविषे श्रीभगवान् हेतु कहैहैं (नहि कल्याणकृत् इति) हे तात ! जो कोई पुरुष किंचित् मात्रभी शास्त्रविहित अर्थका अनुष्ठान करैहै सो पुरुष इस लोकविषे तौ अपकीर्तिरूप दुर्गतिकूं नहीं प्राप्त होवैहै और परलोकविषे कीट पतंगादिक शरीरोंकी प्राप्तिरूप दुर्गतिकूं नहीं प्राप्त होवैहै । जबी सामान्यतैं शास्त्रविहित अर्थके अनुष्ठान करणेहारा पुरुषभी ता दुर्गतिकूं प्राप्त होवै नहीं तबी सर्वतैं उत्कृष्ट सो योगभ्रष्ट ता दुर्गतिकूं नहीं प्राप्त होवैहै याके विषे क्या कहणाहै । इहां श्रीभगवान्नैं अर्जुनकूं हे तात ! या संबोधनकारिकै जो कथनकऱ्याहै ताका यह अभिप्राय है–(तनोत्यात्मानं पुत्ररूपेणेति तातः) अर्थ यह–जो पुरुष आपणे आत्माकूंही पुत्ररूपकारिकै विस्तार करै ताकूं तात कहैहैं इसरीतिसैं तात शब्द पिताका वाचक है । सो पिताही पुत्ररूप होवैहै ।

यातैं ता पुत्रकूंभी तात कहैंहैं । और शिष्यभी पुत्रके समानही होवैहै । यातैं तिस पुत्रके स्थानविषे शिष्यका जो तात यह संबोधन है सो तिस शिष्य ऊपरि कृपाकी अतिशयताके सूचनवासतै है इति । तहां पूर्वप्रश्नविषे जो यह वचन कह्याथा सो योगभ्रष्ट पुरुष कष्टगतिकूं प्राप्त होवैहै अज्ञानी हुआ देवयान पितृयाण मार्गके असंबंधवाला होणेतैं स्वधर्मतैं भ्रष्टपुरुषकी न्याई, सो यह कहणाभी अयुक्त है । काहेतैं सो योगभ्रष्ट पुरुष ता देवयान मार्गके असंबंधवाला नहीं है । किंतु ता देवयान मार्गके संबंधवालाही है । यातैं ता अनुमानविषे सो हेतुही असिद्ध है अर्थात् ता योगभ्रष्ट पुरुषविषे सो हेतु रहै नहीं । काहेतैं पंचाग्नि विद्याविषे यह वचन कह्याहै-(य इत्थं विदुर्ये चामी अरण्ये श्रद्धां सत्यमुपासते तेऽर्चिरभिसंभवंतीति ।) इस श्रुतिविषे पंचाग्निके जानणेहारे पुरुषोंकी न्याई श्रद्धावाले तथा सत्यवाले मुमुक्षु जनोंकूंभी देवयान मार्ग द्वारा ब्रह्मलोककी प्राप्ति कथन करीहै और श्रवण मननादिकोंकूं करणेहारा जो योगभ्रष्ट है तिस योगभ्रष्ट पुरुषकूं (श्रद्धावित्तो भूत्वा) इस पूर्व उक्त श्रुतिकरिकै सा श्रद्धाभी प्राप्तही है । तथा (शांतो दांतः) इस श्रुतिवचनकरिकै मिथ्याभाषणरूप जो वाक्इंद्रियका व्यापार है ताका निरोधरूप सत्यभी ता योगभ्रष्टकूं प्राप्तही है । काहेतैं श्रोत्रादिक बाह्य इंद्रियोंके व्यापारका जो निरोध है ताहीकूं दम कहैंहैं । ता दमके प्राप्तहुए सो सत्यभी प्राप्तही है । अथवा योगशास्त्रविषे योगके अंगरूपकरिकै कथन करे जे अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह यह पंच यम हैं ताके प्राप्त हुए सो सत्यभी प्राप्तही है । और पूर्व उक्त स्थितिविषे स्थित सत्य शब्दकरिकै जो ब्रह्मकाही ग्रहण करिये तौभी कोई हानि नहीं है । काहेतैं वेदांतशास्त्रके जे श्रवणादिक हैं ते श्रवणादिकभी ता सत्यब्रह्मका चिंतनरूप ही हैं । यद्यपि जिस पुरुषकी जिस वस्तुविषे बुद्धिकी स्थिति होवैहै सो पुरुष मरणतैं अनंतर तिसीही वस्तुकूं प्राप्त होवैहै यह नियम शास्त्रविषे कथन कऱ्याहै । यातैं सत्यब्रह्मके चिंतन करणेहारे पुरुषोंकूं ब्रह्मलोककी प्राप्ति कहणी संभवै नहीं तथापि यह नियम सर्वत्र नहीं संभवैहै । जिसकारणतैं पंचाग्निविद्याविषेही ता नियमका व्यभिचार है । यातैं जैसे पंचाग्निविद्यावाले पुरुषोंकूं ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवैहै । तैसे तिन सत्यब्रह्मके चिंतन करणेहारे पुरुषोंकूंभी ब्रह्मलोककी प्राप्ति संभवैहै । और (संन्यासाद्ब्रह्मणः स्थानम् ।) इस स्मृतिनैं संन्यासतैंभी ब्रह्मलोककी प्राप्ति

कथन करीहै । और दिनदिनविषे भक्तिश्रद्धापूर्वक जो वेदांतशास्त्रका विचारहै ता विचारकूं अतिकृच्छ्रके फलकी तुल्यता स्मृतिविषे कथन करीहै । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया श्रद्धा सत्य ब्रह्मविचार संन्यास या च्यारोंविषे एक एककूंभी ब्रह्मलोकके प्राप्तिकी साधनरूपता है । जबी एक एककूंभी ता ब्रह्मलोकके प्राप्तिकी साधनरूपता है तबी ता योगभ्रष्ट पुरुषविषे स्थित तिन च्यारोंकूं ब्रह्मलोकके प्राप्तिकी साधनरूपता है याकेविषे क्या कहणा है। इसीकारणतैं तैत्तिरीयशाखावाले ब्राह्मण (तस्य हवा एवं विदुषो यज्ञस्य) इत्यादिक वचनोंकरिकै ता योगी पुरुषके चरितकूं सर्वसुकृतरूप कथन करतेभये हैं । तथा स्मृतिविषेभी य वार्त्ता कथन करीहै । तहां श्लोक-(स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिले सर्वापि दत्तावनिर्यज्ञानां च कृतं सहस्रमखिला देवाश्च संपूजिताः। संसाराच्च समुद्धृताः स्वपितरस्त्रैलोक्यपूज्योऽप्यसौ यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात् ।) अर्थ यह-जिस पुरुषका मन एक क्षणमात्रभी ब्रह्मविचारविषे स्थिरताकूं प्राप्त हुआहै तिस पुरुषनैं संपूर्ण तीर्थोंके जलविषेभी स्नान कऱ्याहै । तथा तिस पुरुषनैं सर्व पृथ्वीभी दान करीहै । तथा तिस पुरुषनैं सहस्र यज्ञभी करे हैं । तथा तिस पुरुषनैं ब्रह्मादिक सर्व देवताभी पूजन करे हैं । तथा तिस पुरुषनैं आपणे पितरभी संसारसमुद्रतैं उद्धार करे हैं । तथा सो पुरुष तीन लोकोंकरिकै भी पूज्य है ॥ ४० ॥

हे भगवन् ! इसप्रकारतैं ता योगभ्रष्ट पुरुषकूं शुभकारिताकरिकै दोनों लोकविषे नाशके अभाव हुएभी दूसरा कौन फल प्राप्त होवैहै । ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं-

प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ॥
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ ४१ ॥

(पदच्छेदः) प्राप्य । पुण्यकृतान् । लोकान् । उषित्वा । शाश्वतीः । समाः । शुचीनाम् । श्रीमताम् । गेहे । योगभ्रष्टः । अभिजायते॥४१॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यात्मा पुरुषोंकूं प्राप्त होणेहारे लोकोंकूं प्राप्त होइकै तहां बहुत संवत्सरपर्यंत निवास करिकै तिसतैं अनंतर पवित्र श्रीमान् पुरुषोंके गृहविषे जन्मकूं प्राप्त होवैहै ॥ ४१ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! जो पुरुष योगमार्गविषे प्रवृत्त हुआहै तथा जिस पुरुषनैं सर्व कर्मोंका त्यागरूप संन्यास कऱ्याहै तथा जो पुरुष निरंतर वेदांतशास्त्रके श्रवणादिकोंकूं करैहै इसप्रकारतैं श्रवणमननादिकोंकूं करता हुआ जो पुरुष मध्यविषेही मरणकूं प्राप्त हुआहै ताके विषेभी कोईक योगभ्रष्ट पुरुष तौ पूर्व अनुभव करेहुए भोगोंकी वासनाके प्रादुर्भावतैं विषयोंकी इच्छा करैहै । और कोईक योगभ्रष्ट पुरुष तौ वैराग्यभावनाकी दृढतातैं तिन विषयोंकी इच्छा करता नहीं । तिन दोनों प्रकारके योगभ्रष्टोंविषे प्रथम योगभ्रष्टका वृत्तांत इस श्लोकविषे कथन करैं हैं। तहां उपासना सहित अश्वमेधादिक यज्ञोंकूं करणेहारे पुरुषोंकूं प्राप्त होणेयोग्य जो ब्रह्मलोक है ता ब्रह्मलोककूं सो योगभ्रष्ट पुरुष अर्चिरादि मार्गद्वारा प्राप्त होइकै ता ब्रह्मलोकविषे ब्रह्माके आयुषूपरिमाण संवत्सरपर्यंत निवास करिकै तिसतैं अनंतर पवित्र तथा विभूतिवाले महाराज चक्रवर्ति पुरुषोंके कुलविषे भोगवासनाशेषके सद्भावतैं अजातशत्रु जनकादिकोंकी न्याई जन्मकूं प्राप्त होवैहै अर्थात् भोगवासनाकी प्रबलतातैं सो योगभ्रष्ट पुरुष ब्रह्मलोकके अंतविषे सर्वकर्मोंके संन्यास करणेकूं अयोग्य महाराजा होवैहै । इहां एकही ब्रह्मलोकविषे (लोकान्) यह जो बहुवचन कथन कऱ्याहै सो ता ब्रह्मलोकविषे स्थित भोगस्थानोंके भेदकूं लैके कथन कऱ्याहै । और श्रीमान् पुरुष धन करिकै अनेक पापकर्मोंकूं करते हुए अधोगतिकूं प्राप्त होवैहै । यातैं सो योगभ्रष्ट पुरुषभी श्रीमान् पुरुषोंके गृहविषे जन्मकूं लैके अधोगतिकूंही प्राप्त होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके निवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान्नैं तिन श्रीमान् पुरुषोंका शुचि यह विशेषण कथन कऱ्याहै अर्थात् जे पवित्र श्रीमान् होवैं हैं ते पापकर्मोंविषे धनादिकोंकूं खर्च करते नहीं किंतु शुभकार्योंविषे धनादिकोंकूं खर्च करतेहुए पूर्वस्थानकी अपेक्षा करिकै अत्यंत महान् स्थानकूं संपादन करैं हैं ॥ ४१ ॥

अब विषयोंकी इच्छातैं रहित दूसरे योगभ्रष्टकी मरणतैं अनंतर गतिकूं कथन करैं हैं—

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ॥
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ ४२ ॥

(पदच्छेदः) अथवा । योगिनाम् । एव । कुले । भवति । धीमताम् । एतत् । हि । दुर्लभतरम् । लोके । जन्म । यत् । ईदृशम् ॥ ४२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अथवा सो योगभ्रष्ट पुरुष ब्रह्मविद्यावाले दरिद्री ब्राह्मणोंके कुलविषे ही जन्म लेवैहै जिस कारणतैं इसलोकविषे इसप्रकारका जो यह जन्म है सो यह जन्म अत्यंत दुर्लभ है ॥ ४२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो पुरुष श्रद्धावैराग्यादिक शुभगुणोंकी अधिकता करिकै विषय भोगवासनातैं रहित है, सो योगभ्रष्ट पुरुष मरणतैं अनंतर तिन पुण्यकारी पुरुषोंके लोकोंकूं नहीं प्राप्त होइकैही ब्रह्मविद्यावाले तथा योगाभ्यास-वाले दरिद्री ब्राह्मणोंके कुलविषे जन्मकूं प्राप्त होवैहै। श्रीमान् राजाओंके कुल-विषे सो योगभ्रष्ट पुरुष जन्मकूं प्राप्त होवै नहीं । हे अर्जुन ! ऐसे ब्रह्मवेत्ता दरिद्री ब्राह्मणोंके कुलविषे जो तिस योगभ्रष्ट पुरुषका जन्म है सो जन्म सर्व प्रमादके कारणोंतैं रहित होणेतैं दुर्लभतर है। तात्पर्य यह—इस लोकविषे पवित्र श्रीमान् राजावोंके गृहविषे जो योगभ्रष्ट पुरुषका जन्म है सो जन्मभी अनेक सुकृतोंकरिकै प्राप्त होवैहै तथा मोक्षविषे परिअवसानवाला है यातैं सो जन्मभी दुर्लभ है। और पवित्र तथा ब्रह्मविद्यावाले ऐसे दरिद्र ब्राह्मणोंके कुलविषे जो जन्म है सो जन्म प्रमादके हेतुभूत धनादिक पदार्थोंतैं रहित होणेतैं ता दुर्लभजन्मतैंभी अत्यंत दुर्लभ है। यातैं यह जन्म दुर्लभतर है। इस रीतिसैं यह दूसरा योगभ्रष्ट स्तुति करणे योग्यहै। तात्पर्य यह—श्रीमान् पुरुषोंके गृहविषे जन्मकूं प्राप्त भया जो प्रथमयोगभ्रष्ट पुरुष है तिसकूं चित्तके विक्षेप करणेहारे अनेक प्रकारके निमित्त प्राप्त हैं ते सर्वनिमित्त इस दूसरे योगभ्रष्टकूं स्वभावतैंही अप्राप्त हैं ते चित्तके विक्षेप करणेहारे निमित्त शास्त्रविषे यह कहे हैं। तहां श्लोक—(मनोहराणां भोज्यानां युव-तीनां च वाससाम्। वित्तस्यापि च सान्निध्याच्चलेच्चित्तं सतामपि ॥ तत्सान्निध्यं ततस्त्यक्त्वा मुमुक्षुर्दूरतो वसेत् ।) अर्थ यह—मनोहर भोजन करणेयोग्य पदा-र्थोंकी समीपतातैं तथा मनोहर स्त्रियोंकी समीपतातैं तथा मनोहर वस्त्रोंकी समीप-तातैं तथा धनकी समीपतातैं श्रेष्ठ पुरुषोंका चित्तभी चलायमान होइ जावैहै। तिस कारणतैं मुमुक्षु जन तिन सर्वपदार्थोंकी समीपताका परित्याग करिकै दूर निवास करैं इति। यातैं सर्व भोगवासनावोंतैं रहित होणेतैं सर्व कर्मोंके संन्यास कर-णेकूं योग्य सो द्वितीययोगभ्रष्ट पुरुष प्रथमयोगभ्रष्टतैं श्रेष्ठ है ॥ ४२ ॥

हे भगवन् ! ता योगभ्रष्ट पुरुषका शुचि श्रीमान् राजावोंके गृहविषे जो जन्म है तथा ब्रह्मविद्यावाले दरिद्री ब्राह्मणोंके गृहविषे जो जन्म है तिन दोनों जन्मोंकूं

दुर्लभता किस हेतुतैं है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ता जन्मकी दुर्लभताविषे हेतु कहैहैं-

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ॥
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनंदन ॥ ४३ ॥

(पदच्छेदः) तत्र । तम् । बुद्धिसंयोगम् । लभते । पौर्वदेहिकम् । यतते । च । ततः । भूयः । संसिद्धौ । कुरुनंदन ॥ ४३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो योगभ्रष्ट पुरुष तिन दोनोंप्रकारके जन्मोंविषे पूर्वदेहविषे प्रारंभ करेहुए तिस ज्ञानके श्रवणादिक साधनकूं प्राप्त होवैहै तिसतैं अनंतर मोक्षके निमित्त पुनः अधिक प्रयत्नकूं करै है ॥ ४३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! ब्रह्म आत्माके ऐक्य साक्षात्कारकी प्राप्तिवासतै तिस योगभ्रष्ट पुरुषनैं पूर्वदेहविषे प्रारंभ करे जे विवेकादिक साधनचतुष्टय तथा सर्व कर्मोंका संन्यास तथा ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप गमन तथा ता गुरुके मुखतैं वेदांतशास्त्रका श्रवण तथा मनन तथा निदिध्यासन इत्यादिक साधन थे। तिन साधनोंके मध्यविषे जिस जिस साधनकूं जितनेपर्यंत अनुष्ठान करिकै सो योगभ्रष्ट पुरुष मरणकूं प्राप्त हुआ था तिस तिस साधनकूं तितने पर्यंतही सो योगभ्रष्ट पुरुष तिन दोनों प्रकारके जन्मोंविषे प्राप्त होवै है । कोई तिस जन्मविषे सो योगभ्रष्ट पुरुष पुनः आदिसैं लैके तिन साधनोंका प्रारंभ करै नहीं । जैसे तीर्थकरणेका उद्देश करिकै आपणे ग्रामसैं निकस्या हुआ पुरुष मार्गविषे किसी स्थानविषे रात्रिकूं शयन करिकै प्रातःकालमें तिसी स्थानतैं आगे चलैहै कोई पुनः आपणे ग्रामतैं चलै नहीं। हे अर्जुन ! सो योगभ्रष्ट पुरुष ता जन्मकूं पाइकै केवल तिन पूर्वले साधनमात्रकूंही प्राप्त नहीं होवै है किंतु तिन पूर्वले साधनोंकी प्राप्तितैं अनंतर मोक्षकी प्राप्तिनिमित्त तिन पूर्वले साधनोंतैंभी पुनः अधिक साधनोंके संपादन करणेकूं प्रयत्न करै है अर्थात् इस योगभ्रष्ट पुरुषनैं पूर्वजन्मविषे जा भूमिका संपादन करी है उत्तरजन्मविषे मोक्षकी प्राप्ति पर्यंत तिसतैं अगली भूमिकावोंकूंही संपादन करै है । इहां (हे कुरुनंदन) या संबोधनके कहणे करिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन कऱ्या । लोकविषे महान् प्रभाववाला तथा अत्यंत शुद्ध तथा अत्यंत श्रीमान् ऐसा जो कुरुराजा है ता कुरुराजाके कुलविषे तुम्हारा

जन्म हुआ है । यातैं यह जान्याजावै है तूं अर्जुनभी कोई योगभ्रष्टही है । यातैं पूर्वजन्मोंके संस्कारोंके वशतैं इस जन्मविषे तुम्हारेकूं थोडेही प्रयत्नतैं आत्मज्ञानकी प्राप्ति अवश्य करिकै होवैगी । यह सर्व वार्त्ता वसिष्ठभगवान्नैंभी श्रीरामचंद्रके प्रति कथन करी है, तहां श्रीरामचंद्रनैं यह प्रश्न कऱ्या है । तहां श्लोक-(एकामथ द्वितीयां वा तृतीयां भूमिकामुत । आरूढस्य मृतस्याथ कीदृशी भगवन्गतिः ॥) अर्थ यह-हे भगवन् ! एक भूमिकाकूं अथवा द्वितीय भूमिकाकूं अथवा तृतीय भूमिकाकूं प्राप्त होइकै मरणकूं प्राप्त भया जो पुरुष है तिस पुरुषकी ता मरणतैं अनंतर किस प्रकारकी गति होवै है इति । ते सप्तभूमिका इस गीताके तृतीय अध्यायविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं । इस रामचंद्रके प्रश्नका यह अभिप्राय है, नित्य अनित्य वस्तुके विवेकपूर्वक तथा इसलोक परलोक विषयभोगोंतैं वैराग्यपूर्वक तथा शमदमादि षट्संपत्तिपूर्वक तथा सर्व कर्मोंके संन्यासपूर्वक जा उत्कटमोक्षकी इच्छारूप मुमुक्षुता है ताका नाम शुभइच्छा है सा शुभइच्छा प्रथम भूमिका है । यह शुभ इच्छा विवेकादिक साधन चतुष्टयरूप है । तिसतैं अनंतर ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाइकै वेदांतवाक्योंका विचार करणा यह विचारणानामा दूसरी भूमिका है, यह दूसरी भूमिका श्रवणमननरूप है । तिसतैं अनंतर श्रवणमननतैं सिद्धभया जो तत्त्वज्ञान है ता तत्त्वज्ञानविषे संशयतैं रहित होणा यह तनुमानसानामा तीसरी भूमिका है, यह तीसरी भूमिका निदिध्यासनरूप है । यह तीनों भूमिका तत्त्वसाक्षात्कारका साधनरूप हैं । और सत्त्वापत्तिनामा चतुर्थी भूमिका तौ तत्त्वसाक्षात्काररूपही है और असंसक्तिनामा पंचमी भूमिका तथा पदार्थाभावनीनामा षष्ठी भूमिका तथा तुरीयानामा सप्तमी भूमिका यह तीन भूमिका तौ जीवन्मुक्तिकेही अवांतर भेद हैं । तहां चतुर्थी भूमिकाकूं प्राप्त होइकै मरणकूं प्राप्त भया जो पुरुष है तिस पुरुषकूं जीवन्मुक्तिके अभाव हुएभी विदेहमुक्तिकी प्राप्तिविषे किंचितमात्रभी संशय नहीं है । और पंचमी षष्ठी सप्तमी या तीन भूमिकावोंकूं प्राप्त भया जो पुरुष है सो पुरुष तौ जीवता हुआभी मुक्तही है । जबी सो पुरुष जीवताहुआभी मुक्तही है तबी ता पुरुषके विदेहमोक्षविषे क्या कहणा है । यातैं चतुर्थी पंचमी षष्ठी सप्तमी या च्यारि भूमिकावोंविषे तौ किंचितमात्रभी शंका नहीं है । परंतु प्रथमा द्वितीया तृतीया यह जो तीन साधनभूमिका हैं तिन तीन भूमिकावोंविषे तौ इस पुरुषनैं सर्वकर्मोंका

परित्याग कऱ्या है तथा आत्मज्ञानकी प्राप्ति भई नहीं यातैं शंका संभवै है। इसीकारणतैं श्रीरामचंद्रनैं तिन साधनरूप तीन भूमिकावोंविषेही प्रश्न करचा है। इस प्रश्नका वसिष्ठ भगवान्नैं यह उत्तर कह्या है। तहां श्लोक–(योगभूमिकयोत्क्रांतजीवितस्य शरीरिणः ॥ भूमिकांशानुसारेण क्षीयते सर्वदुष्कृतम् ॥ १ ॥ ततः सुरविमानेषु लोकपालपुरेषु च ॥ मेरुपर्वतकुंजेषु रमते रमणीसखः ॥ २ ॥ ततः सुकृतसंभारे दुष्कृते च पुराकृते ॥ भोगक्षयात्परिक्षीणे जायंते योगिनो भुवि ॥ ३ ॥ शुचीनां श्रीमतां गेहे गुप्ते गुणवतां सताम् ॥ जनित्वा योगमेवैते सेवंते योगवासिताः ॥ ४ ॥ तत्र प्राग्भावनाभ्यस्तं योगभूमिक्रमं बुधाः ॥ दृष्ट्वा परिपतंत्युच्चैरुत्तरं भूमिकाक्रमम् ॥ ५ ॥) अर्थ यह–जो पुरुष ज्ञानयोगकी भूमिकाकूं संपादन करिकै मरणकूं प्राप्त भया है तिस पुरुषके पूर्वले पापकर्म ता योगभूमिकाके अनुसार नाशकूं प्राप्त होवै हैं १। तिस मरणतैं अनंतर सो पुरुष मेरुपर्वतकी कुंजोंविषे तथा इंद्रादिक लोकपालोंकी पुरियोंविषे देवतावोंके विमानोंविषे आरूढ होइकै अप्सरावोंके साथि रमण करै है २। तिसतैं अनंतर पूर्व संपादन करे हुए सुकृतोंके समूहका तथा दुष्कृतोंका भोगकरिकै क्षय हुए ते योगभ्रष्ट पुरुष पुनः भूमिलोकविषे जन्मकूं प्राप्त होवैं हैं ३। तहां इस भूमिलोकविषे जे पुरुष पवित्र हैं तथा श्रीमान् हैं तथा विद्यादिक श्रेष्ठगुणों करिकै संपन्न हैं ऐसे श्रेष्ठ पुरुषोंके गृहविषे ते योगभ्रष्ट पुरुष जन्मकूं प्राप्त होइकै पूर्वले योगभूमिकावोंके संस्कारोंके वशतैं पुनः तिन योगभूमिकावोंकूंही संपादन करैं हैं ४। तहां पूर्वजन्मविषे अभ्यास कऱ्याहुआ जो भूमिकाक्रम है ता क्रमकूं विचार करिकै ते बुद्धिमान् पुरुष तिसतैं उत्तरभूमिकावोंके क्रमकूं प्रयत्नतैं संपादन करैंहैं इति ५। इहां पूर्व वृद्धिकूं प्राप्त हुई भोगवासनाओंकी प्रबलतातैं अल्पकालविषे अभ्यास करी हुई वैराग्यवासनावोंकी दुर्बलता करिकै प्राणोंके उत्क्रमण कालविषे प्रादुर्भावकूं प्राप्त हुईहै भोगोंकी स्पृहा जिसकूं ऐसा जो सर्वकर्मोंका संन्यासीहै सोईही वसिष्ठ भगवान्नै कथन करयाहै। और जो पुरुष वैराग्यवासनावोंकी प्रबलतातैं प्रकृष्ट पुण्यकर्मोंकरिकै प्राप्त परमेश्वरके प्रसादकरिकै प्राणोंके उत्क्रमणकालविषे भोगोंकी स्पृहातैं रहित है सो संन्यासी तौ विषयभोगोंके व्यवधानतैंविनाही ब्रह्मविद्यावाले दरिद्री ब्राह्मणोंके सर्वप्रमादके कारणोंतैं रहितकुलविषे जन्म कूं प्राप्त होवैहै ऐसे योगभ्रष्ट पुरुषकूं पूर्वसंस्कारोंकी अभिव्यक्ति

विनाही प्रयत्नतैं होवैहै। यातैं पूर्व योगभ्रष्टपुरुषकी न्याईं इस द्वितीय योगभ्रष्ट पुरुषकूं मोक्षविषे किंचित्मात्रभी शंका नहीं है। सो यह द्वितीय योगभ्रष्ट पुरुष वसिष्ठ भगवान्नैं कथन कऱ्या नहीं किंतु परम कृपालु श्रीकृष्ण भगवान्नैही (अथवा योगिनामेव) इस पक्षांतरकूं अंगीकार करिकै कथन कऱ्याहै ॥ ४३ ॥

हे भगवन् ! जो पुरुष ब्रह्मवेत्ता दरिद्री ब्राह्मणोंके कुलविषे उत्पन्न होवैहै तिस पुरुषकूं मध्यविषे विषयभोगोंका व्यवधान है यातैं व्यवधानतैं रहित पूर्वले संस्कारोंके उद्बोधतैं तिस पुरुषकूं पुनःभी सर्व कर्मोंके संन्यासपूर्वक ज्ञानके श्रवणादिक साधनोंका लाभ होवौ परंतु जो पुरुष श्रीमान् महाराजा चक्रवर्तियोंके कुलविषे बहुत प्रकारके विषयभोगोंके व्यवधानकरिकै उत्पन्न हुआ है तिस पुरुषकूं विषयभोगोंके वासनावोंकी प्रबलतातैं तथा धनादिक प्रमादके कारणोंका संभव होणेतैं व्यवधानतैं रहित पूर्वले ज्ञानसंस्कारोंका उद्बोध कैसे होवैगा। तथा क्षत्रिय राजा होणेतैं सर्वकर्मोंके संन्यास करणेविषे अयोग्य तिस पुरुषकूं ज्ञानके साधनोंका लाभ कैसे होवैगा किंतु नहीं होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहैं हैं–

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोपि सः ॥
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्त्तते ॥ ४४ ॥

(पदच्छेदः) पूर्वाभ्यासेन। तेन। एव। ह्रियते। हि। अवशः। अपि। सः। जिज्ञासुः। अपि। योगस्य। शब्दब्रह्म। अतिवर्त्तते ॥ ६४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो योगभ्रष्ट पुरुष नहीं प्रयत्न करताहुआ भी तिस पूर्व अभ्यासनैं ही प्रवृत्त करीता है जिस कारणतैं प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मका जिज्ञासु हुआ भी कर्मकांडरूप वेदकूं अतिक्रमणकरिकै स्थित होवै है ॥ ४४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! उत्तमलोकोंविषे भोगोंकूं भोगिकै श्रीमान् राजावोंके गृहविषे जन्मकूं प्राप्त भया जो योगभ्रष्ट पुरुष है तिस योगभ्रष्ट पुरुषका अत्यंत व्यवधान युक्त जो पूर्वला जन्महै तिस पूर्वले जन्मविषे संपादन करे जे ज्ञानके संस्कार हैं ताका नाम पूर्व अभ्यास है तिस पूर्वले अभ्यासनैं इस जन्मविषे मोक्षके साधनों वासतै नहीं प्रयत्नकरता हुआभी सो योगभ्रष्ट पुरुष आपणे वश करीता है अर्थात् तिन पूर्वले ज्ञानसंस्कारोंनैं अकस्मात्तैंही भोगवासनातैं निवृत्त करिकै सो योग-

भ्रष्ट पुरुष मोक्षके साधनोंविषे प्रवृत्त करीताहै । हे अर्जुन ! यद्यपि ते ज्ञानवासना अल्पकालकी अभ्यास करीहैं और ते भोगवासना बहुत कालकी अभ्यास करी हैं तथापि ते ज्ञानवसना तौ वस्तुविषयक हैं और ते भोगवासना अवस्तुविषयक हैं यातैं ते अल्पकालकी अभ्यास करी हुई भी ज्ञानवासना तिन बहुत कालकी अभ्यास करी हुई भोगवासनावोंतैं अत्यंत प्रबल हैं । तिन प्रबल ज्ञानवासनावों करिकै अप्रबल भोगवासनावोंका अभिभव संभवै है । आकाशविषे नीलताज्ञानजन्य वासना यद्यपि बहुत कालकी अभ्यास करी है तथापि आकाश रूपरहित है इत्यादिक शास्त्रजन्य अल्प कालकी अभ्यास करी हुई वासनावोंनै तिन वासनावोंका अभिभव करीता है । यातैं वासनावोंकी प्रबलताविषे बहुत कालके अभ्यासकी विषयता प्रयोजक नहीं है । तथा वासनावोंकी दुर्बलताविषे अल्पकालके अभ्यासकी विषयता प्रयोजक नहीं है किंतु वस्तुविषयत्व तिन वासनावोंकी प्रबलताविषे प्रयोजक है । और अवस्तुविषयत्व तिन वासनावोंकी दुर्बलताविषे प्रयोजक है सो वस्तुविषयत्व ज्ञानवासनावोंविषेही है भोगवासनावोंविषे है नहीं । यातैं ते ज्ञानवासनाही भोगवासनातैं प्रबल हैं । हे अर्जुन ! यह वार्त्ता तूं अन्यत्र मत देख किंतु आपणे विषेही देख । जो तूं पूर्व केवल युद्ध करणेविषेही प्रवृत्त हुआ था कोई ज्ञानके वासतै प्रवृत्त हुआ नहीं था परंतु पूर्वली ज्ञानवासनावोंकी प्रबलतातैं अकस्मात् तैंही तूं इस रणभूमिविषे युद्धतैं उपराम होइकै ज्ञानविषेही प्रवृत्त होता भया है । इसी कारणतैंही पूर्व हमनैं (नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति) यह वचन तुम्हारे प्रति कथन कऱ्या था । तात्पर्य यह—अनेक सहस्र जन्मोंके व्यवधानवाला हुआ भी सो ज्ञानसंस्कार सर्व विरोधियोंका नाश करिकै आपणे कार्यकूं अवश्य करिकै सिद्ध करै है इति । यद्यपि ता क्षत्रिय राजाकूं सर्वकर्मोंके संन्यास करणेका अभावहै तथापि ता क्षत्रिय राजाकूं ज्ञानका अधिकार तौ प्राप्तही है । इहां (ह्रियते) या शब्दकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या । जैसे बहुत रक्षकपुरुषोंके मध्यविषे विद्यमान जो गौ अश्वादिक द्रव्य हैं सो द्रव्य आप जाणेकी इच्छा नहीं करता हुआ भी किसी चौर पुरुषनैं तिन सर्व रक्षकपुरुषोंका अभिभव करिकै आपणे सामर्थ्यविशेषतैंही हरण करीताहै तैसे बहुत ज्ञानके प्रतिबंधकोंविषे विद्यमान जो योगभ्रष्ट पुरुष है सो योगभ्रष्ट पुरुष आप ज्ञानकी इच्छा नहीं करता हुआ भी पूर्व जन्मके बलवान् ज्ञानसंस्कारोंनैं आपणे सामर्थ्यविशेषतैं सर्व प्रतिबंधकोंका

अभिभव करिकै आपणे वश करीता है अर्थात् पुनः ज्ञानविषे प्रवृत्त करीता है इति । इस कारणतैंही संस्कारोंकी प्रबलतातैं प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मके जानणेकी इच्छा करता हुआभी अर्थात् शुभइच्छारूप प्रथमभूमिकाविषे स्थित हुआ भी जो संन्यासी है सो प्रथमभूमिकावाला संन्यासी भी तिस प्रथमभूमिकाविषेही मरणकूं प्राप्त होइकै मध्यविषे बहुत प्रकारके विषयोंकूं भोग करिकै महाराजा चक्रवर्त्तियोंके कुलविषे उत्पन्न हुआ भी सो योगभ्रष्ट पुरुष पूर्व संपादन करे हुए ज्ञानसंस्कारोंकी प्रबलतातैं तिसीही जन्मविषे कर्मके प्रतिपादक वेदभागकूं अतिक्रमण करिकै स्थित होवैहै अर्थात् कर्मके अधिकारका परित्याग करिकै ज्ञानका अधिकारी होवैहै। इस कहणे करिकैभी ज्ञान कर्म दोनोंका समुच्चय खंडन हुआ जानणा। काहेतैं ज्ञानकर्मके समुच्चय पक्षविषे ज्ञानवान् पुरुषकूंभी कर्मका परित्याग संभवता नहीं ॥ ४४ ॥

जबी इस प्रकारतैं प्रथमभूमिकाविषे मरणकूं प्राप्तहुआभी तथा अनेक भोग वासनावों करिकै व्यवहित हुआभी तथा नानाप्रकारके प्रमादोंके करणेवाले महाराजाके कुलविषे जन्मकूं प्राप्त होइकैभी सो योगभ्रष्ट पुरुष पूर्व संपादन करे हुए ज्ञानसंस्कारोंकी प्रबलता करिकै कर्मके अधिकारकूं परित्याग करिकै ज्ञानकाही अधिकारी होवैहै तबी द्वितीयभूमिकाविषे अथवा तृतीयभूमिकाविषे मरणकूं प्राप्तहोइकै उत्तम लोकोंविषे नानाप्रकारके भोगोंकूं भोगिकै पश्चात् महाराजाके कुलविविषे जन्मकूं प्राप्त भया जो पुरुष है सो योगभ्रष्ट पुरुष ता कर्मके अधिकारकूं परित्याग करिकै ज्ञानकाही अधिकारी होवैहै याके विषे क्या कहणाहै। अथवा जो पुरुष तिन भूमिकावोंविषे मरणकूं प्राप्त होइकै तिन उत्तम लोकोंविषे भोगोंकूं नहीं भोगिकैही ब्रह्मविद्यावाले ब्राह्मणोंके कुलविषे जन्मकूं प्राप्त भयाहै सो निःस्पृह योगभ्रष्ट पुरुष कर्मके अधिकारकूं परित्याग करिकै केवल ज्ञानकाही अधिकारी होइकै तिस ज्ञानके श्रवणादिक साधनोंकूं संपादन करिकै तिन साधनोंके ज्ञानस्वरूप फलकरिकै संसारबंधनतैं मुक्त होवैहै याकेविषे क्या कहणाहै। इसप्रकारके कैमुतिकन्यायः करिकै सिद्ध अर्थकूं अब श्रीभगवान् कहैहैं–

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ॥
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ ४५ ॥

(पदच्छेदः) प्रयत्नात् । यतमानः । तु । योगी । संशुद्धकिल्बिषः । अनेकजन्मसंसिद्धः । ततः । याति । पराम् । गतिम् ॥ ४५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो योगीपुरुष पूर्व प्रयत्नतैं भी अधिक प्रयत्न करैहै तथा धोयेगये हैं पापरूप किल्बिष जिसके तथा अनेकजन्मोंके पुण्यकर्मों करिकै प्राप्त भयाहै अंत्यका जन्म जिसकूं सो योगीपुरुष तिनं साधनोंके परिपाकतैं परम मुक्तिकूं प्राप्त होवैहै ॥ ४५ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! पूर्वजन्मविषे कऱ्या जो प्रयत्नहै तिस प्रयत्नतैंभी अधिक अधिक प्रयत्नकूं करता हुआ जो योगीपुरुष है अर्थात् पूर्वजन्मविषे संपादन करेहुए ज्ञानसंस्काररूप योगकरिकै युक्त जो पुरुष है तथा तिसी योगके प्रयत्नरूप पुण्यकरिकै जो पुरुष संशुद्ध किल्बिष है अर्थात् तिस पुण्यरूप जलकरिकै धोयेगयेहैं ज्ञानके प्रतिबंधक पापरूप मल जिसके । इसीकारणतैंही ज्ञानसंस्कारोंकी वृद्धितैं तथा पुण्यकी वृद्धितैं जो पुरुष अनेकजन्मोंकरिकै संसिद्ध हुआहै अर्थात् तिन पूर्वले अनेक जन्मोंके ज्ञानसंस्कारोंके प्रभावतैं तथा तिन पुण्यकर्मोंके प्रभावतैं प्राप्त भयाहै अंत्य जन्म जिसकूं ऐसा सो योगभ्रष्ट पुरुष तिन श्रवणादिक साधनोंके परिपाकतैं ब्रह्मात्मऐक्य साक्षात्कारकूं प्राप्तहोइकै पुनरावृत्तितैं रहित परम मुक्तिकूं प्राप्त होवैहै । इस अर्थविषे किंचित्मात्रभी संशय नहीं है ॥ ४५ ॥

अब अर्जुनके प्रति श्रद्धाअतिशयके उत्पादन पूर्वक तिस पूर्वउक्त योगके विधान करणेवासतै श्रीभगवान् ता पूर्व उक्त योगकी स्तुति करैं हैं-

तपस्विभ्योधिको योगी ज्ञानिभ्योपि मतोधिकः ॥
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ ४६ ॥

(पदच्छेदः) तपस्विभ्यः । अधिकः । योगी । ज्ञानिभ्यः । अपि । मतः । अधिकः । कर्मिभ्यः । च । अधिकः । योगी । तस्मात् । योगी । भव । अर्जुन ॥ ४६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो तत्त्ववेत्ता योगी तपस्वियोंतैंभी हमारेकूं अधिक संमतहै तथा परोक्षज्ञानीयोंतैं भी अधिक संमतहै तथा सो योगी कर्मीपुरुषोंतैंभी अधिक संमतहै तिस कारणतैं तूं अर्जुन ऐसा योगी होउं ॥ ४६ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तितैं अनंतर जीवन्मुक्तिके सुखवासतै मनोनाश वासनाक्षयकूं करणेहारा जो योगी पुरुष है सो योगीपुरुष कृच्छ्र-

चांद्रायणादिक तपकूं करणेहारे तपस्वी पुरुषोंतैंभी हमारेकूं अधिक संमत है अर्थात् तिस योगी पुरुषकूं मैं तिन तपस्वीयोंतैंभी उत्कृष्ट मानताहूं । तहां श्रुति–(विद्यया तदा रोहंति यत्र कामाः परागता न तत्र दक्षिणा यंति नाविद्वांसस्तपस्विनः ।) अर्थ यह–यह तत्त्ववेत्ता पुरुष मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारकी ब्रह्मविद्या करिकै तिस पदकूं प्राप्त होवै है जिस पदविषे सर्वकाम परिअवसानकूं प्राप्त हुएहैं । तथा जिस पदविषे यज्ञादिक कर्मोंकूं करणेहारे पुरुषभी प्राप्त होते नहीं तथा अविद्वान् तपस्वीभी प्राप्त होते नहीं इति । इस कारणतैंही दक्षिणासहित ज्योतिष्टोमादिकर्मोंकूं करणेहारे कर्मी पुरुषोंतैं भी सो योगी पुरुष हमारेकूं अधिक संमत है । काहेतैं ते कर्मी पुरुष तथा तपस्वी पुरुष तत्त्वज्ञानतैं रहित होणेतैं मोक्षके योग्य हैं नहीं । और आत्माके परोक्षज्ञानवाले जे पुरुष हैं तिन परोक्षज्ञानियोंतैंभी सो अपरोक्षज्ञानवाला योगी पुरुष हमारेकूं अधिक संमत है । इस प्रकार आत्माके अपरोक्षज्ञानवाले जे पुरुष हैं जे अपरोक्षज्ञानवाले पुरुष मनोनाश वासनाक्षयके अभावतैं जीवन्मुक्तिके सुखकूं प्राप्त हुए नहीं ऐसे जीवन्मुक्तितैं रहित अपरोक्षज्ञानियोंतैं मनोनाश वासनाक्षयवाला जीवन्मुक्त योगी पुरुष हमारेकूं अधिक संमत है । जिस कारणतैं सो तत्त्ववेत्ता जीवन्मुक्त योगी पुरुष हमारेकूं सर्वतैं अधिक संमत है तिसकारणतैं तूं योगभ्रष्ट अर्जुन इसकालविषे अधिक प्रयत्नके बलतैं तत्त्वज्ञान मनोनाश वासनाक्षय या तीनोंकूं संपादन करिकै जीवन्मुक्त योगी होउ। सो जीवन्मुक्त योगी (स योगी परमो मतः) इस वचनकरिकै पूर्व हमनैं तुम्हारे प्रति कथन कऱ्याहै । इहां (हे अर्जुन !) या संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनविषे शुद्धता बोधन करी । ता करिकै तिस अर्जुनविषे ता योगके संपादनकरणेकी योग्यता सूचन करी ॥ ४६ ॥

अब सर्वयोगियोंतैं श्रेष्ठयोगीका कथन करते हुए श्रीभगवान् इस षष्ठ अध्यायका उपसंहार करैंहैं–

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनांतरात्मना ॥
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥ ४७ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) योगिनाम् । अपि । सर्वेषाम् । मद्गतेन । अंतरात्मना । श्रद्धावान् । भजते । यः । माम् । सः । मे । युक्ततमः । मतः ॥ ४७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष श्रद्धावान् हुआ मेरेविषे स्थित अंतःकरण-करिकै मैंपरमेश्वरकूं भजै है सो पुरुष सर्व योगियोंकेविषे भी अत्यंत श्रेष्ठ मैंपरमे-श्वरकूं संमतहै ॥ ४७ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! मैं भगवान् वासुदेवविषे पुण्यकर्मोंके परिपाकविशे-षतैं उत्पन्न हुई प्रीतिके वशतैं प्राप्त भया जो अंतःकरण है ता अंतःकरणकरिकै जो पुरुष पूर्वले संस्कारोंके वशतैं तथा महात्मा जनोंके सत्संगतैं मेरे भजनविषेही अत्यंत श्रद्धावान् हुआ मैं परमेश्वरकूं भजैहै अर्थात् ईश्वरोंकाभी ईश्वररूप मैं नारायणकूं सगुणकूं अथवा निर्गुणकूं यह कृष्णभगवान् मनुष्य है तथा दूसरे ईश्वरोंके समान है या प्रकारके भ्रमकूं परित्याग करिकै जो पुरुष निरंतर चिंतन करै है सो पुरुष मैं परमेश्वरकूं वसुरुद्रआदित्यादिक अन्यदेवतावोंके भजन करणे-हारे सर्व योगियोंतैं युक्त तमरूपकरिकै अभिमत है अर्थात् संपूर्ण समाहित चित्त-वाले युक्तपुरुषोंतैं तिस पुरुषकूं मैं परमेश्वर अत्यंत श्रेष्ठ करिकै मानताहूं । तात्पर्य यह–योगाभ्यासके क्लेशके समान हुएभी तथा भजनके आयासके समान हुएभी मेरी भक्तितैं रहित योगी पुरुषोंतैं मेरा भक्त अत्यंत श्रेष्ठ है । और तूं अर्जुनभी हमारा परम भक्त है यातैं तू अर्जुन विनाही आयासतैं युक्ततम होणेकूं समर्थ है इति । तहां इस षष्ठ अध्यायविषे श्रीभगवान्नैं इतना अर्थ निरूपण कन्या । तहां प्रथम चित्तशुद्धिके हेतुभूत कर्मयोगकी मर्यादा कथन करी । तिसतैं अनंतर कन्या-हुआहै सर्वकर्मोंका संन्यास जिसनैं ऐसे पुरुषकूं करणेयोग्य अंगोंसहित योग कथन कन्या । तिसतैं अनंतर अर्जुनके आक्षेपके निराकरणपूर्वक मनके निग्रहका उपाय कथन कन्या । तिसतैं अनंतर योगभ्रष्ट पुरुषके पुरुषार्थके शून्यताकी शंकाकूं शिथिल कन्या । इतने सर्व अर्थकूं कथन करिकै श्रीभगवान्नैं प्रथमषट्करूप कर्मकांडकूं तथा त्वंपदार्थके निरूपणकूं समाप्त कन्या । इसतैं अनंतर (श्रद्धावान्भजते यो माम्) इस वचनकरिकै सूचन कन्या जो भक्तियोग है तथा ता भक्तियोगका विषय जो तत्पदार्थरूप भगवान् वासुदेव है तिन दोनोंके निरूपण करणेवासतै अगले षट्अध्यायरूप उपासनाकांड आरंभ कन्याजावैगा ॥ ४७ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीभगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमाऽध्यायप्रारंभः।

श्लोक—यद्भक्तिं न विना मुक्तिर्यः सेव्यः सर्वयोगिनाम् ॥ तं वंदे परमानंदघनं श्रीनंदनंदनम् ॥ अर्थ यह—भक्तजनोंके उद्धार करणेवासतै श्रीनंदके पुत्रभावकूं प्राप्त भया जो श्रीकृष्ण भगवान् है जिस कृष्ण भगवान्की भक्तितैं विना इन अधिकारी जनोंकूं मुक्तिकी प्राप्ति होवै नहीं तथा जो कृष्ण भगवान् सर्व योगीपुरुषोंका सेव्य है अर्थात् सर्व योगीपुरुष जिसका सेवन करैं हैं तथा जो कृष्ण भगवान् परमानंदघन है तिस कृष्ण भगवान्कूं मैं वारंवार वंदन करूंहूं इति। तहां सर्वकर्मोंका संन्यासरूप साधनहै प्रधान जिसविषे ऐसा जो प्रथम षट्क है ता प्रथमषट्ककरिकै श्रीभगवान्नैं योगसहित त्वंपदका लक्ष्यरूप ज्ञेयवस्तु प्रतिपादन कऱ्या। अब ध्येयब्रह्मका प्रतिपादन है प्रधान जिसविषे ऐसा जो यह मध्यका द्वितीय षट्क है ता द्वितीय षट्ककरिकै श्रीभगवान् तत्पदार्थरूप परमात्माकूं प्रतिपादन करैगा। ता द्वितीयषट्कविषेभी (योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनांतरात्मना ॥ श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥) इस श्लोककरिकै पूर्व कथन कऱ्या जो भगवद्भजन है ता भगवद्भजनके व्याख्यान करणेवासतै श्रीभगवान्नैं यह सप्तम अध्याय प्रारंभ करीताहै। तहां किस प्रकारका भगवत्का स्वरूप भजन करणेकूं योग्य है तथा तिस भगवत्के स्वरूपविषे यह मन किस प्रकारतैं स्थित होवै, यह दोनों प्रश्न अर्जुनकूं करणेयोग्य थे परंतु यह दोनों प्रश्न अर्जुननैं श्रीभगवान्के प्रति करे नहीं तौभी परमकृपालु श्रीभगवान् विनाही पूछेतैं अर्जुनके प्रति तिन दोनों प्रश्नोंका उत्तर कथन करैं हैं—

श्रीभगवानुवाच।

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युंजन्मदाश्रयः ॥
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) मयि। आसक्तमनाः। पार्थ। योगम्। युंजन्। मदाश्रयः। असंशयम्। समग्रम्। माम्। यथा। ज्ञास्यसि। तत्। शृणु ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरविषे आसक्त है मन जिसका तथा मैं एक परमेश्वरके शरण ऐसा तूं पूर्वउक्तयोगकूं करता हुआ संशयतैं रहित सर्वविभूतिसंपन्न मैं परमेश्वरकूं जिसप्रकारनै जानैगा तिसप्रकारकूं तूं श्रवणकर ॥ १ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सर्व जगत्की उत्पत्ति स्थिति लयतैं आदिलैके नानाप्रकारकी विभूतियों करिकै युक्त जो मैं परमेश्वरहूं तिस मैं परमेश्वरविषे आसक्त है मन जिसका ऐसा जो तूं अर्जुन है। इसी कारणतैंही मैं एक परमेश्वरके शरणकूं तूं प्राप्त भया है। तात्पर्य यह—जैसे राजाका भृत्य ता राजाके आश्रित तौ होवैहै परंतु ता राजाविषे आसक्तमनवाला होवै नहीं किंतु आपणे स्त्रीपुत्रधनादिक पदार्थोंविषेही आसक्तमनवाला होवैहै। इसप्रकारका तूं अर्जुन है नहीं किंतु तूं अर्जुन तौ मैं एक परमेश्वरकेही आश्रितहै तथा मैं एक परमेश्वरविषेही आसक्तमनवाला है । ऐसा मुमुक्षु तूं अर्जुन अथवा तुम्हारे सरीखा दूसरा कोई मुमुक्षु षष्ठ अध्याय उक्तरीतिसैं मनके निरोधरूप योगकूं करता हुआ जिस प्रकार कोई भी संशय रहै नहीं इस प्रकार बल शक्ति ऐश्वर्यादिक सर्व विभूतिसंपन्न मैं परमेश्वरकूं जिस प्रकारतैं जानैगा तिस प्रकारकूं मैं भगवान् तुम्हारे प्रति कथन करताहूं तूं सावधान होइकै श्रवण कर ॥ १ ॥

तहां इस पूर्व श्लोकविषे (मां ज्ञास्यसि) यह वचन भगवान्नैं कथन कऱ्या ता वचनतैं यह जान्या जावै है सो भगवद्विषयक ज्ञान परोक्षही होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाकूं निवृत्त करते हुए श्रीभगवान् श्रोतापुरुषकूं ता ज्ञानके अभिमुख करणेवासतै ता ज्ञानकी स्तुति करैहैं—

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ॥
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) ज्ञानम् । ते । अहम् । सविज्ञानम् । इदम् । वक्ष्यामि । अशेषतः । यत् । ज्ञात्वा । न । इह । भूयः । अन्यत् । ज्ञातव्यम् । अवशिष्यते ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वर तैं अर्जुनके प्रति इस विज्ञान सहित ज्ञानकूं साधन फलादिकों सहित कथन करताहूं जिस चैतन्यरूप ज्ञानकूं जानिकै इहां पुनः कोई अन्य पदार्थ जानणेयोग्य नहीं बाकी रहैहै ॥ २ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! मेरे अद्वितीय परिपूर्ण स्वरूपकूं विषय करणेहारा जो यह ज्ञान है सो यह ज्ञान स्वभावतैं अपरोक्ष हुआभी असंभावना विपरीतभावनारूप प्रतिबंधके वशतैं आपणे फलकूं नहीं उत्पन्न करता हुआ परोक्ष कह्या जावैहै । और श्रवणमननादिरूप विचारके परिपाककरिकै ता असंभावनादि-

रूप प्रतिबंधके निवृत्त हुएतैं अनंतर तिसी वाक्यप्रमाणकरिकै उत्पन्न हुआ जो ज्ञान प्रतिबंधके अभावतैं आपणे फलकूं उत्पन्न करता हुआ अपरोक्ष कह्या जावै है, इस रीतिसैं श्रवणमननरूप विचार करिकै जन्य होणेतैं सोईही ज्ञान विज्ञान कह्या जावै है। इस प्रकारके विज्ञान सहित तथा महावाक्यतैं जन्य इस अपरोक्षज्ञानकूं मैं यथार्थ वक्ता कृष्णभगवान् तुम्हारे ताईं अशेषतैं कथन करताहूं। अर्थात् ता अपरोक्ष ज्ञानके जितनेक साधन तथा फल हैं तिन साधन फलादिकों सहित तिन ज्ञानकूं मैं तुम्हारे प्रति कथन करताहूं। जिस नित्य चैतन्य स्वरूप ज्ञानकूं जानिकै अर्थात् (अहं ब्रह्मास्मि) या वेदांत वाक्यजन्य मनकी वृत्तिका विषय करिकै इस व्यवहारभूमिविषे पुनः दूसरा कोई वस्तु तुम्हारेकूं जानणे योग्य रहैगा नहीं। तहां श्रुति–(येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति । कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति ।) इत्यादिक श्रुतियोंविषे एक परमात्मा देवके ज्ञानकरिकैही सर्व जगत्का ज्ञान होणा कथन कऱ्याहै। तात्पर्य यह–जैसे अज्ञानतैं रज्जुविषे प्रतीत भये जे सर्प दंड माला जलधारा आदिक हैं तिन कल्पित सर्पादिकोंका ता रज्जुरूप अधिष्ठानके ज्ञान हुएतैं अनंतर बाध होइ जावै है तिसतैं अनंतर एक रज्जुही परिशेषतैं रहैहै। तैसे अधिष्ठान सत् ब्रह्मविषे कल्पित जो यह सर्व प्रपंच है ता प्रपंचकाभी तिस अधिष्ठान ब्रह्मके ज्ञानतैं अनंतर बाध होइ जावै है, तिसतैं अनंतर सो अधिष्ठान ब्रह्मही परिशेषतैं रहैहै। ऐसे अधिष्ठान ब्रह्मके साक्षात्कार करिकैही तूं अर्जुन कृतार्थ होवैगा ॥ २ ॥

हे अर्जुन ! ऐसे महान् फलकी प्राप्ति करणेहारा यह हमारे स्वरूपका ज्ञान मैं परमेश्वरके अनुग्रहतैं विना अत्यंत दुर्लभ है इस प्रकार ता ज्ञानकी दुर्लभताकूं कथन करिकै अधिकारी जनोंकूं ता ज्ञानविषे प्रवृत्त करणेवास्तै श्रीभगवान् ता ज्ञानकी स्तुति करैं हैं–

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ॥
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) मनुष्याणाम् । सहस्रेषु । कश्चित् । यतति । सिद्धये । यतताम् । अपि । सिद्धानाम् । कश्चित् । माम् । वेत्ति । तत्त्वतः ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मनुष्योंके अनेकसहस्रोंविषे कोई एकमनुष्यही ज्ञानकी उत्पत्तिवासतै प्रयत्न करै है और तिन प्रयत्नकरणेहारे अधिकारी मनुष्योंके मध्यविषे भी कोई एक मनुष्यही मैं परमेश्वरकूं वास्तवस्वरूपतैं जानैहै ॥ ३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! शास्त्रनैं प्रतिपादन कऱ्या जो ज्ञान है तथा कर्म है तथा ज्ञान कर्मके अनुष्ठान करणेकूं योग्य जितनेक ब्राह्मणादिक अधिकारी मनुष्य हैं तिन अनेक सहस्र मनुष्योंविषे कोई एक मनुष्यही पूर्वले अनेकजन्मोंके पुण्यकर्मोंके वशतैं नित्य अनित्य वस्तुके विवेकवाला हुआ अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञानकी उत्पत्ति वासतै प्रयत्न करै है। इस प्रकार आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै प्रयत्न करणेहारेभी जे साधक मनुष्य हैं तिन साधकमनुष्योंके अनेक सहस्रोंविषेभी कोई एक साधक मनुष्यही श्रवण मनन निदिध्यासनके परिपाकतैं अनंतर मैं परमेश्वरकूं साक्षात्कार करै है। शंका—हे भगवन् ! विष्णुकूं तथा रामकूं तथा आप कृष्णकूं देवता असुर मनुष्य आदिक बहुत प्राणी जानते हैं यातैं अनेक सहस्र मनुष्योंविषे कोई एक मनुष्यही हमारेकूं जानता है यह आपका कहणा संभवता नहीं। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (तत्त्वतः इति) हे अर्जुन ! यद्यपि शंख चक्र गदा पद्म या च्यारोंकूं धारण करणेहारे इस हमारे स्थूल चतुर्भुज स्वरूपकूं ते देवता मनुष्यादिक बहुत लोक जानते हैं तथापि यह हमारा वास्तवस्वरूप है नहीं, किंतु मायाकृत है। यातैं ते सर्व पुरुष हमारे वास्तवस्वरूपकूं जानते नहीं। और जे पुरुष ब्रह्मवेत्ता गुरुके उपदेशतैं मैं ब्रह्मरूपहूं या प्रकार आपणे प्रत्यक् आत्मासैं अभिन्नरूप करिकै भैं परमेश्वरकूं जानते हैं ते पुरुषही हमारे वास्तवस्वरूपकूं जानते हैं। इस प्रकार वास्तव स्वरूपतैं हमारेकूं जानणेहारा पुरुष अनेक सहस्र मनुष्योंविषे कोई एकही निकसेगा यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। प्रथम तौ अनेक मनुष्योंके मध्यविषे आत्मज्ञानके साधनोंकूं अनुष्ठान करणेहारा पुरुषही परम दुर्लभ है और तिन ज्ञानसाधनोंके अनुष्ठान करणेहारे पुरुषोंके मध्यविषेभी ज्ञानरूप फलकूं प्राप्तहुआ पुरुष परम दुर्लभ है ऐसे ब्रह्मज्ञानका माहात्म्य कौन वर्णन करिसकैगा ॥ ३ ॥

इस प्रकार आत्मज्ञानकी स्तुति करिकै श्रोता पुरुषकूं ता ज्ञानके अभिमुख करिकै अब सर्वात्मत्वरूप हेतुकरिकै आत्माके परिपूर्णत्वकूं कथन करणे वासतै प्रथम अपर प्रकृतिकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं (भूमिरापः इति)

अथवा (यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते) इस वचनकरिकै श्रीभगवान् एक ब्रह्मके ज्ञानतैं सर्वप्रपंचके ज्ञानकी प्रतिज्ञा करताभया है सा प्रतिज्ञा तबी सिद्ध होवै जबी ब्रह्मकूं सर्व जगत्का कारण अंगीकार करिये । काहेतैं लोकविषे उपादानकारणके ज्ञानकरिकैही ताके सर्वकार्योंका ज्ञान होवै है । जैसे एक मृत्तिकारूप कारणके ज्ञान हुएही ता मृत्तिकाके कार्यरूप घटशरावादिक सर्वका ज्ञान होवैहै कारणके ज्ञानतैं विना ताके सर्वकार्यका ज्ञान होवै नहीं । यातैं ता पूर्वली प्रतिज्ञाके उपपादन करणेवासतै श्रीभगवान् ता ज्ञानस्वरूप ब्रह्मतैं जड अजडरूप सर्वप्रपंचकी उत्पत्तिकूं (भूमिरापः) इत्यादिक तीन श्लोकोंकरिकै कथन करैं हैं—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ॥
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) भूमिः । आपः । अनलः । वायुः । खम् । मनः । बुद्धिः । एव । च । अहंकारः । इति । इयम् । मे । भिन्ना । प्रकृतिः । अष्टधा ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पृथिवी जल तेज वायु आकाश मन बुद्धि निश्चय करिकै तथा अहंकार इसप्रकारतैं मैं परमेश्वरकी यह प्रकृति अष्टप्रकार भेदवाली है ॥ ४ ॥

भा० टी०—तहां सांख्यशास्त्रवाले पंचतन्मात्रा अहंकार महत्तत्त्व अव्यक्त या अष्टोंकूं प्रकृति कहैं हैं । और पंचमहाभूत पंच कर्मइंद्रिय पंच ज्ञानइंद्रिय एक मन इन षोडशोंकूं विकार कहैं हैं । ते अष्टप्रकृति तथा षोडश विकार दोनों मिलिकै चौवीस तत्त्व कहेजावैं हैं । तहां भूमि आदिक पंचशब्दों करिकै लक्षणावृत्तितैं पृथिवी आदिक पंचमहाभूतोंकी सूक्ष्म अवस्थारूप गंधादिक पंचतन्मात्रावोंका ग्रहण करणा । अर्थात् भूमि या शब्दकरिकै तौ गंधतन्मात्राका ग्रहण करणा । और आप या शब्दकरिकै रसतन्मात्राका ग्रहण करणा । और अनल या शब्दकरिकै रूपतन्मात्राका ग्रहण करणा । और वायु या शब्दकरिकै स्पर्शतन्मात्राका ग्रहण करणा । और खं या शब्दकरिकै शब्दतन्मात्राका ग्रहण करणा । और बुद्धि अहंकार यह दोनों शब्द तौ आपणे प्रसिद्ध अर्थकूंही बोधन करैं हैं । और मन या शब्दकरिकै परिशेषतैं रहेहुए अव्यक्तका ग्रहण करणा । काहेतैं ता मन-

शब्दका प्रकृतिशब्दके साथि सामानाधिकरण्य है । यातैं ता मनशब्दके स्वार्थका परित्याग करिकै अव्यक्तविषे लक्षणा करणी उचित है । अथवा लक्षणावृत्तितैं ता मनशब्दकरिकै ता मनके कारणरूप अहंकारका ग्रहण करणा । काहेतैं पूर्व गंधादिक पंचतन्मात्रावोंका कथन कऱ्याहै । तिन तन्मात्रावोंकी अहंकारतैंही उत्पत्ति होवैहै यातैं तन्मात्रावोंकी समीपतातैं इहां मनशब्दकरिकै अहंकारकाही ग्रहण करणा उचित है । और बुद्धिशब्द तौ ता अहंकारके कारणरूप महत्तत्त्वकूं शक्तिरूप मुख्य वृत्तिकरिकैही कथन करै है । और अहंकारशब्दकी लक्षणावृत्ति करिकै सर्ववासनावोंयुक्त अविद्यारूप अव्यक्तका ग्रहण करणा । काहेतैं प्रवर्त्तकत्वादिक असाधारण धर्म अहंकार अव्यक्त दोनोंविषे तुल्यही रहैं हैं । यातैं अहंकार शब्दकरिकै ता अव्यक्तका ग्रहणा करणा उचित है । इसप्रकार साक्षी आत्मा करिकै भास्यमान होणेतैं अपरोक्षरूप तथा परमेश्वरकी शक्तिरूप तथा अनिर्वचनीय स्वभाववाली तथा त्रिगुणात्मक ऐसी जा मायारूप प्रकृति है सा मायारूप प्रकृति पंचतन्मात्रा अहंकार महत्तत्त्व अव्यक्त या अष्टप्रकारों करिकै भेदकूं प्राप्त हुई है । ता अष्टप्रकारकी प्रकृतिविषेही यह संपूर्ण जड प्रपंच अंतर्भूत है । यह व्याख्यान सांख्यशास्त्रकी रीतिसैं कथन कऱ्या । और वेदांतशास्त्रविषे तौ भूमिः आपः अनलः वायुः खं या पंच शब्दोंकरिकै अपंचीकृत पृथिवी आदिक पंचभूतोंकाही ग्रहण करणा । और बुद्धिशब्दकरिकै सृष्टिके आदिकालविषे परमेश्वरकी मायाका परिणामरूप ईक्षणका ग्रहण करणा । और अहंकार शब्दकरिकै ता मायाका परिणामरूप संकल्पका ग्रहण करणा ॥ ४ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे कथन करी जा क्षेत्ररूप अष्टप्रकारकी प्रकृति है ता प्रकृतिविषे अपरपणेकूं कथन करतेहुए श्रीभगवान् अब क्षेत्ररूप पराप्रकृतिकूं कथन करैं हैं—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ॥
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) अपरा[३] । इयम्[२] । इतः[५] । तु[४] । अन्याम्[६] । प्रकृतिम्[१०] । विद्धि[११] । मे[७] । पराम्[८] । जीवभूताम्[९] । महाबाहो[१] । यया[१२] । इदम्[१३] । धार्यते[१५] । जगत्[१४] ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन[१] ! यह[२] पूर्वउक्त अष्टप्रकारकी प्रकृति अपरा[३] कहीजावैहै

अब इसअपराप्रकृतितैं विलक्षण मैंपरमेश्वरकी जीवरूप परा प्रकृतिकूं तूं जान जिस पराप्रकृतिनैं यह सर्वजगत् धारणकरीताहै ॥ ५ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! पूर्वश्लोकविषे कथन करी जा अचेतन वर्गरूप क्षेत्र-नामा अष्टप्रकारकी प्रकृति है सा यह प्रकृति अपरा जानणी अर्थात् सा प्रकृति जड होणेतैं तथा परके अर्थ होणेतैं तथा संसारबंधरूप होणेतैं निकृष्टही है। और ता अचेतनवर्गरूप तथा क्षेत्ररूप अपराप्रकृतितैं विलक्षण तथा मैं तत्पदार्थरूप परमेश्वरका आत्मारूप जा चेतनजीवात्मक क्षेत्रज्ञरूप प्रकृति है ता क्षेत्रज्ञरूप विशुद्ध प्रकृतिकूं तूं पराप्रकृति जान अर्थात् सर्वतैं उत्कृष्ट जान । इहां (इतस्तु) या वचनविषे स्थित जो तु यह शब्दहै सो तु शब्द पूर्वउक्त क्षेत्ररूप जडप्रकृतितैं इस क्षेत्रज्ञरूप चेतनप्रकृतिविषे अत्यंत विलक्षणताके बोधन करणेवासतै है अर्थात् इन क्षेत्रक्षेत्रज्ञरूप दोनों प्रकृतियोंकी किसी अंशविषेभी एकता होइसकै नहीं। हे अर्जुन ! सर्वसंघातोंविषे प्रविष्ट हुई जा क्षेत्रज्ञनामा जीवरूप पराप्रकृतिहै ता परा प्रकृतिनैंही यह देह इंद्रियादिरूप जड जगत् धारण कर्याहै । तहां श्रुति– (अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि ।) अर्थ यह–मैं परमात्मादेव इस आपणे जीवरूपतैं प्रवेश करिकै नामरूपकूं प्रगट करौं इति । ऐसी क्षेत्रज्ञनामा जीवरूप पराप्रकृतिनैंही यह सर्वजगत् धारण कर्या है । ता चेतनजीवतैं रहित कोईभी वस्तु किसी वस्तुके धारण करणेविषे समर्थ होवै नहीं ॥ ५ ॥

तहां पूर्व दो श्लोकों करिकै अपराप्रकृति तथा पराप्रकृति यह दो प्रकारकी प्रकृति कथन करी । अब ता दो प्रकारकी प्रकृतिविषे कार्यलिंगक अनुमान प्रमा-णकूं दिखावते हुए श्रीभगवान् आपणेकूं ता प्रकृतिद्वारा सर्वजगत्के उत्पत्ति आदिकोंकी कारणता कथन करैं हैं–

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ॥
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) एतद्योनीनि । भूतानि । सर्वाणि । इति । उपधारय । अहम् । कृत्स्नस्य । जगतः । प्रभवः प्रलयः । तथा ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह सर्व एक भूत इन दोनों प्रकृतियोंके कार्यरूप हैं इसप्रकार तूं निश्चय कर यातैं मैं परमेश्वरही संपूर्ण जगत्के उत्पत्तिका कारण हूं तथा प्रलयका कारण हूं ॥ ६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्व अपरत्वरूप करिकै कथन करी जा क्षेत्रनामा प्रकृति तथा परत्वरूप करिकै कथन करी जा क्षेत्रज्ञनामा प्रकृति है ते दोनों प्रकृति हैं कारण जिनोंका तिनोंका नाम एतद्योनि है। ऐसा एतद्योनिरूप इन उत्पत्ति धर्मवाले चेतनअचेतनरूप सर्वभूतोंकूं तूं जाण । तात्पर्य यह—यह सर्व कार्य चेतनअचेतनकी ग्रंथिरूप हैं यातैं ता कार्यरूप हेतुतैं तिनोंके प्रकृतिरूप कारणकूंभी चेतन अचेतनकी ग्रंथिरूप करिकै अनुमान कर । जिस कारणतैं कार्यकारणका समान स्वभावही लोकविषे देखणेमें आवैहै तिस कारणतैं चेतन अचेतनकी ग्रंथिरूप कार्यतैं ताके चेतन अचेतनकी ग्रंथिरूप कारणका अनुमान संभव होइसकैहै । इसप्रकार सर्वभूतोंका कारणरूप क्षेत्र—क्षेत्रज्ञनामा दो प्रकारकी प्रकृति मैं परमेश्वरका उपाधिरूप है यातैं सर्वज्ञ तथा सर्वका ईश्वर तथा अनंतशक्तिवाला माया उपहित मैं परमेश्वरही तिस पूर्व उक्त प्रकृतिद्वारा इस चराचररूप सर्व जगत्के उत्पत्तिका कारण हूं तथा ता सर्वजगत्के विनाशका कारण हूं अर्थात् जैसे स्वप्नके पदार्थोंका उपादानकारण तथा द्रष्टा एकही होवैहै तैसे मायाका आश्रय विषय होणेतैं मैं मायावी परमेश्वरही आपणी मायिक जगत्का उपादानकारण हूं तथा द्रष्टारूप हूं ॥ ६ ॥

जिस कारणतैं मैं परमेश्वरही आपणी मायाशक्तिकरिकै इस सर्व जगत्के उत्पत्ति स्थिति लयका हेतु हूं तिस कारणतैं परमार्थतैं मैं परमेश्वरतैं भिन्न कोई भी पदार्थ है नहीं इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं (मत्तः परतरमिति) अथवा (यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते) इस वचनकरिकै पूर्व एक आत्मवस्तुके ज्ञानतैं सर्वजगत्के ज्ञानकी प्रतिज्ञा करीथी ता प्रतिज्ञाके उपपादन करणेवासतै आत्माकूं सर्व जगत्का उपादानकारण कथन कऱ्या ता उपादानकारणपणे करिकै आत्माके निर्विकारत्वरूपकी हानि होवैगी। ऐसी शंकाके प्राप्तहुए श्रीभगवान् कहैहैं—

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ॥
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) मत्तः । परतरम् । न । अन्यत् । किंचित् । अस्ति । धनंजय । मयि । सर्वम् । इदम् । प्रोतम् । सूत्रे । मणिगणाः । इव ॥७॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरतैं अन्य कोईभी पदार्थ परमार्थ सत्य नहीं है जैसे सूत्रविषे मणियोंका समूह ग्रथितहै तैसे मैं परमेश्वरविषे यह सर्व जगत् ग्रंथित है ॥ ७ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! सर्व दृश्यप्रपंचाकार परिणाकूं प्राप्तहुई मायाका अधिष्ठानरूप तथा सर्व जगत्का प्रकाशक तथा सत्तास्फुरणरूप करिकै सर्वजगत्विषे अनुस्यूत तथा स्वप्रकाश परमानंद चैतन्यघन तथा परमार्थतैं सत्यस्वरूप ऐसा जो मैं परमेश्वर हूं तिस मैं परमेश्वरतैं भिन्न दूसरा कोईभी पदार्थ परमार्थतैं सत्य है नहीं। जैसे स्वप्नद्रष्टातैं भिन्न स्वप्नके पदार्थ परमार्थतैं सत्य हैं नहीं तथा मायावी पुरुषतैं भिन्न मायिक पदार्थ परमार्थतैं सत्य हैं नहीं। तथा शुक्ति अवच्छिन्न चैतन्यतैं भिन्न कल्पित रजत परमार्थतैं सत्य है तैसे मैं परमेश्वरविषे कल्पित यह सर्व जगत् वास्तवतैं मेरेतैं भिन्न नहीं है यह सर्व वार्त्ता (तदनन्यत्वमारंभणशब्दादिभ्यः) इस सूत्रके व्याख्यानविषे श्रीभाष्यकारोंनैं विस्तारतैं निरूपण करीहै इति । और व्यवहारदृष्टिकरिकै तौ यह सर्वजडप्रपंच मैं सत्रूप तथा स्फुरणरूप परमेश्वरविषेही ग्रथित है । अर्थात् मैं परमेश्वरकी सत्ताकरिकै यह सर्व जगत सत्की न्याईं प्रतीत होवैहै तथा मेरे स्फुरणरूप करिकै स्फुरणकी न्याईं प्रतीत होवैहै । तहां यह सर्व प्रपंच चैतन्यविषे ग्रथितहै इतने अंशमात्रविषे दृष्टांतकूं कथन करैंहैं (सूत्रे मणिगणा इव इति) हे अर्जुन ! जैसे सूत्रविषे मणियोंका समूह ग्रथित होवैहै तैसे सत्ता स्फुरणरूप मैं परमेश्वरविषे यह सर्व जगत् ग्रथित है इति । अथवा (सूत्रे मणिगणा इव) इस वचनका यह अर्थ करणा हिरण्यगर्भरूप जो स्वप्नका द्रष्टा तैजस आत्मा है ताका नाम सूत्र है ऐसे सूत्रआत्माविषे । जैसे स्वप्नविषे प्राप्तमणियोंका समूह ग्रथित होवैहै तैसे मैं परमेश्वरविषे यह सर्वजगत् ग्रथित है इति । इस द्वितीयव्याख्यानविषे कारणकार्यभाव तथा द्रष्टादृश्यभाव इत्यादिक सर्व अंशोंविषे दृष्टांतका संभव होइसकै है और प्रथम व्याख्यानविषे तौ केवल ग्रथितपणेमात्रविषे सो दृष्टांत संभवैहै इति । और किसी टीकाविषे तौ इस श्लोकका याप्रकारका अर्थ कथन कऱ्याहै हे अर्जुन ! सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिवाला तथा सर्व कारणरूप ऐसा जो मैं परमेश्वर हूं तिस मैं परमेश्वरतैं भिन्न दूसरा कोई इस जगत्के उत्पत्ति संहारका स्वतंत्र कारण प्रसिद्ध है नहीं किंतु मैं परमेश्वरही इस जगत्के उत्पत्ति संहारका कारण हूं । जिस कारणतैं मैं परमेश्वरही इस सर्व जगतका कारणहूं

तिस कारणतैं सर्व जगत्के कारणरूप मैं परमेश्वरविषेही यह कार्यरूप सर्व जगत् ग्रथित है मेरेतैं भिन्न अन्य किसीविषे यह जगत् ग्रथित है नहीं। जैसे मणियोंका समूह सूत्रविषे ही ग्रथित होवैहै अन्य किसीविषे ग्रथित होवै नहीं। इहां सूत्रमणियोंका दृष्टांत केवळ ग्रथितत्वमात्रविषेहीहै कारणपणेविषे यह दृष्टांत संभवता नहीं। जिस कारणतैं सो सूत्र तिन मणियोंका कारणरूप है नहीं ता कारणपणेविषे तौ सुवर्णविषे कुंडळ कंकणादिक भूषणोंका दृष्टांत ही संभवैहै इति। और किसी टीकाविषे तौ इस श्लोकका यह अर्थ कऱ्याहै। व्यवहार-काळविषे तौ मृत्तिकादिरूप कारणका तथा घटादिरूप कार्यका परस्पर भेद प्रतीत होवैहै यातैं मृत्तिकादिरूप कारणतैं घटादिरूप कार्य पर है अर्थात् पृथक् है। और जैसे घटादिक कार्योंका सा मृत्तिका उपादानकारण है तैसे गौ अश्वादिक कार्यों-का सा मृत्तिका उपादानकारण है नहीं। यातैं ते गौ अश्वादिक कार्य ता मृत्तिकातैं परतरहैं। तैसे मैं परमात्मादेवतैं कोईभी कार्य परतर नहीं है अर्थात् जिस कार्य-वस्तुका मैं परमेश्वर उपादानकारण नहीं हूं ऐसा कोई कार्यवस्तु है नहीं। इतने कहणेकरिकै प्रपंचविषे ब्रह्मका अव्यतिरेकपणा दिखाया। अब ता ब्रह्मविषे प्रपंचके व्यतिरेकपणेकूं दृष्टांतसहित कथन करैं हैं (मयि सर्वमिति) हे अर्जुन! जैसे परस्पर व्यावृत तथा सूत्रतैं व्यावृत जे मणियां है ते मणियां तिन सर्वमणियोंविषे अनुस्यूत सूत्रविषे ग्रथित होवैं हैं तैसे सत्तारूपकरिकै तथा स्फुरणरूप करिकै सर्वत्र अनुस्यूत जो मैं परमेश्वर हूं तिस मैं परमेश्वरविषे यह परस्पर व्यावृत प्रपंच ग्रथित है और जैसे व्यावृत मणियोंतैं सर्वत्र अनुस्यूत सूत्र भिन्न होवैहै तैसे इस व्यावृत प्रपंचतैं सर्वत्र अनुस्यूत मैं परमेश्वरभी भिन्न हूं। इस प्रकार सर्व प्रपंचतैं रहित मैं परमेश्वर-विषे विकारिपणा संभवता नहीं इति। इसी व्याख्यानके अनुसार श्लोकके प्रारंभ-विषे अथवा इत्यादिक अवतरण कथन कऱ्या था॥ ७॥

शंका–हे भगवन्! जळादिकोंका तौ रसादिकोंविषेही प्रोतपणा प्रतीत होवैहै, यातैं मैं परमेश्वरविषेही यह सर्व जगत् प्रोत है यह आपका वचन कैसे संगत होवैगा? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए मैं परमेश्वरही रसादिरूपकरिकै स्थित हुआ हूं। यातैं रसादिकोंविषे जो जळादिकोंका प्रोतपणा है सो मैं परमेश्वरविषेही प्रोत-पणा है। या प्रकारके उत्तरकूं पंचश्लोकों करिकै श्रीभगवान् कहैं हैं–

रसोहमप्सु कौंतेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः॥
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु॥ ८॥

(पदच्छेदः) रसः। अहम्। अप्सु। कौंतेय। प्रभा। अस्मि। शशिसूर्ययोः। प्रणवः। सर्ववेदेषु। शब्दः। खे। पौरुषम्। नृषु॥ ८॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जलोंविषे जो रस है सो रस मैं हूं तथा चंद्रसूर्यविषे जा प्रभा है सा प्रभा मैं हूं तथा सर्ववेदोंविषे जो प्रणव है सो प्रणव मैं हूं तथा आकाशविषे जो शब्द है सो शब्द मैं हूं तथा सर्वनरोंविषे जो पौरुष है सो पौरुष मैं हूं॥ ८॥

भा० टी०–हे अर्जुन! सर्व जलोंविषे स्थित जो रसतन्मात्रारूप पुण्य मधुर रस है जो रस तिन सर्वजलोंका सारभूत है तथा तिन सर्वजलोंका कारणभूतहै तथा तिन सर्व जलोंविषे अनुस्यूत है सो रस मैं हूं अर्थात् ऐसे रसरूप मैं परमेश्वरविषेही ते सर्वजल प्रोत हैं। और चंद्रमाविषे तथा सूर्यविषे जो प्रभारूप प्रकाश है जिस प्रकाशकरिकै सर्वलोकोंका व्यवहार सिद्ध होवै है सो प्रकाश मैं हूं अर्थात ता सामान्य प्रकाशरूप मैं परमेश्वरविषेही ते चंद्रमासूर्य प्रोतहैं। और सर्व वेदोंविषे अनुस्यूत जो ॐकाररूप प्रणव है सो प्रणव मैं हूं अर्थात् ता प्रणवरूप मैं परमेश्वरविषे ही ते सर्ववेद प्रोत हैं। तहां श्रुति–(तद्यथा शंकुना सर्वाणि पर्णानि संतृण्णानि एवमोंकारेण सर्वा वाक् संतृण्णा इति) अर्थ यह–जैसे सर्व पर्ण शंकुकारिकै ग्रथित हैं तैसे सर्व वेदोंके वचन ॐकारकारिकै ग्रथित हैं इति। और संपूर्ण आकाशविषे अनुस्यूत तथा ता आकाशकारणरूप जो शब्दतन्मात्रारूप पुण्यशब्द है सो शब्द मैं हूं अर्थात् ता शब्दरूप मैं परमेश्वरविषेही सो आकाश प्रोतहै। और सर्वपुरुषोंविषे अनुस्यूत होइकै रह्याहुआ जो पुरुषत्व सामान्यरूप पौरुष है सो पौरुष मैं हूं अर्थात् ता पौरुषरूप मैं परमेश्वरविषेही ते सर्वपुरुष प्रोत हैं। इहां यह तात्पर्य है–जैसे सर्व शब्दोंविषे अनुगत शब्दत्व सामान्यविषे दुंदुभि शब्दत्वादिक विशेष प्रोत होवैं हैं तैसे रसादि सामान्यरूप मैं परमेश्वरविषेही जलादिक सर्व विशेष प्रोत हैं। या प्रकारकी रीति अगले च्यारिश्लोकोंविषेभी सर्वत्र जानणी। तहां दुंदुभि शंख वीणा यह तीन दृष्टांत आत्मपुराणके सप्तम अध्यायविषे हम विस्तारतैं कथन करिआये। इहां (रसोहमप्सु) इत्यादिक पंचश्लोकों करिकै श्रीभगवान्नैं जो आपणी

विभूति कथन करी है। सो केवल ध्यान करणेवासतै कथन करी है यातैं इस ध्येयस्वरूपविषे अत्यंत अभिनिवेश करणा नहीं ॥ ८ ॥

किंच–

पुण्यो गंधः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ॥
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) पुण्यः । गंधः । पृथिव्याम् । च । तेजः । च । अस्मि । विभावसौ । जीवनम् । सर्वभूतेषु । तपः । च । अस्मि । तपस्विषु ॥ ९॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पृथिवीविषे जो पुण्य गंधहै सो गंध मैं हूं तथा अग्निविषे जो तेज है सो मैं हूं तथा सर्वभूतोंविषे जो जीवनहै सो मैं हूं तथा तपस्वीपुरुषोंविषे जो तपहै सो मैं हूं ॥ ९ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! सर्व पृथिवीविषे सामान्यरूप तथा सर्व पृथिवीषे अनुस्यूत तथा ता पृथिवीका कारणरूप ऐसा जो तन्मात्रारूप पुण्य गंधहै अर्थात् विकारभावतैं रहित जो सुरभि गंध है सो पुण्यगंध मैं हूं अर्थात् ता पुण्यगंधरूप मैं परमेश्वरविषेही सा पृथिवी प्रोत है । इहां (पुण्यो गंधः पृथिव्यां च) या वचनविषे स्थित जो चकारहै सो चकार रसादिकोंविषेभी ता पुण्यत्वके समुच्चय करावणेवासतै है। तात्पर्य यह–शब्द स्पर्श रूप रस गंध या पांचोंविषे स्वभावतैं तौ पुण्यत्वही रहैहै और प्राणियोंके अधर्मविशेषतैं तिन शब्दादिकोंविषे अपुण्यत्व होवैहै । स्वभावतैं सो अपुण्यत्व तिन शब्दादिक विषयोंविषे होवै नहीं। इहां असुरभि आदिक विकार भावतैं रहितपणेका नाम पुण्यत्वहै इति। और अग्निविषे जो तेज है सो तेज सर्वपदार्थोंके दहन प्रकाशनका सामर्थ्यरूप है तथा उष्ण स्पर्शसहितहै तथा श्वेत भास्वररूप है तथा सर्व अग्निविषे अनुस्यूत है सो तेज मैं हूं अर्थात तिस तेजरूप मैं परमेश्वरविषे ही सो अग्नि प्रोत है । इहां (तेजश्चास्मि) या वचनविषे स्थित जो चकारहै, ता चकारतैं वायुके स्पर्शकाभी ग्रहण करणा अर्थात् उष्ण स्पर्शकरिकै आतुर पुरुषोंकूं शीतलताकी प्राप्ति करणेहारा जो वायुका शीतस्पर्श है सो शीतस्पर्शभी मैंही हूं। ता शीतस्पर्शरूप मैं परमेश्वरविषेही सो वायु प्रोत है इति । और स्थावर जंगमरूप सर्व प्राणियोंविषे स्थित जो प्राणोंका धारणरूप आयुषूरूप जीवन है, सो आयुषूरूप जीवन मैं हूं अर्थात् ता आयुषूरूप मैं परमेश्वरविषेही ते सर्व प्राणी प्रोत हैं अथवा (जीवत्यनेनेति जीवनम्) । अर्थ यह–जीवनकूं प्राप्त होवै

जिसकरिकै ताका नाम जीवन है । या प्रकारकी व्युत्पत्ति करिकै सो जीवनशब्द विराट्‌रूप समष्टि अन्नका वाचक है । तिस अन्नरूप मैं परमेश्वरविषे ही ते सर्वभूत प्रोत हैं। और दिनदिनविषे तप करिकै युक्त जे वानप्रस्थादिक हैं तिन वानप्रस्थादिक तपस्वियोंविषे स्थित जो शीत उष्ण क्षुधा पिपासा इत्यादिक द्वंद्वोंके सहन करणेका सामर्थ्यरूप तप है सो तप मैं हूं। अर्थात् तिस तपरूप मैं परमेश्वरविषेही ते तपस्वी पुरुष प्रोत हैं । इहां (तपश्चास्मि) या वचनविषे स्थित जो चकार है ता चकारकरिकै अंतर बाह्य सर्व तपोंका ग्रहण करणा । तहां चित्तकी एकाग्रतारूप अंतर तप है। और जिह्वा उपस्थादिक इंद्रियोंका निग्रहरूप बाह्य तप है ॥ ९ ॥

हे भगवन् ! (आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी) इस श्रुतिनैं आकाशतैं वायुकी उत्पत्ति कथन करी है। और वायुतैं अग्निकी उत्पत्ति कथन करी है। और अग्नितैं जलकी उत्पत्ति कथन करी है। और जलतैं पृथिवीकी उत्पत्ति कथन करी है। और कार्यका आपणे आपणे कारणविषेही प्रोतपणा होवै है यातैं ते सर्व भूत आपणे आपणे कारणविषेही प्रोत हैं। अकारणरूप तुम्हारेविषे कोईभी पदार्थ प्रोत नहीं है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए (आत्मन आकाशः संभूतः यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते) इत्यादिक श्रुतियां मैं परमेश्वरतैंहीं सर्वभूतोंकी उत्पत्तिकूं कथन करैं हैं । यातैं मैं परमेश्वरही सर्वभूतोंका कारण हूं या प्रकारका उत्तर श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ॥
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) बीजम् । माम् । सर्वभूतानाम् । विद्धि । पार्थ । सनातनम् । बुद्धिः । बुद्धिमताम् । अस्मि । तेजः । तेजस्विनाम् । अहम् ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! उत्पत्तितैं रहित मैं परमेश्वरकूं तूं सर्वभूतोंका कारण जान तथा बुद्धिमान् पुरुषोंकी जा बुद्धि है सा बुद्धि मैं हूं तथा तेजस्वी पुरुषोंका जो तेज है सो तेज मैं हूं ॥ १० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! स्थावर जंगमरूप सर्वभूतोंका जो एक सनातन बीज है अर्थात् आपणी उत्पत्तिविषे बीजांतरकी अपेक्षातैं रहित जो सर्वभूतोंका एक

नित्य कारण है जो कारण व्यक्ति व्यक्तिविषे भेदवाला है नहीं तथा अनित्य है नहीं ऐसा अव्याकृतनामा सर्व जगत्का बीज कारणरूप मैं परमेश्वरकूंही तूं जान मैं परमेश्वरतैं भिन्न दूसरा कोई वस्तु सर्वभूतोंका बीजरूप है नहीं । और श्रुतिविषे आकाशादिकोंतैं जो वायुआदिकोंकी उत्पत्ति कथन करी है सोभी केवल जड आकाशादिकोंतैं ही वायु आदिकोंकी उत्पत्ति कथन करी नहीं किंतु आकाशादि उपहित मैं परमेश्वरतैंही वायु आदिकोंकी उत्पत्ति कथन करी है । यातैं सर्वभूतोंका अव्याकृतनामा बीजरूप मैं परमेश्वरविषे तिन सर्व भूतोंका प्रोतपणा युक्त है । किंवा तत्त्वअतत्त्ववस्तु विवेकका जो सामर्थ्य है ताका नाम बुद्धि है तिस बुद्धिवाले पुरुषोंका नाम बुद्धिमत् है । ऐसे बुद्धिमान् पुरुषोंकी सा बुद्धि मैं हूं अर्थात् ता बुद्धिरूप मैं परमेश्वरविषेही ते बुद्धिमान् पुरुष प्रोत हैं । और अन्य शत्रुवोंके अभिभव करणेका जो सामर्थ्य है जिस सामर्थ्यकरिकै यह पुरुष अन्य प्राणियोंकरिकै अभिभवकूं प्राप्त होता नहीं ता सामर्थ्यका नाम तेज है ऐसे तेजवाले पुरुषोंका नाम तेजस्वी है तिन तेजस्वी पुरुषोंका सो तेज मैं हूं अर्थात् ता तेजरूप मैं परमेश्वरविषेही ते तेजस्वी पुरुष प्रोत हैं ॥ १० ॥

किंच-

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ॥
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) बलम् । बलवताम् । च । अहम् । कामरागविवर्जितम् । धर्माविरुद्धः । भूतेषु । कामः । अस्मि । भरतर्षभ ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! बलवान् पुरुषोंका कामरागतैं रहित जो बल है सो बल मैं हूं तथा सर्वप्राणियोंविषे धर्मतैं अविरुद्ध जो काम है सो काम मैं हूं॥ ११॥

भा० टी०-अप्राप्त जो विषय है ता विषयकी प्राप्ति करणेहारे कारणके अभाव हुएभी यह विषय हमारेकूं प्राप्त होवै या प्रकारकी जा चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम काम है और प्राप्त जो विषय है ता विषयके नाश करणेहारे कारणके विद्यमान हुएभी यह विषय नाशकूं नहीं प्राप्त होवै या प्रकारकी जा रंजनात्मक चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम राग है ऐसे कामरागतैं रहित जो बल है अर्थात् सर्वप्रकारतैं ता कामरागकूं नहीं उत्पन्न करणेहारा तथा रजतमतैं रहित

जो स्वधर्मके अनुष्ठान वासतै देहइंद्रियादिकोंके धारणका सामर्थ्यरूप बल है ऐसे सात्विक बलवाले पुरुषोंका नाम बलवत् है ऐसे संसारतैं पराङ्मुख बलवान् पुरुषोंका सो बल मैं हूं अर्थात् ता सात्विक बलरूप मैं परमेश्वरविषेही ते बलवान् पुरुष प्रोत हैं । तात्पर्य यह—सो कामरागतैं रहित बलही मैं परमेश्वरका स्वरूपभूत करिकै ध्यान करणेयोग्य है ता कामरागकूं उत्पन्न करणेहारा जो विषयासक्त पुरुषोंका बल है सो बल मैं परमेश्वरका स्वरूपभूतकरिकै ध्यान करणे योग्य नहीं है इति । अथवा (कामरागविवर्जितम्) या वचनविषे स्थित जो रागशब्द है ता रागशब्द करिकै क्रोधकाही ग्रहण करणा । किंवा धर्मशास्त्रका नाम धर्म है ता धर्मशास्त्रतैं अविरुद्ध अर्थात् ता धर्मशास्त्रतैं नहीं निषेध कऱ्या हुआ अथवा धर्मके अनुकूल ऐसा जो सर्व भूतप्राणियोंविषे शास्त्रके अनुसार स्त्री पुत्रादिक पदार्थ विषयक अभिलाषारूप काम है सो काम मैं हूं अर्थात् ता शास्त्र अविरुद्ध कामरूप मैं परमेश्वरविषेही ते कामयुक्त सर्व प्राणी प्रोत हैं ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! इस प्रकार बहुत पदार्थोंके गणनेसे क्या प्रयोजन है यह सर्व जगत् मैं परमेश्वरतैंही उत्पन्न हुआ मैं परमेश्वरविषही प्रोत है । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ॥
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) ये । च । एव । सात्त्विकाः । भावाः । राजसाः । तामसाः । च । ये । मत्तः । एव । इति । तान् । विद्धि । न । तु । अहम् । तेषु । ते । मयि ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे कोई अन्यभी सात्त्विक पदार्थ हैं तथा जे कोई राजस पदार्थ हैं तथा तामस पदार्थ हैं तिन सर्वपदार्थोंकूं मैं परमेश्वरतैं ही पूर्व-उक्तरीतिसैं उत्पन्न हुआ जान तौभी मैं परमेश्वर तिनपदार्थोंविषे नहीं हूं ते पदार्थ तौ मैं परमेश्वरविषेही हैं ॥ १२ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! पूर्व उक्त पदार्थोंतैं भिन्न जे कोई दूसरेभी अंतःकरणके परिणामरूप शमदमादिक सात्त्विक भाव हैं तथा हर्षदर्पादिक राजस भाव हैं तथा शोकमोहादिक तामस भाव हैं जे सात्विक राजस तामस भाव इन प्राणियोंकूं विद्या-कर्मादिकोंके वशतैं उत्पन्न होवैं हैं तिन सर्व भावोंकूं (अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः)

इत्यादिक वचन उक्तरीतिसैं मैं परमेश्वरतैंही उत्पन्न हुआ जान । अथवा सत्त्वगुण है प्रधान जिनोंविषे ऐसे जे सात्त्विक भाव हैं । जैसे देव ऋषि ब्राह्मण शर्करा इत्यादिक पदार्थ हैं । तथा रजोगुणहै प्रधान जिन्होंविषे ऐसे जे राजस भाव हैं जैसे गंधर्व यक्ष क्षत्रिय मिरच इत्यादिक पदार्थ हैं। तथा तमोगुण है प्रधान जिन्होंविषे ऐसे जे तामस भाव हैं । जैसे राक्षस क्रव्याद शूद्र गृंजन इत्यादिक पदार्थ हैं । ते सर्वपदार्थ मैं परमेश्वरतैंही उत्पन्न हुए जान । हे अर्जुन ! इस प्रकार ते सर्वपदार्थ मैं परमेश्वरतैं उत्पन्नभी हुएहैं तौभी मैं परमेश्वर तिन जडपदार्थोंविषे आधेयरूपकरिकै स्थित नहीं हूं अर्थात् जैसे रज्जुरूप अधिष्ठान कल्पित सर्पादिकोंके विकल्पोंकरिकै दूषित होवैं नहीं तैसे मैं परमेश्वरभी तिन अनात्मपदार्थोंके वशवर्ति तथा तिनोंके विकारों करिकै दूषित होता नहीं । जैसे संसारी जीव तिनोंके वशवर्ति तथा तिनोंके विकारों करिकै दूषित होवैं हैं तैसे मैं परमेश्वर दूषित होता नहीं । और ते सर्व जडपदार्थ तौ जैसे रज्जुविषे सर्पादिक कल्पित होवैं हैं तैसे मैं परमेश्वरविषेही कल्पित हैं । अर्थात् मैं परमेश्वरतैं सत्तास्फूर्तिकूं प्राप्तहुए ते सर्वपदार्थ मैं परमेश्वरकेही अधीन हैं ॥ १२॥

हे भगवन् ! (रसोहमप्सु कौंतेय) इत्यादिक वचनोंकरिकै आपनै सर्व जगत्कूं आपणा स्वरूप कह्या । तथा आपणेकूं स्वतंत्र कह्या तथा नित्य शुद्ध मुक्तस्वभाव कह्या । ऐसे स्वतंत्र नित्य शुद्ध मुक्तस्वभाव आप परमेश्वरतैं अभिन्न जो यह जगत् है तिस जगत्विषे संसारीपणा कैसे संभवैगा किंतु नहीं संभवैगा । तहां तिस हमारे स्वतंत्र नित्यशुद्ध मुक्तस्वरूपके अज्ञानतैंही इस जगत्विषे सो संसारीपणा होवै है वास्तवतैं नहीं । ऐसा वचन जो आप कहो तौभी तिस आपके स्वरूपका अज्ञान इस जगत्विषे किस कारणतैं है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता आपणे स्वरूपके अज्ञानविषे कारणकूं कथन करैं हैं–

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ॥
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) त्रिभिः । गुणमयैः । भावैः । एभिः । सर्वम् । इदम् । जगत् । मोहितम् । न । अभिजानाति । माम् । एभ्यः । परम् । अव्ययम् ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इनपूर्व उक्त गुणमय तीनप्रकारके भावोंनैं यह सर्व जगत् मोहित कऱ्याहै या कारणतैं इनगुणमयभावोंतैं पर तथा अविक्रिय मैं परमेश्वरकूं नहीं जानताहै ॥ १३ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! पूर्व कथन करे जे सत्त्व रज तम या तीन गुणोंके विकाररूप तीन प्रकारके भावपदार्थ हैं तिन तीन प्रकारके पदार्थोंनैंही यह सर्व प्राणीमात्र मोहित करेहैं अर्थात् नित्य अनित्य वस्तुके विवेककी अयोग्यताकूं प्राप्त करे हैं। या कारणतैंही यह प्राणी मैं परमात्मादेवकूं जानते नहीं। कैसा हूं मैं परमेश्वर इन तीन प्रकारके भावोंतैं पर हूं अर्थात् तिन सर्वभावोंके कल्पनाका अधिष्ठानरूप हूं । तथा तिन सर्वभावोंतैं अत्यंत विलक्षण हूं। ता विलक्षणताविषे हेतुगर्भित विशेषण कहैं हैं (अव्ययमिति) अर्थात् जन्ममरणादिक सर्व विकारोंतैं रहित हूं। तथा इस दृश्य प्रपंचतैं रहित हूं। तथा आनंदघन हूं। तथा आपणे स्वयं ज्योतिरूप करिकै प्रकाशमान् हूं। तथा सर्व प्राणियोंका आत्मारूप हूं। ऐसे अत्यंत समीपभी मैं परमेश्वरकूं यह प्राणी जानते नहीं। ता प्रत्यक् अभिन्न मैं परमेश्वरके अज्ञानतैंही यह सर्व प्राणी वारंवार जन्ममरणरूप संसारकूं प्राप्त होवैं हैं। यातैं इन अविवेकी जनोंके बहुत दौर्भाग्य हैं इति। तहां सत्त्वादिक गुणमय भावोंनैं यह सर्व प्राणी मोहकूं प्राप्त करीतेहैं यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करीहै। तहां श्लोक—(इंद्रियाभ्यामजय्याभ्यां द्वाभ्यामेव हतं जगत्। अहो उपस्थजिह्वाभ्यां ब्रह्मादिमशकावधि) अर्थ यह—अल्प यत्नकरिकै जयकरणेकूं अशक्य जो उपस्थ इंद्रिय है तथा जिह्वा इंद्रिय है तिन दोनों इंद्रियोंनैंही ब्रह्मातैं आदिलैके मशकपर्यंत यह सर्व जगत् हनन कऱ्याहै, यह बडा आश्चर्य है। यद्यपि आपणे आपणे विषयोंविषे प्रवृत्त हुए नेत्रादिक सर्वइंद्रिय इस पुरुषके अनर्थका हेतु हैं तथापि तिन सर्व इंद्रियोंविषे उपस्थ जिह्वा यह दोनों इंद्रिय अत्यंत प्रबल हैं, यातैं तिन दोनों इंद्रियोंकाही इहां ग्रहण कऱ्याहै ॥ १३ ॥

हे भगवन् ! पूर्व कथन करे जे अनादि सिद्ध मायाके सत्त्वादिक तीन गण हैं तिन तीन गुणों करिकै संबद्ध हुए इस जगतकूं स्वतंत्रताके अभाव होणेतैं तिस त्रिगुणात्मक मायाके निवृत्त करणेका सामर्थ्य है नहीं। यातैं कदाचित् भी ता मायाकी निवृत्ति नहीं होवैगी। काहेतैं यथार्थवस्तुके विवेकका जो असामर्थ्य है ता असामर्थ्यका हेतुरूप सा त्रिगुणात्मक माया सनातनही है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए अन्य उपायकरिकै यद्यपि ता मायाकी निवृत्ति नहीं होवैहै तथापि एक भगवत्की शरणताकरिकै प्राप्त हुए तत्त्वज्ञानतैं ता मायाकी निवृत्ति संभवैहै। याप्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ॥
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरंति ते ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) दैवी । हि । एषा । गुणमयी । मम । माया । दुरत्यया । माम् । एव । ये । प्रपद्यंते । मायाम् । एताम् । तरंति । ते ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरकी यह सत्त्वादिगुणरूप प्रसिद्ध दैवी माया दुरतिक्रमा है जे पुरुष मैं परमेश्वरकूंही साक्षात्कार करैं हैं ते पुरुषही इस मायाकूं नाशकरैं हैं ॥ १४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! (एको देवः सर्वभूतेषु गूढः) इत्यादिक श्रुतियोंनैं प्रतिपादन कऱ्या जो स्वप्रकाश चैतन्य आनंदस्वरूप देव है जो देव जीव ईश्वर विभागतैं रहित है ता शुद्धचैतन्यमात्र देवके आश्रयरूपकरिकै तथा विषयरूपकरिकै जा माया कल्पना करीजावै है ताका नाम दैवी है अर्थात् जैसे अंधकार जा गृहके आश्रित रहैहै ता गृहकूं ही आवृत करैहै तैसे यह मायाभी जिस शुद्धचैतन्यदेवके आश्रित रहैहै तिसी शुद्धचैतन्यदेवकूं विषयः करैहै । इस प्रकार चैतन्यदेवके आश्रित तथा चैतन्यदेवविषयक होणेतैं सा माया दैवी कहीजावैहै । यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करीहै । तहां श्लोक–(आश्रयत्वविषयत्वभागिनी निर्विभागचितिरेव केवला । पूर्वसिद्धतमसो हि पश्चिमो नाश्रयो भवति नापि गोचरः ॥) अर्थ यह–जीव ईश्वर विभागतैं रहित केवल चैतन्यमात्रही अनादिसिद्ध अज्ञानके आश्रयत्वकूं तथा विषयत्वकूं प्राप्त होवैहै । जिस कारणतैं ता अनादिसिद्ध अज्ञानका ता अज्ञानके पश्चात् भावी कोईभी पदार्थ आश्रय तथा विषय होवै नहीं इति । जा दैवीमाया (मामहं न जानामि) अर्थ यह–मैं आपणेकूं नहीं जानताहूं या प्रकारके साक्षीरूप प्रत्यक्षकरिकै सिद्ध होणेतैं अपलाप करीजावै नहीं । तथा जा माया स्वमभ्रमादिकोंकी अन्यथा अनुपपत्तिरूप अर्थापत्तिरूप अर्थापत्तिप्रमाणकरिकै सिद्ध है । यह मायाकी प्रसिद्धि (एषा हि) या दोनों शब्दोंकरिकै कथन करीहै तहां एषा या शब्दकरिकै तौ साक्षी प्रत्यक्षसिद्धता कथन करीहै । और हि या शब्दकरिकै अर्थापत्तिप्रमाणसिद्धता कथन करी है । तथा जा माया गुणमयी है अर्थात् सत्त्व रज तम या तीन गुणरूपहै । तात्पर्य यह–जैसे त्रिगुणकरीहुई रज्जु अत्यंत दृढ होणेतैं पुरुषोंके बंधनका हेतु होवैहै, तैसे अत्यंत दृढ होणेतैं यह त्रिगुणात्मक मायाभी इन जीवोंके बंधनका हेतु है । इस

अर्थके बोधन करणेवासतैंही श्रीभगवान्नैं ता मायाका गुणमयी यह विशेषण कथन कन्या है। ऐसी जा मैं परमेश्वरकी मायाहै अर्थात् सर्व जगत्का कारणरूप तथा सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिसंपन्न तथा मायावी ऐसा जो मैं परमेश्वर हूं तिस हमारे गृहीपुरुषके गृहादिकोंकी न्याई ममत्वका विषयीभूत जा मायाहै जा माया मैं परमेश्वरके अधीन होणेतैं इस जगत्के उत्पत्ति आदिकोंका निर्वाहकरणेहारी है तथा जा माया तत्त्ववस्तुके भानका प्रतिबंधकरिकै अतत्त्ववस्तुके भानका हेतुरूप आवरणविक्षेपशक्तिवाली अविद्यारूप है। तथा जा माया सर्वजगत्की प्रकृतिरूप है। तहां श्रुति-(मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।) अर्थ यह-इस सर्व जगत्का माया उपादान कारण है और ता मायावाला महेश्वर कह्या जावैहै इति। इहां यह प्रक्रिया है जीव ईश्वर जगत् इत्यादिक विभागतैं रहित जो शुद्ध चैतन्य है ता शुद्ध चैतन्यविषे अध्यस्त जा आनादि मायारूप अविद्या है जा अविद्या सत्त्वगुणकी प्रधानताकरिकै अत्यंत स्वच्छ है। ऐसी स्वच्छ अविद्या जैसे स्वच्छदर्पण मुखके आभासकूं ग्रहणकरैहै तैसे चेतनके आभासकूं ग्रहण करैहै। तहां जैसे दर्पणरूप उपाधिके श्यामतादिक दोष मुखरूप बिंबकूं स्पश करैं नहीं तैसे ता अविद्यारूप उपाधिके दोषोंकरिकै असंबद्ध होणेतैं परमेश्वर तौ बिंबस्थानीय है और जैसे दर्पणविषे स्थित प्रतिबिंब ता दर्पणके श्यामतादिक दोषोंकरिकै संबद्ध होवैहै तैसे ता अविद्यारूप उपाधिके दोषोंकरिकै संबद्ध होणेतैं जीवात्मा प्रतिबिंबस्थानीय है। तहां तिस बिंबरूप ईश्वरतैंही ता जीवके भोगवासतै आकाशादिक क्रमकरिकै शरीरइंद्रियादिक संघात तथा ता संघातका भोग्यरूप संपूर्ण प्रपंच उत्पन्न होवैहै। या प्रकारकी कल्पना करीजावैहै। तहां जैसे बिंब प्रतिबिंब या दोनोंविषे शुद्धमुख अनुगत होवैहै तैसे ईश्वर जीव या दोनोंविषे अनुगत जो मायाउपहित चैतन्य है सो चैतन्य साक्षी कह्या जावैहै, तिस साक्षी चैतन्यनैं ही आपणेविषे अध्यस्त माया तथा ता मायाका कार्यरूप सर्व प्रपंच प्रकाश करीताहै। यातैं ता साक्षीचैतन्यके अभिप्रायकरिकै तौ श्रीभगवान्नैं ता अविद्यारूप मायाकूं दैवी या नामकरिकै कथन कन्याहै। और ता बिंबरूप ईश्वरके अभिप्रायकरिकै श्रीभगवान्नैं ता मायाकूं (मम माया) या नामकरिकै कथन कन्याहै। यद्यपि ता एक अविद्याविषे प्रतिबिंबरूप एकही जीव संभवैहै तथापि ता एक अविद्याविषे स्थित अंतःकरणके संस्कार भिन्नभिन्न हैं तिन संस्कारोंके भेदकरिकै अंतःकरणरूप उपाधिवाले

जीवका इहां गीताविषे तथा श्रुतिविषे भेद कथन कऱ्याहै, तहां इस गीताविषे तौ (मां ये प्रपद्यंते । दुष्कृतिनो मूढा न प्रपद्यंते । चतुर्विधा भजंते माम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै ता जीवका भेद कथन कऱ्याहै । और श्रुतिविषे तौ– (तद्यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत्तथा ऋषीणां तथा मनुष्याणाम् ।) इत्यादिक वचनोंकरिकै ता जीवका भेद कथन कऱ्याहै । और ता अंतःकरणरूप उपाधिके भेदका नहीं विचार करिकै तौ जीवत्वका प्रयोजक अविद्यारूप उपाधिके एकत्व होणेतैं ता जीवकाभी एकत्वरूप करिकै ही इस गीताविषे तथा श्रुतिविषे कथन कऱ्याहै । तहां इस गीताविषे तौ (क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत । प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि । ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ॥) इत्यादिक वचनोंकरिकै ता जीवका एकत्व कथन कऱ्याहै । और श्रुतिविषे तौ (ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्तदात्मानमेव वेदाहं ब्रह्मास्मीति तस्मात्सर्वमभवत् । एको देवः सर्वभूतेषु गूढः । अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य । वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च । भागो जीवः स विज्ञेयः स चानंत्याय कल्पते ॥) इत्यादिक वचनों करिकै ता जीवका एकत्व कथन कऱ्याहै । यद्यपि दर्पणविषे स्थित जो चैत्रनामा पुरुषका प्रतिबिंब है सो प्रतिबिंब आपणेकूं तथा परकूं जाणता नहीं, काहेतैं जडचेतनका समुदायरूप जो चैत्रनामा पुरुष है ता चैत्रपुरुषके शरीररूप अचेतनअंशकाही ता दर्पणविषे प्रतिबिंब होवैहै । चेतन अंशका ता दर्पणविषे प्रतिबिंब होवै नहीं । यातैं जड होणेतैं सो प्रतिबिंब आपणेकूं तथा परकूं जाणता नहीं तथापि अविद्याविषे जो चेतनका प्रतिबिंब है सो प्रतिबिंब चेतनरूप होणेतैं आपणेकूं तथा परकूं जाणताही है । काहेतैं प्रतिबिंबपक्षविषे सो प्रतिबिंब मिथ्या होवै नहीं, किंतु ता बिंबचैतन्यविषे उपाधिस्थत्वमात्रही कल्पित होवैहै । और आभासपक्षविषे तौ यद्यपि सो चिदाभास शुक्तिरजतादिकोंकी न्याई अनिर्वचनीयही उत्पन्न होवैहै तथापि सो चिदाभास घटादिक जडपदार्थोंतैं विलक्षणही होवैहै, यातैं ता चिदाभासविषेभी आपणा ज्ञान तथा परका ज्ञान संभवैहै । ऐसा प्रतिबिंबरूप जीव जबपर्यंत आपणे परमेश्वररूप बिंबके साथि आपणी एकताकूं नहीं जानैहै तबपर्यंत जैसे जलविषे स्थित सूर्य ता जलके कंपादिकविकारोंकूं प्राप्त होवै है तैसे सो प्रतिबिंबरूप जीवभी ता अविद्यारूप उपाधिके सहस्रविकारोंकूं अनुभव करै है इस सर्व अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैंहैं (मम माया दुरत्यया इति) हे

अर्जुन ! बिंबभूत मैं परमेश्वरके ऐक्यसाक्षात्कारतैं विना यह मेरी माया तरणेकूं अशक्य है। यातैं यह माया दुरत्यया है यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है। तहां श्रुति–(यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यंति मानवाः। तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यांतो भविष्यति)। अर्थ यह–जिस कालविषे यह मनुष्य चर्मकी न्यांई इस आकाशकूं इकट्ठा करिलेवैंगे तिस कालविषे मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारतैं परमात्मादेवकूं न जानिकै भी अविद्यादिक सर्वदुःखका नाश होवैगा। तात्पर्य यह– जैसे चर्मकी न्यांई निरवयव आकाशका इकट्ठा करणा अत्यंत अशक्य है तैसे ब्रह्मसाक्षात्कारतैं विना अविद्यादिक दुःखका नाश करणाभी अत्यंत अशक्य है इति। इसी कारणतैं सो जीव अंतःकरणावच्छिन्न होणेतैं ता अंतःकरणसैं संबद्ध पदार्थोंकूं नेत्रादिक इंद्रियद्वारा प्रकाश करताहुआ अल्पज्ञ कह्या जावैहै। तिस कारणतैंही सो जीव मैं जानताहूं मैं करताहूं मैं भोक्ताहूं इत्यादिक अध्यासरूप सहस्र अनर्थोंका पात्र होवैहै, और सोईही प्रतिबिंबरूप जीव जबी आपणे बिंबभूत ईश्वरका आराधन करैहै, अर्थात् जो बिंबरूप ईश्वर अनंतशक्तिवाला है तथा अविद्यारूप मायाका नियंता है तथा सर्वप्रपंचकूं जानणेहारा है तथा सर्व शुभ अशुभ कर्मके फलका प्रदाता है तथा परिपूर्ण आनंदघनमूर्ति है तथा भक्तजनोंके उद्धार करणेवासतै अनेक अवतारोंकूं धारण करैहै, तथा सर्वका परमगुरुरूप है ऐसे बिंबभूत परमेश्वरकूं यह प्रतिबिंबरूप जीव जबी सर्व कर्मोंका समर्पण करिकै आराधन करै है तबी बिंबविषे समर्पणकरेहुए गुणोंका प्रतिबिंबविषे भान होणेतैं यह जीव सर्वपुरुषार्थोंकूं प्राप्त होवैहै। यह वार्त्ता प्रह्लादनैंभी कथन करीहै। तहां श्लोक–(नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते। यद्यज्जनो भगवते विदधीत मानं तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः।) अर्थ यह–दर्पणविषे प्रतिबिंबितमुखविषे जबी तिलकादिरूप श्री अपेक्षित होवैहै तबी बिंबभूत मुखविषेही ते तिलकादिक चिह्न करेजावैं हैं। ता बिंबभूत मुखविषे करेहुए ते तिलकादिक चिह्न आपेही ता प्रतिबिंबविषे प्रतीत होवैहैं, ता बिंबभूतमुखविषे तिन तिलकादिकोंके कियेतैं विना ता प्रतिबिंबविषे तिन तिलकादिकोंके प्राप्ति करणेका दूसरा कोई उपाय है नहीं तैसे बिंबभूत ईश्वरविषे समर्पण करेहुए धर्मादिक पुरुषार्थोंकूंही सो प्रतिबिंबरूप जीव प्राप्त होवैहै। तिस बिंबभूत ईश्वरविषे तिन धर्मादिकोंके अर्पण कियेतैं विना तिस प्रतिबिंबरूप जीवकूं पुरुषार्थकी प्राप्तिविषे दूसरा कोई उपाय है नहीं

इति । इस प्रकार सर्वत्र परिपूर्ण भगवान् वासुदेवकूं आराधन करणेहारे अधिकारी पुरुषका अंतःकरण जबी ज्ञानके प्रतिबंधक पापोंतैं रहित होवैहै तथा ज्ञानके अनुकूल पुण्योंकरिकै युक्त होवैहै तबी जैसे अत्यंत निर्मल दर्पणविषे मुख स्पष्ट प्रतीत होवैहै तैसे सर्व कर्मोंके त्यागपूर्वक तथा शमदमादिपूर्वक ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाइकै करेहुए श्रवण मनन निदिध्यासन करिकै संस्कृत अत्यंत स्वच्छ अंतःकरणविषे मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारकी साक्षात्काररूप वृत्ति उत्पन्न होवैहै । जा साक्षात्काररूप वृत्ति ब्रह्मवेत्ता गुरुनैं उपदेश करेहुए 'तत्त्वमसि' इस वेदांतवाक्यकरिकै जन्य है तथा जा वृत्ति अनात्माकारतातैं रहित है तथा सर्वउपाधियोंतैं रहित शुद्धचैतन्यके आकार है ऐसी साक्षात्काररूप वृत्तिविषे प्रतिबिंबित हुआ चैतन्य उसी कालविषे स्वआश्रयविषय अविद्याकूं नाश करैहै । जैसे दीपक आपणी उत्पत्तिकालविषेही अंधकारकूं नाश करैहै । ता अविद्याके नाश हुएतैं अनंतर तिस वृत्तिसहित सर्व कार्यप्रपंचका नाश होवैहै । काहेतैं उपादानकारणके नाश हुएतैं अनंतर उपादेयकार्यके नाशकूं सर्वशास्त्रवाले अंगीकार करैंहैं, इसी सर्वअर्थकूं श्रीभगवान् कहैं हैं (मामव ये प्रपद्यंते मायामेतां तरंति ते इति) तहां—(आत्मेत्येवोपासीत । तदात्मानमेवावेत् । तमेव धीरो विज्ञाय । तमेव विदित्वातिमृत्युमेति ।) इत्यादिक श्रुतियोंविषे स्थित जो एव यह शब्दहै सो एवकार जैसे प्रत्यक् अभिन्नब्रह्मविषे सर्वउपाधियोंतैं रहितपणेकूं बोधन करैहै तैसे (मामेव ये प्रपद्यन्ते) इस गीतावचनविषे स्थित एवकारभी तिस प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मविषे सर्व उपाधियोंतैं रहितपणेकूं बोधन करैहै अर्थात् स्थूलसूक्ष्मकारणरूप सर्व उपाधियोंतैं रहित सच्चिदानंद अखंड अद्वितीयरूप मैं परमात्मादेवकूं जे अधिकारी पुरुष साक्षात्कार करैंहैं ते अधिकारी पुरुषही इस अविद्यारूप मायाकूं नाश करैं हैं । तात्पर्य यह—जा अंतःकरणकी वृत्ति तत्त्वमसि आदिक वेदांतवाक्योंकरिकै जन्यहै तथा निर्विकल्पक साक्षात्काररूप है तथा निर्वचनकरणेकूं अयोग्य शुद्धचिदाकारत्व धर्मकरिकै विशिष्ट है तथा सर्व सुकृतोंका फलरूप है तथा निदिध्यासनके परिपाकतैं उत्पन्नहुई है तथा सर्वकार्यसहित अज्ञानका विरोधी है ऐसी साक्षात्काररूप वृत्तिकरिकै जे अधिकारी पुरुष मैं तत्पदार्थरूप परमात्मादेवकूं आपणा आत्मारूपकरिकै साक्षात्कार करैं हैं ते अधिकारी पुरुषही इस हमारी अविद्यारूप मायाकूं विनाही आयासतैं नाश करैं हैं । कैसीही सा माया—मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारके हमारे साक्षात्कारतैं विना दूसरे अनेक उपा-

योंकरिकैभी नाश करीजावै नहीं। तथा जा माया सर्व अनर्थोंके जन्मका भूमिरूप है ऐसी अविद्यारूप मायाकूं ते अधिकारी पुरुष मैं परमात्मादेवके साक्षात्कारकरिकै सुखेनही नाश करैं हैं। अर्थात् सर्वउपाधियोंकी निवृत्तिकरिकै ते पुरुष सच्चिदानंदघनरूपकरिकै स्थित होवैंहैं। ऐसे ब्रह्मवेत्तापुरुषोंका कोईभी प्रतिबंध करिसकै नहीं तहां श्रुति–(तस्य ह न देवाश्च नाभूत्या ईशत आत्मा ह्येषां स भवति) अर्थ यह–तिस ब्रह्मवेत्तापुरुषके अभिभव करणेविषे इंद्रादिक देवताभी समर्थ होवै नहीं, तिस कारणतैं सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष तिन सर्वदेवतावोंका आत्मारूपही है इति। तहां (ये ते) या दोनोंविषे बहुत पुरुषोंका वाचक जो बहुवचन भगवान्नैं कथन कऱ्याहै सो बहुवचन देहइंद्रियरूप संघातके भेदकरिकै कल्पना करेहुए आत्माके भेदभ्रमका अनुवाद करै है, कोई सो बहुवचन वास्तवतैं आत्माके भेदका बोधक नहीं है। और (मामेव ये प्रपद्यंते) या वचनके स्थानविषे (मामेव ये प्रपश्यंति) यह साक्षात्कारका वाचक वचनही भगवान्कूं कहणेयोग्य था काहेतैं साक्षात्कार करिकैही ता मायाकी निवृत्ति होवैहै। कर्मउपासनादिकोंकरिकै ता मायाकी निवृत्ति होवै नहीं। ता वचनकूं न कहिकै श्रीभगवान्नैं जो (मामेव ये प्रपद्यंते) यह वचन कथन कऱ्या है ताकरिकै यह अर्थ सूचन कऱ्या है–जे अधिकारी पुरुष मैं एक परमेश्वरके शरणकूं प्राप्त होइकै परमानंदघन परिपूर्ण मैं भगवान् वासुदेवकूं चिंतन करतेहुए दिवसोंकूं व्यतीत करैं हैं ते अधिकारी पुरुष मैं परमेश्वरके प्रेमजन्य महान् आनंदसमुद्रविषे मग्नमनवाले होणेतैं इस मेरी मायाके संपूर्ण गुणविकारोंनैं अभिभव नहीं करीते हैं किंतु उलटा सा हमारी माया यह भगवत् शरणपुरुष हमारे विलासविनोदविषे अकुशल होणेतैं हमारे नाशकरणेविषे समर्थ हैं याप्रकारकी शंका करतीहुई तिन भक्तजनोंतैं आपेही निवृत्त होइजावै है। जैसे क्रोधवान् तपस्वी पुरुषोंतैं वारांगना निवृत्त होइजावै है। यातैं यह अधिकारी पुरुष तिस हमारी मायाके तरणवासतै मैं परिपूर्ण भगवान् वासुदेवकूं निरंतर चिंतन करै ॥ १४ ॥

हे भगवन् ! इसप्रकार आप परमेश्वरके शरणागत होइकै आपके निरंतर चिंतनतैं जो इस मायाकी निवृत्ति होतीहोवै तौ सर्व अनर्थोंका मूलभूत इस मायाके नाशकरणेवासतै यह सर्व मनुष्य आपके शरणकूं किसवासतै नहीं प्राप्त होते ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए अनेक जन्मोंविषे संचय करेहुए पापरूप प्रतिबंधके

वशतैं यह सर्व मनुष्य हमारे शरणकूं प्राप्त होते नहीं याप्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यंते नराधमाः ॥ माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) न । माम् । दुष्कृतिनः । मूढाः । प्रपद्यंते । नराधमाः । मायया । अपहृतज्ञानाः । आसुरम् । भावम् । आश्रिताः ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे पुरुष पापकर्मोंवाले हैं तथा मूढ हैं तथा नरोंविषे अधम हैं तथा मायाकरिकै निवृत्तहुआहै ज्ञान जिनोंका तथा दंभदर्पादिरूप आसुरभावकूं आश्रयणकऱ्याहै जिन्होंनैं ऐसे पुरुष मैं परमेश्वरकूं नहीं भजैं हैं ॥ १५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जे पुरुष पापकर्मोंकरिकै नित्यही युक्त हैं । जिस कारणतैं पापकरिकै युक्त हैं तिस कारणतैं ते पुरुष सर्वमनुष्योंविषे अधम हैं अर्थात् ते पापात्मापुरुष इस लोकविषे तौ श्रेष्ठपुरुषोंकरिकै निंदा करणेयोग्य होवैंहैं और परलोकविषे सहस्र अनर्थोंकूं प्राप्त होवैंहैं । या कारणतैं ते पापात्मापुरुष सर्व मनुष्योंविषे अधम हैं । शंका—हे भगवन् ! ते पुरुष अनर्थकी प्राप्तिकरणेहारे पापकर्मकूंही सर्वदा किस कारणतैं करते हैं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं । (मूढाः इति) हे अर्जुन ! जिसकारणतैं ते पुरुष मूढ हैं अर्थात् यह कार्य हमारे अर्थका साधन है तथा यह कार्य हमारे अनर्थका साधन है याप्रकारके इष्ट अनिष्टके विवेकतैं शून्य हैं तिस कारणतैं ते पुरुष सर्वदा पापकूंही करैं हैं । शंका—हे भगवन् ! शास्त्रप्रमाणके विद्यमान हुए ते पुरुष तिस विवेककूं किस वासतै नहीं करते हैं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (माययापहृतज्ञानाः इति) शरीरइंद्रियादिक संघातविषे तादात्म्यभ्रांतिरूपकरिकै परिणामकूं प्राप्त भई जा माया है ता मायाकरिकै प्रतिबद्ध हुआ है ता विवेक करणेका सामर्थ्यरूपज्ञान जिनोंका तिनोंका नाम माययाऽपहृतज्ञान है जिस कारणतैं ते पुरुष माययापहृतज्ञान हैं तिस कारणतैं तिस कार्य अकार्यके विवेककूं करते नहीं । इसीकारणतैं (दंभो दर्पोभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च) इत्यादिक वचनोंकरिकै आगे कथन करणा जो आसुरभाव है तिस हिंसा अनृतादिरूप आसुरस्वभावकूंही आश्रयण कऱ्या है जिन्होंनैं । इसप्रकार मैं परमात्मादेवके साक्षात्कारके अयोग्य हुए ते दुष्कृती पुरुष मैं परमेश्वरकूं भजते नहीं । यातैं तिन दुष्कृती पुरुषोंका

कोई आश्चर्यरूप दौर्भाग्य है इति । और किसी टीकाविषे तौ इस श्लोकका यह अर्थ कथन कऱ्या है—जिसकारणतैं ते पुरुष दुष्कृती हैं तिस कारणतैं चित्तकी शुद्धिके अभावतैं ते पुरुष मूढ हैं अर्थात् आत्मअनात्मविवेकतैं रहित हैं इसी कारणतैंही ते पुरुष मनुष्योंविषे अधम हैं । ऐसे दुष्कृती नराधम पुरुष मैं परमेश्वरकूं भजते नहीं । ते पुरुष दुष्कृती क्यों हैं । ऐसी शंकाके हुए कहैंहैं (माययाऽपहृतज्ञानाः इति) जिस कारणतैं अविद्यारूप मायाकारिकै तिन पुरुषोंका अखंड संविद्ब्रह्मरूप ज्ञान आच्छादित होइगया है तिस कारणतैं ते पुरुष दुष्कृती हैं इतने कहणेकारिकै मायाकी आवरणशक्ति कथन करी । पुनः कैसे हैं ते पुरुष आसुरभावकूं आश्रयण कऱ्या है जिन्होंनैं । अर्थात् यह देहइंद्रियरूप संघातही आत्मा है यातैं इस संघातकूंही सर्व प्रकारतैं तृप्त करणा इस प्रकारका जो आसुर विरोचनके चित्तका अभिप्राय है ताका नाम आसुरभाव है । ऐसे आसुरभावकूं आश्रयण कऱ्या है जिन्होंनैं । इतने कहणेकारिकै ता मायाकी विक्षेप शक्ति कथन करी । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । इस मायानैं स्वरूपानंदकूं आवरण कारिकै उत्पन्न कऱ्या जो देहविषे आत्मत्वबुद्धिरूप भ्रम है ता देहात्मअभिमानतैं तिन देहादिकोंकी पुष्टि करणेवासतै ते पुरुष अनेकप्रकारके दुष्कृतोंकूं करैं हैं । तिन पापकर्मोंकारिकै मढ हुए तथा सर्व मनुष्योंविषे अधम हुए ते पुरुष मैं परमेश्वरकूं नहीं भजैं हैं । यातैं यह अविद्यारूप मायाही सर्व अनर्थोंका मूलभूत है ॥ १५ ॥

किंवा जे पुरुष तिस आसुरभावतैं रहित हैं तथा सर्वदा पुण्यकर्मवाले हैं तथा इष्ट अनिष्टवस्तुके विवेकवाले हैं ते पुरुष तिस पुण्यकर्मकी न्यूनअधिकता कारिकै च्यारि प्रकारके हुए मैं परमेश्वरकूं भजैंहैं । तथा यथाक्रमकारिकै कामनातैं रहित हुए ते पुरुष मैं परमेश्वरके प्रसादतैं तिस मायाकूं तरैं हैं । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

चतुर्विधा भजंते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ॥
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) चतुर्विधाः । भजंते । माम् । जनाः । सुकृतिनः । अर्जुन । आर्त्तः । जिज्ञासुः । अर्थार्थी । ज्ञानी । च । भरतर्षभ ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे भरतवंशविषे श्रेष्ठ अर्जुन ! आर्त्त जिज्ञासु अर्थार्थी तथा ज्ञानी यह च्यारिप्रकारके सुकृति जन मैं परमेश्वरकूं भजैंहैं ॥ १६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जे पुरुष सुकृती हैं अर्थात् जिन पुरुषोंनैं पूर्व अनेक जन्मोंविषे पुण्यकर्मका संचय कऱ्या है ते पुरुषही सुकृतीजन हैं अर्थात् सफलजन्मवालेहैं। तिनोंतैं भिन्न पुरुष निष्फलजन्मवालेही हैं। ऐसे सुकृतीजनही मैं परमेश्वरकूं भजैंहैं अर्थात् मैं परमेश्वरका आराधन करैंहैं। ते हमारे भजनकरणेहारे जनभी आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी,ज्ञानी इस भेदकरिकै च्यारिप्रकारकेही होवैं हैं, तिन च्यारोंविषेभी आर्त्त,जिज्ञासु,अर्थार्थी यह तीन तौ सकाम होवैं हैं और एक ज्ञानी निष्काम होवैहै। तहां शत्रुव्याघ्रादिरूप आपदाका नाम आर्त्तिहै ता आर्तिकरिकै जो ग्रस्त होवै ताका नाम आर्त्त है। ऐसा आर्त्तजन ता आपदारूप आर्त्तिके निवृत्तकरणेवासतै मैं परमेश्वरका आराधन करैंहै। जैसे यज्ञके भंगकरिकै क्रोधकूं प्राप्तहुआ इंद्र ब्रजभूमिविषे महान् वर्षा करताभया, ताकरिकै दुःखीहुए ब्रजवासी जन मैं परमेश्वरका आराधन करतेभयेहैं। तथा जैसे जरासंधराजाके बंधनगृहविषे प्राप्तहुए सर्वराजे आर्त्त होइकै मैं परमेश्वरका आराधन करतेभये हैं। तथा जैसे दुर्योधनकी सभाविषे वस्त्रोंके उतारणेकरिकै आर्त्तहुई द्रौपदी मैं परमेश्वरका आराधन करतीभईहै। तथा जैसे ग्राहकरिकै ग्रस्तहुआ गजेंद्र आर्त्तहोइकै मैं परमेश्वरका आराधन करताभयाहै, इसतैं आदिलेके दूसरेभी अनेक जन आर्त्त होइकै मैं परमेश्वरका आराधन करतेभये हैं इति। और जिस पुरुषकूं सर्वदा आत्मज्ञानके प्राप्तिकी इच्छा है ताका नाम जिज्ञासु है सो जिज्ञासुभी ता आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै मैं परमेश्वरका आराधन करैंहैं। जैसे मुचुकुंद तथा जनकराजा तथा उद्धव इत्यादिक जिज्ञासुजन आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै मैं परमेश्वरका आराधन करतेभये हैं इति। और इस लोकविषे स्थित तथा परलोकविषे स्थित जे धनस्त्रीपुत्रादिक भोगके साधन हैं तिन्होंका नाम अर्थ है ता अर्थकी इच्छा करणेहारे पुरुषका नाम अर्थार्थी है। ऐसा अर्थार्थी जनभी ता धनादिरूप अर्थकी प्राप्तिवासतै मैं परमेश्वरका आराधन करैं हैं। तहां सुग्रीव बिभीषण उपमन्यु इत्यादिक अर्थार्थी जन तौ इसलोकके भोगसाधनोंकी इच्छा करतेहुए मैं परमेश्वरका आराधन करतेभयेहैं। और ध्रुवादिक अर्थार्थी जन तौ परलोकके भोगसाधनोंकी इच्छा करतेहुए मैं परमेश्वरका आराधन करतेभये हैं इति। तहां जैसे तत्त्ववेत्ता पुरुष मायाकूं तरैंहै तैसे आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी यह तीनोंभी भगवत्के भजनकरिकै ता मायाकूं तरैंहैं। तिन तीनोंविषेभी जिज्ञासु जन तौ आत्मज्ञानकी उत्पत्ति करिकै साक्षातही ता मायाकूं तरैंहै। और आर्त्त

तथा अर्थार्थी यह दोनों तौ जिज्ञासुपणेकूं प्राप्तहोइकैही ता मायाकूं तरैंहैं । इतनी तिन्होंविषे विशेषता है, तहां आर्त्तकूं तथा अर्थार्थीकूं जिज्ञासुपणा संभव होइसकै है और जिज्ञासुकूंभी आर्त्तपणा तथा आत्मज्ञानके साधनरूप अर्थोंका अर्थीपणा संभव होइसकैहै । या कारणतैं श्रीभगवान्नैं आर्त्त अर्थार्थी या दोनोंके मध्यविषे जिज्ञासुका कथन कऱ्याहै । इतने करिकै आर्त्त जिज्ञासु अर्थार्थी या तीन सकामभक्तोंका कथन कऱ्या । अब चतुर्थ निष्कामभक्तका कथन करैं हैं (ज्ञानी च इति) तहां सर्वत्र परिपूर्ण अद्वितीय परमात्मादेव मैं हूं या प्रकारका जो भगवत्के वास्तवस्वरूपका साक्षात्कार है ताका नाम ज्ञान है ता ज्ञानकरिकै जो नित्ययुक्त होवै ताका नाम ज्ञानी है जो ज्ञानी तिस ज्ञानकरिकै मेरी मायाकूं तऱ्याहै तथा सर्वकामोंतैं रहित है ऐसा ज्ञानीभी निरंतर मैं परमात्मादेवका आराधन करै है। इहां (ज्ञानी च) या वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार जिसीकिसी निष्कामप्रेमभक्तका ता ज्ञानीविषे अंतर्भाव बोधनकरणेवासतै है अर्थात् निष्काम प्रेमभक्तोंका ता ज्ञानीविषेही अंतर्भाव है । यातैं श्रीभगवान्कूं पंचप्रकारके भक्तही कथनकरणे योग्य थे या प्रकारकी न्यूनताशंका संभवै नहीं इति । और (हे भरतर्षभ) या संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या । तूं अर्जुनभी जिज्ञासु भक्त है, अथवा ज्ञानी भक्त है । यातैं तिन च्यारों भक्तोंविषे मैं अर्जुन कौन भक्त हूं या प्रकारकी शंका तुमनैं करणी नहीं इति । तहां निष्काम ज्ञानी भक्त तौ जैसे सनकादिक हैं तथा नारद है तथा प्रह्लाद है तथा पृथुराजा है तथा शुकदेव है इत्यादिक सर्व निष्काम ज्ञानी भक्त होतेभयेहैं और निष्काम शुद्ध प्रेमभक्त तौ जैसे व्रजवासी गोपिका हैं तथा अक्रूर युधिष्ठिरादिक हैं और कंसशिशुपालादिक तौ यद्यपि भयतैं अथवा द्वेषतैं निरंतर भगवत्का चिंतन करतेभये हैं तथापि ते कंसशिशुपालादिक भक्त कहेजावैं नहीं । जिसकारणतैं तिन कंसादिकोंकी परमेश्वरविषे भगवदनुरक्तिरूप भक्ति है नहीं तिसकारणतैं द्वेषभयतैं भगवत्का चिंतन करतेहुएभी ते कंसादिक भगवत्भक्त कहेजावैं नहीं ॥ १६ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, ज्ञानी इन च्यारोंविषे भगवान्नैं सुकृतीपणा कथन कऱ्या यातैं श्रीभगवान्कूं तिन च्यारोंकी तुल्यताही अभिमत होवैगी ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए तिन च्यारोंविषे यद्यपि सुकृतीपणा निश्चितही है तथापि

सुकृतकी अधिकता करिकै प्राप्तहुई निष्कामता करिकै प्रेमकी अधिकतातैं सो ज्ञानीही सर्वतैं श्रेष्ठ है या प्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैहैं-

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ॥
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) तेषाम् । ज्ञानी । नित्ययुक्तः । एकभक्तिः । विशिष्यते । प्रियः । हि । ज्ञानिनः । अत्यर्थम् । अहम् । सः । च । मम । प्रियः १७॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिन च्यारोंके मध्यविषे नित्ययुक्त तथा एकभक्तिवाला ज्ञानी उत्कृष्ट है जिस कारणतैं मैं परमेश्वर तिस ज्ञानीकूं अत्यंत प्रिय हूं तथा सो ज्ञानी मैं परमेश्वरकूं अत्यंत प्रिय है ॥ १७ ॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! आर्त्त जिज्ञासु अर्थार्थी ज्ञानी इन च्यारिप्रकारके भक्तोंके मध्यविषे सर्वत्र परिपूर्ण अद्वितीयब्रह्मरूप मैं हूं या प्रकारके तत्त्वज्ञानवाला जो ज्ञानी है जो ज्ञानी सर्वकामनावोंतैं रहित है सो ज्ञानी सर्वतैं उत्कृष्ट है। अब ता ज्ञानीकी उत्कृष्टताविषे ता ज्ञानीके हेतुगर्भित दो विशेषण कथनकरैं हैं (नित्ययुक्तः एकभक्तिः इति) जिस कारणतैं सो ज्ञानी नित्ययुक्त है अर्थात् सर्वविक्षेपके अभावतैं प्रत्यक् अभिन्न परमात्मादेवविषे सर्वदा समाहित है चित्त जिसका ताका नाम नित्ययुक्त है। नित्ययुक्त होणेतैंही सो ज्ञानी एकभक्ति है अर्थात् एक प्रत्यक् अभिन्नपरमात्मा-विषेही है अनुरक्तिरूप भक्ति जिसकी अन्य किसीविषे सा भक्ति जिसकी है नहीं ताका नाम एकभक्ति है । इस प्रकार नित्ययुक्त होणेतैं तथा एकभक्ति होणेतैं सो ज्ञानवान् सर्वतैं श्रेष्ठ है। अब ता एकभक्तिपणेविषे हेतु कहैंहैं (प्रियो हि इति) जिस कारणतैं तिस ज्ञानवान् पुरुषकूं मैं प्रत्यक् अभिन्न परमात्मा देव अत्यंत प्रिय हूं अर्थात् निरुपाधिकप्रीतिका विषय हूं। तिस कारणतैं सो ज्ञानवान् पुरुष एकभक्ति है, इस कारणतैं सो ज्ञानवान् पुरुषभी मैं परमेश्वरकूं अत्यंत प्रिय है। काहेतैं आपणा आत्मा अत्यंत प्रिय होवैहै यह वार्ता श्रुतिविषे तथा लोकविषे प्रसिद्धही है इति । और किसी टीकाविषे तौ इस श्लोकका यह अर्थ कन्याहै-तिन च्यारोंके मध्यविषे एक ज्ञानीही श्रेष्ठ है । जिसकारणतैं सो ज्ञानी नित्ययुक्त है अर्थात् सर्वदा हमारे भजनविषे युक्त है, और आर्त्तादिक भक्त तौ जबपर्यंत कामनाकी पूर्णता नहींभई तबपर्यंत ही मेरे भजनविषे युक्त होवैंहैं कामनाकी पूर्णतातैं अनंतर मेरे भजन-विषे युक्त होवैं नहीं, यातैं ते आर्त्तादिक भक्त नित्युक्त कहेजावैं नहीं। तथा सो

ज्ञानी एकभक्ति है अर्थात् मैं परमेश्वरकाही एकभावकरिकै भजन करैहै। अन्य किसीका भजन करै नहीं,और आर्त्तादि तौ एकभावकरिकै भजनकूं करते नहीं। तहां रोगग्रस्त आर्त्त पुरुष तौ सूर्यका भजन करैं हैं, और जिज्ञासु जन सरस्वतीका भजन करैं हैं, और अर्थार्थी पुरुष कुबेरादिकोंका भजन करैं हैं। इसप्रकार तिन आर्तादिकोंविषे तिसतिस कामकी प्राप्तिवासतै अनेकोंकी भक्ति देखणेविषे आवैहै। अब तिस ज्ञानीपुरुषके नित्ययुक्तपणेविषे तथा एकभक्तिपणेविषे हेतु कहैंहैं (प्रियो हि इति) जिसकारणतैं मैं परमेश्वर तिस ज्ञानवान् पुरुषकूं अत्यंत प्रिय हूं। काहेतैं मैं परमेश्वर तिस ज्ञानवान् पुरुषका आत्मारूपही हूं। और आपणा आत्मा निरुपाधिक प्रीतिका विषय होणेतैं सर्वकूं प्रियही होवैहै। तात्पर्य यह—प्रीति दोप्रकारकी होवैहै एक तौ सोपाधिक प्रीति होवैहै और दूसरी निरुपाधिक प्रीति होवैहै। तहां जा प्रीति जिस वस्तुविषे अन्यवासतै होवैहै सा प्रीति सोपाधिक प्रीति कहीजावैहै। जैसे आपणे आत्माके सुखवासतै स्त्रीपुत्र धनादिकोंविषे प्रीति है। और जा प्रीति जिस वस्तुविषे किसी अन्यवासतै नहीं होवैहै सा प्रीति निरुपाधिक प्रीति कही जावैहै। जैसे आपणे आत्माविषे प्रीति अन्य किसीवासतै है नहीं, यातैं सा आत्मविषयक प्रीति निरुपाधिक प्रीति है। तहां श्रुति—(तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादंतरतरं यदयमात्मा इति) अर्थ यह—बुद्धिआदिक सर्वसंघाततैं अन्तर जो यह आत्मादेव है सो यह आत्मादेव पुत्रतैं भी अत्यंत प्रिय है। तथा धनतैंभी अत्यंत प्रियहै, तथा अन्य सर्वपदार्थोंतैंभी अत्यंत प्रिय है इति। और ऐसा निष्काम ज्ञानीभक्त अत्यंत दुर्लभ है तथा मैं परमेश्वरका आत्मारूप है यातैं सो ज्ञानी पुरुष मैं परमेश्वरकूंभी अत्यंत प्रिय है ॥ १७ ॥

हे भगवन्! (स च मम प्रियः) इस आपके वचनतैं यह जान्याजावैहै जो एक ज्ञानीभक्तही आपकूं प्रिय है दूसरे आर्त्त जिज्ञासु अर्थार्थी यह तीनों भक्त आपकूं प्रिय नहीं हैं। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए ते आर्तादिक भक्तभी हमारेकूं प्रियही हैं परंतु ते आर्त्तादिक भक्त हमारेकूं अत्यंत प्रिय नहीं हैं और ज्ञानवान् भक्त तौ हमारा आत्मारूप होणेतैं अत्यंत प्रियहै, या प्रकारका उत्तर श्रीभगवान् कथन करैहैं—

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ॥
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥१८॥

(पदच्छेदः) उदाराः । सर्वे । एव । एते । ज्ञानी । तु । आत्मा । एव । मे । मतम् । आस्थितः । सः । हि । युक्तात्मा । माम् । एव । अनुत्तमाम् । गतिम् ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह आर्त्तादिक तीनोंभी उत्कृष्ट ही हैं परंतु ब्रह्मज्ञानी तौ हमारा आत्मा ही हैं या प्रकारका मैं परमेश्वरका निश्चय है जिसकारणतैं सो ब्रह्मज्ञानी मैं परमेश्वरविषे समाहितचित्तवाला हुआ मैं परमेश्वरकूं ही सर्वतैं उत्कृष्ट परमफलरूप अंगीकार करैहै ॥ १८ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! आर्त्त जिज्ञासु अर्थार्थी यह तीनों हमारे भक्त यद्यपि सकाम हैं तथापि हमारी भक्तितैं रहित प्राणियोंतैं ते तीनों भक्त उत्कृष्टही हैं। काहेतैं पूर्वजन्मोंविषे तिन पुरुषोंनैं अनेक सुकृत करेहैं जिस करिकै इस जन्मविषे तौ तिनोंकूं हमारी भक्ति प्राप्तभई है । पूर्वसुकृतोंतैं विना सा हमारी भक्ति प्राप्तहोवै नहीं । जो कदाचित् तिनोंके पूर्वले जन्मोंके अनेक सुकृत नहीं होवैं तौ ते पुरुष मैं परमेश्वरकूं कदाचित्भी भजैं नहीं । जिस कारणतैं इसलोकविषे मैं परमेश्वरतैं बहिर्मुख हुए कितनेक आर्त्त तथा जिज्ञासु अर्थार्थी अन्य क्षुद्रदेवतावोंकाही भजन करते हुए देखणेविषे आवैहैं। यातैं इस जन्मविषे मैं परमेश्वरके भजनतैं तिन पुरुषोंके पूर्वले जन्मोंके सुकृत अनुमान करेजावैहैं । ऐसे पूर्वजन्मोंके पुण्यकर्मोंके प्रभावतैं मैं परमेश्वरका भजन करणेहारे जे आर्त्त जिज्ञासु अर्थार्थी पुरुष हैं ते तीनोंभी हमारेकूं प्रियही हैं । कोईभी हमारा भक्त ज्ञानवान् अथवा अज्ञानी हमारेकूं अप्रिय नहीं है परंतु जिस पुरुषकी जिस प्रकारकी मैं परमेश्वरविषे प्रीति है मैं परमेश्वरकीभी तिस पुरुषविषे तिसीप्रकारकी प्रीति होवैहै । यह वार्त्ता सर्वलोकविषे स्वभावसिद्धही है। तहां आर्त्त जिज्ञासु अर्थार्थी या तीनों सकाम भक्तोंकूं तौ केवल मैं परमेश्वरही प्रिय होवौं नहीं किंतु कामनाके विषय पदार्थभी प्रिय होवैं हैं तथा मैं परमेश्वरभी प्रिय होवौं हूं । और ज्ञानवान् पुरुषकूं तौ मैं परमेश्वरसे विना दूसरा कोईभी पदार्थ प्रिय होवै नहीं । किंतु तिस ज्ञानवान् पुरुषकूं एक मैं परमेश्वरही निरतिशय प्रीतिका

विषय हूं। इस कारणतैं सो निष्काम ज्ञानी भक्तभी मैं परमेश्वरकूं निरतिशय प्रीतिका विषय है। जो कदाचित् मैं परमेश्वर तिस ज्ञानवान् भक्तविषे निरतिशय प्रीति नहीं करौंगा तौ मैं परमेश्वरविषे कृतज्ञता नहीं सिद्ध होवैगी। तथा कृतघ्नता प्राप्त होवैगी। यातैं आपणेविषे ता कृतज्ञताकी सिद्धिवासतै तथा कृतघ्नताकी निवृत्ति करणेवासतै मैं परमेश्वरभी ता ज्ञानीभक्तविषे निरतिशय प्रीति करूंहूं। इसी कारणतैंही पूर्वश्लोकविषे (अत्यर्थ) यह विशेषण कथन कऱ्याहै। जैसे (यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति) इस श्रुतिविषे विद्याश्रद्धादिकोंकरिकै करेहुए कर्मकूं वीर्यवत्तरं कथन कऱ्याहै। इहां वीर्यवत्तरं या वचनके अंतविषे स्थित जो तर प्रत्यय है ताका अतिशयतारूप अर्थही विवक्षितहै ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवैहै विद्यादिकोंकरिकै कऱ्या हुआ कर्मतैं अतिशयकरिकै वीर्यवाला होवैहै। और तिन विद्यादिकोंतैं विना कऱ्याहुआ कर्मभी वीर्यवाला तौ होवैहीहै। तैसे ज्ञानवान् भक्त मैं परमेश्वरकूं (अत्यर्थप्रियः) इस भगवान्के वचनविषे स्थित जो अत्यर्थ यह पद है ताका अतिशयतारूप अर्थही विवक्षित है ताकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवैहै ज्ञानवान् पुरुष तौ मैं परमेश्वरकूं अतिशयकरिकै प्रिय है और ता ज्ञानतैं रहित आर्त्तादिक भक्तभी मैं परमेश्वरकूं प्रिय तौ है ही। इसी अभिप्रायकरिकै श्रीभगवान्नैं ता ज्ञानवान्विषे अत्यर्थ यह विशेषण कथन कऱ्याहै। तथा इसी अर्थकूं श्रीभगवान् (ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम्) इस वचनकरिकै आपही कथन करताभयाहै। इस कारणतैं मैंपरमेश्वरकूं आपणा आत्मारूप करिकै जानणेहारा सो ज्ञानवान् भक्त मैं परमेश्वरका आत्मारूपही है। मैं परमेश्वरतैं सो ज्ञानवान् भक्त भिन्न नहीं है तहां श्रुति—(ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति) अर्थ यह—मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकार आपणे आत्मातैं अभेदरूपकरिकै ब्रह्मकूं जानणेहारा ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी पुरुष ब्रह्मरूपही होवैहै इति। इसप्रकारका मैं परमेश्वरका निश्चय है। इहां (ज्ञानी तु) या वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द सकाम तथा भेददर्शी आर्त्तादिक तीन भक्तोंकी अपेक्षा करिकै ता ज्ञानवान् भक्तविषे निष्कामतारूप तथा अभेददर्शित्वरूप विशेषताके बोधन करणेवासतै है। अब ता ज्ञानीके आत्मरूपताविषे श्रीभगवान् हेतु कहैहैं (स हि युक्तात्मा इति) हे अर्जुन! जिसकारणतैं सो ज्ञानवान् भक्त युक्तात्मा हुआ अर्थात् मैंही भगवान् वासुदेव हूं या प्रकार अभेदरूपकरिकै मैं परमेश्वरविषे सर्वदा समाहितचित्तवाला हुआ

मैं आनंदघन परमेश्वरकूंही सर्वतैं उत्कृष्ट परमफलरूप करिकै अंगीकार करताभया है। मैं परमात्मादेवतैं भिन्न दूसरे किसी फलकूं सो ज्ञानवान् पुरुष मानता नहीं यातैं सो ब्रह्मज्ञानी पुरुष मैं परमेश्वरका आत्मारूपही है ॥ १८ ॥

हे अर्जुन ! जिसकारणतैं सो ज्ञानवान् पुरुष मैं परमेश्वरकूंही परमफलरूप करिकै मानैहै तिस कारणतैं सो ज्ञानवान् मैं परमेश्वरकूंही अभेदरूप करिकै प्राप्त होवैहै। तथा सो ज्ञानवान् पुरुषही अत्यंत दुर्लभ है इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैहैं-

बहूनां जन्मनामंते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ॥
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) बहूनाम् । जन्मनाम् । अंते । ज्ञानवान् । माम् । प्रपद्यते । वासुदेवः । सर्वम् । इति । सः । महात्मा । सुदुर्लभः ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो ज्ञानवान् पुरुष बहुतै जन्मोंके अंतविषे यह सर्वजगत् वासुदेवरूपही है याप्रकारके ज्ञानवाला हुआ मैं परमेश्वरकूं अभेदरूप करिकै भजैहै सो महात्मा अत्यंतदुर्लभ है ॥ १९ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! किंचितकिंचित् पुण्यके संपादनका हेतुरूप जे पूर्व व्यतीत हुए बहुत जन्म हैं तिन बहुतजन्मोंके अंतविषे अर्थात् सर्व सुकृतोंके फलभूत अंत्यजन्मविषे सो ज्ञानवान् पुरुष यह सर्वजगत् वासुदेवरूप है याप्रकारके ज्ञानवाला हुआ निरुपाधिक प्रीतिका विषयरूप मैं परमेश्वरकूंही सर्वदा संपूर्णप्रेमका विषयरूपकरिकै भजैहै काहेतैं मैं तथा यह सर्व जगत् परमेश्वर वासुदेवरूपही है याप्रकारकी दृष्टिकरिकै तिस ज्ञानवान् पुरुषके सर्व प्रेमोंका मैं परमेश्वरविषेही परिअवसान होवैहै। इसी कारणतैं सो ज्ञानपूर्वक हमारी भक्ति करणेहारा विद्वान् पुरुष महात्मा है अर्थात् अत्यंत शुद्ध अंतःकरणवाला होणेतैं सो जीवन्मुक्तपुरुष सर्वतैं उत्कृष्ट है। तिस जीवन्मुक्त विद्वान्के समान दूसरा कोई है नहीं। जबी ता जीवन्मुक्त पुरुषके समानभी कोई नहीं भया तबी ता जीवन्मुक्त पुरुषतैं अधिक कहांतैं होवैगा। इसी कारणतैं सो जीवन्मुक्त विद्वान् पुरुष सुदुर्लभ है अर्थात् सो विद्वान् पुरुष अनेक सहस्र मनुष्योंविषे दुःखकरिकैभी प्राप्त होणेकूं अशक्य है। ऐसे विद्वान् पुरुषकी दुर्लभता (मनुष्याणां सहस्रेषु) इस वचनविषे श्रीभगवान्नैं

स्पष्टकरिकै कथन करीहै। यातैं सो जीवन्मुक्त पुरुष मैं परमेश्वरकूं निरतिशय प्रीतिका विषय है। यह पूर्वउक्त अर्थ युक्तही है ॥ १९ ॥

तहां (तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं आर्त्तादिक तीन भक्तोंकी अपेक्षाकरिकै ज्ञानवान् भक्तके उत्कृष्टताकी प्रतिज्ञा करी थी सा प्रतिज्ञा इतने पर्यंत सिद्ध करी। और सकामत्व तथा भेददर्शित्व या दोनोंके समान हुएभी दूसरे देवतावोंके भक्तोंकी अपेक्षाकरिकै मैं परमेश्वरके आर्त्तादिक तीनों भक्त उत्कृष्ट हैं या प्रकारकी जा प्रतिज्ञा श्रीभगवान्नैं (उदाराः सर्व एवैते) इस वचनकरिकै पूर्व कथन करीथी। अब इस सप्तम अध्यायकी समाप्तिपर्यंत श्रीभगवान् तिस प्रतिज्ञाकी सिद्धि करैंहैं। इहां परमकृपालु श्रीभगवान्का यह अभिप्राय है–हमारे आर्त्तादिक तीन भक्तोंविषे तथा अन्य देवतावोंके आर्त्तादिक भक्तोंविषे यद्यपि आयास तथा सकामत्व तथा भेददर्शित्व इत्यादिक धर्म समानही हैं तथापि मैं परमेश्वरके भक्त तौ भूमिकावोंके क्रमकरिकै सर्वतें उत्कृष्ट मोक्षरूप फलकूंही प्राप्त होवैं हैं। और क्षुद्रदेवतावोंके भक्त तौ पुनः पुनः जन्ममरणकी प्राप्तिरूप क्षुद्रफलकूंही प्राप्त होवैं हैं। यातैं सर्व आर्त्त भक्त तथा जिज्ञासु भक्त तथा अर्थार्थी भक्त मैं परमेश्वरके शरणागतकूं प्राप्त होइकै विनाही आयासतैं सर्वतें उत्कृष्ट मोक्षरूप फलकूं प्राप्त होवैंहैं इति। तहां मोक्षरूप परम पुरुषार्थरूप फलकी प्राप्ति करणेहारा जो मैं परमेश्वरका भजन है ता मेरे भजनकी उपेक्षा करिकै क्षुद्रफलकी प्राप्ति करणेहारे क्षुद्रदेवतावोंके भजनविषे जो लोकोंकी प्रवृत्ति होवैहै ता प्रवृत्तिविषे पूर्वले संस्काररूप वासनाविशेषही असाधारण कारण हैं। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यंतेऽन्यदेवताः ॥
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) कामैः। तैः। तैः। हृतज्ञानाः। प्रपद्यंते। अन्यदेवताः। तम्। तम्। नियमम्। आस्थाय। प्रकृत्या। नियताः। स्वया ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिन तिन कामवासनावोंकरिकै मैंपरमेश्वरतैं विमुख हुआहै अंतःकरण जिन्होंका ऐसे पुरुष आपणी पूर्ववासनारूप प्रकृतिनैं वशीकरे हुए तिस तिस नियमकूं आश्रयणकरिकै अन्यदेवतावोंकूं भजैं हैं ॥ २० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! मारण, मोहन, उच्चाटन, स्तंभन, आकर्षण, वशीकरण इत्यादिकोंकूं विषय करणेहारे जे अभिलाषारूप काम हैं जिन कामोंके मारणमोहना-

दिक विषय भगवत्की सेवा करिकै प्राप्तहोणेकूं लोकोंनैं अशक्य मानेहैं । ऐसे क्षुद्र-अभिलाषारूप जे काम हैं तिनतिन कामोंकरिकै अपहृत हुआहै क्या भगवान् वासु-देवतैं विमुखकरिकै तिसतिस मारणादिक फलका दातारूप करिकै मानेहुए क्षुद्रदेवतावोंके अभिमुख कऱ्याहुआहै ज्ञान क्या अंतःकरण जिन्होंका तिनोंका नाम हृतज्ञान है । ऐसे मैं परमेश्वरतैं बहिर्मुख पुरुष मैं परमेश्वरतैं अन्य क्षुद्रदेवतावोंकूं तिसतिस देवताके आराधनविषे प्रसिद्ध जे जप उपवास प्रदक्षिणा नमस्कार इत्यादिक नियम हैं तिसतिस नियमकूं आश्रयणकरिकै तिसतिस मारणमोहनादिक क्षुद्रफलके प्राप्तिकी इच्छा करिकै भजैहैं । तिन क्षुद्रदेवतावोंके मध्यविषेभी कोईक पुरुष पूर्वअभ्यासजन्य आपणी आपणी असाधारण वासनाके वशहुए किसी देवताकूंही भजैं हैं ॥ २० ॥

हे भगवन् ! जे पुरुष अन्य क्षुद्रदेवतावोंका भजन करैंहैं तिन पुरुषोंकूंभी तिस-तिस देवताके प्रसादतैं सर्वके ईश्वररूप भगवान् वासुदेवविषे अवश्यकरिकै भक्ति होवैगी । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं-

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ॥
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) यः । यः । याम् । याम् । तनुम् । भक्तः । श्रद्धया । अर्चितुम् । इच्छति । तस्य । तस्य । अचलाम् । श्रद्धाम् । ताम् । एव । विदधामि । अहम् ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो जो सकामपुरुष भक्तियुक्तहुआ जिस जिस देवता-मूर्तिकूं श्रद्धाकरिकै अर्चनकरणेकूं प्रवृत्त होवैहै तिस तिस पुरुषकी तिस देवता-मूर्तिप्रति ही स्थिर भक्तिकूं मैं अंतर्यामी करूंहूं ॥ २१ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! तिन अन्यदेवतावोंके भजन करणेहारे पुरुषोंके मध्यविषे जो जो सकामपुरुष भक्तिकरिकै युक्तहुआ जिसजिस देवतामूर्तिकूं पूर्वले जन्मकी वासनावोंके बलतैं प्रादुर्भूत हुई श्रद्धाकरिकै अर्चन करणेवासतै प्रवृत्त होवैहै तिसतिस सकामपुरुषकी तिसतिस देवतामूर्तिविषेही पूर्ववासनावोंके वशतैं प्राप्तहुई भक्तिरूप श्रद्धाकूं मैं अंतर्यामी स्थिर करूंहूं । तिस पुरुषकी तिस देवतातैं श्रद्धा हटाइकै आपणेविषे तिसके श्रद्धाकूं मैं करावता नहीं इति । इहां किसी टीकाविषे (ताम्) इस पदकरिकै श्रद्धाकाही ग्रहण कऱ्याहै परंतु इस व्याख्यानविषे पूर्व कथन करेहुए

(यांयां) इस देवतावाचक यत्शब्दका अन्वय नहीं होवैगा । अथवा तत् इस शब्दका अध्याहार करिकैही ता यत्शब्दका अन्वय होवैगा । काहेतैं यत्शब्दकूं तत शब्दकी आकांक्षा अवश्यकरिकै होवैहै । यातैं इहां ताम् इस शब्दके आगे प्रति इस शब्दका अध्याहारकरिकै ताम् इस शब्दकरिकै पूर्व (यांयां) इस यत्शब्द उक्त देवताकाही परामर्श कर्‍याहै ॥ २१ ॥

किंच–

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ॥
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) सः । तया । श्रद्धया । युक्तः । तस्य । आराधनम् । ईहते । लभते । च । ततः । कामान् । मया । एव । विहितान् । हि । तान् ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो सकामपुरुष तिस श्रद्धाकरिकै युक्तहुआ तिसी देवतामूर्तिकारिकै पूजनकूं करैहै तथा तिसी देवतामूर्तितैं मैंपरमेश्वरनैं ही रचेहुए पूर्वसंकल्पित कामोंकूं प्रसिद्ध प्राप्तहोवैहै ॥ २२ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! तिन मारणमोहनादिक अर्थोंके प्राप्तिकी इच्छा करताहुआ सो सकाम पुरुष मैं परमेश्वरनैं तिसतिस देवताविषे स्थिर करीहुई श्रद्धाकरिकै युक्तहुआ तिस देवतामूर्तिकाही पूजन करैहै । ता देवतामूर्तिकूं छोडिकै मैं परमेश्वरका पूजन करै नहीं । ता पूजनकरिकै सो सकामपुरुष तिसी देवताकी मूर्तितैंही पूर्वसंकल्पकरेहुए मारणमोहनादिक काम्यमानपदार्थोंकूं प्राप्त होवैहै । शंका–हे भगवन् ! जबी ते अन्य देवताभी आपणेआपणे भक्तजनोंके प्रति तिसतिस कर्मके फल देणेविषे स्वतंत्रही हुए तबी आप परमेश्वरविषे सर्वकर्मोंके फलका दातापणा सिद्ध नहीं होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं । (मयैव विहितान् इति) हे अर्जुन ! सर्वजीवोंके पुण्यपापकर्मोंकूं जानणेहारा तथा तिन सर्व कर्मोंके फलका प्रदाता तथा तिन सर्व देवतावोंका अंतर्यामी ऐसा जो मैं परमेश्वर हूं तिस मैं परमेश्वरनैंही तिसतिस कर्मके फलविपाक समयविषे ते मारणमोहनादिक अर्थ उत्पन्न करे हैं । मैं परमेश्वरतैं विना ते देवता तिसतिस अर्थके उत्पन्न करणेविषे समर्थ हैं नहीं । ऐसे मैं अंतर्यामी परमेश्वरनैं उत्पन्न करेहुए तिन

मारणमोहनादिक अर्थोंकूंही ते सकाम पुरुष तिसतिस देवतातैं प्राप्त होवैं हैं । यातैं मैं अंतर्यामी परमेश्वरही साक्षात् अथवा किसी अन्यद्वारा सर्वकर्मोंके फलका प्रदाता हूं । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं सर्वदेवतावोंविषे आपणी आज्ञाके वशवर्तिपणा बोधन कऱ्या इति । अथवा मूलश्लोकविषे (हितान्) यह एकहीपद जानणा अर्थात् वास्तवतैं अहितरूप हुएभी ते मारण मोहनादिक अर्थ तिन सकामपुरुषोंकूं हितरूपकरिकै प्रतीत हुएहैं ॥ २२ ॥

यद्यपि ते सर्वही देवता सर्वात्मारूप मैं परमेश्वरकीही मूर्ति हैं यातैं तिन देवतावोंका आराधनभी वास्तवतैं मैं परमेश्वरकाही आराधन है । तथा सर्वत्र फलप्रदाताभी मैं अंतर्यामी ईश्वरही हूं तथापि साक्षात् मैं परमेश्वरके भक्तोंकूं तथा अन्य देवतावोंके भक्तोंकूं जो विषमफलकी प्राप्ति होवैहै सो वस्तुके विवेककरिकै तथा वस्तुके अविवेककरिकैही होवैहै । तहां मैं परमेश्वरके भक्तोंविषे तौ सो वस्तुका विवेक रहैहै और अन्यदेवतावोंके भक्तोंविषे सो वस्तुका अविवेक रहैहै । या कारणतैंही तिनोंकूं विषमफलकी प्राप्ति होवैहै । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैहैं-

अंतवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ॥
देवान्देवयजो यांति मद्भक्ता यांति मामपि ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) अंतवत् । तु । फलम् । तेषाम् । तत् । भवति । अल्पमेधसाम् । देवान् । देवयजः । यांति । मद्भक्ताः । यांति । माम् । अपि ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिन अल्पबुद्धिवाले पुरुषोंका सो फल नाशवान् ही होवैहै, जिसकारणतैं देवतावोंके आराधन करणेहारे पुरुष तिन देवतावोंकूंही प्राप्त होवैहैं और मैं परमेश्वरके भक्त मैं परमेश्वकूं ही प्राप्त होवैहैं ॥ २३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! अल्प है बुद्धिरूप मेधा जिन्होंकी अर्थात् मंदताकरिकै यथार्थवस्तुके विवेक करणेविषे असमर्थ है बुद्धिरूप मेधा जिन्होंकी तिनोंका नाम अल्पमेधस है ऐसे जे तिसतिस देवताकें भक्त हैं तिन अन्यदेवतावोंके भक्तोंकूं यद्यपि मैं अंतर्यामी परमेश्वरनैंही तिसतिस देवताके आराधनजन्य सोसो फल प्राप्त कऱ्याहै तथापि सो तिनोंका फल नाशवान्ही होवैहै अर्थात् परमार्थवस्तुके विवेक करणेहारे मैं परमेश्वरके भक्तोंका मोक्षरूप फल जैसे नाशतैं रहित होवैहै तैसे तिन अन्यदेव-

तावोंके भक्तोंका सो मारणमोहनादिरूप फल नाशतैं रहित होवै नहीं ।किंतु सो फल नाशवान्‌ही होवैहै । परमार्थवस्तुके विवेकतैं रहित पुरुषोंकूं कर्मोंतैं नाशवान् फलकीही प्राप्ति होवैहै यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै । तहां श्रुति–(यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्मिँल्लोके जुहोति यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्षसहस्राण्यंतवदेवास्य तद्भवति) अर्थ यह–हे गार्गि ! जो पुरुष इस अक्षर परमात्मा देवकूं न जानिकरिकै इस लोकविषे होम करैहै तथा यज्ञ करैहै तथा अनेक सहस्रवर्षपर्यंत तप करैहै ते सर्व कर्म इस पुरुषकूं नाशवान् फलकीही प्राप्ति करैंहैं इति। शंका–हे भगवन् ! अन्य देवतावोंके भक्तोंकूं तौ नाशवान् फलकी प्राप्ति होवैहै और तुम्हारे भक्तोंकूं तौ अविनाशी फलकी प्राप्ति होवैहै याके विषे कौन कारण है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ताके विषे कारणकूं कहैं हैं–(देवान्देवयजः इति) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरतैं अन्य इंद्रादिक देवतावोंका आराधन करणेहारे ते सकाम पुरुष तिन नाशवान् इंद्रादिक देवतावोंकूंही प्राप्त होवैहैं । मैं परमेश्वरकूं ते पुरुष प्राप्त होवैं नहीं । इसप्रकार यक्षराक्षसोंके भक्त तिन यक्षराक्षसोंकूंही प्राप्त होवैं हैं। तथा भूतप्रेतोंके भक्त तिन भूतप्रेतोंकूंही प्राप्त होवैं हैं । तहां इंद्रादिक देवता तथा तिनोंके भक्त यह दोनों सात्त्विक हैं और यक्ष राक्षस तथा तिनोंके भक्त यह दोनों राजस हैं और भूत प्रेत तथा तिनोंके भक्त यह दोनों तामस हैं जोजो पुरुष जिसजिसका आराधन करैहै सोसो पुरुष तिसतिसकूं ही प्राप्त होवैहै । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति–(कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोकः । देवो भूत्वा देवानप्येति ।) अर्थ यह–पितृसंबंधी कर्म करिकै इस पुरुषकूं पितृलोक प्राप्त होवैहै । और देवतावोंकी उपासना करिकै इस पुरुषकूं देवलोक प्राप्त होवैहै इति । और तिसतिस देवताका आराधन करणेहारा पुरुष तिसतिस देवताभावकूं प्राप्त होइकै तिसतिस देवताके लोककूं प्राप्त होवैहै इति। इत्यादि श्रुतिवचन तिसतिस देवताके आराधन करणेहारे पुरुषकूं तिसतिस देवताकी प्राप्ति कथन करैं हैं । और जे आर्तादिक तीन भक्त साक्षात् मैं परमेश्वरकाही आराधन करैंहैं ते तीनों भक्त तौ मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्त होवैं हैं । इहां (मामपि) या वचनविषे स्थित जो अपि यह शब्द है ता अपिशब्दकरिकै श्रीभगवान्‌नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या– ते हमारे आर्त्तादिक तीन सकाम भक्त प्रथम तौ मैं परमेश्वरके प्रसादतैं तिसतिस मनवांछित पदार्थोंकूं प्राप्त होवैं हैं तिसतैं अनंतर मैं परमेश्वरकी उपासनाके परिपाकतैं मैं अनंत आनंदघन परमेश्वरकूंभी प्राप्त होवैं हैं इति । यातैं

यह अर्थ सिद्धभया—मैं परमेश्वरके आर्तादिक तिन भक्तोंविषे तथा अन्य देवतावोंके आर्त्तादिक भक्तोंविषे सकामताके समान हुएभी नित्यफलकी प्राप्तिकरिकै तथा अनित्यफलकी प्राप्ति करिकै तिन दोनोंका महान् भेद है। यातैं (उदाराः सर्व एवैते) यह पूर्व उक्त भगवान्‌का वचन युक्त है इति। यद्यपि परमेश्वरके आर्त्तादिक तीन सकाम भक्तोंकूं आपणीआपणी कामनाके अनुसार जो दुःखकी निवृत्ति तथा वांछित अर्थोंकी प्राप्ति इत्यादिक संसारिक फल प्राप्ति होवैहै सो संसारिक फल अनित्यही है, तथापि ता परमेश्वरके आराधनका परमफल जो मोक्ष है सो नित्य है। ता मोक्षरूप फलके अभिप्राय करिकैही तिन परमेश्वरके भक्तोंको नित्य फलकी प्राप्ति कथन करीहै इति। इहां किसी टीकाविषे (अल्पमेधसां) या वचनका यह अर्थ कथन कऱ्या है (अल्पे मेधा येषां) अर्थ यह—श्रुतिनैं अल्पशब्दकरिकै कथन कऱ्या जो यह द्वैतप्रपंच है ता अल्पद्वैतविषे है बुद्धिरूप मेधा जिनोंकी तिनोंका नाम अल्पमेधस है अर्थात् बाह्य अर्थोंकी अभिलाषा करणेहारे पुरुषोंका नाम अल्पमेधस है। तहां श्रुति—(अथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोति अन्यन्मनुतेऽन्यद्विजानाति तदल्पम् ॥) अर्थ यह—जिस द्वैतभावविषे यह पुरुष अन्यवस्तुकूं देखै है तथा अन्य वस्तुकूं श्रवण करै है तथा अन्यवस्तुकूं मनन करैहै तथा अन्यवस्तुकूं जानैहै सो सर्व द्वैतप्रपंच अल्प है ॥ २३ ॥

हे भगवन् ! सो साक्षात् भगवत्‌का भजन जो कदाचित् नाशतैं रहित उत्तम फलकी प्राप्ति करताहोवै तौ इस लोकविषे विशेषकरिकै यह मनुष्य तिस भगवत्‌तैं विमुख किसकारणतैं होवैहै? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन बहुत मनुष्योंकी भगवत्‌विमुखताविषे कारणकूं कथन करैं हैं—

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यंते मामबुद्धयः ॥
परं भावमजानंतो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) अव्यक्तम् । व्यक्तिम् । आपन्नम् । मन्यंते । माम् । अबुद्धयः । परम् । भावम् । अजानंतः । मम । अव्ययम् । अनुत्तमम् ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! विवेकतैं शून्यपुरुष मैं परमेश्वरके सर्वकाकारणरूप तथा नित्य सोपाधिक स्वरूपकूं तथा सर्वतैं उत्कृष्ट निरुपाधिकस्वरूपकूं नहीं जानतेहुए अव्यक्तरूप मैं परमेश्वरकूं व्यक्तिकूं प्राप्तहुआ मानैं हैं या कारणतैंही ते अविवेकी पुरुष मैं परमेश्वरतैं विमुख रहैं हैं ॥ २४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! विवेकतैं रहित पुरुष अव्यक्तरूप मैं परमेश्वरकूं व्यक्तिभावकूं प्राप्त हुआ मानै हैं अर्थात् इस देहग्रहणतैं पूर्व कार्यकरणेकी असामर्थ्यतारूप करिकै स्थितहुए मैं परमेश्वरकूं अबी इस कालविषे वसुदेवके गृहविषे भौतिक शरीर करिकै कार्य करणेकी सामर्थ्यताकूं प्राप्तहुआ कोईक जीवविशेषही मानै हैं । अथवा अव्यक्तं कहिये सर्वका कारणरूपभी मैं परमेश्वरकूं व्यक्तिमापन्नं कहिये मत्स्य कूर्मादिक अवताररूप करिकै कार्यभावकूं प्राप्त हुआ मानैं हैं । शंका–हे भगवन् ! ते मनुष्य तुम्हारे स्वरूपका विवेक किस कारणतैं नहीं करैंहैं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ताके विषे कारणकूं कहैं हैं (अबुद्धयः इति) हे अर्जुन ! जिस कारणतैं ते पुरुष मेरे स्वरूपके विवेक करणेहारी बुद्धितैं रहित हैं तिस कारणतैं ते पुरुष अव्यक्तरूप मैं परमेश्वरकूं व्यक्तिभावकूं प्राप्तहुआ मानैंहैं । तहां अव्यक्तरूप परमेश्वरकूं व्यक्तिभावकी प्राप्ति मानणेविषे कथन कऱ्या जो (अबुद्धयः) यह हेतु है ता हेतुकूं अब स्पष्ट करिकै निरूपण करैं हैं । (परं भावमजानंत इति) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरका जो पर अव्यय भाव है अर्थात् मैं परमेश्वरका जो सर्व जगत्का कारणरूप तथा नित्य सोपाधिक स्वरूप है तिस हमारे सोपाधिक स्वरूपकूंभी ते पुरुष जानते नहीं । तथा मैं परमेश्वरका जो अनुत्तम भाव है अर्थात् (पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परागतिः) इत्यादिक श्रुतियोंनैं कथन कऱ्या जो सर्वतैं उत्कृष्ट तथा अतिशयतातैं रहित तथा अद्वितीय परमानंदघन तथा देश कालवस्तुपारिच्छेदतैं रहित मैं परमेश्वरका निरुपाधिक स्वरूप है, तिस मेरे निरुपाधिकस्वरूपकूंभी ते पुरुष जानते नहीं । इसी कारणतैं ते विवेकहीन पुरुष अन्य जीवोंकी न्याईं हमारे लीलामात्रकार्यकूं देखिकै मेरेकूंभी कोई जीवविशेषही मानते हैं । ईश्वररूप हमारेकूं मानते नहीं इस कारणतैं ते अविवेकी पुरुष मैं परमेश्वरकूं परित्याग करिकै प्रसिद्ध इंद्रादिक देवतावोंकाही आराधन करैं हैं । तिन अन्यदेवतावोंके आराधनतैं ते पुरुष नाशवान् फलकूंही प्राप्त होवैं हैं । इसी वार्त्ताकूं श्रीभगवान् (अवजानंति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्) इसी वचनकरिकै आगेभी कथन करैंगे ॥ २४ ॥

हे भगवन् ! आप कैसे हो, आपणे जन्मकालविषेभी सर्वयोगी पुरुषोंकरिकै ध्यान करणे योग्य तथा श्रीवैकुंठविषे स्थित ऐसे दिव्य ईश्वरसंबंधी स्वरूपकूं आविर्भाव करते भये हो । और अबी वर्त्तमानकालविषेभी श्रीवत्स कौस्तुभमणि

वनमाला मुकुट कुंडल इत्यादिक दिव्य अलंकारों करिकै आप युक्त हो, तथा शंख चक्र गदा पद्म या च्यारोंकूं धारण करणेहारी च्यारि भुजावोंकरिकै युक्त हो। तथा श्रीगरुड आपका वाहन है तथा सर्व सुरलोकोंकरिकै संपादित राजराजेश्वर अभिषेक आदिक महावैभव करिकै युक्त हो । तथा सर्व सुर असुरोंकूं जय करणेहारे हो । तथा नानाप्रकारके दिव्यलीला विलासोंकूं करणेहारे हो । तथा रामादिक सर्व अवतारोंविषे शिरोमणि हो, तथा साक्षात् वैकुंठलोकके अधिपति हो, तथा सर्वलोकोंके उद्धारकरणेवासतै इस भूमिलोकविषे अवतारकूं धारण करणेहारे हो । तथा ब्रह्माकी सृष्टिविषे नहीं उत्पन्नकरणेहारी निरतिशय सौंदर्यताकूं धारण करणेहारें हो । तथा आपणी बाललीलाकरिकै साक्षात् ब्रह्माकूंभी मोहकी प्राप्तिकरणेहारे हो । तथा सूर्यकी किरणावोंके समान उज्ज्वल दिव्यपीतांबरकूं धारणकरणेहारे हो । तथा उपमातैं रहित श्याम सुंदरस्वरूपकूं धारण करणेहारे हो । तथा पारिजातके वासतै साक्षात् इंद्रकूंभी पराजय करते भयेहो । तथा बाणयुद्धविषे साक्षात् महादेवकूंभी पराजय करतेभये हो । तथा संपूर्ण सुर असुरोंकूं जयकरणेहारे दैत्योंके प्राणपर्यंत सर्व पदार्थोंकूं हरण करणेहारे हो । तथा श्रीदामादिक परमरंकोंके प्रति महावैभवकी प्राप्ति करणेहारेहो तथा एकही कालविषे षोडश सहस्र दिव्यरूपोंकूं धारणकरणेहारेहो । तथा अपरिमित गुणोंकरिकै युक्त हो । तथा महान् महिमावाले हो । तथा नारद मार्कंडेय इत्यादिक महान्मुनियोंके समुदायकरिकै स्तुतिकरणेयोग्य हो । इसतैं आदिलैके अनेकप्रकारके दिव्यगुण आपकेविषे हैं जे दिव्यगुण किसीभी जीवविषे संभवते नहीं किंतु ईश्वरविषे ही ते गुण संभवैं हैं । ऐसे आप परमेश्वरविषे अविवेकी पुरुषोंकीभी सा मनुष्यत्वबुद्धि तथा जीवत्वबुद्धि कैसे होवै है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाकूं निवृत्त करतेहुए श्रीभगवान् कहैं हैं—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ॥
मूढोयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥२५॥

(पदच्छेदः) न । अहम् । प्रकाशः । सर्वस्य । योगमायासमावृतः । मूढः । अयम् । न । अभिजानाति । लोकः । माम् । अजम् । अव्ययम् ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वर सर्वलोकोंकूं प्रगट नहीं होऊंहूं जिसकारणतैं मैं परमेश्वर योगमायाकरिकै आवृत हूं तिस कारणतैं मूढहुआ यह लोक जन्मतैं रहित तथा मरणतैं रहित मैं परमेश्वरकूं नहीं जानै है ॥ २५ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! मैं परमेश्वर सर्वलोकोंकूं आपणे स्वरूपकरिकै प्रगट नहीं होऊंहूं किंतु मैं परमेश्वरके जे कोई भक्त हैं तिन भक्तोंकूंही मैं परमेश्वर आपणे स्वरूपकरिकै प्रगट होऊंहूं। शंका–हे भगवन् ! तिन सर्वलोकोंकूं आप क्यों नहीं प्रगट होतेहो। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता! नहीं प्रगट होणेविषे हेतुकूं कहैं हैं (योगमायासमावृतः इति) इहां मैं परमेश्वरकी भक्तितैं रहित प्राणी मैं परमेश्वरकूं वास्तवस्वरूपकरिकै नहीं जानैं याप्रकारका जो मैं परमेश्वरका संकल्प है ताका नाम योग है। ता योगके वशवर्त्ति जा अनादि अनिर्वचनीय अविद्यारूप माया है ताका नाम योगमाया है। अर्थात् मैं परमेश्वरके संकल्पके अनुसार वर्त्तणेहारी मायाका नाम योगमाया है ता योगमायाकरिकै मैं परमेश्वर सम्यक् आवृत हुआहूं अर्थात् हमारे स्वरूपविषयक ज्ञानके कारणके विद्यमान हुएभी ता योगमायानैं तिस ज्ञानकी विषयताके अयोग्य कऱ्याहूं। इसीकारणतैं तिन सर्वलोकोंकूं मैं परमेश्वर आपणे वास्तवस्वरूपकरिकै प्रगट होता नहीं। यातैं (परं भावमजानंतो ममाव्ययमनुत्तमम्) इस वचनकरिकै जो पूर्व आपणे सोपाधिकस्वरूपका तथा निरुपाधिकस्वरूपका अज्ञान लोकोंकूं कह्या था ता स्वरूपके अज्ञानविषे मैं परमेश्वरका सो मायाका प्रेरक संकल्पही कारण है इति। इसीकारणतैं तिस हमारी योगमायाकरिकै मूढहुए अर्थात् आवृतज्ञानशक्तिवाले हुए यह पूर्वउक्त आर्त्तादिक च्यारिप्रकारके भक्तजनोंतैं विलक्षण लोक मैं परमेश्वरविषयक ज्ञानके कारणके विद्यमान हुएभी उत्पत्तिनाशतैं रहित मैं परमेश्वरकूं जानिसकते नहीं। किंतु ते मूढलोक विपरीतदृष्टिकरिकै मैं परमेश्वरकूं कोई मनुष्यविशेषही मानते हैं। याकारणतैंही ते विपरीतदृष्टिवाले मूढलोक मैं परमेश्वरका परित्याग करिकै अन्य इंद्रादिक देवतावोंकूंही भजैं हैं। तहां वस्तुके विद्यमान यथार्थस्वरूपकूं आवरण करिकै ता वस्तुके अविद्यमान अयथार्थस्वरूपकूं दिखावणा यह मायाका स्वभाव लौकिक ऐंद्रजालिक मायाविषेभी प्रसिद्धही है। इहां किसी टीकाविषे तौ (योगमाया) या वचनका यह अर्थ कऱ्याहै। आपणी आवरणशक्तिकरिकै इस पुरुषकूं जन्ममरणरूपदुःखके प्रवाहसाथि जा जोडदेवै ताका नाम योगा है ऐसी योगा जा माया है ताका नाम योगमाया है इति। और भगवान् भाष्यकारोंनैं तौ

(योगमाया) इसवचनका यह अर्थ कथन कऱ्याहै । सत्त्वादिक तीन गुणोंका जो संबंध है ताका नाम योग है ता योगवाली जा माया है ताका नाम योगमाया है । और किसी टीकाविषे तौ (योगमायासमावृतः) इस वचनविषे योग मायासमावृतः यह दो पद निकासेहैं । तहां चित्तका निरोधरूप योग है विद्यमान जिसविषे ताका नाम योग है । याप्रकारका ता योगशब्दका अर्थ करिकै योगिन् इस शब्दकी न्याई सो योगशब्द अर्जुनका संबोधन अंगीकार कऱ्याहै अर्थात् हे योगिन् मायाकरिकै आवृत हुआ मैं परमेश्वर तिन सर्व लोकोंकूं प्रगट होता नहीं ॥ २५ ॥

हे अर्जुन ! इसप्रकार मैं परमेश्वरके अधीन जा माया है ता स्वाधीन माया करिकै मैं परमेश्वर सर्वभूतोंकूं मोहकी प्राप्ति करूंहूं तथा आप मैं परमेश्वर प्रतिबंधतैं रहित ज्ञानशक्तिवाला हूं यातैं मैं परमेश्वर तौ तिन सर्वभूतोंकूं जानताहूं । और मैं परमेश्वरकूं मेरी भक्तितैं रहित कोईभी प्राणि जानता नहीं । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैंहैं-

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ॥
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥ २६ ॥

(पदच्छेदः) वेद । अहम् । समतीतानि । वर्त्तमानानि । च । अर्जुन । भविष्याणि । च । भूतानि । माम् । तु । वेद । न । कश्चन ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वर पूर्वव्यतीतहुए तथा अबी वर्त्तमान तथा आगेहोणेहारे सर्वभूतोंकूं जानताहूं और मैं परमेश्वरकूं तौ कोईभी अभक्त नहीं जानै है ॥ २६ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! प्रतिबंधतैं रहित सर्वविषयकज्ञानवाला मैं परमेश्वर आपणी मायाकरिकै तिन सर्वलोकोंकूं मोहकी प्राप्ति करताहुआभी चिरकालके नष्टहुए तथा अबी वर्त्तमान तथा आगे होणेहारे जितनेक तीन कालवर्त्ति स्थावर जंगमरूप भूत हैं तिन सर्वोंकूं अपरोक्षही जानताहूं । इसीकारणतैंही मैं सर्वज्ञ परमेश्वर हूं । इस अर्थविषे तुमनैं किंचितमात्रभी संशय करणा नहीं । ऐसे सर्वदर्शीभी मैं परमेश्वरकूं मेरी मायाकरिकै मोहित हुआ कोईभी प्राणी जानता नहीं । अर्थात् जैसे लोकप्रसिद्ध ऐंद्रजालिक मायावी पुरुषकी मायाकरिकै मोहित हुए

लोक ता मायावी पुरुषकूं जानिसकते नहीं किंतु ता मायावी पुरुषके अनुग्रहका पात्रभूत जे तिस मायावी पुरुषके पुत्रादिक हैं ते पुत्रादिकही तिस मायावी पुरुषकूं जानैंहैं । तैसे मैं परमेश्वरके अनुग्रहके पात्रभूत जे हमारे भक्तजन हैं तिनों-तैं भिन्न दूसरे सर्वप्राणी हमारी योगमायाकरिकै मोहित होणेतैं मैं परमेश्वकूं जानिसकते नहीं । किंतु ते भक्तजनही हमारी मायाकरिकै नहीं मोहित होणेतैं मैं परमेश्वरकूं वास्तवरूपकरिकै जानैं हैं । इसीकारणतैंही मैं परमेश्वरके वास्तव-स्वरूपके अज्ञानतैं बहुत मनुष्य मैं परमेश्वरकूंभी कोई जीवविशेष मानतेहुए मैं परमेश्वरका आराधन करते नहीं किंतु इंद्रादिक देवतावोंकाही आराधन करैं हैं । इहां (मां तु) या वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है ता तु शब्दकरिकै श्रीभगवान्नैं तिन अभक्तप्राणियोंविषे परमेश्वरविषयक ज्ञानका प्रतिबंध सूचन कऱ्याहै अर्थात् किसी प्रतिबंधके वशतैं ते अभक्त लोक मैं परमेश्वरकूं वास्तवरूपतैं जानिसकते नहीं ॥ २६ ॥

तहां परमेश्वरके वास्तवस्वरूपके ज्ञानका जो प्रतिबंध है ता प्रतिबंधविषे पूर्व योगमायाकूं हेतुरूपता कथन करी । अब ता प्रतिबंधविषे देहइंद्रियरूप संघातके अभिमानकी अतिशयतापूर्वक भोगोंविषे अभिनिवेशरूप दूसरे हेतुकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वंद्वमोहेन भारत ॥
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यांति परंतप ॥ २७ ॥

(पदच्छेदः) इच्छाद्वेषसमुत्थेन । द्वंद्वमोहेन । भारत । सर्वभूतानि संमोहम् । सर्गे । यांति । परंतप ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे भारत ! हे परंतप ! यहै सर्वभूतप्राणी स्थूलशरीरकी उत्पत्तितैं अनंतर इच्छाद्वेष दोनोंतैं उत्पन्नहुए शीतउष्णादिक द्वंद्वनिमित्तक मोहकरिकै संमोहकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ २७ ॥

भा० टी०—हे भरतवंशविषे उत्पन्न हुआ तथा शत्रुवोंकूं नाशकरणेहारा अर्जुन ! अनुकूलवस्तुकूं विषय करणेहारा जा यह वस्तु हमारेकूं प्राप्त होवै याप्रकारकी इच्छा है तथा प्रतिकूलवस्तुकूं विषयकरणेहारा जो यह वस्तु हमारेकूं मत प्राप्तहोवै याप्रकारका द्वेष है ता इच्छा द्वेष दोनोंकरिकै उत्पन्न हुआ तथा शीत-उष्ण सुखदुःख क्षुधा पिपासा इत्यादिक द्वंद्वधर्म हैं निमित्त जिसविषे ऐसा जो अहं

सुखी अहं दुःखी इत्यादिक विपर्ययरूप मोह है ता मोहकरिकै यह सर्वभूतप्राणी स्थूलशरीरकी उत्पत्तितैं अनंतर नित्य अनित्यवस्तुके विवेककी अयोग्यतारूप संमोहकूं प्राप्त होवैंहैं । इहां (हे भारत) या संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनविषे कुलकी महिमा कथन करी । और (हे परंतप) यासंबोधनकरिकै ता अर्जुन-विषे स्वरूपतैं शक्ति कथन करी । ता कहणे करिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन कऱ्या । ऐसे कुलमहिमा करिकै तथा स्वरूपशक्तिकरिकै युक्त तैं अर्जुनकूं सो द्वंद्वमोहरूप शत्रु पराजयकरणेविषे समर्थ नहीं है किंतु तूं अर्जुनही तिस द्वंद्वमोहकूं पराजयकरणेविषे समर्थ है इति । इहां श्रीभगवान्का यह तात्पर्य है—ता इच्छाद्वेषतैं रहित कोईभी भूतप्राणी हैं नहीं किंतु सर्व-भूतप्राणी ता इच्छाद्वेषकरिकै विशिष्ट हैं और ता इच्छाद्वेषकरिकै आविष्टपुरुषकूं बाह्यवस्तुविषयक ज्ञानभी संभवता नहीं तौ तिस पुरुषकूं अंतर आत्मविषयक ज्ञान कैसे होवैगा किंतु नहीं होवैगा । यातैं रागद्वेषकरिकै व्याकुल हुए अंतःकर-णवाले होणेतैं ते सर्वभूतप्राणी मैं परमेश्वरकूं आपणा आत्मारूपकरिकै जानते नहीं । इसीकारणतैं भजन करणेयोग्यभी मैं परमेश्वरकूं भजते नहीं ॥ २७ ॥

हे भगवन् ! (सर्वभूतानि संमोहं यांति) इस वचनकरिकै पूर्व आपनै सर्व-भूतप्राणियोंकूं संमोहकी प्राप्ति कथन करी । और इस वचनतैंभी पूर्व (चतुर्विधा भजंते माम्) इस वचनकरिकै आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, ज्ञानी या च्यारिप्रकारके भक्तजनोंकूं परमेश्वरके भजनकीही प्राप्ति कथन करी थी । ते दोनों वचन परस्पर विरुद्ध अर्थकूंही कथन करैं हैं । यातैं (चतुर्विधा भजंते माम्) इस वचनकूं जो आप प्रमाणभूत मानौगे तौ (सर्वभूतानि संमोहं यांति) यह आपका वचन असंगत होवैगा । और (सर्वभूतानि संमोहं यांति) इस वचनकूं जो आप प्रमाणभूत मानौगे तौ (चतुर्विधा भजंते माम्) यह आपका वचन असंगत होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए पुण्यकर्मोंकी अतिशयता करिकै जिन पुरुषोंके सर्व पापकर्म नाश होइगये हैं ते भक्तजनही मैं परमेश्वरका आराधन करैं हैं । ऐसे भक्तजनही (चतुर्विधा भजंते माम्) इस वचनकरिकै पूर्व कथन करे हैं । और (सर्वभूतानि संमोहं यांति) इस वचनकरिकै तौ तिन पुण्यवान् भक्तजनोंतैं भिन्नही प्राणियोंका कथन कऱ्या है यातैं तिन दोनों वचनोंका परस्पर विरोध होवै नहीं याप्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

येषां त्वंतगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ॥
ते द्वंद्वमोहनिर्मुक्ता भजंते मां दृढव्रताः ॥ २८ ॥

(पदच्छेदः) येषाम् । तु । अंतगतम् । पापम् । जनानाम् । पुण्यकर्मणाम् । ते । द्वंद्वमोहनिर्मुक्ताः । भजंते । माम् । दृढव्रताः ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जिने पुण्यकर्मवाले जनोंका पाप नाशकूं प्राप्त हुआहै ते पुरुष ता द्वंद्वमोहतैं रहितहुए दृढसंकल्पवाले हुए मैं परमेश्वरकूं भजैहैं ॥ २८ ॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन ! पूर्व अनेक जन्मोंविषे पुण्यकर्मोंका संचय कऱ्याहै जिनोंने या कारणतैंही सफल है जन्म जिनोंका याकारणतैंही इतर सर्वलोकोंतैं विलक्षण ऐसे जिन अधिकारी पुरुषोंका तिस तिस पुण्यकर्मोंकारिकै ज्ञानका प्रतिबंधक पाप नाशकूं प्राप्त हुआ है ते पुरुष ता प्रतिबंधरूप पापके अभाव हुए द्वंद्वमोहनिर्मुक्त हुए अर्थात् सो पाप है निमित्त कारण जिसका ऐसा जो रागद्वेषादिक जन्य अहं सुखी अहं दुःखी इत्यादिक विपर्ययरूप मोह है तिस द्वंद्वमोहनैं ते पुरुष पुनरावृत्तिके अयोग्य देखिकै त्याग किये हैं ऐसे द्वंद्वमोहतैं रहित पुरुष दृढव्रतहुए क्या अचल संकल्पवाले हुए अर्थात् सर्वप्रकारतैं यह परमेश्वरही भजन करणे योग्य है सो परमेश्वर इसप्रकारकाही है याप्रकारका जो शास्त्रप्रमाणजन्य तथा अप्रामाण्यशंकातैं रहित ज्ञान है ता ज्ञानवाले हुए मैं परमेश्वरकूं आराधन करैहैं अर्थात् अनन्यशरण हुए मैं परमेश्वरकाही सेवन करैं हैं। ऐसे अधिकारी जनही (चतुर्विधा भजंते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन) इस पूर्व उक्त वचनविषे सुकृतिशब्दकरिकै कथन करे हैं । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया (सर्वभूतानि संमोहं यांति) यह वचन तौ उत्सर्गरूप है । और तिन सर्वभूतप्राणियोंके मध्यविषे जे पुरुष पुण्यकर्मवाले हैं ते पुरुष तिस संमोहतैं रहित हुए मैं परमेश्वरकूं भजैंहैं इस अर्थकूं बोधनकरणेहारा जो (चतुर्विधा भजंते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन) यह पूर्व उक्त वचन है तथा (येषां त्वंतगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।) यह वचन है सो यह वचन ता उत्सर्गका अपवादरूप है । सामान्यतैं सर्वत्र जिसकी प्रवृत्ति होवै ताकूं उत्सर्ग कहैं हैं । और किसीक स्थानविशेषविषे जाकी प्रवृत्ति होवै ताकूं अपवाद कहैंहैं । तहां जिस स्थानविषे अपवादकी प्रवृत्ति होवै है तिस स्थानविषे उत्सर्गकी प्रवृत्ति होवै नहीं किंतु तिस स्थानतैं भिन्नस्थानविषेही ता उत्सर्गकी प्रवृत्ति होवैहै । जैसे

(न हिंस्यात्सर्वाणि भूतानि) यह सर्वभूतोंके हिंसाका निषेध करणेहारा वचन तौ उत्सर्गरूप है और (अग्नीषोमीयं पशुमालभेत) यह यज्ञविषे पशुकी हिंसाकूं विधान करणेहारा वचन अपवादरूप है ता अपवाद स्थानविषे तिस उत्सर्गकी प्रवृत्ति होवै नहीं किंतु तिसतैं भिन्नस्थानविषेही ता उत्सर्गकी प्रवृत्ति होवै है। अर्थात् यज्ञतैं तथा युद्धतैं भिन्नस्थानविषे किसीभी प्राणीकी हिंसा नहीं करणी। याप्रकारका ता उत्सर्गवाक्यका अर्थ सिद्ध होवैहै। तैसे (सर्वभूतानि संमोहं यांति) इस उत्सर्ग-वचनकीभी तिन आर्त्तादिक च्यारिप्रकारके सुकृतीजनोंकूं छोडिकै अन्यत्रही प्रवृत्ति होवै है। अर्थात् तिन हमारे भक्तोंतैं भिन्न अन्य सर्व प्राणी संमोहकूं प्राप्त होवैहैं याप्रकारका तिस उत्सर्गवचनका अर्थ सिद्ध होवैहै। इसीप्रकारका उत्सर्ग पूर्वभी (त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्। मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥) इस श्लोकविषे कथन कऱ्याथा। यातैं (सर्वभूतानि संमोहं यांति। चतुर्विधा भजंते माम्) इत्यादिक वचनोंका परस्पर विरोध होवै नहीं इति। यातैं अंतःकरणकी शुद्धि करणेहारे पुण्यकर्मोंके संपादन करणेवासतै इस अधिकारी पुरुषनैं सर्वदा प्रयत्न करणा ॥ २८ ॥

अब अर्जुनके वक्ष्यमाण प्रश्नके उत्थापन करणेवासतै श्रीभगवान् सूत्रभूत दो श्लोकोंकूं कथन करैं हैं। इसीसूत्रभूत दो श्लोकोंका अगला अष्टम अध्याय व्याख्यानरूप होवैगा—

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतंति ये ॥
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥२९॥

(पदच्छेदः) जरामरणमोक्षाय। माम्। आश्रित्य। यतंति। ये। ते। ब्रह्म। तत्। विदुः। कृत्स्नम्। अध्यात्मम्। कर्म। च। अखिलम् ॥२९॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जे पुरुष जरामरणादिकोंके निवृत्तकरणेवासतै मैं सगुणपरमेश्वरकूं आश्रयणकरिकै प्रयत्न करैंहैं ते पुरुष तत्पदके लक्ष्य अर्थरूप निर्गुणब्रह्मकूं तथा अपरिच्छिन्न त्वंपदके लक्ष्य अर्थरूप आत्माकूं तथा संपूर्ण श्रवणादिक साधनोंकूं जानैंहैं ॥ २९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन! संसारके जरामरणादिक दुःख तथा वैराग्यकूं प्राप्तहुए जे अधिकारी जन तिन जरामरणादिक नानाप्रकारके दुःसह दुःखोंके निवृत्त करणे वासतै

तिन सर्व दुःखोंके निवृत्त करणेहारे मैं सगुण परमेश्वरकूं आश्रयण करिकै अर्थात् इतर सर्व तौ विमुख होइकै एक मैं परमेश्वरके शरणकूं प्राप्त होइ प्रयत्न करैंहैं अर्थात् फलकी इच्छातैं रहित होइकै मैं परमेश्वरविषे अर्पण करेहुए शास्त्रविहित शुभकर्मोंकूं करैं हैं ते अधिकारी पुरुष क्रमकरिकै शुद्धअंतःकरणवाले हुए तिस ब्रह्मकूं जानैंहैं अर्थात् इस सर्व जगत्का कारणरूप जा माया है ता मायाका अधिष्ठानरूप तथा तत्पदका लक्ष्य अर्थरूप तथा सर्व उपाधियोंतैं परे ऐसे निर्गुण शुद्धब्रह्मकूं ते अधिकारी पुरुष जानैं हैं। तथा शरीरकूं आश्रयणकरिकै प्रकाशमान होणेतैं अध्यात्मसंज्ञाकूं प्राप्तहुआ तथा उपाधिकृत सर्वपरिच्छेदतैं रहित ऐसा जो त्वंपदका लक्ष्य अर्थरूप प्रत्यक् आत्मा है तिस आत्माकूंभी ते अधिकारी जन जानैंहैं। तथा तिस तत् त्वं पदार्थविषयक ज्ञानके जितनेक ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप निवास, श्रवण, मनन, निदिध्यासन इत्यादिक साधन हैं जे साधन तिस ज्ञानरूप फलकी नियमतैं प्राप्ति करैंहैं तिन संपूर्ण साधनोंकूंभी ते अधिकारी पुरुष जानैंहैं ॥ २९ ॥

किंच–

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ॥
प्रयाणकालेपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) साधिभूताधिदैवम् । माम् । साधियज्ञम् । च । ये । विदुः । प्रयाणकाले । अपि । च । माम् । ते । विदुः । युक्तचेतसः ॥ ३० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे अधिकारीजन अधिभूत अधिदैव दोनोंसहित तथा अधियज्ञसहित मैं परमेश्वरकूं चिंतन करैं हैं ते अधिकारीपुरुष मैं परमेश्वरविषे युक्तचित्तवाले हुए मरणकालविषे भी मैं परमेश्वरकूंही जानैं हैं ॥ ३० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! इसप्रकारके हमारे भक्तजनोंकूं मरणकालविषेभी इंद्रियादिक करणोंकी विवशता करिकै मैं परमेश्वरके विस्मरणकी शंका तुमनैं करणी नहीं। जिसकारणतैं अधिभूतसहित तथा अधिदैवसहित तथा अधियज्ञसहित मैं परमेश्वरकूं जे अधिकारी जन सर्वदा चिंतन करैंहैं ते अधिकारी जन सर्वदा मैं परमेश्वरविषे समाहितचित्तवाले हुए ता पूर्व अभ्यासजन्य संस्कारोंकी दृढतातैं

प्राणोंके उत्क्रमणकालविषेभी मैं सर्वात्मारूप परमेश्वरकूंही जानैंहैं । अर्थात् ता मरणकालविषे इंद्रियादिक करणोंके असावधान हुएभी मैं परमेश्वरकी कृपा-करिकै तथा पूर्व अभ्यासजन्य संस्कारोंकी दृढतातैं तिन पुरुषोंके चित्तकी वृत्ति मैं परमेश्वरके आकारही होवैहै । दूसरे किसी अनात्मपदार्थके आकार होवै नहीं। यातैं ते अधिकारी जन मैं परमेश्वरके भक्तियोगतैं कृतार्थही होवैंहैं । तहां अधिभूत, अधिदैव, अधियज्ञ इन शब्दोंके अर्थकूं श्रीभगवान् आपही आगले अष्टम अध्यायविषे अर्जुनके प्रश्नपूर्वक स्पष्टकरिकै कथन करैंगे । यातैं इहां इन शब्दोंका अर्थ कथन कऱ्या नहीं इति। तहां इस सप्तम अध्यायविषे श्रीभग-वान्नैं उत्तम अधिकारीके प्रति तौ लक्षणावृत्तिकरिकै तत्पदप्रतिपाद्य ज्ञेय ब्रह्म कथन कऱ्या और मध्यम अधिकारीके प्रति तौ शक्तिरूप मुख्य वृत्तिकरिकै तत्पदप्रतिपाद्य ध्येय ब्रह्म कथन कऱ्या ॥ ३० ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीभगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमाध्यायप्रारंभः ।

तहां पूर्व सप्तम अध्यायके अंतविषे (ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नम्) इत्यादिक सार्द्धश्लोककरिकै श्रीभगवान्नैं सप्त पदार्थ ज्ञेयत्वरूपकरिकै सूचित करे । तिन सूत्ररूप वचनकरिकै कथन करेहुए सप्त पदार्थोंकाही व्याख्यानरूप यह समग्र अष्टम अध्याय श्रीभगवान्नैं प्रारंभ करीता है । तहां पूर्व तिस सूत्ररूप वचनकरिकै सामान्यरूपतैं जानेहुए तिन सप्तपदार्थोंकूं पुनः विशेषरूपतैं जानणेकी इच्छा करता हुआ अर्जुन दो श्लोकोंकरिकै तिन सप्तपदार्थोंके स्वरूपका प्रश्न करै है–

अर्जुन उवाच ।

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ॥
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ १ ॥
अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेस्मिन्मधुसूदन ॥
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोसि नियतात्मभिः ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) किम् । तत् । ब्रह्म । किम् । अध्यात्मम् । किम् । कर्म । पुरुषोत्तम । अधिभूतम् । च । किम् । प्रोक्तम् । अधिदैवम् । किम् । उच्यते । अधियज्ञः । कथम् । कः । अत्र । दे हे । अस्मिन् । मधुसूदन । प्रयाणकाले । च । कथम् । ज्ञेयः । असि । नियतात्मभिः ॥ १ ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे सर्वपुरुषोंविषे श्रेष्ठ ! मधुसूदन सो ब्रह्म कौन है तथा अध्यात्म कौन है तथा कर्म कौन है तथा अधिभूत कौन कह्या था । तथा अधिदैव कौन कहीताहै तथा इहां अधियज्ञ कौन है सो अधियज्ञ किसप्रकारकरिकै चिंतन करणेयोग्य है तथा सो अधियज्ञ इस देहविषे वर्तै है अथवा देहतैं बाह्य वर्तै है तथा मरणकालविषे समाहितचित्तवाले पुरुषोंनैं तूं परमेश्वर किस प्रकारकरिकै जाननणे योग्य है ॥ १ ॥ २ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! पूर्व ज्ञेयरूपकरिकै आपनैं कथन कऱ्या जो ब्रह्म है सो ब्रह्म कौन है अर्थात् सो ब्रह्म सोपाधिक है अथवा निरुपाधिक है । इति प्रथमप्रश्नः । तथा हे भगवन् ! आत्माके संबंधवाला होणेतैं आत्माशब्दकरिकै प्रतिपादित जो यह देह है ता देहरूप आत्माकूं आश्रयणकरिकै जो स्थित होवै ताका नाम अध्यात्म है सो अध्यात्म कौन है अर्थात् श्रोत्रादिक करणोंके समूहका नाम अध्यात्म है अथवा प्रत्यक् चैतन्यका नाम अध्यात्महै । इति द्वितीयप्रश्नः । और हे भगवन् ! (कर्म चाखिलम्) इस पूर्व उक्त वचनविषे आपनैं कथन कऱ्या जो कर्म है सो कर्म कौन है अर्थात् सो कर्म यज्ञरूप है अथवा तिस यज्ञतैं कोई अन्य वस्तु है जिसकारणतैं (विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेपि च) इस श्रुतिविषे यज्ञ कर्म दोनों भिन्नभिन्नही कथन करे हैं । इति तृतीयप्रश्नः । और हे भगवन् ! भूतोंकूं आश्रयण करिकै जो स्थित होवै ताकूं अधिभूत कहैं हैं सो अधिभूत आप किसकूं कहतेहो अर्थात् ता अधिभूत शब्दकरिकै आपकूं पृथिवी आदिक भूतोंकूं आश्रयण करिकै स्थित यत्किंचित् कार्य विवक्षित है अथवा संपूर्ण कार्य्यमात्र विवक्षित है । इति चतुर्थप्रश्नः । और हे भगवन् ! दैवकूं आश्रयण करिकै जो स्थित होवै ताका नाम अधिदैव है सो अधिदैव आप किसकूं कहतेहो अर्थात् देवताविषयक जो ध्यान है ताकूं अधिदैव कहते हो अथवा देवताओंके आदित्यमंडलादिकोंविषे अनुस्यूत जो चैतन्य है ताकूं अधिदैव कहते हो । इति पंचमप्रश्नः । और हे भगवन् ! यज्ञकूं आश्रयण करिकै

जो स्थित होवै ताका नाम अधियज्ञ है सो अधियज्ञ इहां कौन है अर्थात् किसी-देवताविशेषका नाम अधियज्ञ है अथवा परब्रह्मका नाम अधियज्ञ है सो अधियज्ञभी इस अधिकारी पुरुषनैं किसप्रकार करिकै चिंतन करणेयोग्य है अर्थात् तादात्म्यरूप करिकै चिंतन करणेयोग्यहै अथवा अत्यंत अभेदरूप करिकै चिंतन करणेयोग्य है तथा सर्वप्रकारतैंभी सो अधियज्ञ इस देहविषेही रहैहै अथवा इस देहतैं बाह्य रहैहै जो कहो इस देहविषे रहै है तौभी इसदेहविषे सो अधियज्ञ कौन है अर्थात बुद्धि आदिरूपहै अथवा तिन बुद्धि आदिकोंतैं भिन्नहै । इति षष्ठप्रश्नः । और हे भगवन् ! मरणकालविषे श्रोत्रादिक सर्वकरणोंका समूह सावधानतैं रहित होवैहै यातैं तिस कालविषे चित्तकी सावधानता संभवती नहीं ऐसे मरणकालविषे समाहितचित्तवाले पुरुषोंनैं किसप्रकार करिकै तूं परमेश्वर जानणे योग्य होवैहै । इति सप्तमप्रश्नः ।हे भगवन् ! सर्वज्ञ होणेतैं तथा परमकृपालु होणेतैं आप यह सर्व अर्थ मैं शरणागतशिष्यके प्रति कथन करौ इति ।इहां अर्जुननैं श्रीभगवान्के (हे पुरुषोत्तम हे मधुसूदन) यह दो संबोधन कथन करेहैं। तहां हे अर्जुन! तुम हम दोनों समान हैं यातैं तूं हमारेसैं तिन अध्यात्मादिकोंका स्वरूप किसवासतै पूछता है ऐसी भगवान्की शंकाके निवृत्त करणेवासतै अर्जुननैं हे पुरुषोत्तम ! यह संबोधन करिकै यह अर्थ सूचन कऱ्या । सर्वपुरुषोंविषे सर्वज्ञतादिक गुणोंकरिकै जो उत्तम होवै ताका नाम पुरुषोत्तम है ऐसे सर्वज्ञ पुरुषोत्तम आपही हो यातैं आपकूं कोईभी पदार्थ अज्ञात नहीं है । किंतु आपकूं करामलककी न्यांई सर्वपदार्थ अपरोक्षही हैं । और अल्पज्ञता करिकै मैं अर्जुनकूं तिन सर्वपदार्थोंका ज्ञान है नहीं यातैं आपही सो सर्व अर्थ हमारेप्रति कथन करौ इति । और (हे मधुसूदन) या संबोधन करिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन कऱ्या, आप परमकरुणा करिकै युक्त हो यातैं मधु आदिक दैत्योंकूं हनन करिकै महान् आयास करिकैभी सर्वउपद्रवोंकी निवृत्ति करतेहो । ऐसे आपकूं विनाही आयास करिकै इस हमारे संशयरूपी तुच्छ उपद्रवकी निवृत्ति करणीही उचित है ॥ १ ॥ २ ॥

इस प्रकार दो श्लोकों करिकै अर्जुननैं करे जे सप्त प्रश्न हैं तिन सप्तप्रश्नोंके उत्तरकूं श्रीभगवान् यथाक्रमतैं तीन श्लोकों करिकै कथन करैं हैं—

श्रीभगवानुवाच ।

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ॥
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) अक्षरम् । ब्रह्म । परमम् । स्वभावः । अध्यात्मम् । उच्यते । भूतभावोद्भवकरः । विसर्गः । कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! परम अक्षर ब्रह्म कह्याजावैहै तथा स्वभाव अध्यात्म कह्याजावै है तथा भूतोंकी उत्पत्ति वृद्धि करणेहारा यज्ञदानादिक कर्म कह्याजावैहै ॥ ३ ॥

भा० टी०—तहां जिस क्रमकरिकै शिष्यनैं प्रश्न करे होवै तिसी क्रमकरिकै जबी गुरु तिन प्रश्नोंके उत्तरकूं कथन करे है तबी अनायास करिकै ही तिस प्रश्न करणेहारे शिष्यके इष्टकी सिद्धि होवैहै । इस अभिप्राय करिकै श्रीभगवान् इस प्रथम श्लोकविषे यथाक्रम करिकै तीन प्रश्नोंके उत्तरकूं कथन करते भये हैं । इसप्रकार द्वितीय श्लोकविषेभी तीन प्रश्नोंके उत्तरकूं कथन करतेभयेहैं । और तीसरे श्लोकविषे तौ एकही प्रश्नके उत्तरकूं कथन करतेभयेहैं इति । तहां ब्रह्मशब्दकरिकै निरुपाधिक ब्रह्मही इहां विवक्षित है सोपाधिक ब्रह्म इहां ब्रह्मशब्दकरिकै विवक्षित नहीं है । इस प्रकारका प्रथम प्रश्नका उत्तर श्रीभगवान् कथन करैं हैं । तहां (न क्षरति न नश्यतीति अक्षरम्) अर्थ यह—ज्ञानकरिकै तथा अज्ञान करिकै तथा देशकाल करिकै तथा किसी अन्यकरिकै जो नाशकूं नहीं प्राप्त होवै ताकूं अक्षर कहैहैं । अथवा (अश्नुते सर्वमिति अक्षरम्) अर्थ यह—जैसे अग्नि लोहेके पिंडकूं अंतरबाह्यतैं व्याप्यकरिकै स्थित होवैहै तैसे अव्याकृतकूं तथा ताके सर्व कार्यकूं अंतरबाह्यतैं व्याप्यकरिकै जो स्थित होवै ताकूं अक्षर कहैं हैं अर्थात् उत्पत्तिनाशतैं रहित तथा सर्वत्र व्यापक वस्तुका नाम अक्षर है । इसी अक्षरकूं बृहदारण्यक उपनिषद्विषेभी कथन कऱ्या है । तहां याज्ञवल्क्यमुनिनैं गार्गीके प्रति यह वचन कथन कऱ्याहै (तद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदंति अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्) अर्थ यह—हे गार्गि ! ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण इस अक्षरकूं स्थूलभावतैं रहित तथा अणुभावतैं रहित तथा ह्रस्वभावतैं रहित तथा दीर्घभावतैं रहित कथन करैं हैं इति । इस प्रकारका उपक्रमकरिकै मध्यविषे सो याज्ञवल्क्यमुनि ता गार्गीके प्रति या प्रकारका वचन कहता भया । (एतस्याक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्यचंद्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः नान्योतोऽस्ति द्रष्टा) अर्थ यह—हे गार्गि ! इसी अक्षरके प्रशासनविषे यह सूर्यचंद्रमा नियमपूर्वक स्थित हैं । इस अक्षरतैं भिन्न दूसरा कोई द्रष्टा है नहीं किंतु यह अक्षरही सर्वका द्रष्टा है इति । इस प्रकारका वचन मध्यविषे कहिकै अंत-

विषे सो याज्ञवल्क्य मुनि या प्रकारका उपसंहार करताभया है। (एतस्मिन्नु खल्वक्षरे गार्ग्याकाशश्च ओतश्च प्रोतश्च) अर्थ यह—हे गार्गि ! इसी अक्षरविषे यह अव्याकृत आकाश ओतप्रोत है इति। इस प्रकार तात्पर्यके निश्चय करावणेहारे उपक्रम उपसंहारादिक लिंगोंतैं सर्व उपाधियोंतैं रहित तथा सूर्यचंद्रमादिक सर्वजगत्का प्रशासिता तथा अव्याकृतरूप आकाशपर्यंत सर्वप्रपंचका धारण करणेहारा तथा इस शरीरइंद्रियरूप संघातविषे विज्ञाता ऐसा निरुपाधि चैतन्यही ता अक्षरशब्दका अर्थ सिद्ध होवैहै। ऐसा चैतन्यस्वरूप अक्षरही इहां ब्रह्मशब्दकरिकै विवक्षितहै। इसी अर्थके स्पष्टकरणेवासतै ता अक्षरका विशेषण कहैं हैं (परममिति) अर्थात् सो अक्षर स्वप्रकाश परमानंदस्वरूप है। तात्पर्य यह—सूर्यचंद्रमादिकोंका शासितापणा तथा सर्व जड जगत्का धारकपणा तथा सर्वका द्रष्टापणा इत्यादिक लिंग जे श्रुतिविषे अक्षरके कहैं हैं ते सर्व लिंग ब्रह्मविषेही संभवैं हैं ब्रह्मतैं भिन्न दूसरे किसी पदार्थविषे ते लिंग संभवते नहीं। यातैं सो अक्षर ब्रह्मरूपही है इति। यह वार्त्ता व्यास भगवान्नैं ब्रह्मसूत्रोंविषेभी कथन करीहै। तहां सूत्र—(अक्षरमंबरांतधृतेः) अर्थ यह—बृहदारण्यक उपनिषद्विषे अक्षरकूं अव्याकृत नामा आकाशपर्यंत सर्व जगतका विधारकत्व कथन कन्याहै। सो सर्वजगत्का विधारकपणा ब्रह्मविषेही संभवै है अन्य किसी पदार्थविषे संभवता नहीं। यातैं अक्षरशब्दकरिकै ब्रह्मकाही ग्रहण करणा इति। शंका—हे भगवन् ! (ओमित्येतदक्षरम्) इत्यादिक श्रुतिविषे तथा (ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म) इस स्मृतिविषे ओंकाररूप प्रणवकूंही अक्षर कह्याहै। और लोकविषेभी अक्षरशब्द वर्णोंविषेही रूढ है। तहां (रूढियोंगमपहरति) अर्थ यह—पदकी रूढिशक्ति तिस पदके योगशक्तिका बाधक होवै है। इस न्यायकरिकै तिस रूढिशक्तिकूं (न क्षरतीति अक्षरम्) इस योगशक्तितैं प्रबलता सिद्ध होवै है। यातैं ता अक्षर शब्दकरिकै ओंकाररूप प्रणवकाही ग्रहण करणा। अथवा (संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च) इत्यादिक श्रुतियोंविषे अव्यक्तकूंभी अक्षर कह्या है। यातैं ता अक्षर शब्दकरिकै अव्यक्तकाही ग्रहण करणा। समाधान—सर्व जगत्का शासितपणा तथा विधारकपणा तथा द्रष्टापणा इत्यादिक जे लिंग पूर्व अक्षरके कथन करेहैं ते लिंग ओंकाररूप प्रणवविषे तथा मायारूप अव्यक्तविषे संभवते नहीं। तथा (तस्य प्रकृतिलीनस्य) इस श्रुतिनैं तिस प्रणवकाभी प्रलय कथन

कऱ्याहै । तथा (तरत्यविद्यां वितताम्) इस स्मृतिनैं तिस मायारूप अव्यक्तकाभी नाश कथन कऱ्याहै । यातैं इहां अक्षरशब्दकरिकै वर्णात्मकप्रणवका तथा माया-रूप अव्यक्तका ग्रहण कऱ्याजावै नहीं और श्रुतिविषे तथा स्मृतिविषे जो प्रणवकूं अक्षर कह्याहै सो ताके नित्यपणेकूं लैके अक्षर नहीं कह्या किंतु जैसे सत्य-ब्रह्मकी प्राप्तिकरणेहारे ज्ञानकूं श्रुतिविषे सत्य कह्याहै तैसे अक्षरब्रह्मका वाचक होणेतैं ता प्रणवकूं अक्षर कह्याहै । इसीप्रकार अव्यक्तकूं जो श्रुतिविषे अक्षर कह्याहै सो ताके नित्यपणेकूं लैके नहीं कह्या किंतु स्वकार्यकी अपेक्षाकरिकै सो अव्यक्त चिरकालपर्यंत रहैहै, यातैं ताकूं अक्षर कह्याहै । जिस कारणतैं (क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः ।) यह श्रुति प्रधानरूप अव्यक्तकूं नाशवान् कहिकै परब्रह्मकूं ही अक्षर कहैहै । और पूर्व कथनकरे हुए जगद्विधारकत्वादिक अक्षरके लिंग वर्णात्मक प्रणवविषे संभवै नहीं । यातैं इहां अक्षरशब्दकी सा योगशक्तिही रूढा-शक्तितैं प्रबल है यातैं इहां अक्षरशब्दकरिकै उत्पत्तिनाशतैं रहित चैतन्यकाही ग्रहण करणा । प्रणवका तथा अव्यक्तका ता अक्षरशब्दकरिकै ग्रहण करणा नहीं। तिस प्रणव अव्यक्तकी व्यावृत्ति करणेवासतैंही श्रीभगवान्नैं ता अक्षरका (परमं) यह विशेषण कथन कऱ्या है। इतने पर्यंत (किं तद्ब्रह्म) । इस प्रथमप्रश्नका उत्तर कथन करचा । अब (किमध्यात्मम्) इस द्वितीय प्रश्नका उत्तर कथन करै हैं—(स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते इति) हे अर्जुन ! जो उत्पत्ति नाशतैं रहित अक्षर पूर्व ब्रह्मरूपकरिकै कथन कऱ्याहै तिस अक्षरब्रह्मका जो स्वभाव है अर्थात् तिस अक्षरब्रह्मका स्वरूपभूत जो प्रत्यक्चैतन्य है सो प्रत्यक् चैतन्यही इस देहरूप मिथ्या आत्माकूं आश्रयण करिकै भोक्तारूपतैं वर्त्तमान हुआ अध्यात्म इस शब्दकरिकै कह्या जावैहै । तिस भोक्ताचैतन्यतैं भिन्न श्रोत्रा-दिक करणोंका समूह अध्यात्मशब्दकरिकै कह्या जावै नहीं । इति द्वितीयप्रश्नो-त्तरम् । अब (किं कर्म) इस तीसरे प्रश्नका उत्तर निरूपण करैहैं (विसर्गः कर्मसंज्ञितः इति) हे अर्जुन ! इंद्रादिक देवतावोंका उद्देश करिकै द्रव्यका त्याग-रूप जो याग है तथा वैदिक अग्निविषे घृत यवादिक पदार्थोंका प्रक्षेपरूप जो होम है तथा ब्राह्मणोंके तांई सुवर्ण गौआदिक पदार्थोंकी दक्षिणारूप जो दान है ता याग होम दान तीनोंविषे त्यागरूपता अनुगत है । यातैं त्यागका वाचक जो विसर्गशब्द है ता विसर्गशब्द करिकै याग होम दान इन तीनोंका ग्रहण करणा ।

ऐसा याग होम दानरूप विसर्गही इहां कर्मशब्दकरिकै कथन कऱ्याहै । को उदासीनक्रियामात्र इहां कर्मशब्दकरिकै कथन कऱ्या नहीं । कैसा है सो त्यागरूप विसर्ग, भूतभावोद्भवकर है अर्थात् स्थावरजंगमरूप भूतोंका जो उत्पत्तिरूप भाव है तथा वृद्धिरूप उद्भव है तिन दोनोंकूं करणेहारा है । यज्ञहोमादिक कर्मोंकरिकै ही सर्वभूतोंकी उत्पत्ति तथा वृद्धि श्रुतिस्मृतिविषे प्रसिद्धही है । तहां स्मृति–(अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥) अर्थ यह–वैदिकअग्निविषे श्रद्धापूर्वक पाईहुई जा आहुति है सा आहुति सूक्ष्मरूपकरिकै आदित्यमंडलविषे स्थित होवैहै । तिस आहुतिविशिष्ट आदित्यतैं जलकी वृष्टि होवैहै । तिस जलकी वृष्टितैं व्रीहियवादिक अन्न उत्पन्न होवैहैं । तिस अन्नतैं स्थावरजंगमरूप प्रजा उत्पन्न होवै है तथा तिसी अन्नतैं ता प्रजाकी वृद्धि होवै है । इस प्रकारकी परंपरा करिकै ते यज्ञहोमादिक कर्मही सर्वभूतोंके उत्पत्तिवृद्धिका कारण हैं इति । इसी अर्थकूं (ते वा एते आहुती उत्क्रामंतः) इत्यादिक श्रुतिभी कथन करैं हैं इति । और किसी टीकाविषे तौ (भूतभावोद्भवकरः) इस वचनका यह अर्थ कऱ्या है । मनुष्यादिक भूतोंका जो सात्त्विक राजसादिरूप भाव है तथा उत्पत्तिरूप उद्भव है तिन दोनोंकूं जो करैहै ताका नाम भूतभावोद्भवकर है । तहां तिन भूतोंकी यज्ञदानादिक कर्मोंतैं उत्पत्ति तौ (अग्नौ प्रास्ताहुतिः) इस पूर्वउक्त स्मृतिवचन करिकै ही सिद्ध है । इस प्रकारका भूतोंके सात्त्विकादिकभावकी कर्मोंतैं उत्पत्तिभी (बुद्धिः कर्मानुसारिणी) अर्थ यह–इस पुरुषकी आपणे कर्मोंके अनुसारही सात्त्विक वा राजस बुद्धि होवैहै इत्यादिक स्मृतिवचनोंकरिकै सिद्धहीहै इति । और किसी टीकाविषे तौ (भूतभावोद्भवकरः) इस वचनका यह अर्थ कथन कऱ्याहै । भूतरूप जे भाव होवैं तिनोंकूं भूतभाव कहैंहैं अर्थात् स्थावरजंगमरूप जे पदार्थ हैं तिनोंका नाम भूतभाव है । ऐसे भूतभावोंके उत्पत्तिरूप उद्भवकूं जो करैहै ताका नाम भूतभावोद्भवकर है इति । इति तृतीयप्रश्नोत्तरम् ॥ ३ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे (किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म) इन तीन प्रश्नोंका उत्तर कथन कऱ्या अब (अधिभूतं किम् अधियज्ञः कः) इन तीन प्रश्नोंका उत्तर कथन करैं हैं–

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ॥
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) अधिभूतम् । क्षरः । भावः । पुरुषः । च । अधिदैवतम् । अधियज्ञः । अहम् । एव । अत्र । देहे । देहभृताम् । वर ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे सर्वप्राणियोंके मध्यविषे श्रेष्ठ अर्जुन ! नाशवान् पदार्थ अधिभूत कह्याजावै है तथा हिरण्यगर्भनाम पुरुष अधिदैव कह्याजावैहै तथा विष्णुरूप अधियज्ञ मैं वासुदेव ही हूं सो अधियज्ञ ईस मनुष्यदेहविषेही वर्त्तै है ॥ ४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो पदार्थ विनाशकूं प्राप्त होवैहै ताका नाम क्षर है और जो पदार्थ उत्पत्तिकूं प्राप्त होवैहै ताका नाम भाव है ऐसा उत्पत्तिनाशवान् जितनाक पदार्थमात्र है सो पदार्थमात्र सर्वप्राणीमात्ररूप भूतकूं आश्रयणकरिकै ही होवै है । यातैं सो उत्पत्तिनाशवान् पदार्थमात्र अधिभूत इस नामकरिकै कह्या जावैहै। कोई यत्किंचित् पदार्थ ता अधिभूतशब्दकरिकै कह्या जावै नहीं । इति चतुर्थप्रश्नोत्तरम् । अब (अधिदैवं किम्) इस पंचमप्रश्नका उत्तर कथन करैहैं (पुरुषश्चाधिदैवतमिति) तहां सर्व कार्यमात्र पूर्णकरे होवैं जिसने ताका नाम पुरुष है । अथवा शरीररूप सर्व पुरोंविषे जो निवास करैहै ताका नाम पुरुष है ऐसा पुरुष जो हिरण्यगर्भ है जो हिरण्यगर्भ समष्टिलिंगस्वरूपहै । तथा जो हिरण्यगर्भ सूर्यादिरूपकरिकै चक्षुआदिक सर्वव्यष्टिकरणों ऊपरि अनुग्रह करैहै । तथा जिस हिरण्यगर्भकूं (आत्मैवेदमग्र आसीत्पुरुषविधः । हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य) इत्यादिक श्रुतियां कथन करैहैं । तथा जिस हिरण्यगर्भकूं (स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते । आदिकर्त्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्त्तत) इत्यादिक स्मृतियां कथन करीहैं । सो हिरण्यगर्भ पुरुष आदित्यादिक देवतोंकूं आश्रयण करिकै चक्षुआदिक करणों-ऊपरि अनुग्रह करैहै । यातैं सो हिरण्यगर्भपुरुष अधिदैव इस नामकरिकै कह्या जावैहै। देवताविषयक ध्यानादिक ता अधिदैवशब्दकरिकै कहे जावैं नहीं । इहां (पुरुषश्च) या वचनविषे स्थित चशब्दकरिकै ता हिरण्यगर्भविषे श्रुतिस्मृतिकरिकै सिद्ध प्रसिद्धता कथन करी । और किसी टीकाविषे तौ (पुरुषश्च) या वचनविषे स्थित चकारकरिकै श्रोत्रादिक चतुर्दशकरणोंके प्रवर्त्तक दिक् वात अर्क आदिक चतुर्दश देवतावोंका ग्रहण कर्याहै अर्थात् हिरण्यगर्भ पुरुष तथा दिक् वात अर्कादिक देवता

सर्वही अधिदैव कहेजावैं हैं इति। इति पंचमप्रश्नोत्तरम् । अब (अधियज्ञः कः) इस षष्ठप्रश्नका उत्तर कथन करैंहैं । (अधियज्ञोहमिति) तहां सर्वयज्ञोंका अधिष्ठानतारूप तथा सर्व यज्ञोंके फलका प्रदता तथा सर्वयज्ञोंका अभिमानीरूप जो विष्णु देवता है सो विष्णुदेव पूर्वउक्त विसर्गरूप यज्ञकूं आश्रयण करिकै स्थित होवैहै यातैं सो विष्णु अधियज्ञ इस नामकरिकै कह्या जावैहै । जिस विष्णुकूं (यज्ञो वै विष्णुः) यह श्रुतिभी यज्ञरूपकरिकै कथन करैहै । ऐसा अंतर्यामी विष्णुरूप अधियज्ञ मैं वासुदेवही हूं मैं परमेश्वरतैं भिन्न कोईभी वस्तु है नहीं। इतने कहणेकरिकै पूर्व षष्ठप्रश्नविषे (कथम्) इस शब्दकरिकै कथन कऱ्या जो सो अधियज्ञ तादात्म्यरूपकरिकै चिंतनकरणे योग्य है। अथवा अत्यंत अभेदरूप करिकै चिंतन करणेयोग्य है । याप्रकारका संदेह था ता संदेहकीभी निवृत्ति करी अर्थात् सो परब्रह्मरूप विष्णु अत्यंत अभेदरूप करिकैही चिंतन करणेयोग्य है इति। ऐसा अधियज्ञरूप विष्णु इस मनुष्यदेहविषे ही यज्ञरूप करिकै वर्त्तैहै। तथा सो विष्णु सर्वव्यापक होणेतैं परिच्छिन्न बुद्धि आदिकोंतैं भिन्न है । इतने कहणेकरिकै सो अधियज्ञ इस देहविषे वर्तै है अथवा इस देहतैं बाह्य वर्त्तै है । देहविषे रह्याभी सो अधियज्ञ बुद्धिआदिरूप है अथवा बुद्धि आदिकोंतैं भिन्न है इस संदेहकीभी निवृत्ति करी । अर्थात् सो अधियज्ञरूप विष्णु यज्ञरूप करिकै इस मनुष्यदेहविषेही रहैहै। तथा बुद्धिआदिकोंतैं भिन्न है यह उत्तर सिद्ध भया। इहां इस मनुष्यदेहकरिकै ही सो यज्ञ सिद्ध होवैहै अन्यदेहकरिकै सिद्ध होवै नहीं । यातैं इस मनुष्यदेहविषे ही यज्ञकी स्थिति कथन करीहै । तहां (हे देहभृतां वर) अर्थात् हे सर्वप्राणियोंविषे श्रेष्ठ अर्जुन ! यह जो अर्जुनका संबोधन भगवान्नैं कथन कऱ्याहै सो क्षणक्षणविषे मैं परमेश्वरके संभाषणतैं कृतकृत्य हुआ तूं अर्जुन इस हमारे बोधके योग्य है इस प्रकारके उत्साह करावणेवासतै कथन कऱ्याहै। इति षष्ठप्रश्नोत्तरम् ॥ ४ ॥

अब (प्रयाणकाले कथं ज्ञेयोसि) अर्थात् मरणकालविषे समाहित चित्तवाले पुरुषोंनैं किसप्रकारतैं तूं परमेश्वर जानणे योग्य है । इस सप्तमप्रश्नके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

अंतकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ॥
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) अंतकाले। च। माम्। एव। स्मरन्। मुक्त्वा। कलेवरम्। यः। प्रयाति। सः। मद्भावम्। याति। न। अस्ति। अत्र। संशयः ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष मरणकालविषे भी मैंपरमेश्वरकूं ही चिंतन करताहुआ इसशरीरकूं परित्याग करिकै जावै है सो पुरुष मैंपरमेश्वरके स्वरूपताकूंही प्राप्तहोवैहै इसअर्थविषे कोईभी संशय नहीं है ॥ ५ ॥

भा॰टी॰—हे अर्जुन! जो अधिकारीपुरुष अधियज्ञरूप मैं सगुणब्रह्मकूं अथवा परमाक्षररूप मैं निर्गुणब्रह्मकूं सर्वकालविषे चिंतन करताहुआ ताचिंतनके संस्कारोंकी दृढतातैं श्रोत्रादिक सर्वकरणोंकी असावधानतावाले मरणकालविषेभी स्मरण करताहुआ इस कलेवरका परित्यागकरिकै अर्थात् इसशरीरविषे अहंमम अभिमानका परित्यागकरिकै प्राणोंके वियोगकालविषे गमन करैहै। सो पुरुष मद्भावकूं प्राप्त होवैहै अर्थात् निर्गुण ब्रह्मभावकूं प्राप्तहोवैहै। तहां सगुणब्रह्मके ध्यानपक्षविषे तौ (अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः) इत्यादिक वक्ष्यमाण श्लोककरिकै कथनकऱ्या जो देवयानमार्ग है तिस देवयानमार्गकरिकै जो उपासकपुरुष ब्रह्मलोकविषे जावैहै सो उपासक पुरुष तिस हिरण्यगर्भलोकके भोगोंके अंतविषे निर्गुण ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवै है। और निर्गुण ब्रह्मस्वरूपके स्मरणपक्षविषे तौ जो पुरुष इस कलेवरकूं परित्यागकरिकै जावैहै यह वचन केवल लोकदृष्टिके अभिप्रायकरिकै जानणा। काहेतैं मैं ब्रह्मरूपहूं इसप्रकारका निर्गुण ब्रह्मका साक्षात्कार जिस पुरुषकूं प्राप्त भया है तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषके प्राणोंका मरणकालविषे इस शरीरतैं बाह्य उत्क्रमणही नहीं होवैहै। और शरीरतैं प्राणोंके उत्क्रमणतैं विना लोकांतरविषे गमन संभवै नहीं। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है तहां श्रुति—(न तस्य प्राणा उत्क्रामंत्यत्रैव समवलीयंते)। अर्थ यह—तिस ब्रह्मवेत्ता पुरुषके प्राण इस शरीरतैं बाह्य उत्क्रमण करते नहीं किंतु इस शरीरके भीतरही अधिष्ठान चैतन्यविषे लयभावकूं प्राप्त होवैं हैं इति। ऐसा ब्रह्मवेत्तापुरुष तिस निर्गुणब्रह्मभावकूं साक्षातही प्राप्त होवै है। तहां श्रुति—(ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति)। अर्थ यह—सो तत्त्ववेत्ता पुरुष ब्रह्मरूप हुआही ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवै है इति। हे अर्जुन ! देहतैं भिन्न आत्माविषे तथा मैं निर्गुणब्रह्मकी प्राप्तिविषे कोईभी संशय है नहीं अर्थात् आत्मा देहतैं भिन्न है अथवा नहीं है तथा देहतैं भिन्न हुआभी आत्मा ईश्वरतैं अभिन्न है अथवा भिन्न है इस प्रकारका कोईभी संशय

इहां नहीं है । जिस कारणतैं तत्त्वसाक्षात्कारतैं अनंतर (छिद्यंते सर्वसंशयाः) इस श्रुतिनैं सर्वसंशयोंकी निवृत्तिही कथन करी है । इहां (कलेवरं मुक्त्वा प्रयाति) इस वचनकरिकै तौ श्रीभगवान्नैं जीवात्माका इस देहतैं भिन्नपणा कथन कऱ्या है और (मद्भावं याति) इस वचनकरिकै तौ इस जीवात्माका ईश्वरतैं अभिन्नपणा कथन कऱ्या है । इसी जीव ईश्वरके अभेदकूं तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मि इत्यादिक महावाक्यभी कथन करैं हैं । इति सप्तमप्रश्नोत्तरम् ॥ ५ ॥

तहां अंतकालविषे परमेश्वरका ध्यान करणेहारे पुरुषकूं तिस परमेश्वरकी प्राप्ति अवश्यकरिकै होवै है इस पूर्व उक्त अर्थकेही स्पष्ट करणेवास्तै श्रीभगवान् दूसरे देवताओंके ध्यान करणेहारे पुरुषकूंभी नियमकरिकै तिस तिस देवताभावकी प्राप्ति कथन करैं हैं-

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यंते कलेवरम् ॥
तंतमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) यम् । यम् । वा । अपि । स्मरन् । भावम् । त्यजति । अंते । कलेवरम् । तम् । तम् । एव । एति । कौंतेय । सदा । तद्भावभावितः ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वकालविषे तिस तिस देवताविषयक भाववाला हुआ यह पुरुष मरणकालविषे जिस जिस भी देवताविशेषकूं स्मरण करताहुआ इस शरीरकूं त्याग करैहै सो पुरुष तिस तिस देवताभावकूं ही प्राप्त होवैहै ॥ ६ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! मरणकालविषे मैं परमेश्वरकूं स्मरण करता हुआ यह अधिकारी पुरुष मैं परमेश्वरके भावकूंही प्राप्त होवै है यहही केवल नियम नहीं है किंतु ता मरणकालविषे यह पुरुष जिस जिस देवताविशेषरूप भावकूं तथा अन्यभी किसी प्रिय अप्रिय पदार्थरूप भावकूं स्मरण करताहुआ इस शरीरका परित्याग करै है सो पुरुष ता मरणतैं अनंतर तिस तिस भावकूंही प्राप्त होवै है । तिसतैं अन्यभावकूं प्राप्त होवै नहीं । इहां यह तात्पर्य है-जो प्राणी जिसवस्तुका निरंतर ध्यान करैहै तिस प्राणीकूं ता ध्यानके बलतैं देहांतरकी प्राप्तितैं विना इस जीवितकालविषेही तिस वस्तुभावकी प्राप्ति किसी स्थलविषे देखणेमैं आवैहै । जैसे भयके वश तैं निरंतर भ्रमरका ध्यान करणेहारा जो कीटविशेष है तिस कीटकूं ता ध्यानके प्रभावतैं जीवते हुएही तिस भ्रमररूपताकी प्राप्ति होवैहै । और नंदिकेश्वर निरंतर महादेवके

ध्यान करिकै देहांतरकी प्राप्तितैं विनाही ता महादेवके समानरूपताकूं प्राप्त होता भया है । यह वार्त्ता शास्त्रविषे प्रसिद्धही है । जबी तिस तिस वस्तुके ध्यानकरणे हारे पुरुषकूं जीवते हुएही ता ध्यानके प्रभावतैं तिस तिस ध्येयवस्तुभावकी प्राप्ति होवै है तबी तिसतिस देवताविशेषका सर्वदा ध्यान करणेहारे पुरुषकूं मरणतैं अनंतर तिसतिस देवताविशेषकी प्राप्ति होवैहै याके विषे क्या कहणा है इति । तहां मरणकालविषे यद्यपि तिसतिस देवताविशेषके स्मरणका उद्यम संभवता नहीं तथापि पूर्वकालके अभ्यासजन्य जे संस्काररूप वासना हैं ते वासनाही ता मरण-कालविषे तिस स्मरणका हेतुहैं । इस अर्थकूं श्रीभगवान् कहैंहैं (सदा तद्भावभा-वितः इति) तहां तिस मरणतैं पूर्व सर्वकालविषे तिसतिस देवतादिकों विषे जो भाव है अर्थात् भावनाजन्यसंस्काररूप वासना है ताका नाम तद्भाव है । सो तद्भाव संपादन कऱ्याहै जिस पुरुषनैं ताका नाम तद्भावभावित है अर्थात् जो पुरुष: पूर्वध्यानजन्य संस्कारोंकरिकै युक्त है तिन संस्कारोंके बलतैंही तिस पुरुषकूं मरणकालविषे तिस तिस देवतादिकोंका स्मरण होवेहै । इहां (हे कौंतेय !) इस संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनविषे आपणे पिताकी भगिनीका पुत्ररूपता कहिकै स्नेहकी अतिशयता सूचन करी । तिस करिकै मैं परमेश्वर अवश्य करिकै तुम्हारे ऊपरि अनुग्रह करौंगा यह अर्थ सूचन कऱ्या । ताकरिकै यह भगवान् हमारे साथि वंचना करता है या प्रकारकी शंकाका अभाव सूचन कऱ्या इति । इहां किसी टीकाविषे (यं यं चापि) या प्रकारका मूल श्लोकका पाठ कल्पनाकरिकै (यं यं) या शब्दकरिकै तौ तिसतिस देवता विशेषका ग्रहण कऱ्याहै और चकारतैं अन्यभी जिसी किसीवस्तुका ग्रहण कऱ्या है परंतु बहुत मूलपुस्तकोंविषे (यं यं वापि) इस प्रकारकाही पाठ होवै है । यातैं सोईही इहां लिख्या है ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! जिस कारणतैं पूर्वस्मरणके अभ्यासजन्य मरणकालकी अंत्यभा-वना ही तिस मरणकालविषे परवश पुरुषकूं देहांतरकी प्राप्तिविषे कारण होवैंहै तिसकारणतैं तूं अर्जुन तिस अंत्यभावनाकी उत्पत्तिवासतै सर्वकालविषे मैं परमेश्वरका ही चिंतन कर । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैंहैं—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ॥
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) तस्मात् । सर्वेषु । कालेषु । माम् । अनुस्मर । युध्य । च । मयि । अर्पितमनोबुद्धिः । माम् । एव । एष्यसि । असंशयम्॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिसकारणतैं सर्व कालोंविषे मैंपरमेश्वरकूं तूं चिंतनकर तथा युद्धकर मैंपरमेश्वर विषे अर्पण करेहुए मनबुद्धिवाला तूं मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्त होवैगा या अर्थविषे किंचित्मात्रभी संशय नहीं है ॥ ७ ॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन ! जिसकारणतैं पूर्वउक्त प्रकारतैं पूर्वले अभ्यासजन्य अंत्यभावनाही देहांतरकी प्राप्तिका कारण होवैहै तिसकारणतैं मैं परमेश्वरविषयक ता अंत्यभावनाकी उत्पत्तिवासतै तूं अर्जुन ता मरणतैं पूर्वही सर्वकालोंविषे बहुत आदरपूर्वक निरंतर मैं सगुणपरमेश्वरकूं चिंतन कर । जो कदाचित् आपणे अंतःकरणकी अशुद्धिके वशतैं निरंतर मैं परमेश्वरके चिंतन करणेविषे तूं समर्थ नहीं होइसकै तौ तिस अंतःकरणकी शुद्धि करणेवासतै तूं युद्धकूं कर । इहां युद्धशब्द स्ववर्णआश्रमके सर्व नित्यनैमित्तिक कर्मोंका उपलक्षण है । प्रसंगविषे पूर्वयुद्धही प्राप्तहै यातैं श्रीभगवान्नैं अर्जुनके प्रति युद्धकरणेका विधान कऱ्याहै अर्थात् ता अंतःकरणकी शुद्धिवासतै तूं युद्धादिक नित्यनैमित्तिककर्मोंकूं कर । इस प्रकार नित्यनैमित्तिककर्मोंके अनुष्ठान करिकै ता अंतःकरणकी शुद्धिहुएतैं अनंतर मैं परमेश्वरविषे अर्पण कऱ्याहुआ है संकल्परूप मन तथा निश्चयरूप बुद्धि जिस तुमनैं ऐसा हुआ तूं अर्थात् सर्वकालविषे मैं परमेश्वरके चिंतनपरायण हुआ तूं मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्त होवैगा । इस अर्थविषे किंचित्मात्र भी संशय नहीं है इति । सो यह सगुण ब्रह्मका चिंतन उपासक पुरुषके प्रति ही भगवान्नैं कथन कऱ्याहै । जिस कारणतैं तिन उपासकपुरुषोंकूं तिस मरणकालकी अंत्यभावनाकी अपेक्षा अवश्यकरिकै रहैहै । और जिन पुरुषोंकूं निर्गुण ब्रह्मका साक्षात्कार हुआहै तिन तत्त्ववेत्ता पुरुषोंकूं तौ तिस ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिकालविषेही अज्ञानकी निवृत्तिरूपमुक्ति सिद्धहै । यातैं तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं तिस अंत्यभावनाकी किंचित्मात्रभी अपेक्षा नहीं है । इहां ध्येयवस्तुके आकार चित्तके वृत्तिका नाम भावना है ॥ ७ ॥

इस प्रकार अर्जुनके सप्त प्रश्नोंका उत्तर कहिकै मरणकालविषे परमेश्वरके स्मरणका जो परमेश्वरकी प्राप्तिरूप फल कथन कऱ्याहै तिसीकूंही विस्तारतैं कहणेवासतै श्रीभगवान् आरंभ करैहैं–

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ॥
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिंतयन् ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) अभ्यासयोगयुक्तेन । चेतसा । नान्यगामिना । परमम् । पुरुषम् । दिव्यम् । याति । पार्थ । अनुचिंतयन् ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वदा परमात्मादेवकूं चिंतनकरताहुआ यह पुरुष अभ्यासरूप योगकरिकै युक्त तथा अन्यविषयोंविषे नहीं गमनकरणेहारे ऐसे चित्त-करिकै परम दिव्य पुरुषकूं प्राप्त होवै है ॥ ८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! गुरुशास्त्रके उपदेशतैं अनंतर निरंतर परमात्मादेवका ध्यान करताहुआ यह अधिकारी पुरुष चित्तकरिकै तिस परमात्मादेवकूं प्राप्त होवै है । अब ता चित्तविषे परमेश्वरकी प्राप्ति करणेकी योग्यताके बोधनकरणे वासतै ता चित्तके दो विशेषणोंकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं (अभ्यासयोगयुक्तेन नान्य-गामिना इति) इहां मैं परमेश्वरविषे विजातीय वृत्तियोंके व्यवधानतैं रहित जो सजातीय वृत्तियोंका प्रवाह है ताका नाम अभ्यास है जो अभ्यास पूर्व षष्ठ अध्याय-विषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं सो अभ्यासही समाधिरूप योग है । ऐसे अभ्यासरूपयोग करिकै युक्त जो चित्त है अर्थात् अनात्माकार सर्ववृत्तियोंका परि-त्याग करिकै तिस अभ्यासयोगविषेही अत्यंत संलग्न जो चित्त है तथा जो चित्त नान्यगामी है अर्थात् निरोधके प्रयत्नतैं विनाभी जिस चित्तका अनात्मपदार्थों-विषे जाणेका स्वभाव नहीं है ऐसे समाहितचित्त करिकै ही यह अधिकारी पुरुष तिस परमात्मादेवकूं प्राप्त होवैहै । कैसा है सो परमात्मादेव—परम है अर्थात् निरतिशय आनंदरूप है । पुनः कैसा है सो परमात्मा देव—पुरुष है अर्थात् सर्वत्र परिपूर्ण है । पुनः कैसा है सो परमात्मा देव—दिव्य है अर्थात् प्रकाशरूप आदित्यविषे अंतर्यामीरूप करिकै स्थित है । तहां (यश्चासावादित्ये) यह श्रुति तिस परमात्मादेवकी आदित्यविषे स्थिति कथन करै है । ऐसे परम दिव्यपुरुषकूं अभेदरूप करिकै चिंतनकरताहुआ यह पुरुष नदी समुद्रकी न्याईं तिसी परमात्मा-देवकूं प्राप्त होवैहै । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै । तहां श्रुति—(यथा नद्यः स्यंदमानाः समुद्रे अस्तं गच्छंति नामरूपे विहाय । तथा विद्वान्पुण्यपापे विधूय परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्) अर्थ यह—जैसे श्रीगंगायमुनादिक नदियां आपणे

नामरूपका परित्याग करिकै समुद्रविषे एकताभावकूं प्राप्त होवैंहैं तैसे यह विद्वान् पुरुषभी पुण्यपापकर्मका परित्याग करिकै सूत्रात्मातैंभी पर अंतर्यामी दिव्यपुरुषकूं अभेदरूप करिकै प्राप्त होवैहै ॥ ८ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे श्रीभगवानूनैं कथन कऱ्या जो अधिकारी जनोंकूं चिंतन करणे योग्य तथा प्राप्तहोणेयोग्य जो परम दिव्यपुरुष है तिसी परम दिव्यपुरुषकूं पुनः भी अनेक विशेषणोंकरिकै श्रीभगवान् अब कथन करैं हैं-

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ॥
सर्वस्य धातारमचिंत्यरूपमादित्यवर्णं तमसःपरस्तात्॥९॥

(पदच्छेदः) कविम् । पुराणम् । अनुशासितारम् । अणोः । अणीयांसम् । अनुस्मरेत् । यः । सर्वस्य । धातारम् । अचिंत्यरूपम् । आदित्यवर्णम् । तमसः । परस्तात् ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वज्ञ तथा अनादि तथा सर्वका नियंता तथा सूक्ष्मतैं भी अत्यंत सूक्ष्म तथा सर्वका धारणकरणेहारा तथा अचिंत्यरूपवाला तथा आदित्यकी न्याईं प्रकाशवाला तथा अज्ञानतैं परे स्थित ऐसे दिव्यपुरुषकूं जो कोई पुरुष चिन्तन करैहै सो पुरुष तिसी दिव्यपुरुषकूं प्राप्त होवै है ॥ ९ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! मोक्षकी कामनावाले अधिकारीजनोंकूं चिंतन करणेयोग्य तथा प्राप्तहोणेयोग्य जो परमदिव्य पुरुष है सो परमात्मा देव कैसा है-कवि अर्थात् भूत भविष्यत् वर्त्तमान सर्ववस्तुवोंका द्रष्टा होणेतैं सर्वज्ञ है । पुनः कैसा है सो परमात्मादेव-पुराण है अर्थात् इस सर्वजगत्का कारण होणेतैं अनादि है । पुनः कैसा है सो परमात्मादेव-अनुशासिता है अर्थात् सूर्यचंद्रमादिक सर्वजगत्कूं नियमपूर्वक चलावणेहारा है अथवा सर्वप्राणियोंके हृदयविषे स्थित होइकै तिन प्राणियोंके कर्मोंके अनुसार तिन प्राणियोंकूं शुभ अशुभ कार्यविषे प्रवृत्त करणेहारा है । पुनः कैसा है सो परमात्मादेव-आकाशादिक सर्व प्रपंचका उपादानकारण होणेतैं आकाशादि सूक्ष्मपदार्थोंतैंभी अत्यंत सूक्ष्म है कार्यकी अपेक्षा करिकै ताके उपादानकारणविषे अत्यंत सूक्ष्मता पटतंतु आदिकोंविषे प्रसिद्धही है । इहां सूक्ष्मता करिकै दुर्विज्ञेयता ग्रहण करणी । अन्यथा (महतो महीयान्) यह श्रुति असंगत होवैगी । पुनः कैसा है सो परमात्मादेव-सर्वका धारण करणेहारा है अर्थात् पुण्य

पापकर्मोंका जितनाक फल है तिस सर्वफलकूं सर्वप्राणियोंके ताईं आपणे आपणे पुण्यपापकर्मके अनुसार विचित्ररूपतैं भिन्नभिन्न करिकै देणेहारा है । यह वार्त्ता (फलमत उपपत्तेः) इस सूत्रके व्याख्यानविषे श्रीभाष्यकारोंनैं विस्तारतैं प्रतिपादन करीहै। पुनः कैसा है सो परमात्मादेव—अचिंत्यरूप है अर्थात् अपरिमित महिमावाला होणेतैं नहीं चिंतनकरणेकूं शक्य है रूप जिसका । पुनः कैसा है सो परमात्मादेव—आदित्यवर्ण है आदित्यकी न्याईं सर्व जगत्का अवभासक है वर्ण क्या प्रकाश जिसका ताका नाम आदित्यवर्ण है अर्थात् जो परमात्मादेव सूर्यकी न्याईं सर्व-जगत्कूं प्रकाशकरणेहारा है। प्रकाशरूप होणेतैंही जो परमात्मादेव तमतैं पर है । इहां अज्ञानरूप जो मोह अंधकार है ताका नाम तम है तिस तमतैं पर है अर्थात् प्रकाशरूप होणेतैं तिस अज्ञानरूप तमका विरोधी है। ऐसे परमात्मारूप दिव्यपुरुषकूं जो अधिकारी पुरुष चिंतन करैहै सो अधिकारी पुरुष तिस अभ्या-सकी दृढतातैं तिस परमदिव्यपुरुषकूंही प्राप्त होवै है । इस प्रकारतैं इस श्लोकका पूर्वले श्लोकके साथि अन्वय करणा । अथवा (स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्) इस अगले श्लोकके साथि अन्वय करणा । अन्वय नाम संबंधका है ॥ ९ ॥

हे भगवन्! आप वारंवार परमेश्वरके स्मरणविषे प्रयत्नकी अधिकता कथन करतेहो सो किसकालविषे ता परमेश्वरके स्मरणविषयक प्रयत्नकी अधिकता कथन करतेहो ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता कालका कथन करैं हैं—

प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ॥ भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्स तं परं पुरुष-मुपैति दिव्यम् ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) प्रयाणकाले[1] । मनसा[3] । अचलेन[2] । भक्त्या[4] । युक्तः[5] । योगबलेन[6] । च[7] । एव । भ्रुवोः[9] । मध्ये[10] । प्राणम्[11] । आवेश्य[13] । सम्यक्[12] । सः[8] । तम्[14] । परम्[15] । पुरुषम्[17] । उपैति[18] । दिव्यम्[16] ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष मरणकालविषे[1] एकाग्र[2] मनकरिकै[3] तिस दिव्यपुरुषका स्मरण करै है तथा भक्तिकरिकै[4] युक्त[5] है तथा[6] योगकरिकै[7] युक्त है सो पुरुष[8] दोनों भ्रुवोंके[9] मध्यविषे[10] प्राणकूं[11] भलीप्रकारतैं[12] स्थापन[13] करिकै तिस[14] परम[15] दिव्य[16] पुरुषकूं[17] प्राप्त[18] होवै है ॥ १० ॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन ! जो उपासक पुरुष मरणकालविषे एकाग्रमन करिकै तिस दिव्यपुरुषकूं स्मरण करैहै । तथा जो पुरुष भक्तिकरिकै युक्त है अर्थात् परमेश्वरविषयक परमप्रेमकरिकै युक्त है । तथा जो पुरुष योगबलकरिकै युक्त है इहां समाधिका नाम योग है । ता समाधिरूप योगका जो बल है अर्थात ता समाधिरूप योगकरिकै जन्य जो संस्कारोंका समूह है जो संस्कारोंका समूह ता समाधितैं व्युत्थान करणेहारे संस्कारोंका विरोधी है ऐसे योगबलकरिकै जो पुरुष युक्त है । तथा जो पुरुष प्रथम आपणे हृदयकमलविषे प्राणोंकूं वशकरिकै तिसतैं अनंतर तिस हृदयदेशतैं ऊर्द्ध्वगमन करणेहारी सुषुम्ना नाडीरूप मार्गद्वारा पूर्वपूर्वभूमिकाके जयक्रम करिकै दोनों भ्रुवोंके मध्यविषे स्थित आज्ञाचक्रविषे तिस प्राणकूं स्थापनकरिकै सावधान हुआ दशमद्वाररूप ब्रह्मरंध्रतैं उत्क्रमण करैहै सो उपासक पुरुषही कवि पुराण इत्यादिक लक्षणोंकरिकै युक्त तिस परमदिव्यपुरुषकूं प्राप्त होवै है । तहां आधारचक्र स्वाधिष्ठानचक्र मणिपूरकचक्र अनाहतचक्र विशुद्धचक्र आज्ञाचक्र इन षट्चक्रोंका स्वरूप तथा तिनोंके स्थान तथा तिनोंके देवता तथा तिन षट्चक्रोंविषे प्राणके स्थापन करणेका प्रकार आत्मपुराणके एकादश अध्यायविषे हम विस्तारतैं निरूपण करिआये हैं ॥ १० ॥

तहां पूर्वप्रसंगविषे परमेश्वरभावकी प्राप्तिवासतै श्रीभगवान्नैं परमेश्वरका स्मरण विधान कऱ्या ता कहणेकरिकै यह संशय प्राप्त होवै है जो तिस ध्यानकालविषे जिसीकिसी नामकरिकै तिस परमेश्वरका स्मरण करणा अथवा नियमतैं किसी एक नामकरिकैही ता परमेश्वरका स्मरण करणा इति । इस संशयकी निवृत्तिकरणे वासतै श्रीभगवान् (सर्वे वेदा यत्पदमामनंति तपांसि सर्वाणि च यद्वदंति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरंति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्) इत्यादिक श्रुतियों करिकै प्रतिपादित जो ओंकाररूप प्रणवनाम है तिस प्रणवनाम करिकैही परमेश्वरका स्मरण करणा अन्य मंत्रादिकोंकरिकै करणा नहीं याप्रकारके नियमकूं अब कथन करैहैं–

यदक्षरं वेदविदो वदंति विशंति यद्यतयो वीतरागाः ॥ यदिच्छंतो ब्रह्मचर्यं चरंति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) यत् । अक्षरम् । वेदविदः । वदंति । विशंति । यत् । यतयः । वीतरागाः । यत् । इच्छंतः । ब्रह्मचर्यम् । चरंति । तत् । ते । पदम् । संग्रहेण । प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! वेदवेत्तापुरुष जिस अक्षरकूं कथन करैं हैं तथा निःस्पृह संन्यासी जिस अक्षरकूं प्राप्त होवैं हैं तथा साधकपुरुष जिस अक्षरकूं इच्छतेहुए ब्रह्मचर्यकूं करैं हैं तिस अक्षरकूं मैं तुम्हारे ताईं संक्षेपकरिकै कथन करताहूं॥ ११॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जिस ओंकारनामवाले अविनाशी ब्रह्मकूं वेदवेत्ता-पुरुष कथन करैं हैं अर्थात् (एतद्वैतदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदंति अस्थूलमन-ण्वह्रस्वमदीर्घम्) इत्यादिक श्रुतिवचनों करिकै स्थूलादिक सर्व विशेषधर्मों की निवृत्ति करिकै जिस अक्षरब्रह्मकूं प्रतिपादन करैंहैं हे अर्जुन ! सो अक्षर ब्रह्म केवल प्रमाणविषे कुशल वेदवेत्ता पुरुषोंनैं ही प्रतिपादन नहीं करीता किंतु मुक्तपुरुषोंकूं प्राप्त होणेयोग्य होणेतैं सो अक्षरब्रह्म तिन मुक्तपुरुषोंकूंभी अनुभव करीताहै । इस अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैंहैं–(विशंति इति) हे अर्जुन ! सर्व विषयसु-खोंकी इच्छातैं रहित जे यत्नशील संन्यासी हैं ते निष्कामसंन्यासी भी मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारके आत्मज्ञानकरिकै जिस अक्षरब्रह्मकूं आपणा स्वरू-पभूतकरिकै प्राप्तहोवैं हैं । हे अर्जुन ! सो अक्षरब्रह्म तिन तत्त्ववेत्ता सिद्धपुरुषोंनैं ही केवल अनुभव नहीं करीता किंतु साधक मुमुक्षुजनोंकाभी सर्व प्रयत्न तिस अक्षरब्रह्मकी प्राप्तिवासतेही है । इस अर्थकूं श्रीभगवान् कहैं हैं–(यदिच्छंतः इति) हे अर्जुन ! जिस अक्षरब्रह्मके जानणेकी इच्छाकरतेहुए नैष्ठिकब्रह्मचारी गुरुकुलविषे निवास करिकै ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदांतशास्त्रके श्रवणमननादिकोंकूं करैंहैं ऐसा अक्षरब्र-ह्मरूपपद मैं भगवान् तैं अर्जुनके प्रति संक्षेपतैं कथन करताहूं अर्थात् जिसप्रकारतैं तैं अर्जुनकूं तिस अक्षरब्रह्मका संशयतैं रहित यथार्थबोध होवै तिस प्रकारतैं मैं तुम्हारे प्रति कथन करताहूं। यातैं तिस अक्षर ब्रह्मकूं मैं अर्जुन किसप्रकार जानूंगा या प्रकारकी चिंता करिकै तूं व्याकुल मत होउ इति । तहां यह ओंकाररूप प्रणव परब्रह्मकाही वाचक है अथवा शालग्रामादिक प्रतिमाकी न्याईं तिस परब्रह्मका प्रतीक है । यातैं तिस परब्रह्मकी वाचकतारूप करिकै तथा प्रतीकतारूपकरिकै श्रुति भगवतीनैं मंदमध्यमबुद्धिवाले पुरुषोंके प्रति क्रममुक्तिरूप फलवाली तिस प्रणवकी उपासना कथन करीहै । तहां श्रुति–(यः पुनरेतत् त्रिमात्रेणोमित्यनेनैवाक्षरेण परं पुरुष-

मभिध्यायीत स तमधिगच्छति) अर्थ यह–जो पुरुष अकार उकार मकार इन तीन मात्राओंवाले ॐ इस अक्षरकरिकै परमपुरुषकूं चिंतन करै है सो पुरुष तिस परमपुरुषकूंही प्राप्त होवैहै इति । इस प्रकारतैं श्रुतिविषे कथन करी जा प्रणवकी उपासना है सोईही उपासना इहां भगवान्‌कूं विवक्षित है । यातैं इस अष्टमाध्यायकी समाप्तिपर्यंत श्रीभगवान्‌नैं सा योगधारणासहित ओंकारकी उपासना तथा ता उपासनाका स्वस्वरूपकी प्राप्तिरूप फल तथा तिस फलतैं अपुनरावृत्ति तथा ताका मार्ग यह सर्व अर्थ कथन करीता है ॥ ११ ॥

तहां (तत्ते पदं प्रवक्ष्ये) इस पूर्वउक्त वचनकरिकै प्रतिज्ञा करया जो अर्थ है तिस अर्थकूं साधनसहित दोश्लोकों करिकै श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ॥
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥ १२ ॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ॥
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) सर्वद्वाराणि । संयम्य । मनः । हृदि । निरुध्य । च । मूर्ध्नि । आधाय । आत्मनः । प्राणम् । आस्थितः । योगधारणाम् । ओम् । इति । एकाक्षरम् । ब्रह्म । व्याहरन् । माम् । अनुस्मरन् । यः । प्रयाति । त्यजन् । देहम् । सः । याति । परमाम् । गतिम् ॥ १२ ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो उपासकपुरुष सर्वइंद्रियद्वारोंकूं रोकिकैरिकै तथा मनकूं हृदयविषे निरुद्ध करिकै तथा प्राणकूं मूर्द्धादेशविषे स्थित करिकै आत्म-विषयक समाधिरूप धारणाकूं करताहुआ तथा ओम् इस ब्रह्मरूप एक अक्षरकूं उच्चारण करताहुआ तथा मैं परमेश्वरकूं चिंतनकरताहुआ इसदेहकूं परित्याग करताहुआ जावैहै सो उपासकपुरुष परम गतिकूं प्राप्त होवैहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! जो उपासक पुरुष श्रोत्रादिकइंद्रियरूप द्वारोंकूं आपणे आपणे शब्दादिकविषयोंतैं रोकिकै स्थित हुआहै अर्थात् तिन शब्दादिक विषयों-विषे वारंवार दोषदर्शनके अभ्यासतैं तिन विषयोंतैं विमुखताकूं प्राप्तहुए श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै तिन शब्दादिक विषयोंकूं नहीं ग्रहण करताहुआ स्थित हुआहै । शंका–हे भगवन् ! श्रोत्रादिक बाह्य इंद्रियोंके निरोध कियेहुएभी अंतर मनकरिकै

तिन विषयोंका चिंतन होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (मनो हृदि निरुध्य च इति) हे अर्जुन ! पूर्व षष्ठ अध्यायविषे विस्तारतैं कथन कऱ्या जो अभ्यासवैराग्य है तिस अभ्यासवैराग्य दोनोंकरिकै जो पुरुष तिस मनकूं हृदयदेशविषे सर्ववृत्तियोंतैं रहितकरिकै स्थित हुआहै अर्थात् जो पुरुष अंतरभी विषयोंकी चिंताकूं नहीं करताहुआ स्थित हुआहै। इस प्रकार बाह्यअंतरज्ञानके द्वारभूत मनसहित श्रोत्रादिक इंद्रियरूप सर्वद्वारोंकूं निरोध करिकै जो पुरुष क्रियाके द्वारभूत प्राणकूंभी सर्वओरतैं निग्रह करिकै मूर्द्धदेशविषे स्थापनकरिकै स्थितहुआहै अर्थात् जो पुरुष गुरुउपदिष्ट मार्गकरिकै पूर्वपूर्व भूमिका जयक्रमतैं प्रथम तिस प्राणकूं दोनों भ्रुवोंके मध्यविषे स्थितकरिकै पश्चात् तिसतैं ऊपरि मूर्द्धदेशविषे स्थापन करिकै स्थित हुआहै। तथा जो पुरुष प्रत्यगात्माविषयक समाधिरूप धारणाकूं करता हुआ स्थित हुआहै। इहां (आत्मनः) यह पद अन्यदेवताविषयक धारणाकी व्यावृत्तिकरणेवासतैहै और ॐ यह जो एक अक्षर है सो ॐअक्षर ब्रह्मका वाचक होणेतैं अथवा शालग्रामादिक प्रतिमाकी न्याईं ब्रह्मका प्रतीक होणेतैं ब्रह्मरूप है। ऐसे ब्रह्मरूप ॐ इस एक अक्षरकूं उच्चारण करताहुआ जो पुरुष स्थित हुआहै। इहां यद्यपि (ॐ इति व्याहरन्) इतनेमात्र कहणेकरिकै ही निर्वाह होइसकै है (एकाक्षरम्) इस कहणेतैं कोई अधिक अर्थ सिद्ध होता नहीं तथापि (एकाक्षरम्) यह वचन अनायासताकूं कथन करताहुआ ता प्रणवके उच्चारणकी स्तुतिवासतै है। अथवा (ॐ इति व्याहरन् एकाक्षरं ब्रह्म मामनुस्मरन्) या प्रकारतैं पदोंका अन्वय करणा। अर्थ यह—जो पुरुष ॐ इस प्रणवमंत्रकूं उच्चारण करताहुआ स्थित हुआहै तथा जो पुरुष तिस ॐकारका अर्थरूप अद्वितीय अविनाशी सर्वत्र व्यापक मैं परमेश्वरकूं स्मरण करताहुआ स्थितहुआ है इसप्रकार प्रणवमंत्रका जप करताहुआ तथा ता प्रणवमंत्रके अर्थरूप मैं परमेश्वरका चिंतन करताहुआ जो पुरुष मरणकालविषे सुषुम्ना नाम मूर्द्धन्यनाडीरूप मार्गकरिकै इस देहकूं परित्याग करताहुआ गमन करैहै सो उपासक पुरुष देवयानमार्गद्वारा ब्रह्मलोकविषे जाइकै तिस ब्रह्मलोकके दिव्यभोगोंकूं भोगिकै अंतविषे परमगतिकूं प्राप्त होवैहै। अर्थात् मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारके तत्त्वसाक्षात्कारकरिकै सर्वतैं उत्कृष्ट ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवैहै। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै। तहां श्रुति—(एषाऽस्य परमा गतिरेषाऽस्य परमा संपदेषोऽस्य परम आनंदः)

अर्थ यह—यह अद्वितीय आनंदस्वरूप ब्रह्मही इस विद्वान् पुरुषकी परम गति है तथा परमसंपद् है तथा परम आनंद है ॥ १२ ॥ १३ ॥

हे भगवन् ! इस पूर्वउक्तरीतिसैं जो पुरुष मरणकालविषे प्राणवायुके निरोधके अभावतैं दोनों भ्रुवोंके मध्यविषे प्राणोंकूं स्थित करिकै मूर्द्धन्यनाडीकरिकै इसदेहके परित्याग करणेकूं आपणी इच्छाकरिकै समर्थ नहीं होवैहै किंतु प्रारब्धकर्मोंके नाश हुए तिस मरणकालविषे परवश हुआ जो पुरुष इस देहका परित्याग करै है तिस पुरुषकूं कौन फल प्राप्त होवैहै । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिस फलकूं कथन करैं हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ॥
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) अनन्यचेताः । सततम् । यः । माम् । स्मरति । नित्यशः । तस्य । अहम् । सुलभः । पार्थ । नित्ययुक्तस्य । योगिनः ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष अनन्यचित्तवाला हुआ निरंतर जीवितकाल-पर्यंत मैं परमेश्वरकूं चिंतन करै है तिस समाहितचित्तवाले योगीपुरुषकूं मैं परमेश्वर अतिसुलभ हूं ॥ १४ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरतैं अन्य किसीभी पदार्थविषे नहीं है आसक्तचित्त जिसका ताका नाम अनन्यचेताहै ऐसा अनन्यचेता हुआ जो पुरुष निरंतर जीवितकालपर्यंत मैं परमेश्वरकूं चिंतन करैहै सो निरंतर समाहितचित्तवाला पुरुष पूर्वउक्त रीतिसैं स्वाधीनताकरिकै इस देहका परित्याग करै अथवा पराधीनताकरिकै इस देहका परित्याग करै सर्वप्रकारतैं तिस पुरुषकूं मैं परमेश्वर अत्यंत सुलभ हूं अर्थात् इतर पुरुषोंकूं अत्यंत दुर्लभ हुआभी मैं परमेश्वर तिस पुरुषकूं तौ सुखेनही प्राप्त होणेयोग्य हूं । हे अर्जुन ! तूंभी इसप्रकारका हमारा अनन्यभक्त है यातैं मैं परमेश्वर तुम्हारेकूंभी अत्यंत सुलभ हूं । यातैं तूं किसीप्रकारका भय मतकर इति । इहां (अनन्यचेताः) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं तिस परमेश्वरके स्मरणविषे अति आदररूप सत्कार कथनकऱ्या । और (सततम्) इस वचनकरिकै निरंतरता कथन करी और (नित्यशः) इस वचनकरिकै दीर्घकालता कथन करी। ता कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं (स तु दीर्घकालनैरंतर्य्यसत्कारसेवितो दृढभूमिः)

इस सूत्रउक्त पतंजलिका मत अनुसरण कन्या । यद्यपि इससूत्रविषे सः इस पद-कारिकै पतंजलिनैं अभ्यासका कथन कन्याहै और इहां श्रीभगवान्नैं (मां स्मरति) या वचनकारिकै स्मरणका कथन कन्याहै तथापि तिस अभ्यासका परमेश्वरके स्मरणविषेही परिअवसान है यातैं यह अर्थ सिद्धभया । दूसरे सर्वविक्षेपोंतैं रहित होइकै अति आदरपूर्वक तथा जीवितकालपर्यंत तथा व्यवधानतैं रहित जो निरंतर परमेश्वरका चिंतन है सो परमेश्वरका चिंतनही तिस मोक्षरूप परमगतिके प्राप्तिका हेतु है । ऐसे परमेश्वरके चिंतनके प्राप्तहुए आपणी इच्छापूर्वक सुषुम्नाना-डीद्वारा प्राणोंका उत्क्रमण होवो अथवा नहीं होवो याके विषे कोई अत्यंत आग्रह है नहीं। सर्वप्रकारतैं सो परमेश्वरका चिंतन करणेहारा पुरुष तिस परम गतिकूंही प्राप्त होवैहै ॥ १४ ॥

हे भगवन् ! इस प्रकार सर्वदा परमेश्वरका चिंतनकारिकै तिस परमेश्वरकूं प्राप्तहुए ते अधिकारी जन पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं अथवा नहीं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ते अधिकारी जन पुनः आवृत्तिकूं नहीं प्राप्त होवैं हैं या प्रकारका उत्तर कहैं हैं—

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ॥
नाप्नुवंति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) माम् । उपेत्य । पुनः । जन्म । दुःखालयम् । अशाश्वतम् । न । आप्नुवंति । महात्मानः । संसिद्धिम् । परमाम् । गताः ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ते उपासक पुरुष मैं परमेश्वरकूं प्राप्तहोइकै पुनः सर्वदुःखोंके स्थानभूत नाशवान् जन्मकूं नहीं प्राप्त होवैहैं जिस कारणतैं महात्माजन सर्वतैं उत्कृष्ट मोक्षकूं प्राप्त हुए हैं ॥ १५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! यह उपासक पुरुष मैं परमेश्वरकूं प्राप्तहोइकै पुनः मनुष्यादिक देहका संबंधरूप जन्मकूं प्राप्त होते नहीं । कैसा है सो जन्म—दुःखालय है अर्थात् गर्भवास तथा योनिद्वारतैं निर्गमन इसतैं आदिलैके जे गर्भउपनिषद्विषे दुःख कथन करेहैं तिन सर्वदुःखोंका स्थान है । पुनः कैसा है सो जन्म—अशाश्वत है अर्थात् स्थिरपणेतैं रहित है तथा आपणे दर्शनकालविषेभी नाशहुए जैसा है । ऐसे शरीरके संबंधरूप जन्मकूं ते पुरुष प्राप्त होते नहीं अर्थात् ते पुरुष पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होते नहीं इति । अब ता पुनरावृत्तिके नहीं होणेविषे तिन उपासकपुरुषोंके

हेतुरूप दो विशेषण कथन करेहैं (महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः इति ।) हे अर्जुन ! जिस कारणतैं ते पुरुष महात्मा हैं अर्थात् रजतमरूप मलतैं रहित शुद्ध अंतःकरणवाले हैं । तथा ते पुरुष परमसिद्धिकूं प्राप्त हुए हैं अर्थात् ते उपासक पुरुष मैं परमेश्वरके लोककूं प्राप्त होइकै तहां अनेकप्रकारके दिव्य-भोगोंको भोगिकै ताके अंतविषे ब्रह्मज्ञानकूं प्राप्त होइकै सर्वतैं उत्कृष्ट कैवल्यमु-क्तिकूं प्राप्त हुए हैं तिस कारणतैं ते पुरुष पुनरावृत्तिकूं प्राप्त होते नहीं । इहां मैं परमेश्वरकूं प्राप्त होइकै ते पुरुष मोक्षकूं प्राप्त हुए हैं इस वचनके कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं तिन उपासक पुरुषोंकूं क्रममुक्तिकी प्राप्ति दिखाई तहां उपासनाके बलतैं देवयानमार्गद्वारा ब्रह्मलोकविषे जाइकै तहां दिव्यभोगोंकूं भोगिकै ताके अंतविषे तत्त्वज्ञानकरिकै जो मुक्तिकी प्राप्ति है ताका नाम क्रममुक्ति है । यह वार्त्ता स्मृतिविषेभी कथन करीहै । तहां स्मृति—(ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे । परस्यांते कृतात्मानः प्रविशंति परं पदम् ।) अर्थ यह—ते उपासकपु-रुष ब्रह्मलोकविषे जाइकै तहां ब्रह्माके प्रलयकी प्राप्ति हुए तत्त्वसाक्षात्कारवाले होइकै ता ब्रह्माके नाश हुएतैं अनंतर तिस ब्रह्माके साथिही विदेहमुक्तिकूं प्राप्त होवैं हैं इति । इहां मैं परमेश्वरकूं प्राप्तहोइकै ते उपासक पुरुष मोक्षकूं प्राप्त होवैं हैं इस भगवान्के वचनतैं ब्रह्मलोकतैं भिन्न कोई विष्णुलोक जानणा नहीं । काहेतैं जैसे पौराणिक ब्रह्मलोक विष्णुलोक रुद्रलोक इन तीन लोकोंकी भिन्नभिन्न ऊपरिऊपरि कल्पना करैं हैं तैसे वेदांतसिद्धांतविषे तिन लोकोंकी भिन्नभिन्न ऊपरिऊपरि कल्पना है नहीं किंतु वेदांतसिद्धांतविषे ते सर्वलोक सत्यलोकनामा ब्रह्मलोकविषेही अंतर्भूत हैं । तहां विष्णुके उपासकोंकूं तौ सो ब्रह्मलोक विष्णुलोक होइकै प्रतीत होवै है । और रुद्रके उपासकोंकूं तौ सो ब्रह्मलोक रुद्रलोक होइकै प्रतीत होवैहै । यह सर्व वार्त्ता (परा हि सोपासनकर्मोर्जितिर्हिरण्यगर्भप्राप्त्यंता) इस बृहदारण्यक उपनि-षद्की श्रुतिके व्याख्यानविषे श्रीभाष्यकारोंनैं तथा ता भाष्यके व्याख्यानकरतावोंनैं स्पष्ट करिकै कथन करीहै ॥ १५ ॥

तहां परमेश्वरकी उपासनातैं परमेश्वरकूं प्राप्त होइकै तहां तत्त्वसाक्षात्कारकूं प्राप्तहुए जे उपासक पुरुष हैं तिन उपासक पुरुषोंकी अपुनरावृत्तिके कथन कियेहुए तिस परमेश्वरतैं विमुख तथा तत्त्वसाक्षात्कारतैं रहित ऐसे पुरुषोंकी ता ब्रह्मलोकतैं पुनरावृत्ति अर्थतैंही सिद्ध होवैहै । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैहैं—

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ॥
मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) आब्रह्मभुवनात् । लोकाः । पुनरावर्त्तिनः । अर्जुन । माम् । उपेत्य । तु । कौंतेय । पुनः । जन्म । न । विद्यते ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ब्रह्मलोक सहित सर्वलोक पुनरावृत्तिवालेही हैं हे कौंतेय एक मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्तहोइकै पुनः जन्म नहीं होवै है ॥ १६ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरतैं विमुख तथा असम्यक्दर्शनवाले जितनेक पुरुष हैं तिन सर्वपुरुषोंकूं ब्रह्मलोकके सहित सर्व भोगभूमिरूप लोक पुनरावृत्तिवालेही होवैं हैं अर्थात् मैं परमेश्वरतैं विमुखपुरुष ब्रह्मलोकादिक सर्वलोकोंतैं नीचे पतन होइकै पुनः जन्मकूं प्राप्त होवैं हैं। शंका–हे भगवन् ! तैं परमेश्वरकूं प्राप्तहुए अधिकारी जनोंकूंभी तिन पुरुषोंकी न्याईं क्या पुनरावृत्तिकीही प्राप्ति होवैहै ? ऐसी शंकाके हुए श्रीभगवान् पूर्व कहेहुए अर्थकूं पुनः दृढकरावणेवास्तै कहैं हैं–(मामुपेत्य तु इति) हे कौंतेय ! मैं एक परमेश्वरकूं ही प्राप्त होइकै परम आनंदकूं प्राप्त हुए जे अधिकारी पुरुष हैं तिन अधिकारी पुरुषोंकूं पुनः कदाचित्भी जन्म नहीं होवैहै अर्थात् तिन पुरुषोंकी कदाचित्भी पुनरावृत्ति नहीं होवैहै । इहां (हे अर्जुन !) या संबोधन करीकै श्रीभगवान्नैं ता अर्जुनविषे स्वभावसिद्ध महानुभावपणा कथन कऱ्या। और (हे कौंतेय !) या संबोधन करिकै मातातैंभी महानुभावपणा कथन कऱ्या । ता कहणेकारिकै आत्मज्ञानकी सिद्धिवासतै ता अर्जुनविषे स्वरूपतैं शुद्धि तथा कारणतैं शुद्धि सूचन करी। इहां (आब्रह्मभवनात्) या प्रकारका जो किसी पुस्तकविषे पाठ होवैहै तौभी पूर्वउक्त अर्थतैं विलक्षणता नहीं है । काहेतैं (भवंत्यत्र भूतानीति भुवनम्) अर्थ यह-जिसविषे भूत विद्यमानहोवैं ताका नाम भुवन है । या प्रकारकी व्युत्पत्तिकारिकै सो भुवनशब्द लोकका वाचक है। और निवासके स्थानका नाम भवन है सो भवनशब्दभी लोककाही वाचक है इति । इहां (आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन) इस पूर्वार्द्ध करिकै श्रीभगवान्नैं ब्रह्मलोकविषे प्राप्तहुए पुरुषोंकी पुनरावृत्ति कथन करी। और (मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते) इस उत्तरार्धकारिकै तिस ब्रह्मलोकतैं अपुनरावृत्ति कथन करी । याके विषे यह

व्यवस्था है। क्रममुक्ति है फल जिनोंका ऐसी जे दहरादिक उपासना हैं तिन उपासनावों करिकै जे पुरुष देवयानमार्गद्वारा तिस ब्रह्मलोककूं प्राप्त हुएहैं तिन उपासक पुरुषोंकूंही तहां उत्पन्नहुए तत्त्वसाक्षात्कार करिकै ब्रह्माके साथि मोक्षकी प्राप्ति होवैहै। यातैं ते उपासक पुरुष पुनरावृत्तिकूं प्राप्त होवैं नहीं। और जे पुरुष पंचाग्नि विद्यादिकों करिकै ता ब्रह्मलोककूं प्राप्त हुएहैं, तिन पुरुषोंकूं तहां तत्त्वसाक्षात्कारकी प्राप्ति होवै नहीं। यातैं ते पुरुष तौ वहां भोगोंकूं भोगिकै अवश्यकरिकै पुनरावृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं। परंतु ते उपासक पुरुषभी जिस कल्पविषे तिस ब्रह्मलोककूं प्राप्त हुएहैं तिस कल्पविषे पुनरावृत्तिकूं प्राप्त होते नहीं किंतु दूसरे कल्पविषे पुनरावृत्तिकूं प्राप्त होवैंहैं। यातैं (ब्रह्मलोकमभिसंपद्यते न च पुनरावर्त्तते) इत्यादिक श्रुतियोंनैं तथा (अनावृत्तिशब्दात्) इस सूत्रनैं ब्रह्मलोकविषे प्राप्तहुए उपासकपुरुषोंकी जो पुनरावृत्ति कथन करीहै सो क्रम-मुक्तिवाले उपासक पुरुषोंकी अपुनरावृत्ति कथन करीहै। और जे श्रुतिस्मृतिवचन ब्रह्मलोकविषे प्राप्तहुए पुरुषोंकी पुनरावृत्तिकूं कथन करैंहैं ते वचन तौ पंचाग्नि-विद्यादिकों करिकै ब्रह्मलोककूं प्राप्तहुए पुरुषोंके पुनरावृत्तिकूं कथन करैं हैं। यातैं उपासकपुरुषोंकी ब्रह्मलोकतैं अपुनरावृत्तिकूं कथन करणेहारे वचनोंका तथा ता ब्रह्मलोकतैं पुनरावृत्तिकूं कथन करणेहारे वचनोंका परस्पर विरोध होवै नहीं। ता पंचाग्निविद्याका स्वरूप आत्मपुराणके षष्ठअध्यायविषे हम विस्तारतैं निरूपण करिआये हैं ॥ १६ ॥

तहां ब्रह्मलोकसहित सर्वलोक कालकरिकै परिच्छिन्न होणेतैं पुनरावृत्तिवालेही हैं। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैंहैं—

सहस्रयुगपर्यंतमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ॥
रात्रिं युगसहस्रांतां तेहोरात्रविदो जनाः ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) सहस्रयुगपर्यंतम्। अहः। यत्। ब्रह्मणः। विदुः। रात्रिम्। युगसहस्रांताम्। ते। अहोरात्रविदः। जनाः ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जे पुरुष ब्रह्माके चतुर्युगसहस्रपर्यंत दिनकूं जानैं हैं तथा चतुर्युगसहस्र पर्यंत रात्रिकूं जानैं हैं ते योगीजनही दिनरात्रिकूं जानणेहारे हैं॥ १७॥

भा० टी०—तहां सत्रह लक्ष अट्ठावीस सहस्र वर्ष १७२८००० सत्ययुगका परिमाण होवैहै और बारह लक्ष छियानवें सहस्र वर्ष १२९६००० त्रेतायुगका

परिमाण होवैहै। और आठ लक्ष चौसठसहस्रवर्ष ८६४००० द्वापर युगका परिमाण होवैहै। और च्यारि लक्ष बत्तीस सहस्र वर्ष४३२००० कलियुगका परिमाण होवै है। यह चारों युग जबी एक सहस्रवार व्यतीत होवैं हैं तबी प्रजापतिनामा ब्रह्माका एकदिन होवैहै। इसीप्रकार यह च्यारियुग जबी एकसहस्रवार व्यतीत होवैं हैं तबी तिस ब्रह्माकी एकरात्रि होवैहै। यह ही ब्रह्माके दिनरात्रिका परिमाण (चतुर्युगसहस्रं तु ब्रह्मणो दिनमुच्यते) इत्यादिक पुराणके वचनोंविषेभी कथन कर्‌याहै। इस प्रकारके ब्रह्माके दिनकूं तथा रात्रिकूं जे पुरुष जानैंहैं ते योगीजनही रात्रि दिनके जानणेहारे कहेजावैं हैं। और जे पुरुष सूर्य चंद्रमाकी गतिकरिकै दिनरात्रिकूं जानैं हैं ते पुरुष दिनरात्रिके जानणेहारे कहेजावैं नहीं। जिस कारणतैं ते पुरुष अल्पदर्शी हैं ॥ १७ ॥

इस प्रकार ब्रह्माके दिनरात्रि जबी पंचदश होवैं हैं तबी ता ब्रह्माका एक पक्ष कह्याजावैहै। ऐसे दो पक्षोंका एकमास कह्याजावैहै। ऐसे द्वादशमासोंका एक वर्ष कह्याजावैहै। ऐसे एकशत १०० वर्ष ता ब्रह्माकी परम आयुष होवैहै। तहां प्रथम पचासवर्ष प्रथमपरार्द्ध कह्या जावैहै और दूसरे पचासवर्ष द्वितीय परार्द्ध कह्या जावैहै। ऐसी शतवर्ष आयुषकूं भोगिकै सो ब्रह्मा नाशकूं प्राप्त होवै है। इस प्रकारतैं सो ब्रह्माभी कालकरिकै परिच्छिन्न होणेतैं अनित्यही है यातैं क्रममुक्तितैं रहित पुरुषोंकी तिस ब्रह्मलोकतैं पुनरावृत्ति युक्तही है। और जे इंद्रादिक देवता तिस ब्रह्मातैंभी नीचे हैं ते इंद्रादिक देवता तौ तिस ब्रह्माके एक दिनरूप कालकरिकैही परिच्छिन्न हैं। यातैं तिन इंद्रादिक देवतावोंके लोकोंतैं इन पुरुषोंकी पुनरावृत्ति होवैहै याकेविषे क्या कहणाहै। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवंत्यहरागमे ॥
रात्र्यागमे प्रलीयंते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ १८॥

(पदच्छेदः) अव्यक्तात्। व्यक्तयः। सर्वाः। प्रभवंति। अहरागमे। रात्र्यागमे। प्रलीयंते। तत्र। एव। अव्यक्तसंज्ञके ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! तिस ब्रह्माके दिनके आगमनविषे अव्यक्ततैं यह सर्व व्यक्तियां उत्पन्न होवैं हैं और रात्रिके आगमनविषे ते सर्वव्यक्तियां तिस अव्यक्तनामा कारणविषे ही प्रलयकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ १८ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! पूर्व जो ब्रह्माका दिन कथन कऱ्या है ता दिनके आगमविषे अर्थात् ता ब्रह्माके जाग्रतकालविषे अव्यक्तैं यह सर्व व्यक्तियां उत्पन्न होवैं हैं । यद्यपि अन्यस्थलविषे अव्यक्त शब्द अव्याकृत अवस्थाकाही वाचक होवैहै तथापि इहां अव्यक्तशब्दकरिकै अव्याकृत अवस्थाका ग्रहण करणा नहीं काहेतैं इहां प्रसंगविषे ब्रह्माके दिनदिनविषे सृष्टिकूं तथा रात्रिरात्रिविषे प्रलयकूं कथन करणेवासतै ही प्रारंभ कऱ्या है । ता ब्रह्माके दिनसृष्टिविषे तथा रात्रि-प्रलयविषे आकाशादिक भूतोंकी उत्पत्ति तथा नाश होवै नहीं किंतु ते आकाशादिक भूत तहां ज्यौंके त्यौं बने रहैं हैं । यातैं ता अव्यक्त शब्दकरिकै आकाशा-दिकोंका कारणरूप अव्याकृत अवस्थाका ग्रहण करणा नहीं किंतु ता अव्यक्त-शब्दकरिकै ब्रह्माके सुषुप्ति अवस्थाका ग्रहण करणा । अर्थात् सुषुप्ति अवस्थाकूं प्राप्त हुए प्रजापतिका नाम अव्यक्त है । ऐसे अव्यक्तैं शरीरविषयादिरूप भोगकी भूमियांरूप व्यक्तियां उत्पन्न होवैं हैं अर्थात् पूर्व सूक्ष्मरूप करिकै रही हुई ते व्यक्तियां व्यवहार करणेविषे समर्थतारूपकरिकै अभिव्यक्तकूं प्राप्त होवैं हैं । और तिस प्रजापतिनामा ब्रह्माके रात्रिके आगमनविषे अर्थात् तिस ब्रह्माके सुषुप्ति कालविषे ते सर्व व्यक्तियां जिस अव्यक्तरूप कारणतैं पूर्व प्रादुर्भूत हुईथीं, तिसी अव्यक्तनामा कारणविषे लयभावकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ १८ ॥

इस प्रकार यह संसार यद्यपि शीघ्रही विनाशकूं प्राप्त होवै है तथापि इस संसारकी निवृत्ति होती नहीं काहेतैं अविद्या काम कर्म इन तीनोंकरिकै परतंत्र हुआ यह संसार पुनःपुनः प्रादुर्भावकूं प्राप्त होवै है । तथा ता प्रादुर्भावकूं प्राप्तहुए इस संसारका ता अविद्या काम कर्मवशतैं पुनःपुनः तिरोभाव होवै है । ऐसे आगमापायी संसारविषे वर्त्तमान जितनेक प्राणी हैं ते प्राणीभी ता अविद्या काम कर्म करिकै परतंत्रही हैं । ऐसे परतंत्र प्राणियोंकूंही जन्ममरणादिक दुःखोंकी प्राप्ति होवै है । यातैं इस दुःखरूप संसारतैं निवृत्त होणाही श्रेष्ठ है या प्रकारके वैराग्यकी उत्पत्तिवासतै तथा इस संसारका समान नामरूप करिकैही पुनः पुनः प्रादुर्भाव होणेतैं कृतनाश अकृताभ्यागमरूप दोषकी निवृत्ति करणेवासतै श्रीभगवान् कहैहैं-

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ॥
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) भूतग्रामः। सः। एव। अयम्। भूत्वा। भूत्वा। प्रलीयते। रात्र्यागमे। अवशः। पार्थ। प्रभवति। अहरागमे॥ १९॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! जो पूर्वकल्पविषे था सोई ही यह प्राणियोंका समुदाय उत्तरउत्तर कल्पविषे उत्पन्न होइकै उत्पन्न होइकै परतंत्र हुआ ब्रह्माके दिनके आगमनविषे तौ उत्पन्न होवैहै और रात्रिके आगमनविषे लय होवैहै॥ १९॥

भा०टी०—हे अर्जुन! जो स्थावर जंगमभूतोंका समुदाय पूर्वकल्पविषे स्थित था सोईही भूतोंका समुदाय उत्तरउत्तर कल्पविषे उत्पन्न होवै है। कल्पकल्पविषे अन्य अन्य नवीन भूतोंका समुदाय उत्पन्न होवै नहीं। काहेतैं जैसे तार्किक असत्‌कार्यकी उत्पत्तिकूं अंगीकार करैं हैं तैसे वेदांत सिद्धांतविषे असत्‌कार्यकी उत्पत्ति अंगीकार है नहीं। जो कदाचित् असत्‌कीभी उत्पत्ति होती होवै तौ नरशृंग वंध्यापुत्रकीभी उत्पत्ति होणी चाहिये। यातैं असत्‌कार्यकी उत्पत्ति होवै नहीं किंतु आपणी उत्पत्तितैं पूर्व आपणे कारणविषे सूक्ष्मरूपकरिकै रहेहुए कार्यकीही कारण सामग्रीके वशतैं पुनः अभिव्यक्ति होवैहै। किंवा जो कदाचित् कल्पकल्पविषे अन्यअन्य नवीन प्राणियोंकी उत्पत्ति अंगीकार करिये तौ पूर्वकल्पके अंतविषे प्राणियोंनैं करे जे पुण्यपापकर्म हैं तिन कर्मोंकाभोगतैं विनाही नाश होवैगा और इस कल्पके आदिविषे उत्पन्न भये जे प्राणी हैं तिन प्राणियोंकूं पूर्व नहीं करेहुए पुण्यपापकर्मोंके सुखदुःखरूप फलका भोग होवैगा। इसीकूं ही शास्त्रविषे कृतनाश अकृताभ्यागम कहैहैं। सो आत्मज्ञानतैं रहित पुरुषोंकूं करेहुए कर्मका फलके भोगतैं विना नाश कहणा तथा न करेहुए कर्मोंके फलका भोग कहणा शास्त्रतैं विरुद्ध है। काहेतैं शास्त्रविषे यह कह्या है—(अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि॥) अर्थ यह—आत्मज्ञानतैं रहित अज्ञानी पुरुषनैं जो शुभ कर्म कऱ्याहै अथवा अशुभ कर्म कऱ्या है सो शुभअशुभ कर्म अवश्यकरिकै भोग्या जावैहै। तिस अज्ञानी पुरुषकूं भोग दियेतैं विना सोशुभअशुभ कर्म शतकोटिकल्पोंकरिकैभी नाशकूं प्राप्त होवै नहीं। या कारणतैंभी कल्पकल्पविषे नवीनप्राणियोंकी उत्पत्ति होवै नहीं किंतु पूर्वपूर्वकल्पविषे स्थित प्राणियोंकीही उत्तरउत्तर कल्पविषे उत्पत्ति होवैहै। किंवा यह वार्ता केवल युक्तिकरिकैही सिद्ध नहीं है किंतु साक्षात् श्रुति भगवतीही इस अर्थकूं कथन करैहै। तहां श्रुति—(सूर्याचंद्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्॥ दिवं च पृथिवीं

चांतारिक्षमथोस्वरिति ॥) अर्थ यह—सूर्य चंद्रमा पृथिवी अंतरिक्ष स्वर्ग इसतैं आदिलैके यह सर्व जगत् जिसप्रकारका पूर्वपूर्वकल्पविषे था तिसीतिसी प्रकारका उत्तरउत्तर कल्पविषे परमेश्वर रचता भया इति । सोईही यह स्थावर जंगमरूप भूतोंका समुदाय अविद्याकामकर्म करिकै परतंत्रहुआ तिस ब्रह्माके दिनके आगमनविषे तौ तिस पूर्व उक्तरूप कारणतैं प्रादुर्भावकूं प्राप्त होवैहै । और तिस ब्रह्माके रात्रिके आगमनविषे तिस अव्यक्तरूप कारणविषे लयभावकूं प्राप्त होवैहै ॥ १९॥

इस प्रकार अविद्याकामकर्मके अधीन प्राणियोंका वारंवार उत्पत्ति विनाश दिखाइकै (आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन) इस पूर्वउक्त वचनका अर्थ तीन श्लोकों करिकै उपपादन कऱ्या । अब (मामुपेत्य पुनर्जन्म न विद्यते) इस पूर्वउक्त वचनका अर्थ दोश्लोकों करिकै श्रीभगवान् उपपादन करैं हैं—

परस्तस्मात्तु भावोन्योऽव्यक्तोव्यक्तात्सनातनः ॥
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) परः । तस्मात् । तु । भावः । अन्यः । अव्यक्तः । अव्यक्तात् । सनातनः । यः । सः । सर्वेषु । भूतेषु । नश्यत्सु । न । विनश्यति ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो सत्तारूपभाव तिस अव्यक्ततैं पर है तथा अत्यंत विलक्षण है तथा इंद्रियोंका अविषय है । तथा नित्य है सो सत्तारूप भाव सर्व भूतोंके नाशहुएभी नहीं नाश होवै है ॥ २० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सर्वकल्पित प्रपंचविषे अनुस्यूत जो सत्तारूप भाव है सो सत्तारूप भाव कैसा है—पूर्व कथनकऱ्या जो चराचर स्थूलप्रपंचका कारणभूत हिरण्यगर्भनामा अव्यक्त है तिस अव्यक्ततैंभी पर है अर्थात् ता अव्यक्ततैं व्यतिरिक्त है अथवा ता अव्यक्ततैं श्रेष्ठ है । काहेतैं सो सत्तारूपभाव तिस हिरण्यगर्भरूप अव्यक्तकाभी कारणरूप है । शंका—हे भगवन् ! तिस सत्तारूप भावकूं तिस अव्यक्ततैं व्यतिरिक्तता हुएभी तिस अव्यक्तकी सादृश्यता होवैगी । जैसे गवयकूं गौतैं व्यतिरिक्तता हुएभी गौकी सादृश्यता है । एसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (अन्यः इति) हे अर्जुन ! सो सत्तारूप तिस अव्यक्ततैं अन्य है । अर्थात् अत्यंत विलक्षण है किसी अंशविषेभी ता अव्यक्तके सदृश नहीं है । तहां श्रुति—(न तस्य

प्रतिमा अस्ति ।) अर्थ यह—तिस सत्तारूप परमात्माके सदृश कोईभी पदार्थ है नहीं इति । शंका—हे भगवन् ! ऐसा सत्तारूपभाव सर्वलोकोंकूं प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (अव्यक्तः इति) हे अर्जुन ! सो सत्तारूपभाव अव्यक्तरूप है अर्थात् रूपादिक गुणोंतैं रहित होणेतैं चक्षुआदिक इंद्रियोंका अविषय है । तहां श्रुति—(न चक्षुषा पश्यति कश्चिदेनम् ।) अर्थ यह—इस आत्मादेवकूं चक्षुआदिक इंद्रियोंकरिकै कोईभी देखसकता नहीं इति । पुनः कैसा है सो सत्तारूपभाव—सनातन है अर्थात् उत्पत्तिनाशतैं रहित होणेतैं सर्वदा नित्य है । इहां (तस्मात्तु) या वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द परित्याग करणेयोग्य अनित्य अव्यक्ततैं तिस सत्तारूप नित्य अव्यक्तविषे ग्राह्यत्वरूप विलक्षणताकूं सूचन करे है । अथवा सो तु शब्द नैयायिकोंनैं कल्पना करीहुई जातिरूप सत्ताकी व्यावृत्तिकूं बोधन करै है । काहेतैं सा जातिरूप सत्ता द्रव्य गुण कर्म इन तीन पदार्थोंविषे अनुगतहुईभी सामान्य विशेष समवाय अभाव इन च्यारि पदार्थोंविषे रहै नहीं। और यह चैतन्यरूप सत्ता तौ सर्वपदार्थोंविषे अनुस्यूत होइकै रहै है। इसप्रकारका जो सत्तारूप भाव है सो सत्तारूप भाव तिस अव्यक्तनामा हिरण्यगर्भकी न्याईं तिन सर्वभूतोंके नाश हुएभी नाश होवै नहीं । तथा तिन सर्वभूतोंके उत्पन्नहुएभी उत्पन्न होवै नहीं । और सो अव्यक्तनामा हिरण्यगर्भ तौ आप कार्यरूप है तथा तिन भूतोंका अभिमानी है। यातैं तिन भूतोंके उत्पत्ति नाशकरिकै तिस हिरण्यगर्भका उत्पत्तिनाश युक्त है । और तिन भूतोंका नहीं अभिमानी है । तथा अकार्यरूप जो सत्तारूप परमात्मादेव है तिस परमात्मादेवका तिन भूतोंके उत्पत्तिनाशकरिकै उत्पत्तिनाश संभवता नहीं ॥ २० ॥

किंच—

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ॥
यं प्राप्य न निवर्त्तंते तद्धाम परमं मम ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) अव्यक्तः । अक्षरः । इति । उक्तः । तम् । आहुः । परमाम् । गतिम् । यम् । प्राप्य । न । निवर्त्तंते । तत् । धाम । परमम् । मम॥२१॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो सत्तारूपभाव इहां अव्यक्त अक्षर इसनामकरिकै कथनकऱ्या है तिस सत्तारूपभावकूं श्रुतिस्मृतियां परम गति कहैं हैं जिस सत्ता-

रूपभावकूं प्राप्तहोइकै यह अधिकारी जन पुनः नहीं जन्मकूं प्राप्त होवैहै सो सत्तारूप भाव मैं परमेश्वरका सर्ववैं उत्कृष्ट स्वरूपही है ॥ २१ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जो सत्तारूपभाव इस गीताशास्त्रविषे इंद्रियोंका अविषय होणेतैं अव्यक्त इस नामकरिकै पूर्व कथन कऱ्या है तथा जो सत्तारूप भाव नाशतैं रहित होणेतैं अथवा सर्वत्र व्यापक होणेतैं अक्षर इस नामकरिकै पूर्व कथन कऱ्या है तथा अन्य श्रुति स्मृतियोंविषेभी अव्यक्त अक्षर इस नामकरिकै कथन कऱ्या है तिस सत्तारूप भावकूं श्रुतिस्मृतियां परमगतिरूप कहैं हैं। इहां (परमाम्) इस शब्दकरिकै उत्पत्तिनाशतैं रहित स्वप्रकाश परमानंदरूपका ग्रहण करणा। और मुमुक्षु जनोंकूं एक आत्मज्ञानकरिकैही जो पुरुषार्थ प्राप्त होवैहै ताका नाम गति है अर्थात् तिस सत्तारूपभावकूं श्रुतिस्मृतियां स्वप्रकाश परमानंदस्वरूप परमपुरुषार्थरूप कहैं हैं। अथवा ब्रह्मलोकपर्यंत जा गति है सा गति कार्यरूप होणेतैं अपरमा है। और यह चैतन्यसत्तारूप गति तौ कार्यकारणभावतैं रहित होणेतैं परमा है इति। तहां श्रुति–(एषास्य परमा गतिः। पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः।) अर्थ यह–यह सतचितआनंदस्वरूप परमात्मादेव ही इस विद्वान् पुरुषकी परम गति है। ऐसे परमात्मादेवतैं परे कोईभी वस्तु नहीं है किंतु सो परमात्मादेवही सर्वका अवधि है तथा परमगति है इति। और जिस सत्तारूप भावकूं यह अधिकारी जन प्राप्त होइकै पुनः संसारविषे पतन होते नहीं अर्थात् पुनः जन्मकूं प्राप्त होते नहीं सो सत्तारूप भाव मैं परमेश्वरका परम धाम है अर्थात् सो सत्तारूप भाव मैं परिपूर्ण विष्णुका सर्ववैं उत्कृष्ट तथा सर्व उपाधियोंतैं रहित वास्तवस्वरूप है। तहां श्रुति–(तद्विष्णोः परमं पदम्) अर्थ यह–जिस सतचितआनंदस्वरूप अद्वितीय निर्गुणब्रह्मकूं अहं ब्रह्मास्मि इसप्रकार अभेदरूपतैं प्राप्त होइकै तत्त्ववेत्ता पुरुष पुनः जन्ममरणरूप संसारकूं प्राप्त होते नहीं। सो अद्वितीय निर्गुण ही विष्णुका परमपद है अर्थात् ता विष्णुका वास्तवरूप है इति। इहां (राहोः शिरः पुरुषस्य चैतन्यम्) इस स्थलविषे जैसे राहुशिरके अभेदहुएभी तथा पुरुषचैतन्यके अभेद हुएभी भेदकी कल्पना करिकै षष्ठी विभक्ति है। वास्तवतैं राहुशिरका तथा पुरुषचैतन्यका अभेदही है। तैसे (मम धाम) इस वचनविषेभी परमेश्वरके तथा सत्तारूप धामके वास्तवतैं अभेदहुएभी भेदकी कल्पनाकरिकै षष्ठीविभक्ति है। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया।

जिस अक्षर अव्यक्तरूप भावकूं श्रुतियां परमगतिरूप कहैंहैं । सा परमगति मैं परमेश्वरही हूं ॥ २१ ॥

तहां (अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः । तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ।) इस श्लोककरिकै पूर्व कथनकऱ्या जो भक्तियोग है सो भक्तियोगही तिस परमगतिके प्राप्तिका उपाय है इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैंहैं—

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ॥
यस्यांतःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) पुरुषः । सः । परः । पार्थ । भक्त्या । लभ्यः । तु । अनन्यया । यस्य । अंतःस्थानि । भूतानि । येन । सर्वम् । इदम् । ततम् ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो पूर्वउक्त निरतिशय परमात्मा पुरुष अनन्य भक्तिकरिकै ही प्राप्तहोवैहै जिस पुरुषके सर्वभूत अंतर्वर्त्ति हैं तथा जिस पुरुषनैं यह सर्व जगत् व्याप्त करयाहै ॥ २२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सो निरतिशय परमात्मा पुरुष मैंही हूं । ऐसा मैं परमात्मा देव एक अनन्य भक्तिकरिकैही प्राप्त होताहूं । तहां मैं परमेश्वरतैं विना नहीं विद्यमान है अन्यविषय जिसविषे ऐसी जा प्रेमलक्षणा भक्ति है ताका नाम अनन्यभक्ति है सो निरतिशयपुरुष कौन है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (यस्यांतःस्थानि इति) हे अर्जुन ! जिस कारण पुरुषके यह सर्व कार्यरूपभूत अंतर्वर्ती हैं काहेतैं इस लोकविषेभी जोजो कार्य होवैंहैं सोसो कार्य आपणे उपादानकारणकेही अंतर्वर्ती होवैं हैं । जैसे घटशरावादिक कार्य मृत्तिकारूप कारणके ही अंतर्वर्ती होवैं हैं तैसे यह सर्व कार्यप्रपंच तिस कारणरूप पुरुषके अंतर्वर्त्ती हैं । इसी कारणतैंही जिस पुरुषनैं यह सर्व कार्यप्रपंच व्याप्त कऱ्या है । जैसे मृत्तिकारूप कारणनैं घटशरावादिक सर्व कार्य व्याप्त करेहैं । तहां श्रुति—(यस्मात्परं नापरमस्ति किंचित् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोस्ति कश्चित् । वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् । यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेपि वा । अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥) अर्थ यह—जिस परमात्मादेवतैं कोईभी वस्तु पर तथा अपर नहीं है । तथा जिस परमात्मादेवतैं कोईभी वस्तु अत्यंत अणु तथा अत्यंत महान् नहीं है । तथा जो

अद्वितीय परमात्मादेव महान् वृक्षकी न्याईं चलायमानतातैं रहित है तथा आपणे स्वयंज्योतिःस्वरूपविषे स्थित है तिस परमात्मादेवपुरुषनेही यह सर्व जगत् पूर्ण कऱ्याहै । और इस जगत्‌विषे जो कोई वस्तु देखणेविषे आवैहै तथा श्रवणकऱ्या जावैहै तिस सर्वजगत्‌कूं अंतरबाह्यतैं व्याप्य करिकैही नारायण स्थित है इति । इत्यादिक अनेक श्रुतियां तिस परमात्मादेवकी व्यापकताकूं कथन करैं हैं । ऐसा मैं परमात्मादेव केवल अनन्यभक्तिकरिकैही प्राप्त होवूंहूं । इहां मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारका जो तत्त्वज्ञान है सोईही तिस परमात्मादेवकी प्राप्ति है । तिस तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिका परमेश्वरकी अनन्यभक्तिही उपाय है । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै । तहां श्रुति-(यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः ॥) अर्थ यह-जिस अधिकारी पुरुषकी परमेश्वरविषे अनन्य भक्ति है और जैसी परमेश्वरविषे अनन्यभक्ति है तैसीही गुरुविषे अनन्यभक्ति है तिस महात्मापुरुषकूंही यह वेदांतकरिकै प्रतिपादित अर्थ अपरोक्ष होवैहै । ता भक्तितैं रहित पुरुषकूं ते अर्थ अपरोक्ष होते नहीं । यातैं जिज्ञासु जनकूं सा परमेश्वरकी भक्ति अवश्य कर्त्तव्य है ॥ २२ ॥

तहां पूर्व यह वार्त्ता कथन करी थी । जो सगुणब्रह्मके उपासक तिस सगुणब्रह्मकूं प्राप्तहोइकै पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होते नहीं किंतु तहां क्रममुक्तिकूं प्राप्त होवैं हैं, तहां तिस सगुणब्रह्मलोकके भोगतैं पूर्व नहीं उत्पन्न भया है आत्मसाक्षात्कार जिन्होंकूं ऐसे जे उपासक पुरुष हैं तिन उपासक पुरुषोंकूं ता ब्रह्मलोकविषे जाणेवासतै मार्गकी अपेक्षा अवश्यकरिकै रहैहै । तत्त्ववेत्ता पुरुषोंकी न्याईं तिन उपासकपुरुषोंकूं मार्गकी अनपेक्षा नहीं है । यातैं उपासक पुरुषोंकूं तिस ब्रह्मलोककी प्राप्तिवासतै श्रीभगवान् देवयानमार्गका कथन करैहैं । और पितृयाणमार्गका जो इहां कथन कऱ्याहै सो तिस देवयानमार्गकी स्तुतिवासतै कथन कऱ्या है-

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ॥
प्रयाता यांति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) यत्र । काले । तु । अनावृत्तिम् । आवृत्तिम् । च । एव । योगिनः । प्रयाताः । यांति । तम् । कालम् । वक्ष्यामि । भरतर्षभ ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिस मार्गविषे जाणेहारे उपासक कर्मीपुरुष अनावृत्तिकूं तथा आवृत्तिकूं ही प्राप्तहोवैं हैं तिस मार्गकूं मैं कथनकरताहूं ॥ २३ ॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! इस शरीरतैं प्राणोंके उत्क्रमणतैं अनंतर जिसकालविषे जाणेहारे योगीपुरुष अर्थात् दिनरात्रि आदिक कालके अभिमानी देवतावोंकरिकै उपलक्षित मार्गविषे जाणेहारे योगीपुरुष अनावृत्तिकूं तथा आवृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं सो काल मैं तुम्हारे प्रति कथन करताहूं। अर्थात् ता कालके अभिमानी देवताओंकरिकै उपलक्षित सो अनावृत्तिका मार्ग तथा आवृत्तिका मार्ग मैं तुम्हारे प्रति कथन करताहूं। इहां (योगिनः) या पदकरिकै उपासक पुरुषोंका तथा कर्मी पुरुषोंका दोनोंका ग्रहण करणा । तहां देवयानमार्गविषे जाणेहारे उपासक पुरुष तौ अनावृत्तिकूं प्राप्तहोवैं हैं और पितृयाणमार्गविषे जाणेहारे कर्मी पुरुष तौ आवृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं । यद्यपि देवयानमार्गविषे जाणेहारे उपासक पुरुषभी पुनरावृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं । यह वार्त्ता (आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽर्जुन) इस वचनविषे पूर्व कथनकरीहै तथापि पितृयाणमार्गविषे जाणेहारे जितनेक कर्मीपुरुष हैं ते सर्व कर्मीपुरुष नियमकरिकै आवृत्तिकूंही प्राप्त होवैं हैं । कोईभी कर्मी पुरुष तहां क्रममुक्तिकूं प्राप्त होता नहीं । और देवयानमार्गविषे जाणेहारे जे उपासक पुरुष हैं तिन उपासकोंके मध्यविषे यद्यपि केईक उपासक पुरुष ता ब्रह्मलोकविषे भोगोंकूं भोगिकै अंतविषे पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं । जैसे पंचाग्निविद्यादिक उपासना करिकै ता देवयानमार्गद्वारा ब्रह्मलोकविषे प्राप्तहुएभी ते उपासक पुरुष पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होवैंहैं, तथापि जे उपासक पुरुष दहरविद्यादिक उपासनावोंकरिकै ता देवयानमार्गद्वारा ब्रह्मलोककूं प्राप्त हुएहैं ते उपासक पुरुष तौ पुनः आवृतिकूं प्राप्त होते नहीं किंतु ब्रह्मलोकके भोगोंके अंतविषे क्रममुक्तिकूं ही प्राप्त होवैंहैं । यातैं ता देवयानमार्गद्वारा ब्रह्मलोकविषे प्राप्तहुए उपासक पुरुष सर्वही आवृत्तिकूं प्राप्त होवैं नहीं । इसी कारणतैंही पितृयाणमार्ग नियमकरिकै आवृत्तिरूप फलवाला होणेतैं निकृष्ट है। और यह देवयानमार्ग तौ अनावृत्तिरूप फलवाला होणेतैं उत्कृष्ट है । या प्रकारतैं तिस देवयानमार्गकी स्तुति संभवै है । यद्यपि ता देवयानमार्गद्वारा गयेहुए कितनेक पुरुषोंकी पुनः आवृत्ति होवैहै तथापि ता देवयानमार्गद्वारा गयेहुए कितनेक उपासक पुरुषोंकी पुनः आवृत्ति होती नहीं । यातैं ता देवयानमार्गविषे अनावृत्तिरूप फलवत्ता संभवै है । इहां (यत्रकाले तं कालम्) या वचनविषे स्थित जो काल यह शब्द है ता कालशब्दकी दिनरात्रि आदिककालके अभिमानी देवतावोंकरिकै उपलक्षित मार्गविषे जो लक्षणा नहीं अंगीकार करिये किंतु ता कालशब्दका यह श्रुतमुख्य अर्थही अंगीकार करिये तौ वक्ष्यमाण

श्लोकविषे (अग्निर्ज्योतिर्धूमः) इन शब्दोंकी अनुपपत्ति होवैगी। जिसकारणतैं इन शब्दोंके अर्थविषे कालरूपता है नहीं। तथा स्पष्टमार्गके वाचक जो वक्ष्यमाण गति सृति यह दो शब्द हैं तिन्होंकीभी अनुपपत्ति होवैगी। या कारणतैं कालशब्दकी ता मार्गविषे लक्षणा अंगीकार करीहै। और तिन दोनों मार्गोंविषे कालके अभिमानी देवता बहुत हैं, यातैं श्रीभगवान्नैं ता मार्गका उपलक्षक कालशब्द कथन कऱ्याहै ॥ २३ ॥

तहां प्रथम उपासक पुरुषोंके देवयानमार्गकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ॥
तत्र प्रयाता गच्छंति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) अग्निः । ज्योतिः । अहः । शुक्लः । षण्मासाः । उत्तरायणम् । तत्र । प्रयाताः । गच्छंति । ब्रह्म । ब्रह्मविदः । जनाः ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसमार्गविषे ज्योतिरूप अग्नि तथा दिन तथा शुक्लपक्ष तथा षट्मासरूप उत्तरायण इत्यादिक स्थित हैं तिस देवयानमार्गविषे गमन करणेहारे सगुणब्रह्मके उपासक जन तिस सगुणब्रह्मकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ २४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन! जिस देवयानमार्गविषे प्रथम ज्योतिरूप अग्नि स्थित है तिसतैं अनंतर दिवस स्थित है। तिसतैं अनंतर शुक्लपक्ष स्थित है। तिसतैं अनंतर षट्मासरूप उत्तरायण स्थित है। इहां (अग्निर्ज्योतिः) इस शब्दकरिकै अग्निके अभिमानी देवताका ग्रहण करणा। इसी अग्निकूं श्रुतिविषे (अर्चिः) या नामकरिकै कथन कऱ्याहै। और (अहः) इस शब्दकरिकै दिनके अभिमानी देवताका ग्रहण करणा। और (शुक्लः) इस पदकरिकै शुक्लपक्षके अभिमानी देवताका ग्रहण करणा। और (षण्मासा उत्तरायणम्) इस वचनकरिकै षट्मासरूप उत्तरायणके अभिमानीदेवताका ग्रहण करणा। यह कथनकरेहुए देवता श्रुतिउक्त दूसरे देवताओंकेभी उपलक्षक हैं। तहां श्रुति–(तेऽर्चिरभिसंभवंत्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षडुदङ्ङेतिमासांस्तान्मासेभ्यः संवत्सरं संवत्सरादादित्यमादित्याचंद्रमसं चंद्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एतान्ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्त्तं नावर्त्तंते इति ।) अर्थ यह–ते उपासक पुरुष प्रथम अर्चिके अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवैं हैं। तिसतैं अनंतर दिनके अभिमानी

देवताकूं प्राप्त होवैं हैं । तिसतैं अनंतर शुक्लपक्षके अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवैं हैं । तिसतैं अनंतर षट्मासरूप उत्तरायणके अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवैं हैं । तिसतैं अनंतर संवत्सरके अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवैं हैं। तिसतैं अनंतर आदित्यकूं प्राप्त होवैं हैं । तिसतैं अनंतर चंद्रमाकूं प्राप्त होवैं हैं । तिसतैं अनंतर विद्युत्कूं प्राप्त होवैं हैं । तहां अमानव पुरुष आइकै इन उपासक पुरुषोंकूं ब्रह्मलोकविषे लेजावै हैं। इसीका नाम देवमार्ग है तथा ब्रह्ममार्ग है। इस देवयानमार्गकरिकै ब्रह्मलोककूं प्राप्तहुए यह उपासक पुरुष इस मानव आवर्तकूं नहीं प्राप्त होवैं हैं इति । तहां इस श्रुतिविषे दूसरी श्रुतिके अनुसार संवत्सरतैं अनंतर देवलोक देवता तिसतैं अनंतर वायुदेवता तिसतैं अनंतर आदित्य देवताका ग्रहण करणा । तथा विद्युतके अनंतर वरुण इंद्र प्रजापति इन तीनों देवतावोंका ग्रहण करणा । इस प्रकार श्रीभाष्यकारोंने निर्णय कऱ्याहै । तहां तिस उपासक पुरुषकूं प्रथम तौ अग्निदेवता लेजावैहै, ता अग्निलोकतैं दिनकी अभिमानी देवता आपणे लोकविषे लेजावैहै । यह रीति आगेभी जानिलेणी । और विद्युत्लोकविषे ब्रह्मलोकवासी अमानव पुरुष आइकै ता उपासक पुरुषकूं वरुणलोकविषे लेजावैहै । ता उपासक तथा अमानव पुरुष दोनोंके साथि विद्युत्का अभिमानी देवता ता वरुणलोकपर्यंत जावैहै । तिसतैं अनंतर सो वरुणदेवता तिन दोनोंके साथि इंद्रलोकपर्यंत जावैहै । तिसतैं अनंतर सो इंद्रदेवता तिन दोनोंके साथि प्रजापतिके लोकपर्यंत जावैहै । तिसतैं अनंतर प्रजापतिकूं ता ब्रह्मलोकविषे जाणेका सामर्थ्य है नहीं । यातैं केवल अमानव पुरुषही ता उपासककूं ब्रह्मलोकविषे लेजावैहै। इहां प्रजापतिशब्दकरिकै विराट्का ग्रहण करणा इति । तहां श्रीभगवान्नैं तौ अग्निका अभिमानी देवता दिनका अभिमानी देवता शुक्लपक्षका अभिमानी देवता उत्तरायणका अभिमानी देवता यह च्यारि देवताही इहां कथन करेहैं। संवत्सर देवलोक वायु आदित्य चंद्रमा विद्युत् वरुण इंद्र प्रजापति यह सर्वदेवता इहां कथन करे नहीं। तौभी ता श्रुतिके अनुसार तिन सर्वदेवतावोंका इहां ग्रहण करणा इति । जिस मार्गविषे यह अग्नितैं आदिलैके प्रजापतिपर्यंत सर्व देवता स्थित हैं तिस देवयानमार्गविषे गमन करणेहारे सगुणब्रह्मके उपासक जन तिस हिरण्यगर्भरूप सगुण ब्रह्मकूं ही प्राप्त होवैं हैं । तिस सगुण ब्रह्मद्वाराही ते उपासक पुरुष निर्गुणब्रह्मकूं प्राप्त होवैं हैं । यह वार्त्ता (कार्यं बादरिरस्य गत्युपपत्तेः) इस सूत्रविषे भगवान् भाष्यकारोंनैं विस्तारतैं कथन करी

है । इहां (एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तंते) इस श्रुतिविषे इमं यह विशेषण कथन कऱ्याहै ता विशेषणतैं यह अर्थ प्रतीत होवैहै । इस कल्पतैं अनंतर दूसरे कल्पविषे केईक पंचाग्निविद्यावाले उपासक पुरुष तिस ब्रह्मलोकतैं पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं । तिनोंकीही श्रीभगवान्नैं (आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनः) इस वचनकारिकै आवृत्ति कथन करी है इसी कारणतैंही इहां श्रीभगवान्नैं उक्तमार्गका श्रुतिप्रतिपादितमार्गके कथन कारिकैही व्याख्यान कऱ्या है । इस देवयानमार्गका विस्तारतैं कथन तौ आत्मपुराणके षष्ठ अध्यायविषे प्रसिद्ध है॥ २४॥

अब इस पूर्वउक्त देवयानमार्गकी स्तुति करणेवासतै श्रीभगवान् पितृयाणमार्गकूं कथन करैं हैं-

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ॥
तत्र चांद्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्त्तते ॥ २५ ॥

(पदच्छेदः) धूमः । रात्रिः । तथा । कृष्णः । षण्मासाः । दक्षिणायनम् । तत्र । चांद्रमसम् । ज्योतिः । योगी । प्राप्य । निवर्त्तते ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसमार्गविषे धूम तथा रात्रि तथा कृष्णपक्ष तथा षट्मासरूप दाक्षिणायन इत्यादिक स्थितहैं तिस मार्गविषे गमनकरणेहारे कर्मी पुरुष चंद्रमातैं प्राप्तहुए कर्मके फलकूं प्राप्त होइकै पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ २५ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जिस पितृयाण मार्गविषे प्रथम धूम स्थित है। तिसतैं अनंतर रात्रि स्थित है । तिसतैं अनंतर कृष्णपक्ष स्थित है । तिसतैं अनंतर षट्मासरूप दक्षिणायन स्थित है । इहांभी (धूमः) इस शब्दकारिकै धूमके अभिमानी देवताका ग्रहण करणा । और (रात्रिः) इस शब्दकारिकै रात्रिके अभिमानी देवताका ग्रहण करणा । और (कृष्णः) इस शब्दकारिकै कृष्णपक्षके अभिमानी देवताका ग्रहण करणा । और (षण्मासा दक्षिणायनम्) इस वचनकरिकै षट्मासरूप दक्षिणायनके अभिमानी देवताका ग्रहण करणा । इहांभी यह कथन करे हुए धूमादिक च्यारि देवता श्रुति उक्त दूसरे देवतावोंकेभी उपलक्षक हैं । तहां श्रुति-(ते धूममभिसंभवंति धूमाद्रात्रिं रात्रेरपरपक्षमपरपक्षाद्यान् षड्दक्षिणेति मासांस्तान्मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाचंद्रमसं तस्मिन्यावत्संपातमुषित्वाथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्त्तते इति ।) अर्थ यह-ते कर्मी पुरुष

प्रथम धूमके अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवैं हैं। तिसतैं अनंतर रात्रिके अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवैं हैं। तिसतैं अनंतर कृष्णपक्षके अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवैं हैं। तिसतैं अनंतर षट्मासरूप दक्षिणायनके अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवैं हैं। तिसतैं अनंतर पितृलोकके अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवैं हैं। तिसतैं अनंतर आकाशके अभिमानीदेवताकूं प्राप्त होवैं हैं। तिसतैं अनंतर चंद्रमाकूं प्राप्त होवैं हैं। ता स्वर्गनामा चंद्रलोकविषे पुण्यकर्मोंके भोगकालपर्यंत निवास करिकै पश्चात् परिशेषतैं रहे हुए पुण्यपापकर्मोंके वशतैं पुनः तिस मार्गद्वारा निवृत्त होवैं हैं इति। इहां श्रीभगवान्नैं धूमका अभिमानी देवता, रात्रिका अभिमानी देवता, कृष्णपक्षका अभिमानी देवता, दक्षिणायनका अभिमानी देवता यह च्यारि देवताही कथन करैं हैं। पितृलोकका अभिमानी देवता, आकाशका अभिमानी देवता, चंद्रमादेवता यह तीन देवता कथन करे नहीं। तौभी इस श्रुतिके अनुसार ते तीनों देवताभी इहां ग्रहण करणे। इस प्रकार धूमके अभिमानी देवतातैं आदिलैके चंद्रमा देवतापर्यंत कथन करेहुए सर्वदेवता जिस मार्गविषे स्थित हैं तिस पितृयाण मार्गविषे गमन करणेहारे इष्ट पूर्त दत्त इन तीन प्रकारके कर्मोंकूं करणेहारे कर्मीपुरुष ता चंद्रलोकविषे चंद्रमातैं प्राप्तहुए तिन कर्मोंके सुखरूप फलकूं प्राप्त होइकै तिन कर्मोंके क्षयतैं अनंतर पुनः इस मनुष्यलोकविषे आवृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं यातैं इस पितृयाणनामा आवृत्तिके मार्गतैं सो देवयाननामा अनावृत्तिका मार्ग अत्यंत श्रेष्ठ है। इहां अग्निहोत्रादिक कर्मोंका नाम इष्टकर्म है। और वापी कूप तालाव धर्मशाला इत्यादिक कर्मोंका नाम पूर्त्तकर्म है। और सुपात्रके प्रति गौ सुवर्णादिक पदार्थोंका दान करणा याका नाम दत्तकर्म है। इन तीन प्रकारके कर्मोंका स्वरूप पूर्वभी विस्तारतैं कथन करि आये हैं ॥ २५ ॥

अब इन पूर्व उक्त दोनों मार्गोंका उपसंहार करैं हैं—

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ॥
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्त्तते पुनः ॥ २६ ॥

(पदच्छेदः) शुक्लकृष्णे । गती । हि । एते । जगतः । शाश्वते । मते । एकया । याति । अनावृत्तिम् । अन्यया । आवर्त्तते । पुनः ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इनलोकोंके यह प्रसिद्ध शुक्लकृष्ण दोनों मार्ग अनादिक सिद्ध हैं तिन दोनों मार्गोंविषे एकशुक्लमार्गकरिकै तौ कोई उपासक पुरुष

अनावृत्तिकूं प्राप्तहोवैं हैं और दूसरे कृष्णमार्गकरिकै तौ सर्वही जन पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ २६ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! पूर्व ब्रह्मलोकके प्राप्तिका मार्गरूपकरिकै कथन कऱ्या जो देवयानमार्ग है सो देवयानमार्ग ज्ञानरूप प्रकाशकी अधिकतावाले अग्नि आदिक देवतावों कारिकै युक्त है। तथा प्रकाशरूप सगुण ब्रह्मविद्याकरिकै प्राप्त होवै है। तथा प्रकाशमय लोकभी तिस मार्गविषे बहुत हैं। तथा स्वप्रकाशब्रह्मके प्राप्तिका हेतु होणेतैं उत्कृष्ट है। तथा ज्ञानरूप प्रकाशमय है। याकारणतैं सो देवयानमार्ग शुक्ल इसनामकरिकै कह्या जावैहै। और पूर्व स्वर्गलोकके प्राप्तिका मार्गरूप करिकै कथन कऱ्या जो पितृयाणमार्ग है सो पितृयाणमार्ग तौ ज्ञानरूप प्रकाशतैं रहित होणेतैं तमोमय है। तथा अप्रकाशरूप धूमरात्रिआदिकों करिकै युक्तहै। तथा पुनः संसारका हेतु होणेतैं निकृष्ट है। या कारणतैं सो पितृयाणमार्ग कृष्ण इस नामकरिकै कह्या जावैहै। इसप्रकार शुक्लकृष्ण नामकरिकै प्रसिद्ध यह पूर्व उक्त दोनों मार्ग इस जगत्के अनादिसिद्ध हैं अर्थात् यह संसार प्रवाहरूपकरिकै अनादि है। यातैं ता संसारविषे वर्त्तणेहारे ते दोनों मार्गभी अनादिही हैं। यद्यपि जगत् यह शब्द प्राणीमात्रका वाचक है तथापि इहां जगत्शब्दकरिकै सगुणविद्याके अधिकारी तथा कर्मोंके अधिकारी जे शास्त्रज्ञ मनुष्य हैं तिनोंका ही ग्रहण करणा। प्राणीमात्रका ग्रहण करणा नहीं। काहेतैं ते दोनों मार्ग सर्वप्राणीमात्रकूं प्राप्त होते नहीं किंतु केवल उपासक कर्मीपुरुषोंकूं ही प्राप्त होतेहैं। कर्मउपासनातैं रहित पापात्मा अज्ञानी पुरुषोंकूं तौ अधोगतिकूं प्राप्तकरणेहारा तृतीयस्थाननामा मार्गही प्राप्त होवैहै। यातैं इहां जगत्शब्दकरिकै उपासकपुरुषोंका तथा कर्मीपुरुषोंकाही ग्रहण करणा उचित है इति। हे अर्जुन ! तिन दोनों मार्गोंविषे प्रथम देवयानरूप शुक्लमार्गकरिकै ब्रह्मलोकविषे प्राप्तहुए उपासक पुरुषोंविषे केईक उपासक पुरुष अनावृत्तिकूं ही प्राप्त होवैं हैं। तहां श्रुति–(न च पुनरावर्त्तते इति।) अर्थ यह–सो क्रममुक्तिवाला उपासक पुरुष पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होता नहीं। और दूसरे पितृयाणनामा कृष्णमार्गकरिकै स्वर्गविषे प्राप्त हुए कर्मीपुरुष तौ सर्वही पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं। तहां श्रुति–(प्राप्यांतं कर्मणस्तस्य यत्किंचेह करोत्ययम्। तस्माल्लोकात्पुनरेति अस्मै लोकाय कर्मणे ॥) अर्थ यह–यह पुरुष इस मनुष्यलोकविषे जो जो पुण्यकर्म करैहै तिस पुण्यकर्मके वशतैं स्वर्गलोकविषे जाइकै तिस पुण्य-

कर्मोंकूं भोगतैं नाशकरिकै तिस लोकतैं पुनः इस मनुष्यलोककी प्राप्तिवासतै आवै है ॥ २६ ॥

तहां जैसे सगुणब्रह्मकी उपासना ता ब्रह्मलोकके प्राप्तिका कारण है तैसे ता देवयानमार्गका चिंतनभी कारण है। यातैं ता मार्गकी उपासना करावणेवासतै श्रीभगवान् ता मार्गके ज्ञानकी स्तुति करैहैं—

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ॥
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥ २७ ॥

(पदच्छेदः) न। एते। सृती। पार्थ। जानन्। योगी। मुह्यति। कश्चन। तस्मात्। सर्वेषु। कालेषु। योगयुक्तः। भव। अर्जुन ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ! इन पूर्वउक्त दोनोंमार्गोंकूं जानताहुआ कोईभी ध्यानपरायणपुरुष नहीं मोहकूं प्राप्त होवै है तिसकारणतैं हे अर्जुन! सर्व कालविषे तूं ध्यानपरायण होउ ॥ २७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन! यह देवयाननामा शुक्लमार्ग तौ क्रममुक्तिकी ही प्राप्ति करणेहारा है। और यह पितृयाणनामा कृष्णमार्ग तौ पुनः संसारकी ही प्राप्ति करणेहारा है। याप्रकारतैं इन दोनों मार्गोंकूं जानणेहारा सगुणब्रह्मके ध्यानपरायण पुरुष कोईभी मोहकूं प्राप्त होता नहीं अर्थात् ता पितृयाणमार्गकी प्राप्तिकरणेहारे जो इष्टपूर्त्त कर्महैं ते कर्मही हमारेकूं कर्त्तव्य हैं अन्य कुछ कर्तव्य नहीं या प्रकारतैं केवल तिन कर्मोंकूं ही कर्त्तव्यतारूपकरिकै निश्चय करता नहीं। हे अर्जुन! जिस कारणतैं सो सगुणब्रह्मका ध्यानरूप योग अपुनरावृत्तिरूप फलकी ही प्राप्ति करणेहारा है। तिस कारणतैं तूं अर्जुन तिस अपुनरावृत्ति फलवासतै तिस योगकरिकै युक्त होउ अर्थात् समाहितचित्तवाला होउ ॥ २७ ॥

अब ता ध्यानरूप योगविषे अधिकारीजनोंके श्रद्धाकी वृद्धिकरावणे वासतै श्रीभगवान् पुनः ता योगकी स्तुति करैहैं—

वेदेषु यज्ञेषु तपस्सु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ॥
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे महापुरुषयोगो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) वेदेषु । यज्ञेषु । तपस्सु । च । एव । दानेषु । यत् । पुण्यफलम् । प्रदिष्टम् । अत्येति । तत् । सर्वम् । इदम् । विदित्वा । योगी । परम् । स्थानम् । उपैति । च । आद्यम् ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! वेदोंविषे तथा यज्ञोंविषे तथा तपोंविषे तथा दानोंविषे जो पुंण्यका स्वर्गादिक फल शास्त्रनैं कथन कऱ्याहै तिसं सर्वकूं सो ध्याननिष्ठ पुरुष ईस पूर्वअर्थकूं जानिकै अतिक्रमण करै है तथा सर्वतें उत्कृष्ट कारणरूप स्थानकूंभी प्राप्त होवै है ॥ २८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! वेदोंके अध्ययनकालविषे शास्त्रनैं जे ब्रह्मचर्यादिक नियम कथन करेहैं तिन नियमोंके पालनपूर्वक व्याकरणादिक षट्अंगोंसहित अध्ययनकरे जे ऋगादिक वेद हैं तिन वेदोंके अध्ययन कियेहुए ता अध्ययनकरता पुरुषकूं शास्त्रनैं जो पुण्यका फल कथन कऱ्याहै और अंग उपअंगों सहित तथा श्रद्धापूर्वक सम्यक् अनुष्ठान करेहुए जे अश्वमेधादिक यज्ञ हैं तिन यज्ञोंके कियेहुए तिन यज्ञकरता पुरुषकूं शास्त्रनैं जो पुण्यका फल कथन कऱ्या है। और मन बुद्धिआदिकोंकी एकाग्रता करिकै श्रद्धापूर्वक करेहुए जे शास्त्रविहित कृच्छ्रचां-द्रायणादिक तप हैं तिन तपोंके कियेहुए तिस तपकरता पुरुषकूं शास्त्रनैं जो पुण्य-का फल कथन कऱ्याहै और उत्तम देशकालविषे सुपात्रके ताईं शास्त्रकी विधि-पूर्वक तथा श्रद्धापूर्वक गौसुवर्णादि पदार्थोंका दान है । ता दानके किये हुए तिस दानकरता पुरुषकूं शास्त्रनैं जो पुण्यका फल कथन कऱ्या है अर्थात् सार्वभौमके सुखतैं आदिलैके विराट्लोकके सुखपर्यंत जितनाक तैत्तिरीय श्रुतिनैं शतशतगुणा अधिक सुख कथन कऱ्याहै, तिन सर्वपुण्यके सुखरूप फलोंकूं सो ध्यानपरायण पुरुष अतिक्रमण करैहै । किस अर्थकूं जानिकरिकै अतिक्रमण करैहै ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं (इदं विदित्वा इति) हे अर्जुन ! इस अष्टमअध्यायविषे पूर्वउक्त सप्तप्रश्नोंके निरूपणद्वारा कथन कऱ्या जो अर्थ है तिस सर्व अर्थकूं सम्यक् निश्चयकरिकै तथा श्रद्धापूर्वक तिस अर्थका अनुष्ठानकरिकै सो सगुण ब्रह्मके ध्यानपरायण उपासक पुरुष तिन सर्व पुण्यकर्मोंके फलोंकूं अतिक्रमण करै है । शंका—हे भगवन् ! सो उपासक पुरुष केवल तिन पुण्यक-र्मोंके फलोंकूंही अतिक्रमण करैहै अथवा तिसकूं कोई दूसराभी फल प्राप्तहोवै है ?

